श्रीशंकर पुस्तक-माला—पुष्प ११

पितु श्री रामचन्द्रजी वृद्धिचन्दजी कवा की पावन स्मृति में
रामनिवास कवा द्वारा प्रदत्त

प्रधान संपादक

विश्वनाथप्रसाद मिश्र, एम० ए० साहित्यरत्न

सहायक

रमाकांत चौबे 'विशारद

श्रीदेवाचार्य 'साहित्यरत्न

बजरंगबली गुप्त 'विशारद

मोहनवल्लभ पंत एम० ए०

प्रकाशक

द्वितीयावृत्ति] शरत्पूर्णिमा, १९९३ [मूल्य
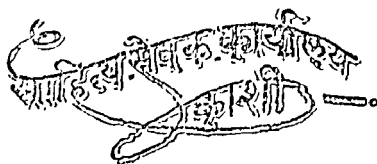
श्री लाला भगवानदीन जी

श्रद्धांजलि

स्वर्गीय लाला भगवानदीनजी

की

पवित्र एवं पुण्य स्मृति में

गुरुवर,

स्वर्ग में आपकी आत्मा को इसी से तुष्टि हो सकती है कि हम लोग साहित्य-सेवा करते रहें। यह ग्रंथ आप ही के प्रोत्साहन और प्रसाद से प्रस्तुत हुआ है। आप इस शताब्दी के 'भूषण' थे। इसलिये श्रद्धा-भक्ति-समेत आपकी ही स्मृति में यह अंजलि दे रहे हैं। आपकी तृप्ति इस अंजलि-दान से उस समय समझ लेंगे, जब हम लोगों का हृदय साहित्य-सागर में आपकी ही तरह मग्न होने लगेगा।

आपके—

शिष्य-गण

वक्तव्य

(प्रथम संस्करण)

आज से तीन वर्ष पूर्व स्वर्गीय लाला भगवानदीनजी के आदेशानुसार हम लोगों ने 'भूषण-ग्रंथावली' का संपादन आरंभ किया। यह ग्रंथ उस समय हिंदी-साहित्य-सम्मेलन की मध्यमा परीक्षा में पाठ्य-पुस्तक नियत था। काशीस्थ हिंदी-साहित्य-विद्यालय में जो विद्यार्थी उक्त परीक्षा की तैयारी करते थे उन्हें बहुत-सी अड़चनें पड़ती थीं। उस समय तक केवल दो ही सुसंपादित संस्करण प्रकाशित हुए थे; एक मिश्र-बंधु महोदयों का और दूसरा पं० रामनरेश त्रिपाठी का। इन दोनों संस्करणों में 'शिवराज-भूषण' के अलंकारों का पर्याप्त विवेचन नहीं था। इसीलिये उक्त ग्रंथावली के संपादन की आवश्यकता समझी गई। कार्य आरंभ हो गया। पहले हम लोगों ने केवल साहित्यिक दृष्टि से ही पुस्तक का संपादन आरंभ किया था और केवल चलते पाठों को ही लेकर विषय का विवेचन कर दिया था। पुस्तक में पाठांतर भी नहीं दिए गए थे। क्योंकि लालाजी पाठांतर देने के विरोधी थे। उनका कहना था कि कवि अपनी पुस्तक में एक ही पाठ रखता है; संपादक का कर्तव्य है कि वह काव्य और कला की दृष्टि से विभिन्न पाठांतरों में से एक सर्वोत्तम पाठ चुन ले। किंतु जब पुस्तक की टिप्पणियों का छपना प्रारंभ हुआ तो विभिन्न पाठांतरों को सामने रखकर उनकी छान-बीन की जाने लगी। पं० रमाकांत चौबे ने कई पाठांतरों को देखकर इस बात पर जोर दिया कि भूषण-ग्रंथावली पर ऐतिहासिक दृष्टि से भी भरपूर विचार होना चाहिए, केवल अलंकारों का विवेचन करके काम चलता कर देने से भूषण की कविता का पूर्ण महत्त्व प्रदर्शित नहीं हो सकता।

अब शिवाजी के संबंध में प्रामाणिक ऐतिहासिक ग्रंथों का संग्रह होने लगा। अँगरेजी और मराठी के कई ग्रंथ इकट्ठे किए गए और इस ऐतिहासिक छान-बीन का कार्य चौबेजी के ही सिर पटक दिया गया। चौबेजी ने जितना उत्तम परामर्श दिया और इस संबंध में जितना अधिक परिश्रम किया, उतनी ही तत्परता कार्य-संपन्न करने में नहीं दिखाई। पुस्तक का

मूल-भाग छप चुका था। चौबेजी के आलस्य से जब एक वर्ष तक ऐतिहासिक छान-बीन न हो सकी तो हमने उकताकर टिप्पणियों का छपाना भी प्रारंभ कर दिया। टिप्पणियाँ छाप डाली गईं और चौबेजी से तगादा किया जाने लगा। जब कुछ दिनों तक तगादा करते रहने पर भी आवश्यक कार्य न हो सका तो पुस्तक का छपाना रोक दिया गया। हमने इसी बीच पुस्तक की भूमिका लिखनी प्रारंभ की। उसके दो अंश लिख डाले गए और आलोचनावाला अंश उस समय समयाभाव से नहीं लिखा जा सका। चौबेजी से तगादा करना भी नहीं छोड़ा गया था। अंततोगत्वा उन्होंने लगभग डेढ़ वर्षों के उपरांत ऐतिहासिक टिप्पणियाँ लिखकर दीं। जब प्रेस में छपने के लिये कापी दी गई तो उन लोगों के पास इतना काम लदा था कि वे भी कई महीनों तक पुस्तक में हाथ न लगा सके। जब उन लोगों ने छापने का विचार किया तो पारिवारिक झंझटों के कारण हम उसमें योग न दे सके। इस प्रकार पूरे तीन वर्ष बीत गए। अब ऐसा संयोग आया है कि हिंदी-संसार के सामने हम यह ग्रंथ लेकर उपस्थित हों।

पुस्तक का मूल छापते समय अन्य प्राप्य संस्करणों के अतिरिक्त विशेष रूप से श्रीगोविंद गिल्ला भाई के 'शिवराज-शतक' से सहायता ली गई थी। उस समय तक कोई हस्तलिखित प्रति नहीं देखी गई थी। इसके बाद काशिराज के पुस्तकालय में 'शिवराज-भूषण' की प्रति देखी गई, जिसमें समासोक्ति के उदाहरण में एक दोहा अधिक मिला (देखो पृष्ठ ११६, संख्या ७५)। लखनऊ जाने पर पं० कृष्णविहारी मिश्रजी से एक खंडित प्रति प्राप्त हुई। उनके पास दो प्रतियाँ और थीं। वे घर पर थीं, इसलिये निश्चय हुआ कि हम उनके यहाँ मूल-पाठ भेज देंगे और मिश्रजी कृपा करके मार्जिन पर पाठांतर लिखवा देंगे। पर संभवतः अधिक कार्य-भार के कारण मिश्रजी अभी तक उक्त कार्य पूरा करवाकर नहीं भेज सके। लखनऊ जाने पर हम पं० भगीरथप्रसाद दीक्षित से भी मिले और कुछ नवीन छंद प्राप्त किए।

'शिवराज-शतक' की भूमिका में श्रीगोविंद गिल्ला भाई ने मिश्रबंधुओं

की कड़ी आलोचना की है। उक्त पुस्तक हमने पं० शुकदेवविहारी मिश्रजी के पास भेजी और उनकी सम्मति माँगी। उन्होंने अपनी 'भूषण-ग्रंथावली' के पाँचवें संस्करण की ओर संकेत कर दिया। पुस्तक में जो बातें लिखी हैं उनका कोई उत्तर नहीं दिया। 'शिवराज-शतक' की भूमिका में श्रीगोविंद गिल्ला भाई ने अपनी हस्तलिखित प्रति का उल्लेख किया है और उस प्रति में मिश्रबंधु महोदयों के संस्करण से अधिक अलंकार होने की सूचना दी है। इस संबंध में हमने उनके घरवालों के पास कई पत्र लिखे, पर कोई उत्तर नहीं मिला। केवल 'शिवराज-शतक' पर संतोष करके हमने उसके अनुसार जो परिवर्तन उचित समझे कर दिए। भाईजी ने कुछ ऐसे अलंकारों के नाम भी लिखे हैं, जो 'शिवराज-भूषण' के अंत में दी हुई अलंकार-नामावली में नहीं हैं। जान पड़ता है, उनकी प्रति में उक्त नामावली नहीं है। संभवतः यह नामावली किसी प्रतिलिपिकार ने अथवा और किसी ने जोड़ी है। भाईजी की प्रति में विपरीत, ललित, गूढ़ोत्तर, चित्रोत्तर, प्रश्नोत्तर, युक्ति, प्रतिषेध और विधि अलंकार भी लक्षण एवं उदाहरण सहित दिए हुए हैं। उनकी भूमिका के अनुसार निम्नलिखित अलंकारों में परिवर्तन किए गए हैं—तुल्ययोगिता, प्रतिवस्तूपमा, निदर्शना, पर्यायोक्ति, कैतवापह्नुति, असंगति, विशेष और उल्लास। जिन अलंकारों के नाम 'नामावली' में नहीं हैं, उनमें हमने कोई सुधार नहीं किया। हमारा अनुमान है कि 'भूषण' ने अधिक अलंकारों का वर्णन अवश्य किया होगा। 'शिवा-बावनी' और 'फुटकर' के कितने ही छंद ऐसे हैं, जो अलंकारों के लिये ही बने हुए जान पड़ते हैं।

'शिवा-बावनी' का संकलन हमने नये ढंग से किया है। पिछली 'शिवा-बावनियों' में कुछ ऐसे छंद भी चिपके चले आ रहे थे जिनका लगाव शिवाजी से नहीं था। हमने ऐसे छंदों को निकाल दिया है; उनके स्थान पर अन्य छंद रख दिए हैं। 'शिवराज-शतक' के अनुसार जो छंद 'शिवराज-भूषण' के समझे गए और जो संदेहात्मक थे, वे हटा दिए गए। 'बावनी' का संकलन 'भूषण' ने स्वयं नहीं किया था, उसे लोगों ने बहुत दिनों बाद संकलित किया है। इसीसे हमने संग्रह के क्रम और छंदों को प्रामाणिक नहीं माना है। हमने एक प्रकार के छंदों को एक स्थान पर एकत्र करके

शीर्षक भी बाँध दिए हैं। यदि 'शिवा-बावनी' का संबंध, उन बावन छंदों से हो जो भूषण ने पहली भेंट के समय शिवाजी को सुनाए थे, तो इसमें अधिकांश ऐसे ही छंदों का संग्रह होना चाहिए जिनमें शिवाजी की सामान्य (जेनरल) बातों को लेकर प्रशंसा लिखी गई हो।

'छत्रसाल-दशक' का संपादन भी 'शिवा-बावनी' के ही आदर्श पर हुआ है। पिछले संस्करणों में कई ऐसे छंद भी संगृहीत थे जो हाड़ा छत्र-साल की प्रशंसा में लिखे गए थे। कई छंदों को श्रीगोविंद गिल्ला भाई ने अन्य कवियों का रचा बताया है। वे सब छंद संदेहात्मक-पद्यों में रखे गए हैं, केवल पन्ना-नरेश छत्रसाल की प्रशंसा में लिखे गए छंदों को ही हमने 'छत्रसाल-दशक' में रखा है। जो छंद इस प्रकार काट-छाँट करने से निकले थे उनकी पूर्ति याज्ञिक महोदयों के एक लेख से की गई है, जो 'माधुरी' में प्रकाशित हुआ था।

'फुटकर' शीर्षक में बचे-बचाए छंद संगृहीत किए गए हैं। भूषण के कुछ शृंगार-रस के छंद भी मिले हैं। 'फुटकर' में अन्य राजाओं की प्रशंसा के जो छंद हैं उनमें से कई ऐसे हैं जिनके विषय में हमें संदेह है। कई छंदों के पाठ भी अशुद्ध जान पड़ते हैं। जिनमें भूषण का नाम नहीं आया है उन्हें तो संशयपूर्ण ही समझना चाहिए।

'संदेहात्मक-पद्यों' के अंतर्गत जितने छंद हैं वे भूषण के बनाए हो भी सकते हैं और नहीं भी। इधर भूषण-संबंधी छान-बीन करने से पता चला है कि कितने ही परवर्ती कवियों ने निःसंकोच-भाव से इनकी पंक्तियाँ-की-पंक्तियाँ उड़ा ली हैं। इसी प्रकार कुछ लोगों ने केवल यथावश्यक परि-वर्तन करके ही भूषण के पद्यों से अपना काम चलाया है।

भूषण की कविता का अध्ययन करनेवालों की सुविधा के लिये हमने ऐतिहासिक नामों में ('शिवराज-भूषण' के) पद्यों की संख्या का भी संकेत दे दिया है और भूषण की प्रस्तुत कविता में प्राप्त होनेवाले स्थलों का एक नकशा भी जोड़ दिया है। शिवाजी और महाराज छत्रसाल के चित्र भी दिए गए हैं। भूषण के चित्र के लिये हमने कई स्थानों से लिखा-पढ़ी की, पर कहीं भी उसका पता नहीं चला।

जहाँ तक हो सका है पुस्तक में अच्छी-से-अच्छी सामग्री एकत्र की गई है। इस कार्य के संपन्न करने में हम लोगों ने जितने आनंद और साथ-ही-साथ कठिनाइयों का सामना किया है, हमीं जानते हैं। इसके संकलन करने में कोई बात उठा नहीं रखी गई है। विवादग्रस्त विषयों के संबंध में हमने अपना निश्चित मत लिख दिया है। भूषण शिवाजी के समय में ही थे, इसके संबंध में हमारे पास पर्याप्त प्रमाण हैं। हम पुस्तक में सिद्धांत की बातें लिखना ही पसंद करते हैं, विवाद के लिये तो पत्रिकाएँ हैं ही।

ग्रंथ का संपादन करने में जिन लोगों के ग्रंथों से हमें सहायता मिली है और जिन लोगों ने इस विषय में सहयोग एवं परामर्श आदि दिए हैं, हम उन सभी लोगों के अनुगृहीत और कृतज्ञ हैं। स्वर्गीय गुरुवर लाला भगवानदीनजी ने पुस्तक की टिप्पणियाँ दुहराई थीं। हमें खेद है कि उनकी जीवितावस्था में पुस्तक प्रकाशित न हो सकी।

हिंदी-जगत् से इससे बढ़कर हम और आशा क्या करें कि वह पुस्तक को अपनाए तथा आलोचकों से इसके अतिरिक्त और विनय क्या करें कि वे हमें दोषों की सूचना देकर अनुगृहीत करें।

ब्रह्मनाल, काशी
विजयादशमी, १९८८

विश्वनाथप्रसाद मिश्र

वक्तव्य

(द्वितीय संस्करण)

आज पाँच वर्षों के बाद 'भूषण-ग्रंथावली' का द्वितीय संस्करण लेकर हम पाठकों की सेवा में उपस्थित हो रहे हैं। इस संस्करण में कोई विशेष परिवर्तन नहीं किया गया है; जो त्रुटियाँ दिखलाई पड़ीं वे दूर कर दी गई हैं। जो 'नवीन छंद' प्राप्त हुए थे उन्हें यथास्थान 'फुटकर' शीर्षक में रख दिया गया है। थोड़ा परिवर्तन 'शिवा-बावनी' में करना पड़ा है। हम पहले संस्करण के 'वक्तव्य' में लिख चुके थे कि संदेहास्पद छंदों में कुछ छंदों के देखने से पता लगता है कि लोगों ने भूषण की नकल की है। यह बात अनुसंधान से सत्य निकली। कुछ छंदों में तो प्रमादवश अन्य कवियों का नाम आ गया है जैसे 'बाने फहराने' प्रतीक वाला छंद भ्रम से 'गंग' के नाम पर प्रचलित हो गया था। 'ऊँचे घोर मंदर' प्रतीक का कवित्त वस्तुतः 'इंदु' का नहीं है। 'इंदु' ने भूषण की नकल पर एक दूसरा ही छंद निर्मित किया है। भूषण की नकल बहुतों ने की है, जिनमें 'कविंद' और 'चंद्रशेखर' ऐसे भाषा के उस्ताद भी हैं। 'दत्त' के नाम पर जो सवैया प्रचलित हैं वे भी भूषण की नकल पर बने हैं। इसलिये 'केतिक देस' प्रतीक का सवैया हमें भूषण का ही जान पड़ता है। हाँ 'दाढ़ी के रखैयन की' प्रतीक वाला छंद नेवाज' का ही ज्ञात होता है। अभी हमने उसे संदिग्ध छंदों में ही रखा है, 'नेवाज' की अधिक कविता हमारे देखने में नहीं आई है, इसी से इस छंद पर अभी पूरा विचार नहीं हो सका है। 'फुटकर' में भी कई छंद ऐसे हैं जो भूषण के नहीं जान पड़ते। पर वे दूसरे किसी कवि के नाम पर नहीं मिले, इसलिये उन्हें रख छोड़ा है। भूषण ने कहीं जातिगत आक्षेप नहीं किया है, यह हमने भूमिका में दिखलाया है; इसलिये 'बाँएँ लिखवैयन' प्रतीक के ले छंद भूषण के नहीं जान पड़ते। पुस्तक शीघ्रता में छापनी पड़ी है इसलिये हमें इन सब छंदों पर पूरा विचार करने का अवसर नहीं मिल सका।

जो लोग भूषण को भाट समझते हैं, अथवा भूषण की कविता को इस्लाम धर्म के विरुद्ध घोषित करते हैं उनकी समझ की कोई दवा नहीं है। इसका समाधान भूषण की उन कविताओं से हो जाता है जिनमें उन्होंने औरंगजेब के पुरुषों (हुमायूँ, अकबर, शाहजहाँ, जहाँगीर आदि) की इसलिये प्रशंसा की है कि उन्होंने हिंदू-धर्म को मिटाने का प्रयत्न नहीं किया, उसकी रक्षा का ही उद्योग किया है। यदि भूषण भाट होते तो वे शिवाजी और छत्रसाल ऐसे लोकधर्म-रक्षक वीरों का आश्रय न लेकर समय की प्रवृत्ति के अनुरूप किसी शृंगारी नृपति का आश्रय ग्रहण करते।

जिन शिक्षा-संस्थाओं ने हमारी भूषण-ग्रंथावली को अपने यहाँ पाठ्यक्रम में नियत किया है, हम उनके विशेष अनुगृहीत हैं। हम शीघ्र ही भूषण पर एक स्वतंत्र पुस्तक प्रकाशित करने का विचार कर रहे हैं जिसमें भूषण की आलोचना और उनके संबंध के ऐतिहासिक मसले पर भरपूर विचार किया गया है। इधर होड़ाहोड़ी कितनी ही भूषण-ग्रंथावलियाँ निकल चुकी हैं, पर यह कहने में हमें संकोच नहीं है कि असल और नकल में जो अंतर होता है वह अभी बना हुआ है।

ब्रह्मनाल, काशी
विजयादशमी, १९९२ } **विश्वनाथप्रसाद मिश्र**

छात्रनिवास कर्ता द्वारा प्रदत्त

विषय-सूची

अंतर्दर्शन

१. अलंकार

साहित्य मानव-जीवन की आंतरिक भावनाओं का प्रतिरूप है। अतः साहित्य के सभी अंगों का मानव-जीवन के आभ्यंतर से घनिष्ट संबंध है। इसी से अलंकारों का भी मानव-जीवन के आभ्यंतर से बहुत गहरा संबंध है, क्योंकि हमारे विचार से भावों के अभिव्यंजन का विशेष प्रकार ही 'अलंकार' है। मनुष्य किसी वस्तु के आकार, स्वाद एवं रंग आदि के संबंध में आत्मानुभूति का प्रदर्शन दूसरों पर करता है, किंतु उक्त बातों की अभिव्यंजना ठीक-ठीक नहीं की जाती। इसलिए उनका निरूपण करने के लिए अतिप्रचलित, प्रसिद्ध एवं ज्ञेय वस्तु का संकेत करके काम निकाला जाता है। यही कारण है कि किसी मधुर पदार्थ का आस्वाद लेने पर लोग उसकी व्यंजना—'गुड़-सा मीठा है', 'अंगूर-सा स्वादिष्ट है' वा 'महुवे-सा लगता है'—कहकर करते हैं। यही नहीं कभी-कभी शब्दों को कर्णप्रिय एवं भावनाओं को सुखावह बनाने के लिए भी मूल शब्दों एवं भावनाओं का परिष्कृत एवं संस्कृत रूप मनुष्य-समाज के समक्ष रखता है। ये दोनों प्रवृत्तियाँ समाज के व्यवहार में इतनी मिली हुई हैं कि हमें कभी-कभी इनके विलक्षण परिवर्तनों पर भी आश्चर्य नहीं होता। किसी की मृत्यु पर लोग यह नहीं कहते कि अमुक मर गया, वरन् समाज में ऐसा कहना अशुभ माना जाता है। वे कहते हैं कि 'अमुक का स्वर्गवास हो गया' वा 'अमुक संसार से उठ गए' आदि। भावनाओं को सुखावह बनाने की प्रवृत्ति का भोंड़ा रूप हमें मुसलमानी शाही दरबारों के वार्तालापों में मिलता है। अगर शाहेसल्तनत बीमार हों तो जवाब मिलेगा—'हुजूर के दुश्मनों की तबियत नासाज़ है।'

मानव-जीवन और अलंकार

जन-समाज में अभिव्यंजन की ऐसी पद्धतियाँ, उसके विकास के समय से ही प्रचलित हो जाती हैं। जब आगे चलकर जन-समाज की भाषा साहित्य का रूप धारण करती है और उसमें अनेकानेक ग्रंथों का निर्माण होने लगता है तब विद्वान् समालोचक उन पद्धतियों का भी विश्लेपण करते हैं और इस प्रकार की पद्धतियों का निरूपण होना आरंभ हो जाता है। उक्त कथन से स्पष्ट है कि अलंकार एक प्रकार की भावाभिव्यंजन की शैली है। शैली का कोई अलग अस्तित्व नहीं हो सकता, क्योंकि भावों का नंगा रूप साहित्य के दायरे में नहीं आता। इस कारण यदि हम भावों को शरीरी मानें तो शैली को उसके वस्त्रादि की उपमा नहीं दे सकते; क्योंकि भावों को शरीरी बनाने में शैली का ही विशेषतः प्राधान्य रहता है। इसलिए शैली उक्त शरीरी का झलमलाता हुआ बाहरी रूप है। अलंकारों को कुछ लोग कविता-कामिनी के आभूषण की उपमा देते हैं। पर यदि गंभीरता से विचार किया जाय तो पता चलेगा कि जिस प्रकार कविता-कामिनी के मूर्त शरीर से आभूषणों का अलग अस्तित्व नहीं है। उसी प्रकार अलंकारों का कविता से अलग अस्तित्व नहीं है। यदि कामिनी के अंगों से आभूषण अलग कर दिए जायँ तो भी उसके सौंदर्य में त्रुटि नहीं आ सकती; पर अलंकारों को कविता से अलग करते ही उक्त सौंदर्य नष्ट हो जायगा। अतः साहित्य-संसार में कविता के साथ अलंकारों का वही संबंध है, जो कामिनी और उसके सौंदर्य में पाया जाता है। हमारे विचार से 'हारादिवदलंकाराः' कहकर अलंकार का क्षेत्र बहुत सीमित कर दिया गया है। जो लोग भावों को सौंदर्य मानते हैं और अलंकारों को 'हारादि'। वे अलंकारों को उस स्थान से हटाना चाहते हैं, जो वस्तुतः उन्हें प्राप्त होना चाहिए। भावों को शरीरी कह सकते हैं शरीर का सौंदर्य नहीं कविता-कामिनी के रूपक में शब्दों को शरीर का ढाँचा—हाड़-मांसादि—मानना चाहिए और भावों को शरीरी। इसके पश्चात् अलंकारों को सौंदर्य मानने से ही रूपक ठीक उतरेगा। आचार्य वामन ने स्पष्ट 'सौंदर्य-मलंकारः' लिखा है। वे अलंकार को व्यापक रूप में ही ग्रहण करते हैं। परकाल में अलंकारों का रूप सीमित होने लगा था और 'हारादिवदलंकाराः'

अलंकार एक शैली है

मानकर लोगों ने उसका निरूपण दूसरे ही ढंग से आरंभ किया था। परिणाम यह हुआ कि जहाँ अलंकारों को कविता का सौंदर्य मानकर 'उपमा-रूपकादि' अलंकारों को साहित्य में स्थान दिया गया था वहाँ परकाल में 'चित्र अनुप्रास मुद्रादि' अलंकारों का भी समावेश हुआ जिनके विश्लेषण से स्पष्ट पता चलता है कि इनका कविता-कामिनी के सौंदर्य से उतना संबंध नहीं जितना भिन्न अस्तित्ववाले आभूषणों से है। इन अलंकारों से तो कहीं-कहीं कविता में मूर्त आधार इतना अधिक हो जाता है कि वह ललित-कला में सर्वश्रेष्ठ होते हुए भी इनके कारण आंतरिक रूप में भद्दी जान पड़ने लगती है इसलिए कविता-कामिनी के आभूषणों को नहीं, वरन् उसके सौंदर्य को ही 'अलंकार' मानना समीचीन होगा।

हम ऊपर कह चुके हैं कि अलंकार एक प्रकार की शैली है। यह भावों के साथ दूध-पानी की भाँति मिली रहती है। समाज में जहाँ कविता का प्रणयन आरंभ हुआ वहाँ कुछ लोग इस उद्योग में संलग्न होते हैं कि उक्त काव्य की शैली का निरूपण किया जाय और भविष्य में लोग उन शैलियों के सहारे कविता को एक बँधे हुए रूप में लेकर आगे बढ़ें। इससे स्पष्ट है कि लक्षण-ग्रंथों का प्रणयन लक्ष्य-ग्रंथों के निर्माण के बहुत समय पश्चात् होता है। जो लोग यह मानते हैं कि समाज में पहले लक्षण-ग्रंथ बनते हैं और तदनुकूल उदाहरण-ग्रंथों के रूप में साहित्य का उदय होता है, वे भ्रम में हैं। महर्षि वाल्मीकि के समय में कोई लक्षण-ग्रंथ नहीं था, पर उन्होंने 'रामायण' की रचना की। कौन कह सकता है कि वह रस, भाव एवं अलंकार से हीन है? जिस प्रकार भाषा का निर्माण हो जाने पर पीछे व्याकरण द्वारा उसका निरोध किया जाता है और उसे विछिन्न रूप में बहने से रोका जाता है, ठीक उसी प्रकार साहित्य में कविता आदि का प्रणयन हो चुकने के बहुत कालोपरांत अलंकारादि-विषयक ग्रंथों का निर्माण होता है। यह बात दूसरी है कि लक्षण-ग्रंथों का निर्माण होने के पश्चात् परकाल में लक्ष्य-ग्रंथों का प्रणयन उसी के आधार पर होने लगे। जब लक्षण-ग्रंथों के द्वारा कविता की धारा अवरुद्ध हो जाती है और वह एक सीमित क्षेत्र में ही उमड़-घुमड़कर बहने लगती है

लक्षण-ग्रंथों का निर्माण

तब लक्षण-ग्रंथों का बाँध तोड़कर यह धारा बड़े वेग से बह निकलती है। यद्यपि इस कविताधारा में भी शैली की गति वही रहती है जो पहले थी अथवा उससे कुछ परिष्कृत ढंग पर, पर ऐसे समय में बाँध का तोड़ डालना ही रचयिताओं का लक्ष्य हो जाता है। वे बाँध को ही जंजाल समझने लगते हैं। यह बात आधुनिक हिंदी-साहित्य में स्पष्ट देख पड़ती है।

यद्यपि लक्ष्य-ग्रंथ ही साहित्य की मूल वस्तु हैं और उन्हीं के आधार पर लक्षणादि के ग्रंथों का प्रासाद खड़ा किया जाता है, पर लक्ष्य-ग्रंथकारों से अपेक्षाकृत लक्षण-ग्रंथकारों का दायित्व कहीं अधिक है। केवल दायित्व ही नहीं वरन् उसके लिए प्रगाढ़ विद्वत्ता और मर्मज्ञता भी अपेक्षित है। संस्कृत के विद्वानों ने इस कार्य को बड़े अच्छे ढंग से हाथ में लिया था। लक्ष्य-ग्रंथकार अपने ग्रंथों की रचना करके अलग हो जाते थे, वे लक्षण-ग्रंथों के निर्माण में नहीं पड़ते थे और लक्षण-ग्रन्थों के निर्माता केवल लक्षणों का निरूपण एवं प्राचीन काव्य की समालोचना में ही भिड़ते थे, स्वयं लक्षणानुसार उदाहरणों का निर्माण नहीं करते थे।

लक्षण-ग्रंथकारों का दायित्व

रीतिकारों को इस प्रकार रीति के विश्लेपण की बड़ी स्वच्छंदता थी। कभी-कभी लोग रीतिकारों की समालोचना पर चिढ़कर कह बैठते हैं कि यदि ये कुछ स्वयं लिखते तो जान पड़ता। पर हमारे विचार से यह बात अनुकरणीय नहीं है। जब रीतिकार का कार्य केवल विषयालोचन और शैली का स्थिरीकरण रहता है तभी वह उसका सर्वोत्तम स्वरूप प्रस्तुत कर सकता है, किंतु जब वह स्वयं उदाहरण रचने में संलग्न हो जाता है तो उसकी रचना मस्तिष्क का व्यायाम-मात्र होती है। हिंदी-साहित्य के रीतिकाल में कवियों की जैसी प्रवृत्ति पाई जाती है और उसका जैसा कुपरिणाम हुआ है उसे साहित्य का इतिहास स्पष्टतया बतलाता है। कवि लोग रीति का कोई विश्लेषण तो करते नहीं थे केवल मोटे-मोटे लक्षण कहकर अपने उदाहरणों से लक्षण-ग्रंथों को चलता कर देते थे। इससे दो प्रकार की हानियाँ होती हैं; एक तो लक्षणों का विश्लेषणात्मक और वैज्ञानिक निर्माण नहीं हो पाता, दूसरे उदाहरण-स्वरूप बहुत ही साधारण कविता सामने आती है। संस्कृत

में यह बात नहीं थी। यदि दो-एक अपवाद मिलें भी तो ऐसा कहने से वे बाधक नहीं हो सकते। भरत, मम्मट आदि रीतिकार थे, उदाहरणकार नहीं।

हिंदी में आचार्य बनने की बलवती वांछा के जागरित हो उठने से एक और बुराई उत्पन्न हुई। जो लोग संस्कृत की ओर लक्षण-निर्माण के लिए दृष्टि दौड़ाते थे उनके सामने एक बड़ा विस्तृत क्षेत्र दिखाई देता था। इसलिए वे लोग प्रायः किसी सरल ग्रंथ का ही पल्ला पकड़ते थे। परिणाम यह हुआ कि अधिकांश ग्रंथों में जितने उदाहरण पाए जाते हैं उन सभी का स्वरूप प्रायः एक-सा हो गया। अपना नया आविष्कार बहुत कम में पाया जाता है। बहुतों ने तो अलंकारों की केवल गिनती-मात्र गिनाई है। जिन लोगों का ध्यान संस्कृत की ओर विशेष गया और जिनमें उक्त भाषा का विशेष पांडित्य था उनमें सबसे बड़ा दोष यह आ गया कि उन्होंने केवल संस्कृत का ही अनुकरण किया, हिंदी की प्रकृति की उपेक्षा की। फल यह हुआ कि वे लोग ऐसे अलंकारों को भी हिंदी में बरबस रखने लगे जिनका हिंदी की प्रकृति से बिलकुल संबंध नहीं है।

हिंदी के रीतिकार

अलंकारों के विषय में हम ऊपर कह चुके हैं कि वे समाज की विभिन्न प्रवृत्तियों के कारण विभिन्न स्वरूपों में निर्मित हुए हैं। समाज में अपनी भावव्यंजना, कौशल-प्रदर्शन आदि की प्रवृत्ति के कारण इनकी रूप-भिन्नता होती है। किसी वस्तु के रूप, रंग और गुण का ठीक-ठीक प्रदर्शन करने के लिए उसी के समान किसी अन्य वस्तु का आश्रय लेना पड़ता है, क्योंकि संसार की प्रत्येक वस्तु का अस्तित्व, प्रकृति, गुण आदि दूसरी वस्तु से भिन्न है। ईश्वर की सृष्टि में कहीं साम्य नहीं है। एक ही माता-पिता से एक ही समय एक ही स्थान पर उत्पन्न बालकों में भी रूप, रंग, गुण की विभिन्नता पाई जाती है, अन्यथा संसार का कार्य न चल सके। इसलिए मनुष्य को किसी वस्तु के रूप-रंगादि का अभिव्यंजन करते समय उससे मिलती-जुलती किसी वस्तु का निर्देश करना पड़ता है। कभी-कभी दो वस्तुओं का स्वरूप समझाने में उनसे विपरीत रूप-रंगवाली वस्तु का भी उल्लेख करना

अलंकारों का उद्भम

पड़ा है। इन प्रवृत्तियों के कारण पहले समाज की बोलचाल में और पीछे साहित्यिक भाषा में समता एवं विषमता-सूचक शैलियों का प्रादुर्भाव होता है। अमांगलिक समाचारों एवं कार्यों के परित्याग और सुखावह एवं श्रवण-सुखद बातों के सुनने की मानवीय प्रवृत्ति के परिणाम-स्वरूप पर्याय, अतिशयोक्ति आदि अलंकारों का प्रचार बढ़ता है। जब समाज में व्यावहारिक बनावट आ जाती है, लोग मानवीय प्रवृत्ति के कारण अपना कुछ कौशल दिखाने के अभ्यासी हो जाते हैं, तब ऐसी शैलियों का प्रचलन होता है जिनमें अलंकाराभास मात्र होता है और जिनका संबंध अलंकारादि के आंतरिक रूप से न होकर बाह्य रूप से होता है। अनुप्रासादि, मुद्रादि इसी के परिचायक हैं। हिंदी के पिछले खेवे के कवियों में जो चमत्कारवाद की बाढ़ आई उसका मूल कारण मुसलमानी राज्य भी था। उस समय बाह्याडंबर का बोलबाला था। इसी प्रकार नाना प्रकार की मानवीय प्रवृत्तियों के कारण व्यंग्यमूलक, शृंखलामय, आधाराधेय-मूलक, कार्य-कारणमूलक, उक्ति-वैचित्र्यमूलक, समता-मूलक, विषमता-मूलक, रमणीयतामूलक, कौशलमूलक आदि अनेक प्रकार के अलंकारों का प्रादुर्भाव होता है। कुछ अलंकारों का उद्गम समाज न होकर रीतिकारों की विचार-शाला भी हुआ करती है। अलंकारों का विश्लेषण करते समय वे भी कई अलंकारों का निर्देश कर जाते हैं। बहुत-से अलंकारों का निर्माण कविताकार भी करते हैं। उनके आधारभूत पहले के ही अलंकार होते हैं, पर वे अपना कौशल-प्रदर्शन के लिए भी ऐसा कर गुजरते हैं। यही कारण है कि किसी भी साहित्य के आरंभिक जीवन में स्वाभाविक एवं सीधे-सादे अलंकारों का ही ग्रहण होता है और उनकी संख्या भी सीमित रहती है, पर आगे चलकर उनका एक भारी जाल फैल जाता है और चमत्कारवाद की प्रवृत्ति जग उठने पर लोग केवल पेचीले शब्दाडंबर और टेढ़े-मेढ़े वाक्यों को ही काव्य-रचना का गौरव समझने लगते हैं। तात्पर्य यह कि अलंकारों का वास्तविक उद्गम मानव-समाज और उसकी विभिन्न प्रवृत्तियाँ हैं। इसलिए इनका ध्यान रखकर ही लक्षण-ग्रंथों में अलंकारों का वर्गीकरण एवं विभाजन होना चाहिए और इसी के अनुसार उनका क्रम भी निर्धारित करना चाहिए।

अलंकार के सबसे प्रथम आचार्य संस्कृत में भगवान् वेदव्यास हैं। उन्होंने 'अग्निपुराण' में अलंकारों पर भी विचार किया है। उन्होंने अलंकारों के तीन भेद किए हैं—१. शब्दालंकार, २. अर्थालंकार और ३. उभयालंकार (शब्दार्थालंकार)। प्रायः यही क्रम तब से चला आ रहा है। उभयालंकार के अर्थ में अब अंतर है—जहाँ दो अलंकारों का मिश्रण हो, चाहे वे दोनों अर्थालंकार हों या शब्दालंकार अथवा अर्थ और शब्द दोनों हों। संस्कृत-साहित्य में, और आगे चलकर हिंदी में भी, इसी वर्गीकरण का अनुसरण किया गया है। संस्कृत-साहित्य में वर्गीकरण पर पुनः दृष्टिपात करनेवाले दूसरे आचार्य हैं 'रुद्रट'। इन्होंने अलंकारों के चार विभाग किए हैं—१. वास्तवमूलक, २. औपम्यमूलक, ३. अतिशयमूलक, और ४. श्लेषमूलक। इस वर्गीकरण में बहुत कुछ वैज्ञानिक विभाजन का ध्यान रखा गया है। शब्द और अर्थवाले भेद वस्तुतः बहुत व्यापक रूप में हैं। रचना में शब्द और उसका अर्थ मुख्य होता है। इसी आधार पर पूर्वोक्त सीधा-सादा वर्गीकरण किया गया था, और इन्हीं दो और दोनों के मिश्रित रूप को मिलाकर लोग तीन भेद मानते चले आते थे। 'रुद्रट' ने सबसे पहले इसपर गंभीर विचार करके अलंकारों का विभक्तीकरण किया। संस्कृत में वर्गीकरण पर ध्यान देनेवाले तीसरे आचार्य राजानक रुय्यक हैं। इन्होंने अलंकारों को सात भागों में बाँटा है—१. औपम्यमूलक, २. विरोधमूलक, ३. शृंखलामूलक, ४. न्यायमूलक, ५. गूढार्थ-प्रतीतिमूलक, ६. संसृष्टिमूलक और ७. संकर-मूलक। पिछले दो विभागों का उपयोग अब भी कुछ भिन्न रूप में होता है।

वर्गीकरण

संस्कृत-साहित्य के आचार्यों की दृष्टि वर्गीकरण पर गई अवश्य, पर वर्गीकरण जैसा होना चाहिए था वैसा हो नहीं पाया। उसके कई कारण भी हैं। पहले अलंकारों की संख्या अपेक्षाकृत कम थी और उनमें पिछले काल की तरह पेचीलापन कम आया था। भेद-प्रभेद की प्रवृत्ति भी लोगों में उतनी नहीं थी। इसलिए थोड़े से ही विभागों में उनका काम चल जाता था, पर अब उतने से ही काम नहीं चलता।

हिंदी के आचार्यों में सबसे पहले केशवदास ने वर्गीकरण की प्रवृत्ति

दिखलाई। किंतु उन्होंने 'अलंकार' शब्द का ग्रहण व्यापक अर्थ में किया है उन्होंने इसके पहले दो भेद किए—१. सामान्यालंकार और २. विशेषालंकार। सामान्यालंकार के फिर चार भेद किए गए हैं—१. वर्णालंकार, २. वर्ण्यालंकार, ३. भूमि-भूषण और ४. राजश्री-भूषण। इन सबमें कविप्रौढ़ोक्ति-सिद्ध बातों का निरूपण किया गया है। कविप्रौढ़ोक्ति-सिद्ध बातें भी रचना की शैली के अंतर्गत हैं अवश्य, पर इनमें वस्तुतः बहुत-से ऐसे विषयों का समावेश भी हो गया है जिनका संबंध शैली से न होकर वर्ण्य विषय से है। विशेषालंकार में उपमादि का वर्णन है। 'केशव' का यह वर्गीकरण काव्य-परिपाटी जाननेवालों के लिए तो अच्छा है, पर वैज्ञानिक विश्लेषण की दृष्टि से यह वस्तुतः कोई वर्गीकरण ही नहीं है। शेष सभी आचार्यों ने वही शब्द और अर्थवाले दो भेद अथवा और आगे चलकर उभयालंकार को भी लेकर तीन भेद माने हैं। केवल 'दास' ही हिंदी में एक ऐसे आचार्य मिलते हैं जिन्होंने इसपर पूर्ण नहीं तो अच्छा प्रकाश अवश्य डाला है। 'दास' ने मिलते-जुलते अलंकारों का एक-एक समूह बनाया है और संस्कृत-व्याकरण के ढर्रे पर 'तुदादि गणी', 'चुरादि गणी' की भाँति प्रत्येक समूह का नाम रख दिया है। उन्होंने समस्त अलंकारों को ग्यारह समूहों में बाँटा है—१. उपमादि, २. उत्प्रेक्षादि, ३. व्यतिरेकरूपकादि, ४. अत्युक्त्यादि, ५. अन्योक्त्यादि, ६. विरुद्धादि, ७. उल्लासादि (गुणदोषादि), ८. समादि, ९. सूक्ष्मादि, १० स्वभावोक्त्यादि और ११. दीपकादि। 'दास' ने इनका नामकरण स्वतंत्र रूप से नहीं किया।

हिंदी का वर्गीकरण

इधर वैज्ञानिक युग में वर्गीकरण की चर्चा चलने पर कुछ लोगों ने इस ओर अपनी रुचि दिखलाई है। सुब्रह्मण्य शर्मा ने कुल अलंकारों को आठ भागों में विभक्त किया है—१. औपम्यमूलक, २. विरोधमूलक, ३. कार्य-कारणसिद्धांतमूलक, ४. न्यायमूलक, ५. अपह्नवमूलक, ६. शृंखलावैचित्र्य-मूलक, ७. विशेषणवैचित्र्यमूलक और ८. कविसमयमूलक। इनमें से चौथे के वाक्य-न्याय, तर्क-न्याय और लोक-व्यवहारमूलक तीन भेद किए गए हैं। इनके अतिरिक्त बा० व्रजरत्नदास ने 'भाषा-भूषण' की भूमिका में

पाँच विभागों में अलंकारों को रखा है—१. साम्यमूल, २. विरोधमूल, ३. शृंखलामूल, ४. न्यायमूल और ५. वस्तुमूल। साम्यमूल के छः भेद भी किए गए हैं—१. अभेद-प्रधान, २. भेद-प्रधान, ३. भेदाभेद-प्रधान, ४. प्रतीति-प्रधान, ५. गम्य-प्रधान (व्यंग्यमूलक) और ६. अर्थ-वैचित्र्य-प्रधान। न्यायमूल के भेद तो वे ही हैं जो शर्माजी ने किए हैं। वस्तुमूल में वे अलंकार रखे गए हैं जो पूर्वोक्त चार विभागों में नहीं आ सके हैं। इसलिए 'वस्तुमूल' वस्तुतः 'फुटकर खाता' है, कोई तात्विक भेद नहीं। यह केवल अर्थालंकारों का वर्गीकरण है। 'अलंकार-पीयूष' में शब्दालंकारों के भी दो विभाग किए गए हैं–१. आवृत्ति-मूलक और २. वर्ण-कौतुक (चित्र)।

हमारे विचार से प्रस्तुत अलंकारों का बरबस कोई समूह बना देने मात्र से काम न चलेगा। सबसे प्रथम इस बात की आवश्यकता है, कि अलंकारों में काट-छाँट की जाय। अलंकार भाषण अथवा भाषा की एक शैली है। इसमें ऐसे ही अलंकारों को स्थान मिलना चाहिए जो वस्तुतः शैली के अंतर्गत आते हों और जिनका हिंदी-भाषा की प्रकृति से विरोध न हो। इस विश्लेषण और तदनंतर वर्गीकरण करने के लिए लक्षण-ग्रंथों के उदाहरणों का सहारा न लेकर हिंदी के वास्तविक कविताकारों का सहारा लेना होगा। केशव, दास आदि के ग्रंथों से नहीं, वरन् तुलसी और सूर के ग्रंथों से इस शैली के निरूपण के लिए उदाहरण खोजने होंगे। केवल वर्गीकरण का येन-केन-प्रकारेण ढाँचा खड़ा कर देने से वर्गीकरण के कर्तव्य की 'इतिश्री' न हो जायगी। यदि इस प्रकार परिश्रम किया जायगा तो हिंदी में इस विषय के अच्छे ग्रंथ प्रस्तुत हो जायँगे। इससे विद्यार्थियों को भी लाभ पहुँचेगा, क्योंकि अलंकारों का जो जंजाल बिछा हुआ है उसमें पड़कर माथापच्ची करने के लिए धैर्य की आवश्यकता है। विद्यार्थी स्वभावतः इससे घबड़ा जाया करते हैं। यद्यपि इस समय अलंकारों का जो क्रम मिलता है उसे ध्यान से देखने पर पता चलता है कि मिलते-जुलते अलंकार एक स्थान पर ही रखे गए हैं, पर उपयुक्त श्रेणी-विभाग न होने से कोई अच्छा लाभ नहीं होता।

गए हैं। किंतु उन्होंने 'अलंकार' शब्द का ग्रहण व्यापक अर्थ में किया है उन्होंने इसके पहले दो भेद किए—१. सामान्यालंकार और २. विशेषालंकार। सामान्यालंकार के फिर चार भेद किए गए हैं—१. वर्णालंकार, २. वर्ण्यालंकार, ३. भूमि-भूषण और ४. राजश्री-भूषण। इन सबमें कविप्रौढ़ोक्ति-सिद्ध बातों का निरूपण किया गया है। कविप्रौढ़ोक्ति-सिद्ध बातें भी रचना की शैली के अंतर्गत हैं अवश्य, पर इनमें वस्तुतः बहुत-से ऐसे विषयों का समावेश भी हो गया है जिनका संबंध शैली से न होकर वर्ण्य विषय से है। विशेषालंकार में उपमादि का वर्णन है। 'केशव' का यह वर्गीकरण काव्य-परिपाटी जाननेवालों के लिए तो अच्छा है, पर वैज्ञानिक विश्लेषण की दृष्टि से यह वस्तुतः कोई वर्गीकरण ही नहीं है। शेष सभी आचार्यों ने वही शब्द और अर्थवाले दो भेद अथवा और आगे चलकर उभयालंकार को भी लेकर तीन भेद माने हैं। केवल 'दास' ही हिंदी में एक ऐसे आचार्य मिलते हैं जिन्होंने इसपर पूर्ण नहीं तो अच्छा प्रकाश अवश्य डाला है। 'दास' ने मिलते-जुलते अलंकारों का एक-एक समूह बनाया है और संस्कृत-व्याकरण के ढर्रे पर 'तुदादि गणी', 'चुरादि गणी' की भाँति प्रत्येक समूह का नाम रख दिया है। उन्होंने समस्त अलंकारों को ग्यारह समूहों में बाँटा है—१. उपमादि, २. उत्प्रेक्षादि, ३. व्यतिरेकरूपकादि, ४. अत्युक्त्यादि, ५. अन्योक्त्यादि, ६. विरुद्धादि, ७. उल्लासादि (गुणदोषादि), ८. समादि, ९. सूक्ष्मादि, १० स्वभावोक्त्यादि और ११. दीपकादि। 'दास' ने इनका नामकरण स्वतंत्र रूप से नहीं किया।

हिंदी का वर्गीकरण

इधर वैज्ञानिक युग में वर्गीकरण की चर्चा चलने पर कुछ लोगों ने इस ओर अपनी रुचि दिखलाई है। सुब्रह्मण्य शर्मा ने कुल अलंकारों को आठ भागों में विभक्त किया है—१. औपम्यमूलक, २. विरोधमूलक, ३. कार्यकारणसिद्धांतमूलक, ४. न्यायमूलक, ५. अपह्नवमूलक, ६. श्रृंखलावैचित्र्यमूलक, ७. विशेषणवैचित्र्यमूलक और ८. कविसमयमूलक। इनमें से चौथे के वाक्य-न्याय, तर्क-न्याय और लोक-व्यवहारमूलक तीन भेद किए गए हैं। इनके अतिरिक्त बा० ब्रजरत्नदास ने 'भाषा-भूषण' की भूमिका में

पाँच विभागों में अलंकारों को रखा है—१. साम्यमूल, २. विरोधमूल, ३. शृंखलामूल, ४. न्यायमूल और ५. वस्तुमूल। साम्यमूल के छः भेद भी किए गए हैं—१. अभेद-प्रधान, २. भेद-प्रधान, ३. भेदाभेद-प्रधान, ४. प्रतीति-प्रधान, ५. गम्य-प्रधान (व्यंग्यमूलक) और ६. अर्थ-वैचित्र्य-प्रधान। न्यायमूल के भेद तो वे ही हैं जो शर्माजी ने किए हैं। वस्तुमूल में वे अलंकार रखे गए हैं जो पूर्वोक्त चार विभागों में नहीं आ सके हैं। इसलिए 'वस्तुमूल' वस्तुतः 'फुटकर खाता' है, कोई तात्विक भेद नहीं। यह केवल अर्थालंकारों का वर्गीकरण है। 'अलंकार-पीयूष' में शब्दालंकारों के भी दो विभाग किए गए हैं—१. आवृत्ति-मूलक और २. वर्ण-कौतुक (चित्र)।

हमारे विचार से प्रस्तुत अलंकारों का बरबस कोई समूह बना देने मात्र से काम न चलेगा। सबसे प्रथम इस बात की आवश्यकता है कि अलंकारों में काट-छाँट की जाय। अलंकार भाषण अथवा भाषा की एक शैली है। इसमें ऐसे ही अलंकारों को स्थान मिलना चाहिए जो वस्तुतः शैली के अंतर्गत आते हों और जिनका हिंदी-भाषा की प्रकृति से विरोध न हो। इस विश्लेषण और तदनंतर वर्गीकरण करने के लिए लक्षण-ग्रंथों के उदाहरणों का सहारा न लेकर हिंदी के वास्तविक कविताकारों का सहारा लेना होगा। केशव, दास आदि के ग्रंथों से नहीं, वरन् तुलसी और सूर के ग्रंथों से इस शैली के निरूपण के लिए उदाहरण खोजने होंगे। केवल वर्गीकरण का येन-केन-प्रकारेण ढाँचा खड़ा कर देने से वर्गीकरण के कर्तव्य की 'इतिश्री' न हो जायगी। यदि इस प्रकार परिश्रम किया जायगा तो हिंदी में इस विषय के अच्छे ग्रंथ प्रस्तुत हो जायँगे। इससे विद्यार्थियों को भी लाभ पहुँचेगा, क्योंकि अलंकारों का जो जंजाल बिछा हुआ है उसमें पड़कर माथापच्ची करने के लिए धैर्य की आवश्यकता है। विद्यार्थी स्वभावतः इससे घबड़ा जाया करते हैं। यद्यपि इस समय अलंकारों का जो क्रम मिलता है उसे ध्यान से देखने पर पता चलता है कि मिलते-जुलते अलंकार एक स्थान पर ही रखे गए हैं, पर उपयुक्त श्रेणी-विभाग न होने से कोई अच्छा लाभ नहीं होता।

(क) संस्कृत में अलंकार-शास्त्र

हिंदी-साहित्य के अलंकार-शास्त्र का स्वरूप समझने के लिए आवश्यक है कि संस्कृत-साहित्य के रीति-संप्रदायों से थोड़ा-बहुत परिचय प्राप्त कर लिया जाय। संस्कृत-साहित्य में रीति-ग्रंथों के विवेचन की बड़ी सुंदर शैली थी। रीतिकार की कोटि लक्ष्य-ग्रंथकारों से सर्वथा भिन्न होती थी। इसलिए उन्हें विषय का विवेचन करने में पर्याप्त स्वतंत्रता रहती थी। हिंदी में इन दोनों कोटियों के एक में मिल जाने से आचार्यता का तो सर्वथा लोप ही हो गया। लक्षण-ग्रंथों का सहारा लेना तो एक मिस-मात्र था, लोगों की दृष्टि लक्ष्य-ग्रंथों के ही निर्माण में टिकी हुई थी। संस्कृत-साहित्य की तर्क-सिद्ध शैली का परिणाम बड़ा सुंदर हुआ। आज रीति-ग्रंथों का जैसा निरूपण संस्कृत-साहित्य में मिलता है वैसा अन्य किसी साहित्य में नहीं। काव्य-रीति के संबंध में तो उन्होंने पर्याप्त खोद-विनोद का सहारा लिया था। फल-स्वरूप संस्कृत-साहित्य में कई प्रकार के 'वादों' का जन्म हुआ और आचार्यों के भिन्न-भिन्न संप्रदाय स्थापित हो गए। यह 'वाद' केवल 'ध्वनिवाद', 'रसवाद' और 'अलंकारवाद' ही तक नहीं रुका। इसका विकास 'वक्रोक्तिवाद', 'अतिशयोक्तिवाद' और 'अन्योक्तिवाद' की सीमा तक पहुँचा। इन्हीं के अनुसार आचार्यों के भिन्न-भिन्न संप्रदाय भी हो गए। इनका ध्यान रखने से ही रीति-शास्त्र का विकास भली भाँति हृदयंगम किया जा सकता है।

संस्कृत में रीति-शास्त्र

रीतिशास्त्र पर सबसे प्रथम प्रकाश डालनेवाले भगवान् वेदव्यास हैं इन्होंने अग्निपुराण में 'अलंकारों' का वर्णन किया है। इन्होंने जो वर्गीकरण कर दिया है, उसकी पद्धति आज तक चली आ रही है। वेदव्यासजी में किसी प्रकार के 'वाद' की प्रवृत्ति नहीं पाई जाती। उन्होंने आचार्य के नाते अलंकारों का स्वरूप-विवेचन-मात्र कर दिया है। उनके समय में इनकी संख्या भी सीमित थी। इन्हीं के समकालीन दूसरे आचार्य मुनि भरत हुए हैं। इन्होंने 'नाट्यशास्त्र' नामक ग्रंथ में नाटकीय तत्वों का बड़े विस्तार के साथ विवेचन एवं निरूपण किया है। इन्होंने रस एवं अलंकारादि सभी को

आदिम रीतिकार

नाटक का परिपोषक माना है। इन्होंने रस का जो विवेचन किया है ज्यों-का-त्यों अब तक चला आ रहा है। इन्होंने अलंकार केवल चार मा हैं—उपमा, दीपक, रूपक और यमक। कुछ लोग भरत मुनि को 'रसवादी' मानते हैं। वस्तुतः इन आचार्यों में 'वाद' की प्रवृत्ति थी ही नहीं। इन्होंने जिस पद्धति का निरूपण किया था उसीको लेकर लोगों ने आगे चलकर अपने-अपने वाद खड़े किए हैं।

'नाट्यशास्त्र' के पश्चात् काव्य-रीति पर दूसरा ग्रंथ भामह का 'काव्यालंकार' मिलता है। ये वस्तुतः 'वक्रोक्तिवादी' थे। 'काव्यालंकार' सबसे पहला ग्रंथ है जिसमें अलंकार-शास्त्र का विशद विवेचन मिलता है। इनके 'वक्रोक्तिवाद' को आगे चलकर 'कुंतल' ने बड़े जोरों से उठाया और 'वक्रोक्तिजीवित' नाम का एक बहुत ही विद्वत्तापूर्ण ग्रंथ रचा। कुंतल की संमति में काव्य के सभी क्षेत्रों में वक्रोक्ति का ही प्राधान्य है। ध्वनि आदि सभी उपादान इसी के अंतर्गत आ जाते हैं। हिंदी में इस पद्धति का अनुसरण किसी ने नहीं किया।

वक्रोक्तिवाद

भामह के पश्चात् 'अलंकारवाद' ने जोर पकड़ा और इस संप्रदाय में बड़े अच्छे-अच्छे अलंकार-ग्रंथों का प्रणयन हुआ। 'अलंकारा एव काव्ये प्रधानम्' इसी समय के आचार्यों का मत था। रुद्रट, वामन, भोजराज, दंडी, रुय्यक, वाग्भट, जयदेव, केशव मिश्र आदि प्रसिद्ध अलंकारवादी आचार्य हुए हैं। रुद्रट ने काव्यालंकार, वामन ने काव्यालंकारसूत्रवृत्ति, भोजराज ने सरस्वती-कंठाभरण, दंडी ने काव्यादर्श, रुय्यक ने अलंकार-सर्वस्व, वाग्भट ने वाग्भटालंकार, जयदेव ने चंद्रालोक और केशव मिश्र ने अलंकार-शेखर नामक विवेचनात्मक ग्रंथों का निर्माण किया। यहाँ पर यह कह देना आवश्यक है कि 'अलंकारवाद' की जो लहर उठी थी वह धीरे-धीरे चमत्कारवाद में परिणत होने लगी। अलंकारों का रूप पहले व्यापक था, वे शैली के रूप में ही गृहीत होते थे। इसीलिए किसी 'वाद' के फेर में न पड़नेवाले भगवान् वेदव्यास ने भी कह दिया था—'अर्थालंकाररहिता विधवेव सरस्वती'। किंतु

अलंकारवाद

से चमत्कारवाद ने जोर पकड़ा। हिंदी के प्रसिद्ध चमत्कारवादी केशवदास ने इन्हीं लोगों का अनुसरण किया। चमत्कारवाद की इस थोथी प्रवृत्ति और रीति-ग्रंथ लिख मारने की भोंड़ी पद्धति ने कितने ही होनहार कवियों को चौपट कर दिया। जिनमें से महाकवि 'भूषण' भी हैं। अलंकारों के डिब्बे में ठूँस-ठूँसकर भरने के कारण इनकी वीर-रस की कविता का स्वाभाविक सौंदर्य दबकर भद्दा हो गया है।

रसवाद और ध्वनिवाद

अलंकारवाद की हवा के बाद रसवाद—और व्यवस्थित रूप में कहें तो ध्वनिवाद—की लहर उठ खड़ी हुई। इसने प्रायः सभी प्रकार के वादों को दबा दिया। प्रसिद्ध रसवादियों ने भी ध्वनिवाद की व्यवस्थित एवं परिपुष्ट शैली को स्वीकार कर लिया। इस संप्रदाय के प्रवर्तक थे—आनंदवर्धनाचार्य। इन्होंने अपने 'ध्वन्यालोक' नामक ग्रंथ में ध्वनि को ही काव्य के उत्तम स्वरूप का निदर्शक माना है। आगे चलकर संस्कृत के आचार्यों ने इसी को प्रधानता दी और मम्मटाचार्य ने काव्य-प्रकाश, विश्वनाथ ने साहित्य-दर्पण तथा पंडितराज जगन्नाथ ने रस-गंगाधार इसी पद्धति के अनुगमन पर बनाया। वस्तुतः काव्य-पद्धति का यथावत् निरूपण इसी संप्रदाय के लोगों ने किया। हिंदी के प्राचीनकाल के प्रसिद्ध आचार्य चिंतामणि, श्रीपति, सुखदेव, कुलपति, दास आदि सभी ने इसी संप्रदाय का अनुगमन किया है। वस्तुतः काव्य का स्वरूप समझाने के लिए इससे बढ़कर और कोई दूसरी पद्धति है भी नहीं।

संस्कृत में रीति-ग्रंथों के निर्माण का अंत

सत्रहवीं शताब्दी के पश्चात् संस्कृत में रीति-ग्रंथों के निर्माण का अभाव-सा हो गया। बात यह थी कि संस्कृत-भाषा जनता के व्यवहार से उठ चुकी थी, उसका स्थान प्राकृत, अपभ्रंश और तदनंतर देशी भाषाओं ने ग्रहण कर लिया था। यही नहीं, वरन् इन भाषाओं में भी साहित्य की रचना का आरंभ हो चुका था। संस्कृत का पठन-पाठन अध्ययनशील लोगों तक ही सीमित हो चला था। इसलिए यह स्वाभाविक था कि संस्कृत में रीति-ग्रंथों का प्रणयन रुके और अन्य प्रचलित भाषाओं में उसका प्रवाह बढ़े। जहाँ और जब मूलभाषा के साहित्य के विभिन्न अंगों में रचना-

प्रवाह का अवरोध हुआ है, वहीं से और उसी समय से देशी प्राकृत उन-उन अंगों के निर्माण की प्रवृत्ति जागरित हो उठी है और कहीं-कहीं यह बाँध ऐसा टूटा है कि बड़े जोरों की बाढ़ आ गई है। संस्कृत के पश्चात् पुरानी प्राकृतों और अपभ्रंशों के ग्रंथों का पता नहीं चलता, केवल हेमचंद्र का ही ग्रंथ मिलता है, जो ग्यारहवीं शताब्दी के अंत में हुआ था। संस्कृत के पश्चात् विभिन्न काव्यांगों के निर्माण की शृंखला हिंदी-भाषा से सीधे ही जुड़ जाती है। भाषा का निर्माण भले ही विकास-क्रम से हुआ हो, पर रीति-ग्रंथों और काव्यांगों के रचने की प्रवृत्ति सीधे संस्कृत से ही आई है। अट्ठारहवीं शताब्दी के आरंभ से ही हिंदी में रीति-ग्रंथों के प्रणयन की हवा चली। ठीक उसी समय एक प्रकार से संस्कृत-काव्य-रीति के ग्रंथों की समाप्ति हो चुकी थी। इस समय संस्कृत में दो शैलियों का प्राधान्य था— एक 'काव्य-प्रकाश' के ढंग की विस्तृत विवेचनात्मक प्रणाली और दूसरी 'चंद्रालोक' की संक्षिप्त शैली। आगे चलकर 'चंद्रालोक' के अलंकार-प्रकरण पर अप्पय दीक्षित ने 'कुवलयानंद' के नाम से तिलक किया और 'कुवलयानंद' पर वैद्यनाथ मिश्र ने 'अलंकार-चंद्रिका' नामक टीका की। इसलिए हिंदी में एक प्रकार से तीन ढंग के लक्षण-ग्रंथों का प्रणयन प्रारंभ हुआ। पहला प्रकार 'काव्यप्रकाश' की प्रणाली पर था जिसमें काव्य, रस, रीति, गुण, अलंकार आदि सभी काव्यांगों का विशद विवेचन किया गया था और दूसरा प्रकार 'चंद्रालोक' के ढंग का था जिसके लिए हिंदीवालों ने दोहे के ऐसा छोटा छंद चुना। इस प्रणाली के प्रवर्तक महाराज जसवंतसिंह थे। तीसरा प्रकार दूसरे का ही परिष्कृत रूप था, जिसमें चंद्रालोक ही नहीं वरन् 'कुवलयानंद' भी आधार बनाया गया था। कुछ लोग ऐसे भी थे जो इनमें से किसी का अनुकरण न कर अलंकारों के संबंध की सामान्य भावना को ही लेकर पुस्तक-प्रणयन करते थे; जैसे—मतिराम, भूषण आदि। हिंदी के रीति-ग्रंथों के द्वितीय उत्थान में, जो गद्य में स्वरूप-विवेचन को लेकर हुआ, काव्य-प्रकाश, साहित्य-दर्पण आदि की तर्कसिद्ध शास्त्रीय शैली का ही अधिकांश में अनुगमन देख पड़ता है। कुछ लोगों ने सीधे संस्कृत से न लेकर इस शैली को 'दास' आदि हिंदी के ही आचार्यों से ग्रहण किया। तृतीय

प्रधान वैज्ञानिक विश्लेषण की ओर झुकता हुआ जान पड़ता है।

(ख) हिंदी में अलंकार-शास्त्र

संस्कृत भाषा में जब किसी विषय के ग्रंथों का निर्माण रुक गया है तब प्राकृत भाषाओं में तत्तद्विषय के ग्रंथों की रचना स्वभावतः आरंभ हो गई है। क्योंकि जनता जब किसी विषय की अभ्यासी हो जाती है तब वह अपनी ज्ञान-पिपासा को शांत करने के लिए कोई-न-कोई स्रोत ढूँढ़ ही निकालती है। यों तो संस्कृत भाषा के व्यवहार से उठ जाने के ही परिणाम-स्वरूप भारत में अनेक प्राकृतों, अपभ्रंशों एवं अन्य प्रांतीय बोलियों का प्रादुर्भाव ही हुआ, जिनमें हमारी हिंदी भाषा भी है, पर विद्वन्मंडली से संस्कृत भाषा का न तो पहले ही लोप हुआ और न सरासर लोप हो ही जायगा। हिंदी भाषा के थोड़ा-बहुत विकसित हो लेने पर भी संस्कृत भाषा का व्यवहार बड़े-बड़े और विवेचनात्मक ग्रंथों में होता ही रहा। संस्कृत के पश्चात् जब अपभ्रंशों ने अपना टेढ़ा-मेढ़ा स्वरूप जनता के सामने रखा और वे भी साहित्य-क्षेत्र में अपनी कला दिखाकर अस्त होने लगीं, तब हिंदी ने अपना सिर उठाया। काव्य-ग्रंथों के साथ-ही-साथ हिंदी में लक्षण-ग्रंथों के निर्माण की आवश्यकता प्रतीत होने लगी। हम पहले कह चुके हैं कि लक्ष्य-ग्रंथों का पर्याप्त मात्रा में प्रणयन हो चुकने के बहुत समयोपरांत काव्य-परिपाटी को व्यवस्थित और प्रौढ़ बनाने के उद्देश्य से लक्षण-ग्रंथों की रचना होने लगती है। पर हिंदी के लिए यह बात नहीं थी। क्योंकि संस्कृत-साहित्य का अक्षुण्ण भांडार खुला पड़ा था। इसलिए हिंदी में केवल कविता-रचना की ही प्रचुरता रही। लक्षण-ग्रंथों का उद्भव बहुत कालांतर से हुआ, जब लोगों के लिए संस्कृत के ग्रंथ अत्यंत दुरूह हो गए थे। यही बात अलंकार-शास्त्र के ग्रंथों की भी है।

हिंदी में लक्षण-ग्रंथों का आरंभ

श्रीशिवसिंह सेंगर ने अपने 'शिवसिंह-सरोज' में 'पुष्य' नामक एक कवि का नाम लिया है, जिसे वे लगभग ७०० संवत् का बतलाते हैं। उन्होंने लिखा है कि 'पुष्य' ने दोहों में एक अलंकार-ग्रंथ बनाया था।

पुष्य ने जो अलंकार-ग्रंथ बनाया वह कैसा था और उसमें अलंकारों का स्वरूप-विवेचन किस प्रकार और कैसे किया गया था इसका पता कुछ भी नहीं। उक्त ग्रंथ 'भाषा' में रचा गया था। इस 'भाषा' शब्द से हिंदी भाषा ही का ग्रहण नहीं होता। 'भाषा' शब्द का प्रयोग प्रायः संस्कृत से भिन्न बोलचाल की प्राकृत के लिए हुआ करता था। इसलिए 'भाषा' का तात्पर्य हिंदी के मूल रूप से भिन्न किसी अन्य प्राकृत से भी हो सकता है। अतः पुष्य के उक्त अलंकार-ग्रंथ की चर्चा करना व्यर्थ ही है, केवल उसका नामोल्लेख ही अलं होगा। हाँ, पुष्य के अलंकार-ग्रंथ-वाली बात से यह स्पष्ट पता चलता है कि प्राकृतों एवं अपभ्रंशों में भी लक्षण-ग्रंथों के निर्माण की आवश्यकता प्रतीत होने लगी थी और उसका श्रीगणेश भी हो गया था। संस्कृत के लक्षण-ग्रंथों का पूरा प्रभाव प्राचीन हिंदी के ग्रंथों पर पड़ा हुआ ज्ञात ही होता है, साथ ही उनकी सुदृढ़ और प्रौढ़ रचना से यह भी पता चलता है कि हिंदी की काव्य-परिपाटी भी भली भाँति मँज चुकी थी। अतः स्पष्ट है कि हिंदी के आदिम रूप में भी लक्षणों के संबंध में तत्परता थी। ग्रंथों का प्रणयन भी निश्चय ही हुआ होगा।

पुष्य

विक्रम की सोलहवीं शताब्दी तक किसी लक्षण-ग्रंथ का पता नहीं चलता। इस समय तक हिंदी-भाषा ने अपना एक स्वतंत्र अस्तित्व कर लिया था। लड़ाई-झगड़े का समय निकल जाने से और मुगल बादशाहों का शांतिमय शासन हो जाने से प्रजा के चित्त में कुछ स्थिरता आ गई थी। वह अपनी जीवन-समस्या से छुट्टी पाकर काव्यों की ओर भी झुक चली थी। धर्म के क्षेत्र में अवश्य हलचल मची हुई थी। रामानंद एवं वल्लभाचार्यादि महात्माओं ने भारतीय जनता को मुस्लिम धर्म की बढ़ती हुई लहर से बचाने के लिए राम और कृष्ण के स्वरूप उनके समक्ष खोलकर रखने आरंभ कर दिए थे। इन दोनों अवतारों के संबंध में कविता का एक सच्चा प्रवाह बह चला था। कबीर साहब, नानक आदि संतों ने ईश्वर का जो निर्गुण रूप जनता के सामने खड़ा किया था, उससे जनता की तृप्ति नहीं हुई; क्योंकि जनता भगवान् की वह अनेकरूपता देखना चाहती थी जिसमें सांसारिक आसक्ति का

सोलहवीं शताब्दी

भी सामंजस्य हो। यही कारण था कि साकारोपासना की वायु बही और बड़े वेग से बही। इसी के साथ-साथ कवि भी अपनी वाणी द्वारा सगुणोपासना की सार्थकता का प्रतिपादन करने में लग गए। सूर एवं तुलसी आदि महात्माओं के काव्यों का गंभीरतापूर्वक मनन कीजिए, स्पष्ट पता चल जायगा कि ये लोग जनता के सामने सगुण-स्वरूप को काव्य-माधुरी के साँचे में ढालकर रखने का प्रयत्न कर रहे हैं। इस समय काव्य-रचना का प्राचुर्य हो जाने से कवियों का ध्यान हिंदी में भी लक्षण-ग्रंथों के प्रणयन की ओर जाने लगा था। संस्कृत-ग्रंथों के आधार पर तो लोग चलते ही थे, पर नवसिखुए लोगों के लिए हिंदी में भी रीति-ग्रंथों की आवश्यकता उत्पन्न हो गई थी। संस्कृत-भाषा व्यवहार से उठ चुकी थी। अतः हिंदी में इन ग्रंथों का निर्माण होना अनिवार्य हो गया था। उस समय तक कितने ही ग्रंथ बने होंगे—चाहे वे छोटे-ही-मोटे क्यों न हों और चाहे उनमें काव्य के किसी एक ही अंग का स्वरूप-विवेचन क्यों न किया गया हो।

इस समय का सबसे पहला ग्रंथ जो मिलता है, वह है सूरदास की 'साहित्य-लहरी'। इस ग्रंथ में सूरदास ने दृष्टिकूट के पद लिखे हैं। प्रत्येक पद में एक अलंकार का लक्षण और उसका उदाहरण तथा एक नायिका का लक्षण और उसका उदाहरण दिया हुआ है। उस समय के और ग्रंथों का पता तो नहीं चलता, पर कवियों के काव्य-ग्रंथ देखने से उनपर अलंकारों का प्रभाव बहुत स्पष्ट देख पड़ता है। तुलसीदास के 'बरवै रामायण' के देखने से तो ऐसा जान पड़ता है, मानों वह अलंकारों के उदाहरण के लिये बनाया गया हो। क्योंकि उसमें अलंकार बहुत साफ़ और स्पष्ट रूप से झलकते हैं। इसी समय कृपाराम ने 'हित-तरंगिणी' नामक ग्रंथ रस-रीति पर बनाया। उक्त ग्रंथ में शृंगार रस का वर्णन बड़े विस्तार के साथ किया गया है। ग्रंथ सं० १५९८ का बना है। उसमें एक दोहा लिखा है, जिससे हमारी ऊपर कही हुई इस बात का पुष्टीकरण होता है कि कितने ही लक्षण-ग्रंथों का निर्माण हो चुका रहा होगा।

बरनत कबि सृंगार-रस, छंद बड़े बिस्तारि।
मैं बरन्यों दोहानि बिच, यातें सुघर बिचारि॥

जब कवि शृंगार-रस के लक्षण-ग्रंथों की बात कहता है तो अलंकार आदि के भी कुछ लक्षण-ग्रंथ भी अवश्य बने रहे होंगे।

सत्रहवीं शताब्दी के आरंभ से ही अन्य रीति-ग्रंथों के साथ-ही-साथ अलंकार के लक्षण-ग्रंथों का भी निर्माण होने लग गया था। गोपा कवि ने

सत्रहवीं शताब्दी—केशव

सं० १६१५ के आसपास 'रामभूषण' और 'अलंकार-चंद्रिका' नामक दो ग्रंथ अलंकारों के स्वरूप-विवचन में ही लिखे। अकबर के दरबारी कवियों में से कई रीति-ग्रंथों की रचना की ओर झुके। उनमें से करनेस बंदीजन ने अलंकार-विषय पर ही तीन ग्रंथ रचे—कर्णाभरण, श्रुति-भूषण और भूप-भूषण। इन ग्रंथों की रचना होने से यह पता चलता है कि हिंदी में रस-वाद के साथ-साथ काव्य-क्षेत्र में अलंकारवाद भी खड़ा होने लग गया था। उक्त ग्रंथ देखने में नहीं आए, इससे यह नहीं कहा जा सकता कि उनमें अलंकारों का निरूपण कैसा किया गया है और उनके आधार कौन-कौन-से संस्कृत-ग्रंथ हैं। इनके पश्चात् सत्रहवीं शताब्दी के मध्य में आचार्य केशव-दास ने अलंकारों का अच्छा विवेचन किया। केशव संस्कृत के अगाध पंडित थे। उन्होंने संस्कृत के सभी प्राप्य ग्रंथों को थहाया होगा। अलंकारवादी होने के कारण उन्होंने संस्कृत के महाकवि दंडी, राजानक रुय्यक और केशव मिश्र का अनुगमन किया। 'कवि-प्रिया' में अलंकारों के विवेचन के साथ-ही-साथ उन्होंने काव्य-शिक्षा की आवश्यक सामग्री पर भी थोड़ा-सा विचार किया है। केशव ने अलंकारों का ग्रहण बहुत व्यापक रूप में किया है। उसके दो भेद किए हैं—समान्यालंकार और विशेषालंकर। समान्यालंकार के चार भेद किए गए हैं—१. वर्णालंकार (इसमें बतलाया गया है कि कवि-संप्रदाय में किन किन वस्तुओं का कौन-कौन-सा रंग माना जाता है), २. वर्ण्यालंकार (इसमें वस्तुओं के आकार का निर्देश किया गया है), ३. भूमि-भूषण (इसमें बत-लाया गया है कि किसी स्थल-विशेष का वर्णन करने में किन-किन पदार्थों का वर्णन अपेक्षित है) और ४. राजश्री-भूषण (इसमें राजवर्ग के वर्णनीय विषयों का उल्लेख है)। विशेषालंकार में उपमादि अलंकारों का वर्णन किया गया है। इस प्रकार केशव ने कवि-प्रौढोक्ति-सिद्ध बातों को भी अलंकार का

अंग मानकर उसका क्षेत्र विस्तृत बनाया। यही कारण था कि केशव के पश्चात् कविप्रिया का मान हिंदी जाननेवाले कवि-संप्रदाय में वैसा ही हुआ जैसा संस्कृतज्ञों में काव्य-प्रकाशादि ग्रंथों का है। यद्यपि हिंदी में आगे चलकर जो रीतिशास्त्र और विशेषतः चमत्कारवाद की बाढ़ आई वह केशव की परिपाटी पर न होकर एक दूसरी ही परिपाटी के अनुसरण पर थी, तथापि 'कविप्रिया' का व्यवहार कवि-संप्रदाय में और विशेषतः बुँदेलखंड की ओर तो इतना अधिक हो गया था कि विना इस ग्रंथ के पढ़े किसी की काव्य-विषयक योग्यता अपूर्ण ही समझी जाती थी। यद्यपि केशव के पहले कई अलंकार-ग्रंथ बन चुके थे, पर काव्य पर व्यवस्थित रूप में विद्वत्तापूर्ण विचार करने के कारण इन्हें ही हिंदी का प्रथम आचार्य मानना समीचीन होगा। करनेस आदि ने जो अलंकार के ग्रंथ रचे थे उनमें वे केवल चलते-मात्र कर दिए गए थे। उनका मुख्य लक्ष्य काव्य था, काव्य-रीति का विवेचन नहीं। आगे चलकर हिंदी में लक्षण-ग्रंथों का जो बाहुल्य हुआ उसमें आचार्य की कोटि में आनेवाले बहुत कम कवि थे। वे लोग लक्षण लिखकर अलंकार चलते कर देते थे। हाँ, उनके उदाहरणों में उनका कवित्व अवश्य चमचमाता था। कुछ लोग तो ऐसा भी कर गुजरते थे कि अपने फुटकर छंदों को लेकर मुख्य-मुख्य अलंकारों का लक्षण जोड़-जाड़कर एक अलंकार-ग्रंथ का ढाँचा खड़ा कर देते। 'भूषण' का 'शिवराज-भूषण' इसी प्रकार के ग्रंथों में से है।

हिंदी में रीति-शास्त्र का स्वरूप

विक्रम की सत्रहवीं शताब्दी के समाप्त होते-होते चमत्कारवाद का प्रभाव कवियों पर पड़ने लगा था। यद्यपि लक्षण-ग्रंथों के प्रणयन में लोगों ने कविप्रिया का अनुकरण नहीं किया, पर केशव की इस जमाई हुई परिपाटी का प्रभाव बहुत-से कवियों पर पड़ा। कुछ बड़े-बड़े कवि भी उनके इस प्रभाव से बच नहीं सके। आगे चलकर लक्षण-ग्रंथों के रचने की जो हवा चली उसके विषय में हम पहले दो-चार बातें कह देना चाहते हैं, जिससे उसका स्वरूप समझने में सहायता मिले। संस्कृत में अलंकारवाद, रसवाद, ध्वनि-वाद और इससे भी आगे बढ़कर वक्रोक्तिवाद आदि वादों की जैसी लहर उठी वैसी लहर हिंदी में नहीं आई। केवल दो वादों का नाम लिया जा सकता

है—१. अलंकारवाद और २. श्रृंगारवाद। ये दोनों वाद भी व्यवस्थित रूप में नहीं थे। अलंकारवाद तो चमत्कारवाद का आभास-मात्र था, उसमें संस्कृत की भाँति तर्कसिद्ध वाद का कहीं पता भी नहीं था। श्रृंगारवाद तो बहुत ही सीमिति था। नाट्य-ग्रंथों में नायिकाभेद के जो लक्षण प्राचीन काल में दिए गए थे, उदाहरणों द्वारा केवल उन्हीं का ठाठ बाँधा जा रहा था। कवियों ने केवल संयोग-श्रृंगार को ही अधिकांश में उन ग्रंथों का वर्ण्य-विषय बनाया। उसमें एकदेशीयता ही रही, अनेकरूपता तो आने ही नहीं पाई। विप्रलंभ-श्रृंगार का तो लोग दरवाजा ही झाँककर रह गए। उसके भीतर घुसकर जीवन के कल्पनामय क्षेत्र को पल्लवित एवं पुष्पित करने की किसी ने हिम्मत ही नहीं बाँधी। ध्वनिवाद तो एकदम चला ही नहीं, केवल दो-चार लक्षण-ग्रंथों में उसकी बानगी दे दी गई थी। उन लोगों से अच्छा, व्यवस्थित एवं स्वाभाविक ध्वनि का स्वरूप तो सूर, तुलसी, जायसी और बिहारी आदि ऐसे कवियों में मिलता है जो किसी वाद के चक्कर में नहीं पड़े थे।

अट्ठारहवीं शताब्दी

विक्रम की अट्ठारहवीं शताब्दी में रीतिशास्त्र की बाढ़ आ गई। जो सामने आता वह या तो अलंकार के लक्षणों को जोड़कर उनके उदाहरणों का टेढ़ा-मेढ़ा ढाँचा खड़ा करके एक पुस्तक तैयार कर देता अथवा नायिकाभेद की शरण लेकर 'राधा-माधव' को रिझाने के बहाने से अपने आश्रय-दाताओं के प्रीत्यर्थ नाना प्रकार से रस-सरिता बहाने का उद्योग करता हुआ देखा जाता। इस प्रकार लक्षण जोड़कर अलंकारों के उदाहरणों का ढेर लगाने के लिए ये लोग संस्कृत-साहित्य में बहुत दूर तक नहीं गए। भारत में राजानक मम्मटाचार्य के 'काव्य-प्रकाश' का प्रचलन पहले से ही था। कुछ ने तो इसी को अपना आधार बनाया। पर रीतिशास्त्र की प्रवृत्ति से लक्षण-ग्रंथ निर्माण करने की न तो किसी को इच्छा ही थी और न वे लोग इसका निर्वाह ही कर सकते थे। इसका कारण भी स्पष्ट है। संस्कृत में लक्षणकार का पद उदाहरणकार से सर्वथा भिन्न है। रीतिकार तो अपने पूर्ववर्ती या समकालीन ग्रंथ-निर्माताओं के ग्रंथों का अध्ययन कर उनकी विशेषताओं के आधार पर रीतिशास्त्र की नींव देता है। अपनी कविताओं के मसाले से एक

भारी भरकम पोथा खड़ा कर देना उनका काम नहीं होता। पर हिंदी के कवियों को तो अपनी कवित्व-शक्ति दिखानी थी, अलंकारों की शरण जाना तो अपनी कवित्व-शक्ति दिखाने का एक बहाना-मात्र था। यही कारण था कि 'काव्य-प्रकाश' ऐसे विवेचनापूर्ण ग्रंथ से इन लोगों का काम नहीं चल सकता था। हिंदी के आचार्य केशवदास की कविप्रिया से भी इनका काम नहीं निकल सकता था, क्योंकि उसमें भी वही संस्कृतवाली क्लिष्ट प्रणाली का आधार लिया गया था। संस्कृत की भाँति सूत्र, कारिका और वृत्ति का विस्तृत रूप न देकर केवल पद्य में ही सीमित होने के कारण ग्रंथ कहीं-कहीं अधिक क्लिष्ट भी हो गया था। यही कारण था कि 'काव्यप्रकाश' के आधार पर इने-गिने ही ग्रंथ बन सके और केशव की कविप्रिया की प्रणाली जहाँ-की-तहाँ रह गई। हिंदी में जिस संस्कृत-ग्रंथ का आधार प्रचुर मात्रा में लिया गया वह पीयूषवर्षी जयदेव-कृत 'चंद्रालोक' और विशेषतः इस ग्रंथ के अलंकार-प्रकरण पर लिखी हुई अप्पय दीक्षित की 'कुवलयानंद' नाम्नी टीका है। 'चंद्रालोक' में एक ही श्लोक में लक्षण और उदाहरण दोनों को संपुटित कर दिया गया है। 'कुवलयानंद' में 'चंद्रालोक' के लक्षणों का स्पष्टीकरण है तथा विषय को स्पष्ट करने के लिए और उदाहरण भी दिए गए हैं। इन दोनों के आधार पर अलंकार-ग्रंथ रचने की जो हवा चली उसका असर आज तक हिंदी-साहित्य में वर्तमान है। अट्ठारहवीं शताब्दी में कहने को तो पचासों अलंकाराचार्य हुए और सैकड़ों अलंकार-ग्रंथ बने, पर इस रीति-काल में अथवा अलंकृत-युग में केवल दो ही तीन व्यक्ति ऐसे हुए जिन्होंने आचार्य-पद के उत्तरदायित्व को थोड़ा-बहुत समझा था। जैसे—कुलपति, श्रीपति मिश्र और भिखारीदास। शेष सभी लेखकों ने या तो कुवलयानंद वा चंद्रालोक का सीधा अनुवाद कर डाला या उसके आधार पर लक्षण जोड़-जाड़कर उदाहरणों की भरमार से एक भारी पोथा प्रस्तुत कर दिया। यहाँ पर यह बतला देना समीचीन ज्ञात होता है कि सभी ग्रंथकारों ने सीधे कुवलयानंद का ही पल्ला नहीं पकड़ा। जब 'कुवलयानंद' के हिंदी-अनुवाद प्रस्तुत हो गए तब परवर्ती कवियों में से अधिकांश ने हिंदी के ही ग्रंथों को अपना आधार बनाया। इस प्रकार के ग्रंथों में महाराज जसवंत-

सिंह का 'भाषा-भूषण' विशेष रूप से उल्लेख-योग्य है। यत्र-तत्र कुछ स्थलों को छोड़कर यह पुस्तक 'चंद्रालोक' के पंचम मयूख का अनुवाद है। इसमें नायिका-भेद का प्रकरण बढ़ा दिया गया है।

इस शताब्दी के आरंभ में सेनापति और चिंतामणि दो अच्छे अलंकाराचार्य हुए। इन दोनों ने मम्मटाचार्य के 'काव्यप्रकाश' का ही अनुकरण किया है। 'सेनापति' का 'काव्यकल्पद्रुम' ग्रंथ अप्राप्य है। पर उनकी की हुई कविता की प्रवृत्ति का मनन करने से स्पष्ट ज्ञात होता है कि इनपर संस्कृत की तर्कसिद्ध पद्धति का प्रभाव बड़े सुव्यवस्थित रूप से पड़ा है। थे तो ये भी 'केशव' की ही तरह चमत्कादी, पर 'केशव' और 'सेनापति' में एक विशेष अंतर है। 'केशव' के ऊपर संस्कृत का बहुत गहरा प्रभाव था, इसीलिए उनका झुकाव संस्कृत की ओर अधिक था। उन्हें तो हिंदी-कविता लिखने में संकोच-सा हो रहा था। क्योंकि जिस कुल के 'दास' भी संस्कृत में बातचीत करते रहे हों उस कुल के व्यक्ति का 'भाषा' में कविता लिखना निश्चय संकोच की बात है, किंतु सेनापति पर संस्कृत का प्रभाव वैसा नहीं पड़ा था। इनकी भाषा हिंदी के प्रकृत रूप में ही है। इनका 'काव्यकल्पद्रुम' या तो 'काव्यप्रकाश' के आधार पर बना होगा अथवा 'केशव' के अनुकरण पर रचा गया होगा। सेनापति के पश्चात् पं० चिंतामणि त्रिपाठी पर दृष्टि जाती है। इन्होंने रीति-साहित्य का अच्छा विचार किया है। इन्होंने 'काव्यांग' पर तीन ग्रंथ लिखे हैं—कवि-कुल-कल्पतरु, काव्यविवेक और काव्यप्रकाश। इनके तीनों ग्रंथ शिवसिंह सेंगर ने देखे थे, पर अब पिछले दो अप्राप्य हैं। इनके नामों से ही पता चल जाता है कि चिंतामणि ने काव्यांग का बड़ा विस्तृत विवेचन किया है। 'काव्यप्रकाश' निश्चय ही मम्मट के आधार पर बना होगा। चिंतामणि की विवेचन-शैली अच्छी है। इन्होंने परवर्ती कवियों के सामने रीति-ग्रंथों और कविता के ग्रंथों के द्वारा बड़ा ही परिष्कृत मार्ग उपस्थित किया था। खेद है, कवियों ने इनकी प्रणाली का भी अनुगमन नहीं किया, अन्यथा आगे चलकर कितने ही 'श्रीपति' और 'दास' उत्पन्न हो जाते।

विवेचनात्मक पद्धति

इसी समय महाराज जसवंतसिंह ने अपना 'भाषा-भूषण' नामक ग्रंथ

लिखा था। जैसा हम पहले कह चुके हैं, यह 'चंद्रालोक' के पंचम मयूख (अलंकार-प्रकरण) का अधिकांश में उल्था-मात्र है। केवल आदि में कुछ नायक-नायिकाओं और रस-भावादि के लक्षण भी जोड़ दिए गए हैं। अलंकार-शास्त्र में प्रवेश कराने और कंठस्थ करने के विचार से पुस्तक बड़े काम की है। पर लक्षणों का जैसा विवेचन आवश्यक है वैसा न तो इसमें हो ही सकता था और न किया ही गया है। यह स्पष्ट है कि पुस्तक अपनी कवित्व-शक्ति दिखलाने के लिए नहीं लिखी गई है। इसका उद्देश्य थोड़े में—सूत्र रूप में—अलंकारों का स्वरूप बतला देना है। महाराज जसवंतसिंह का यह कार्य इस दृष्टि से स्तुत्य है। इन्होंने कहीं-कहीं कुछ बातें बढ़ाई भी हैं। इससे जान पड़ता है कि इन्होंने 'आचार्य' के रूप में ही इसके निर्माण का उद्योग किया था। जैसे, अपह्नुति अलंकार में इन्होंने एक भेद अपनी ओर से रखा है। 'भाषा-भूषण' का निर्माण हो जाने पर परवर्ती कवियों ने इसीको आधार मानकर अपनी काव्य-प्रतिभा चमकाने का अधिकांश में उद्योग किया। इस ग्रंथ का संमान बहुत अधिक बढ़ गया। संस्कृत में चंद्रालोक और कुवलयानंद जिस प्रकार अलंकार-प्रवेश के लिए प्रचलित थे या हैं, उसी प्रकार 'भाषा-भूषण' हिंदी में प्रचलित हुआ। इस ग्रंथ पर कई टीकाएँ भी लिखी गईं। जिनमें से पाँच का ठीक-ठीक पता चलता है। इन पाँचों में से वंशीधर-कृत 'अलंकार-रत्नाकर' नाम की टीका, प्रतापसाहि की टीका और गुलाब कवि की 'भूषण-चंद्रिका' नाम्नी टीका प्रसिद्ध और अच्छी हैं।

भाषा-भूषण

यहाँ पर आगे के कवियों के संबंध में कुछ कहने के पहले हिंदी के अलंकार-ग्रंथों का स्वरूप भली भाँति समझाने के विचार से हम ग्रंथकर्ताओं की प्रवृत्तियों और उनके वर्गों का उल्लेख कर देना आवश्यक समझते हैं, जिससे पता चल जाय कि इनके मूल में कितने प्रकार की धाराएँ बह रही थीं। जैसा हम ऊपर कह चुके हैं, कवियों ने या तो विवेचन की प्रवृत्ति के कारण 'काव्यप्रकाश' आदि ग्रंथों का सहारा लिया अथवा संक्षेप में अलंकार का स्वरूप समझकर काम चलता किया। इन्होंने

अलंकार-ग्रंथकारों की प्रगति

चंद्रालोक, कुवलयानंद और इनके पश्चात् भाषा-भूषण के बन जाने पर उसका आधार लिया। इस प्रकार के लोगों में दो प्रकार की प्रवृत्तियाँ पाई जाती हैं, कुछ लोगों ने तो केवल दोहों में ही लक्षण-उदाहरण दोनों देकर इसे सूत्र-रूप में ही रखा और कुछ लोगों ने उदाहरणों की प्रचुरता से इसका रूप बड़ा कर दिया। कुछ लोग ऐसे भी थे जिन्होंने पूर्व-प्रचलित ग्रंथों के आधार पर लक्षण रखकर अपने रचित उदाहरणों का ढेर लगाया। ऐसे लोगों में बहुत से ऐसे हुए जिन्होंने अपने सभी उदाहरण अपने आश्रयदाता अथवा इष्टदेव पर ही घटाए। कुछ ऐसे भी थे जिन्होंने उदाहरणों में विषय-वैभिन्न्य को भी स्थान दिया। इन लोगों के अतिरिक्त कुछ ऐसे लोग भी थे जो शास्त्रीय पद्धति से रीतिशास्त्र का सम्यक् विवेचन करना चाहते थे। ऐसे लोगों ने केवल अपने ही उदाहरण नहीं रखे, वरन् रीतिकार को जैसा करना चाहिए उसी प्रकार पूर्ववर्ती कविताकारों की कविताएँ उदाहरण-स्वरूप उद्धृत कीं। साथ ही विषय को स्पष्ट करने के लिए लक्षण और उदाहरण का सम-न्वय गद्य में भी किया। जैसा पहले कहा जा चुका है, पद्य में रीतिशास्त्र का विवेचन तर्कसिद्ध पद्धति से भली भाँति नहीं हो सकता। उसके लिए गद्य की आवश्यकता होती है। संस्कृत में कारिका और वृत्ति का प्रयोजन इस बात का स्पष्ट साक्षी है। पर उस समय गद्य में वैसी प्रौढ़ता नहीं थी और रीतिशास्त्र का निरूपण हिंदी-भाषा के खजाने से न होकर संस्कृत के भांडार से ही होता था। 'भाषा' की प्रकृति का किसी को ध्यान ही न था। इसलिए उन लोगों का प्रयत्न सफल न हुआ। पर इससे लाभ अवश्य हुआ। टीका के रूप में थोड़ी-बहुत टेढ़ी-मेढ़ी गद्य-रचना होती आ रही थी, विवेचन की प्रवृत्ति से उसके विकास का मार्ग प्रशस्त होने लगा और आगे चलकर गद्य का थोड़ा-सा विकास होते ही गद्य में विस्तृत विवेचन का सूत्रपात हो गया। बहुत दिनों से चली आती हुई एकांत पद्य-परंपरा के कारण उस समय एक तो गद्य का गुण लोगों को उतना ज्ञात नहीं था, दूसरे गद्य में विवेचन के आदर्श संस्कृत के ग्रंथ थे, जिनमें नैयायिकों की 'तावच्छिन्नकावच्छेद' वाली क्लिष्ट प्रणाली के ढंग से विवेचन किया गया था। इससे हिंदी के इन प्रयत्न-शील रीतिकारों का उद्योग सफल न हो सका, पर उससे गद्य के

लिखा था। जैसा हम पहले कह चुके हैं, यह 'चंद्रालोक' के पंचम मयूख (अलंकार-प्रकरण) का अधिकांश में उल्था-मात्र है। केवल

भाषा-भूषण

आदि में कुछ नायक-नायिकाओं और रस-भावादि के लक्षण भी जोड़ दिए गए हैं। अलंकार-शास्त्र में प्रवेश कराने और कंठस्थ करने के विचार से पुस्तक बड़े काम की है। पर लक्षणों का जैसा विवेचन आवश्यक है वैसा न तो इसमें हो ही सकता था और न किया ही गया है। यह स्पष्ट है कि पुस्तक अपनी कवित्व-शक्ति दिखलाने के लिए नहीं लिखी गई है। इसका उद्देश्य थोड़े में—सूत्र रूप में—अलंकारों का स्वरूप बतला देना है। महाराज जसवंतसिंह का यह कार्य इस दृष्टि से स्तुत्य है। इन्होंने कहीं-कहीं कुछ बातें बढ़ाई भी हैं। इससे जान पड़ता है कि इन्होंने 'आचार्य' के रूप में ही इसके निर्माण का उद्योग किया था। जैसे, अपह्नुति अलंकार में इन्होंने एक भेद अपनी ओर से रखा है। 'भाषा-भूषण' का निर्माण हो जाने पर परवर्ती कवियों ने इसीको आधार मानकर अपनी काव्य-प्रतिभा चमकाने का अधिकांश में उद्योग किया। इस ग्रंथ का संमान बहुत अधिक बढ़ गया। संस्कृत में चंद्रालोक और कुवलयानंद जिस प्रकार अलंकार-प्रवेश के लिए प्रचलित थे या हैं, उसी प्रकार 'भाषा-भूषण' हिंदी में प्रचलित हुआ। इस ग्रंथ पर कई टीकाएँ भी लिखी गईं। जिनमें से पाँच का ठीक-ठीक पता चलता है। इन पाँचों में से वंशीधर-कृत 'अलंकार-रत्नाकर' नाम की टीका, प्रतापसाहि की टीका और गुलाब कवि की 'भूषण-चंद्रिका' नाम्नी टीका प्रसिद्ध और अच्छी हैं।

यहाँ पर आगे के कवियों के संबंध में कुछ कहने के पहले हिंदी के अलंकार-ग्रंथों का स्वरूप भली भाँति समझाने के विचार से हम ग्रंथकर्ताओं की प्रवृत्तियों और उनके वर्गों का उल्लेख कर देना आवश्यक समझते हैं, जिससे पता चल जाय कि इनके मूल में कितने प्रकार की धाराएँ बह रही थीं। जैसा हम ऊपर कह चुके हैं, कवियों ने या तो विवेचन की प्रवृत्ति के कारण 'काव्यप्रकाश' आदि ग्रंथों का सहारा लिया अथवा संक्षेप में अलंकार का स्वरूप समझकर काम चलता किया। इन्होंने

अलंकार-ग्रंथकारों की प्रगति

चंद्रालोक, कुवलयानंद और इनके पश्चात् भाषा-भूषण के बन जाने पर उसका आधार लिया। इस प्रकार के लोगों में दो प्रकार की प्रवृत्तियाँ पाई जाती हैं, कुछ लोगों ने तो केवल दोहों में ही लक्षण-उदाहरण दोनों देकर इसे सूत्र-रूप में ही रखा और कुछ लोगों ने उदाहरणों की प्रचुरता से इसका रूप बड़ा कर दिया। कुछ लोग ऐसे भी थे जिन्होंने पूर्व-प्रचलित ग्रंथों के आधार पर लक्षण रखकर अपने रचित उदाहरणों का ढेर लगाया। ऐसे लोगों में बहुत से ऐसे हुए जिन्होंने अपने सभी उदाहरण अपने आश्रयदाता अथवा इष्टदेव पर ही घटाए। कुछ ऐसे भी थे जिन्होंने उदाहरणों में विषय-वैभिन्न्य को भी स्थान दिया। इन लोगों के अतिरिक्त कुछ ऐसे लोग भी थे जो शास्त्रीय पद्धति से रीतिशास्त्र का सम्यक् विवेचन करना चाहते थे। ऐसे लोगों ने केवल अपने ही उदाहरण नहीं रखे, वरन् रीतिकार को जैसा करना चाहिए उसी प्रकार पूर्ववर्ती कविताकारों की कविताएँ उदाहरण-स्वरूप उद्धृत कीं। साथ ही विषय को स्पष्ट करने के लिए लक्षण और उदाहरण का समन्वय गद्य में भी किया। जैसा पहले कहा जा चुका है, पद्य में रीतिशास्त्र का विवेचन तर्कसिद्ध पद्धति से भली भाँति नहीं हो सकता। उसके लिए गद्य की आवश्यकता होती है। संस्कृत में कारिका और वृत्ति का प्रयोजन इस बात का स्पष्ट साक्षी है। पर उस समय गद्य में वैसी प्रौढ़ता नहीं थी और रीतिशास्त्र का निरूपण हिंदी-भाषा के खजाने से न होकर संस्कृत के भांडार से ही होता था। 'भाषा' की प्रकृति का किसी को ध्यान ही न था। इसलिए उन लोगों का प्रयत्न सफल न हुआ। पर इससे लाभ अवश्य हुआ। टीका के रूप में थोड़ी-बहुत टेढ़ी-मेढ़ी गद्य-रचना होती आ रही थी, विवेचन की प्रवृत्ति से उसके विकास का मार्ग प्रशस्त होने लगा और आगे चलकर गद्य का थोड़ा-सा विकास होते ही गद्य में विस्तृत विवेचन का सूत्रपात हो गया। बहुत दिनों से चली आती हुई एकांत पद्य-परंपरा के कारण उस समय एक तो गद्य का गुण लोगों को उतना ज्ञात नहीं था, दूसरे गद्य में विवेचन के आदर्श संस्कृत के ग्रंथ थे, जिनमें नैयायिकों की 'तावच्छिन्नकावच्छेद' वाली क्लिष्ट प्रणाली के ढंग से विवेचन किया गया था। इससे हिंदी के इन प्रयत्न-शील रीतिकारों का उद्योग सफल न हो सका, पर उससे गद्य के

विकास में अच्छी सहायता मिली।

अट्ठारहवीं शताब्दी में 'काव्यप्रकाश' के आधार पर चलनेवाले दो रीति-कारों का ऊपर उल्लेख हो चुका है। अब यहाँ पर शेष रीतिकारों पर दृष्टि डाली जाती है। कुलपति मिश्र ने १७२७ में 'रस-रहस्य' नामक ग्रंथ लिखा।

काव्यप्रकाश की विवेचनात्मक पद्धति

इसमें महापात्र विश्वनाथ के साहित्य-दर्पण का भी आश्रय लिया गया है। कुलपति मिश्र ने किसी का अंधानुकरण नहीं किया है; वरन् इन्होंने शास्त्रीय पद्धति से उक्त आचार्यों के मत का विवेचन करके, तब उसे ग्रहण किया है। कहीं-कहीं अपनी स्वतंत्र संमति भी लिखी है। कुलपति मिश्र बड़े अच्छे आचार्य थे, पर उन्हें ब्रजभाषा-पद्य में ही संपूर्ण विषय कहना पड़ा, इससे वे जैसा विवेचन करना चाहते थे, वैसा वस्तुतः बन नहीं पड़ा। शब्द-शक्ति और भावादि-प्रकरण में इन्होंने अधिकांश लक्षण-उदाहरण उक्त ग्रंथों से ही लिए हैं, पर अलंकार-प्रकरण में अपने आश्रयदाता रामसिंह की प्रशंसा के ही स्व-रचित उदाहरण रखे हैं। 'काव्यप्रकाश' के अनुगामी दूसरे कवि कुमारमणि भट्ट हैं। इन्होंने सं० १७७६ में 'रसिक-रसाल' नामक ग्रंथ बनाया, जो 'काव्यप्रकाश' के आधार पर है। तीसरे रीतिकार कालपी-निवासी 'श्रीपति' हैं। इन्होंने काव्य-रीति पर कई ग्रंथ लिखे हैं—कवि-कल्पद्रुम, रससागर, अनु-प्रास-विनोद और अलंकार-गंगा। इनके अतिरिक्त इनका सबसे उत्तम ग्रंथ 'काव्य-सरोज' या 'श्रीपति-सरोज' है। इन्होंने अलंकार पर अच्छा प्रकाश डाला है। ये केशव की तरह चमत्कारवादी कवि थे, पर थे बड़े अच्छे काव्याभ्यासी। यहाँ तक कि इन्होंने 'केशव' के पद्य दोषों के उदाहरण में दिए हैं। इनका 'काव्य-सरोज' मम्मट के ही आधार पर बना है। इसकी विवेचना बड़ी अच्छी है। यह ग्रंथ बड़ा प्रौढ़ और आचार्यता का प्रदर्शक है। कुछ लोगों का कहना है कि 'भिखारीदास' ने 'श्रीपति' की बहुत-सी बातें चुपचाप अपने 'काव्य-निर्णय' में रख ली हैं। संभवतः दोनों आचार्यों का आधारभूत संस्कृत का एक ही ग्रंथ है, इसी कारण बहुत-कुछ समता आ गई है।

चौथे कवि महाकवि भिखारीदास हैं। इन्होंने सं० १८०२ में 'काव्य-निर्णय' नामक एक बहुत ही बढ़िया रीति-ग्रंथ बनाया। इसमें केवल मम्मट

भिखारीदास

का ही आधार नहीं लिया गया है। संस्कृत के अन्य ग्रंथ भी आधार बनाए गए हैं, जिनमें चंद्रालोक, साहित्य-दर्पण आदि प्रसिद्ध ग्रंथ भी हैं। इन्होंने हिंदी के रीति-ग्रंथों का भी अध्ययन और मनन किया था। ध्वनि का विवेचन इस ग्रंथ में दास ने सावधानी से किया है, पर विवेचन की कमी के कारण वह कहीं-कहीं अस्पष्ट और कहीं-कहीं संस्कृत का अंधानुकरण करने से अशुद्ध भी हो गया है। अलंकार के विवेचन में 'दास' ने अधिक सावधानी से काम लिया है। सबसे पहले हिंदी में अलंकारों के वर्गीकरण पर जिसका ध्यान गया है, वे 'दास' ही हैं। आजकल अलंकारों का जो क्रम प्रचलित है, वह 'काव्यप्रकाश' के क्रम से सामान्यतः और कुवलयानंद के क्रम से विशेषतः मिलता है। इस क्रम में थोड़ी-बहुत वर्गीकरण की प्रवृत्ति अवश्य छिपी है, क्योंकि एक ढंग के अलंकार एक स्थान पर और दूसरे ढंग के अलंकार दूसरे स्थान पर एकत्र मिलेंगे। पर फिर भी इसमें वर्गीकरण का तात्त्विक ध्यान नहीं है। 'दास' की दृष्टि सबसे पहले इस बात पर गई। इन्होंने एक प्रकार के अलंकारों का एक-एक गुट बनाकर उन्हें एकत्र किया है। वस्तुतः 'दास' ने केवल वर्गीकरण का प्रयत्न-मात्र किया है, उसमें पूर्णता नहीं है। सबसे प्रथम इन्होंने इन समूहों के जो नाम रखे हैं, वे ही वैयाकरणी अथवा वैद्यकी ढंग के 'तुदादि, चुरादि, चंदनादि' की भाँति 'उपमादि, उल्लासादि' हैं। 'दास' ने कुछ नये अलंकारों के निकालने का भी प्रयत्न किया है, पर उनमें कोई विशेष चमत्कार नहीं भासता। जैसे, इन्होंने 'तद्गुण' के सहारे एक 'स्वगुण' अलंकार की भी कल्पना की है, जिसमें कोई वस्तु अपने अंगी का गुण ग्रहण करके रंग बदल देती है। फिर भी 'दास' में आचार्यता भली भाँति झलकती है। अलंकार के अतिरिक्त इनका 'तुक-निर्णय' हिंदी में एक नई वस्तु है। इससे इनकी आचार्योन्मुख एवं अन्वेषिणी प्रवृत्ति का पता चलता है। पर कुछ लोगों का कथन है कि 'देव' की भाँति 'दास' में भी आचार्यता नहीं थी। ये हिंदी-संसार के सामने एक कवि के ही रूप में आते हैं।

पाँचवें आचार्य सोमनाथ हैं, इन्होंने 'रस-पीयूषनिधि' की रचना की। यह ग्रंथ भी संस्कृत के रीतिकारों की तर्कसिद्ध शैली पर बना है।

अब दूसरे ढंग की संक्षिप्त शैली पर विचार करना चाहिए। महाराज जसवंतसिंह के 'भाषा-भूषण' के पश्चात् दूसरी पुस्तक सूरति मिश्र की 'अलंकार-माला' है, जो सं० १७६६ में बनी। इसमें भी वही दोहेवाली पद्धति ग्रहण की गई है। अधिकांश में यह कुवलयानंद के आधार पर बनी है। उसके पद्य इसमें अनुवादित मिलेंगे। कहीं-कहीं कवि ने स्वतंत्र रूप से भी अलंकार लिखे हैं। तीसरी पुस्तक 'रसिक-सुमति' की लिखी है, जिसका नाम 'अलंकार-चंद्रोदय' है और जो सं० १७८५ के लगभग बनी थी। यह पुस्तक भी दोहों में ही है और कुवलायनंद के आधार पर बनी है। चौथी पुस्तक गुरुदत्तसिंह उपनाम 'भूपति' की है, जिसका नाम 'कंठाभरण' है। यह पुस्तक दोहों में ही बनी है और इसके दोहे उक्त कवि की लिखी 'सतसई' में भी दिए गए हैं। अनुमान से ही कहा जा सकता है कि यह पुस्तक भी कुवलयानंद के ही आधारभूत रही होगी। पाँचवीं पुस्तक 'अलंकार-रत्नाकर' है। जिसके रचयिता दलपतिराय और वंशीधर दो व्यक्ति हैं। यह पुस्तक वस्तुतः महाराज जसवंतसिंह के 'भाषा-भूषण' की टीका है। जिस प्रकार 'चंद्रालोक' के अलंकार-प्रकरण की टीका अप्पय दीक्षित ने 'कुवलयानंद' के नाम से की थी, उसी प्रकार इन दोनों कवियों ने 'भाषा-भूषण' का स्पष्टीकरण उदाहरणादि देकर किया है। इस ग्रंथ में दो बातें विशेष रूप से उल्लेख-योग्य हैं। एक तो इसमें उदाहरण काव्य-ग्रंथों से चुन-चुनकर और प्रसिद्ध कवियों की कविताओं से ढूँढ़-ढूँढ़कर रखे गए हैं, दूसरे लक्षणों के साथ उदाहरणों के समन्वय का प्रयत्न गद्य में किया गया है। उदाहरण कहीं-कहीं दंडी आदि संस्कृत के आचार्यों के भी रखे गए हैं। पुस्तक सभी दृष्टियों से उत्तम है। इसमें संस्कृत की शास्त्रीय पद्धति का अच्छा अनुकरण देख पड़ता है।

संक्षिप्त शैली

इन लोगों के अतिरिक्त अब ऐसे लोगों के ग्रंथों पर प्रकाश डालना चाहिए जो वस्तुतः चले तो इसी पद्धति पर थे, पर जिनका लक्ष्य उदाहरणों पर विशेष था, लक्षणों पर उतना नहीं। ऐसे लोगों में सबसे पहले मतिराम और भूषण का ही नाम आता है। 'मतिराम' ने 'ललित-ललाम' नामक ग्रंथ अपने आश्रयदाता

मतिराम और भूषण

बूँदी के भाऊ सिंह के नाम पर बनाया है। इसमें अधिकांश उदाहरण उन्हीं पर घटित किए गए हैं। 'मतिराम' के लक्षण बहुत साफ हैं और उदाहरण भी स्पष्ट हैं। 'भूषण' ने शिवाजी के नाम पर 'शिवराज-भूषण' नामक अलंकार-ग्रंथ सं० १७३० में बनाया। इनका एक ग्रंथ 'भूषण-उल्लास' भी कहा जाता है। अंदाज से यह भी अलंकार का ही ग्रंथ जान पड़ता है, पर बिना देखे उसके संबंध में कुछ अधिक नहीं कहा जा सकता। 'भूषण' के लक्षण कई स्थानों पर अस्पष्ट और भ्रामक हैं। इसके अतिरिक्त कहीं-कहीं उदाहरण भी नहीं बन पड़े हैं। इसका एक कारण तो यह है कि इन्होंने बरबस सभी अलंकारों के उदाहरणों को शिवाजी की प्रशंसा में घटाने का उद्योग किया है। दूसरा कारण हमें 'भूषण' में काव्य-रीति के अभ्यास का अभाव जान पड़ता है। उदाहरण के लिए 'विकल्प' अलंकार को लीजिए। इसमें दो समान बलवाली विपरीत वस्तुओं के एक ही समय में एक स्थान पर घटित न हो सकने के कारण विकल्प करना पड़ता है, दो में से किसी एक के भी होने में अनिश्चय रहता है। इन्होंने लक्षण ठीक देते हुए भी उसका उदाहरण ऐसा दे दिया जिसमें 'विकल्प' न होकर 'निश्चय' हो गया है। इससे अलंकार बिगड़ गया—'भूषण गाय फिरौ महि मैं बनिहै चित-चाह सिवाहि रिझाए' (शिवराज-भूषण, २५०)। इसी प्रकार 'भूषण' ने दो-एक नये अलंकारों के निकालने का भी प्रयत्न किया है, पर उसमें सफलता नहीं मिली है। इन्होंने एक 'सामान्य-विशेष' नामक अलंकार माना है, जिसमें 'विशेष' का कथन करके 'सामान्य' लक्षित कराया जाता है। यह अलंकार प्राचीन आलंकारिकों के अप्रस्तुतप्रशंसालंकार की 'विशेष-निबंधना' से भिन्न नहीं है। इसके उदाहरण भी वैसे स्पष्ट नहीं हैं, जैसे होने चाहिएँ। एक दूसरा अलंकार है—'भाविक-छवि' इसका लक्षण है—'दूरस्थित वस्तु को संमुख देखना'। 'भाविक' अलंकार में 'समय की दूरी' है और 'भाविक छवि' में 'स्थान की दूरी'। वस्तुतः यह 'भाविक-छवि' भाविक का ही एक अंग है, उससे भिन्न नहीं। 'भूषण' ने सब अलंकारों का वर्णन भी नहीं किया है। कई अलंकार तो केवल चलते कर दिए गए हैं, उनके भेदों का पता भी नहीं चलता। स्वर्गीय गोविंद गिल्ला भाई 'शिवराज-भूषण' में

और कई प्रचलित अलंकार बतलाते हैं, जो उनकी हस्तलिखित प्रति में दिए हुए हैं। पर 'भूषण' ने अंत में अलंकारों की जो सूची दी है उसमें गोविंद गिल्ला भाई के दिए अलंकारों के नाम नहीं हैं। इसलिये या तो यह सूची पीछे से किसी ने जोड़ दी है या उस प्रति में ही किसी ने कुछ अलंकार बढ़ा दिए हैं। कहने का तात्पर्य यह कि 'मतिराम' का 'ललित-ललाम' अलंकार का जैसा परिपूर्ण और प्रौढ़ ग्रंथ है, वैसा 'भूषण' का नहीं। अलंकार का अभ्यास 'भूषण' को बहुत कम था। इस अलंकार के चक्कर में उनकी कविता भी बहुत-कुछ विकृत हो गई है और उसमें रस-परिपाक भी जैसा चाहिए वैसा नहीं हो पाया है। इससे बहुत अच्छा और व्यवस्थित रस-परिपाक इनके उन छंदों में है जो 'शिवराज-भूषण' के नहीं हैं। 'शिवराज-भूषण' को अलंकार की दृष्टि से देखने पर बहुत-कुछ निराश होना पड़ता है।

इन दोनों कवियों के पश्चात् इस प्रकार के केवल दो कवि और रह जाते हैं। एक हैं प्रसिद्ध कवि देव और दूसरे हैं दत्त। 'देव' ने 'काव्य-रसायन' या 'शब्द-रसायन' नामक एक ग्रंथ काव्य-रीति पर लिखा है। इसमें अलंकारों का भी वर्णन है। देव ने उपमा अलंकार का तो कुछ विस्तार से वर्णन किया है, जैसा दंडी और केशव ने किया है, अन्य आचार्य पर शेष अलंकारों में से बहुत थोड़े लिखे हैं और वे भी चलते-मात्र कर दिए हैं। यहाँ तक कि एक-एक छंद में चार-चार पाँच-पाँच अलंकार निपटा दिए हैं। कविवर 'देव' की इस त्वरा का कारण समझ में नहीं आता। कुछ लोगों का कथन है कि 'देव' ने अपनी प्रस्तुत कविता लेकर उसी के सहारे अलंकार का ठाट बाँधा है, इसलिए जिस अलंकार के पद्य नहीं थे, उन्हें छोड़ दिया और कुछ छंदों में कई अलंकार दर्शा दिए हैं। पं० राचचंद्र शुक्ल तो 'देव' को आचार्य ही नहीं मानते। जो कुछ हो, पर यह स्पष्ट है कि देव का रूप आचार्यत्व के नाते वैसा निखरा हुआ सामने नहीं आता, जैसा कुछ कवि के रूप में आता है। 'दत्त' ने सं० १७९१ में 'लालित्य-लता' नामक अलंकार-ग्रंथ बनाया। ये चमत्कारवादी जान पड़ते हैं। इनका विवेचन और ढंग 'मतिराम' का सा है।

विक्रम की उन्नीसवीं शताब्दी के आरंभ ही से अलंकारशास्त्र में चमत्कार-

वाद तो बढ़ा, पर रीति के विवेचन की थोड़ी-बहुत जो प्रवृत्ति अट्ठारहवीं शताब्दी के कुलपति, श्रीपति और दास आदि में देखी गई थी, उसका एकदम अभाव हो गया। इसीलिए काव्यप्रकाश के आधार पर चलनेवाला या संस्कृत के विवेचनापूर्ण ग्रंथों का अनुकरण करनेवाला एक भी आचार्य नहीं दिखाई देता। हाँ, एकाध अनुवाद अवश्य हो गए थे। धनीराम ने १८६७ के लगभग 'काव्यप्रकाश' का उलथा आरंभ किया, पर वह भी पूरा न हो सका। 'साहित्य-दर्पण' का भी अनुवाद कहीं-कहीं हुआ। चमत्कारवाद के बढ़ जाने से लोगों की दृष्टि केशव की ओर भी गई। कुछ लोगों ने उनके स्वर-में-स्वर मिलाना आरंभ किया। केशव की जमाई हुई 'कविप्रिया' की परिपाटी का दर्शन एक बार फिर होने लगा। पं० गुमानमिश्र ने रीति-क्षेत्र में ही नहीं, कविता-क्षेत्र में भी केशव को अपनाया और हर मेल के छंद जुटाने का प्रयत्न किया। ये संस्कृत के भारी पंडित और नैषध के अनुवादक थे। इसी से इनकी दृष्टि उधर गई थी। इन्होंने सं० १८१८ में 'अलंकार-दर्पण' नामक अलंकार-ग्रंथ बनाया। इनके अतिरिक्त दो कवियों का नाम और मिलता है, जो केशव की परिपाटी के पोषक थे। एक हैं गुरुदीन पाँडे, जिन्होंने 'बाग-बहार' नामक ग्रंथ सं० १८६० में बनाया। इस ग्रंथ में हर प्रकार से 'केशव' का अनुकरण किया गया है। एक तो कविप्रिया की ही तर्ज पर इसमें भी बीस ही प्रकाश रखे गए हैं, दूसरे विषय-वर्णन में 'केशव' की रामचंद्रिका से मेल मिलाने के लिए बहुमेल छंद भी प्रयुक्त किए गए हैं। इस प्रकार अलंकारादि रीति-विषयों के साथ-साथ पिंगल को भी निपटा दिया गया है। दूसरे व्यक्ति हैं, प्रसिद्ध कवि 'बेनी-प्रवीन'। इन्होंने भी 'नानाराव-प्रकाश' नामक ग्रंथ अपने आश्रयदाता की प्रशंसा में कविप्रिया के ही ढंग पर बनाया है।

उन्नीसवीं शताब्दी

इस शताब्दी में अधिकता 'भाषा-भूषण' के ढंग के ही ग्रंथों की रही, पर उसमें कुछ विशेषता भी आ गई थी। प्रायः लोग दोहों में ऐसी पुस्तक रचकर छुट्टी पा लिया करते थे, पर अब अधिक लोग अन्य छंद और विशेषतः कवित्त, सवैया, छप्पय आदि के उदाहरण भी देने लगे थे। उदाहरण कुव-

लयानंद से न लेकर उन्हीं की जोड़-तोड़ के रचकर रखे जाते थे। यही नहीं, वरन् पिछले खेवे के कवियों ने तो एकदम शृंगार के ही उदाहरण जुटाए थे, उसे छोड़कर अब अन्य रसों के उदाहरण भी समाविष्ट किए जाने लगे। इस ढंग के ग्रंथों में दूलह के कविकुल-कंठाभरण का, शंभुनाथ के अलंकार-दीपक का, रूपसाहि के रूप-विलास का, ऋषिनाथ की अलंकार-मणि-मंजरी का, वैरीसाल के भाषा-भरण का, नाथ के अलंकार-दर्पण का, रामसिंह के अलंकार-दर्पण का, पद्माकर के पद्माभरण का और प्रतापसाहि की भाषा-भूषण की टीका का नाम लिया जा सकता है। इनमें से कुछ ग्रंथ ऐसे हैं जिनमें रस और नायिका-भेद का भी थोड़ा-सा परिचय आदि में दिया गया है। कुछ लोग ऐसे भी हैं जिन्होंने आदि में अलंकारों के लक्षण लिख दिए हैं और पीछे उनके उदाहरण एकत्र दे डाले हैं। ऐसे ग्रंथों में बड़े छंदों का सहारा लेने से एक लाभ अवश्य हुआ। पहले दोहे में अलंकारों का निरूपण भली भाँति नहीं हो सकता था, अब बड़े छंदों के कारण विषय कुछ अधिक स्पष्ट हो गया। इस शताब्दी के अधिकांश ग्रंथों में बड़े-बड़े छंदों का ही उपयोग किया गया है, जिससे कम-से-कम उदाहरण में स्थल-संकोच के कारण होनेवाली गड़बड़ी तो बिलकुल ही दूर हो गई। यों तो पिछले खेवे के आचार्यों में से विवेचन की प्रवृत्तिवाले अथवा आचार्यत्व को थोड़ा-बहुत समझनेवाले बड़े ही छंदों में अधिकांश उदाहरण रखते थे, पर वह प्रवृत्ति व्यापक न थी, अब यह व्यापक-सी हो गई।

रघुनाथ और प्रतापसाहि

इस शताब्दी के आदि में ही 'रघुनाथ' एक बहुत अच्छे आचार्य हो गए हैं। इनका अलंकार का ग्रंथ 'रसिक-मोहन' बहुत ही उत्तम है। इसके देखने से इनकी आचार्यता का पता चलता है। इस पुस्तक में केवल शृंगार के ही पद्य नहीं है, वरन् अन्य रसों के पद्य भी हैं। एक-एक अलंकार के कई उदाहरण दिए गए हैं। यही नहीं, इसमें सबसे बड़ी विशेषता यह है कि प्रायः उदाहरण के प्रत्येक चरण में अलंकार दिखाया गया है। ऐसा उद्योग पिछले खेवे के कम आचार्यों ने किया था। 'दास' आदि के कई उदाहरणों में यह विशेषता है अवश्य, पर वह यत्र-तत्र ही पाई जाती है। इतना होने पर भी

इन उदाहरणों में क्लिष्टता नहीं आने पाई है, भाषा के सुबोध होने से अलंकारों को हृदयंगम करना सुगम है। तात्पर्य यह कि 'रसिक-मोहन' अलंकार की बहुत सुंदर पुस्तक है। इनके पश्चात् 'भाषा-भूषण' के तिलककार प्रताप-साहि का नाम आता है। ये बड़े प्रौढ़ और काव्याभ्यासी आचार्य थे। टीकाकार भी ये अच्छे थे। इन्होंने ध्वनि पर भी प्रकाश डाला है और 'व्यंग्यार्थ-कौमुदी' नामक पुस्तक लिखी है। ये इस शताब्दी के अंत में हुए थे।

इस शताब्दी के मध्य के लगभग एक और आचार्य हो गए हैं। इनका नाम उत्तमचंद भंडारी है। इन्होंने 'अलंकार-आशय' नामक ग्रंथ बनाया है। यह ग्रंथ 'दलपतिराय-वंशीधर' के ढंग का है। इसमें उदाहरण अन्य कवियों के दिए गए हैं और व्याख्या गद्य में भी की गई है। इस ग्रंथ की हस्तलिखित प्रति हमने देखी है। पुस्तक के देखने से भंडारीजी का प्रयत्न बड़ा श्लाघ्य जान पड़ता है। इसमें उदाहरण ऐसे अच्छे और साफ चुनकर रखे गए हैं कि अलंकार तुरंत स्पष्ट हो जाता है।

उक्त लोगों के अतिरिक्त और बहुत से लोगों ने अलंकार-विषयक ग्रंथ बनाए। जिनमें से चंदन का 'काव्याभरण' (१८४५) भानु कवि का 'नरेंद्र-भूषण' (१८४५), थान कवि का 'दलेल-प्रकाश' (१८४८), वेनी वंदीजन का 'टिकैतराय-प्रकाश' (१८४९), देवकीनंदन का 'अवधूत-भूषण' (१८५७) ब्रह्म भट्ट का 'दीप-प्रकाश' (१८६५), रामसहायदास का वाणी-भूषण' (१८७२), ग्वाल कवि का 'रसिकानंद' (१८७९) और रघुनाथ के पुत्र गोकुलनाथ की 'चेत-चंद्रिका' एवं 'कवि-मुख-मंडन' का नामोल्लेख आवश्यक है। गोकुलनाथ तो अपने पिता की ही भाँति अच्छे आचार्य हुए।

हिंदी में चमत्कारवाद का सिलसिला पहले से ही चला आ रहा था। अलंकारों में कोरे चमत्कारवाले अलंकारों के फेर में कई कवि पड़े। कुछ ने अपने काव्य-मात्र में उसे ग्रहण किया था और कुछ वैसे अलंकारों पर विशेष रूप से एक स्वतंत्र ग्रंथ ही रचने लग गए थे। पहले प्रकार के लोगों में केशव, सेनापति और पद्माकर आदि का नाम लिया जा सकता है। दूसरे प्रकार के लोगों में महात्मा सूरदास ही सबसे पहले सामने आते हैं, जिन्होंने 'साहित्य-लहरी' में दृष्टि-कूटकों का चक्रव्यूह खड़ा किया है। इसके पश्चात् अट्ठारहवीं

शताब्दी में भी इस प्रकार के कई ग्रंथ बने। जिनमें से अब्दुल रहमान का 'यमक-शतक' (१७६१) अच्छा है। ऐसे ग्रंथ बराबर बनते रहे। उन्नीसवीं शताब्दी में भी इनका क्रम जारी रहा। इनमें से काशिराज की 'चित्र-चंद्रिका' बहुत प्रसिद्ध है। इसमें चित्रालंकार के तमाशे दिखाए गए हैं और काफ़ी दिमागी कसरत की गई है। हमने एक ग्रंथ 'प्रवीण-सागर' भी देखा है, जो काव्य का बड़ा अनोखा ग्रंथ है। पर उसके अंत में भी चित्रालंकार के अनेक चित्र-पट सिनेमा की तसवीरों की तरह जोड़े हुए हैं।

बीसवीं शताब्दी

बीसवीं शताब्दी का आरंभ होते ही अलंकारों की दमदमाहट कम होने लगी। फिर भी पुरानी पद्धतिवाले लोग अलंकार के ग्रंथों की कभी-कभी रचना कर दिया करते थे। 'सेवक' कवि ने १९३८ में 'काव्य-प्रकाश' का उलथा किया था। भाषा-भूषण अथवा चंद्रालोक-कुवलयानंद की पद्धति भी अभी समाप्त न हुई थी। 'गुलाब' कवि ने 'भाषा-भूषण' की एक टीका 'भूषण-चंद्रिका' के नाम से की। इन्होंने कई अलंकार-ग्रंथ लिखे हैं और अलंकार-ग्रंथों पर टीकाएँ भी की हैं। 'मति-राम' के 'ललित-ललाम' ग्रंथ पर इनकी 'ललित-कौमुदी' नामक टीका बड़ी अच्छी है। इसमें कविरायजी ने गद्य में अलंकार समझाए हैं और स्थान-स्थान पर विषय को स्पष्ट करने के लिए अपने 'वनिता-भूषण' से भी उदाहरण उद्-धृत किए हैं। इनके ग्रंथों के देखने से पता चलता है कि इनका आलंकारिक ज्ञान बड़ा अच्छा था। इन्होंने काव्य के अन्य अंगों पर भी प्रकाश डाला है और कई ग्रंथ रचे हैं। इसी समय के लगभग चतुर्भुज मिश्र ने 'अलंकार-आभा' नाम से कुवलयानंद का पद्यानुवाद किया।

इस शताब्दी के आदि में ही पुराने कैंड़े के आचार्यों में सबसे अच्छे लछि-राम ब्रह्मभट्ट हुए हैं। इन्होंने काव्यांगों पर विभिन्न राजाओं के नाम से कई ग्रंथ रचे हैं। जिनमें से 'रामचंद्र-भूषण' और महाराज गिद्धौर के नाम पर बना हुआ 'रावणेश्वर-कल्पतरु' बहुत प्रसिद्ध है। लछिराम का ढंग 'मतिराम' का-सा है, पर 'मतिराम' की तरह पूर्णता और प्रौढ़ता इनके ग्रंथों में नहीं मिलती। कई स्थानों पर उदाहरण अस्पष्ट और अपूर्ण हैं।

पुराने कैंड़े के ग्रंथकारों में भारतेंदु बाबू के पिता श्री गोपालचंद्र (गिरिधर-

रदास) का 'भारती-भूषण', प्रसिद्ध टीकाकार सरदार कवि के हनुमन्-भूषण, तुलसी-भूषण, मानस-भूषण आदि, लेखराज के गंगाभूषण और लघु-भूषण, बलदेव कवि का 'प्रताप-विनोद', द्विज गंग की 'महेश्वर-चंद्रिका', रसिक-विहारी का 'काव्य-सुधाकर' और गोविंद गिल्ला भाई की 'भूषण-मंजरी' आदि का नाम उल्लेख योग्य है।

द्वितीय उत्थान

हम ऊपर कह चुके हैं कि अलंकार आदि रीति-विषयों का विवेचन पद्य में अच्छी तरह नहीं हो सकता। पुराने जमाने से ही पद्य में ग्रंथों के लिखने की परिपाटी चली आ रही थी। इसलिये काव्य अथवा अलंकार के सिद्धहस्त अभ्यासियों को भी पद्य में ही अपने ग्रंथों का निर्माण करना पड़ता था। श्रीपति, कुलपति आदि आचार्यों को इसीलिये इच्छित सफलता नहीं मिल सकी। 'दास' आदि ने अपने ग्रंथों में कहीं-कहीं कुछ गद्य लिखकर विषय को स्पष्ट करने का उद्योग किया है और दलपतिराय-वंशीधर ऐसे लोगों ने तो रीति-ग्रंथों को परिपूर्ण बनाने के लिये प्रचलित गद्य में भरपूर जोर मारा है। पर ब्रजभाषा वस्तुतः पद्य की भाषा थी। उसका उस समय तक ऐसा विकास नहीं हो सका था कि गूढ़ से गूढ़ विषय गद्य में सरलता के साथ समझाए जा सकते। गद्य का उपयुक्त विकास संस्कृत में भी नहीं था। इसलिये संस्कृत का अनुगमन करनेवाले सीधे-साधे पद्य में ही अनुवाद करके छुट्टी पा लेते थे। प्राचीन टीकाकारों ने अलंकारों को टीका के साथ-साथ गद्य में समझाने का उद्योग किया है, पर अधिकांश टीकाओं में पद्य में ही विवेचन भी जोड़-जाड़कर रख दिया गया है, जैसे 'लाल-चंद्रिका' में। अँगरेजों के संसर्ग से और भारतेंदु बाबू, राजा शिवप्रसाद आदि के उद्योग से ज्यों ही हिंदी-गद्य विकासोन्मुख हुआ त्यों ही रीति-ग्रंथों में भी निरूपण के लिये उसका सहारा लिया जाने लगा।

मुरारिदान

गद्य में विस्तृत विवेचन के साथ-साथ शास्त्रीय पद्धति पर अलंकारों का विवेचन करनेवाला सबसे पहला ग्रंथ है कविराजा मुरारिदान का 'जसवंत-जसोभूषण'। मुरारिदान ने इसके आदि में कुछ व्यंग्य का भी परिचय दिया है, पर है यह केवल अलंकार का ही ग्रंथ। इस पोथे में कई विशेषताएँ हैं। इसमें प्रत्येक अलंकार के

लक्षण प्राचीन प्रसिद्ध अलंकार-ग्रंथों से उद्धृत किए गए हैं और उनकी मीमांसा भी की गई है। इसमें प्रत्येक अलंकार के नाम के आधार पर उसका लक्षण निकालने की प्रवृत्ति दिखलाई गई है। प्राचीन ढंग की संस्कृतवाली तार्किक प्रणाली से लक्षणों का निर्णय किया गया है और बहुत से व्यर्थ जान पड़नेवाले अलंकारों अथवा उनके भेदों का अंतर्भाव भी अन्यान्यों में कर दिया गया है। कविराजा ने प्राचीन संस्कृत के आचार्यों को फटकारने में भी कमाल किया है, पर प्रत्येक अलंकार के लक्षण को उसके नाम में ही अनुस्यूत करने की कठहुज्जती के फेर में कहीं-कहीं आप गोता भी खा गए हैं। अवश्य ही अलंकार के नाम का संबंध उसके लक्षण से भी है, पर किसी अलंकार का पूरा लक्षण उसके नाम के छोटे से संपुट में अँट जाना असंभव नहीं, तो दुरूह अवश्य है। यही कारण है कि आपने अलंकारों के लक्षणों की व्युत्पत्ति नामों से करते हुए कई जगह खींचातानी और अंधाधुंधी भी की है। फिर भी कविराजा का परिश्रम और प्रयत्न श्लाघ्य है।

इसके निकलने के पश्चात् एक बहुत अच्छा अलंकार का ग्रंथ प्रसिद्ध काव्यमर्मज्ञ सेठ कन्हैयालालजी पोद्दार ने 'अलंकार-प्रकाश' नाम से प्रकाशित कराया। यह ग्रंथ अधिकांश में मम्मट के 'काव्य-प्रकाश' के आधार पर लिखा गया है। अभी थोड़े ही समय पूर्व 'अलंकार-प्रकाश' में अन्य काव्यांगों को जोड़कर और उसका संशोधन करके 'काव्य-कल्पद्रुम' नामक ग्रंथ पूर्ण काव्य-रीति पर आपने प्रकाशित कराया है। पोद्दारजी ने अलंकारों का अच्छा विवेचन किया है, पर संस्कृत का पद-पद पर अनुसरण करने के कारण और

सेठ कन्हैयालाल पोद्दार और 'भानु' जी

संस्कृत की तर्कवादवाली प्रणाली का आश्रय लेने से ग्रंथ विद्यार्थियों के लिये दुरूह हो गया है। दूसरे पोद्दारजी ने संभवतः इस बात पर ध्यान नहीं दिया है कि संस्कृत और हिंदी की प्रकृति भिन्न-भिन्न है। यही कारण है कि जो अलंकार हिंदी के योग्य नहीं हैं अथवा अलंकारों के जो भेद हिंदी की प्रकृति से भिन्न हैं, उन्हें भी आपने रख लिया है। पिछले खेवे के कवियों ने ऐसे बहुत से अलंकार और उनके भेदादि छोड़ दिए थे, जिनका लगाव हिंदी की प्रकृति से नहीं था। उनकी पुनरावृत्ति अनावश्यक-सी जान पड़ती है।

यथा—लाटानुप्रास के पदावृत्ति और नामावृत्ति नामक भिन्न-भिन्न प्रकार और यथासंख्य के शाब्द एवं आर्थ नामक भेद। इनके पश्चात् प्रसिद्ध पिंगलाचार्य बा० जगन्नाथप्रसाद 'भानु' का 'काव्य-प्रभाकर' नामक ग्रंथ प्रकाशित हुआ। इसमें सभी काव्यांगों पर प्रकाश डाला गया है और छंदों का भी आदि में वर्णन है। अलंकारों के लक्षण आपने संस्कृत के प्रसिद्ध ग्रंथों के रखे हैं और उनका हिंदी-पद्यानुवाद भी नीचे दे दिया है। इसके बाद गद्य में भी उनका अर्थ दिया गया है। एक अलंकार के कई उदाहरण हैं। जिनमें 'रामचरित-मानस' का उदाहरण प्रायः सभी अलंकारों में है। इनके दो ग्रंथ हिंदी-काव्यालंकार और अलंकारप्रश्नोत्तरी भी हैं। 'भानुजी' ने विषय को सरल बनाने का उद्योग तो अवश्य किया है, पर विवेचन की कमी और अलंकारों का व्यापक अभ्यास न होने से इसमें कुछ अपूर्णता भी रह गई है और कहीं-कहीं उदाहरण अंड-बंड दे दिए गए हैं। जैसे, 'कीकर पाकर' वाला 'मुद्रा' का प्रसिद्ध उदाहरण 'श्लेष' में रखा है।

अभी तक सबसे बड़ी कठिनाई यह थी कि पाठशालाओं और कालेजों में पढ़ाए जाने योग्य अलंकार-ग्रंथ बिलकुल नहीं थे। प्राचीन अलंकार-ग्रंथ तो पढ़ाने योग्य थे ही नहीं और इधर जो अलंकार

लाला भगवानदीन के नये ग्रंथ निकले, उनमें श्रृंगार खचाखच भरा हुआ था। इसपर स्वर्गीय लाला भगवानदीनजी की दृष्टि गई। उन्होंने विद्यार्थियों के लायक 'अलंकार-मंजूषा' नामक ग्रंथ प्रस्तुत किया। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यही थी कि इसमें श्रृंगारिक पद्य एक भी नहीं था। इसमें उदाहरण अधिक दिए गए थे और उन्हें भली भाँति समझाया भी गया था। यही कारण था कि इसका काफी प्रचार हुआ। लालाजी ने शास्त्रीय विवेचन पर उतना ध्यान तो नहीं दिया, पर अलंकारों की विभिन्नताएँ अच्छी तरह से समझाईं और कई स्थानों पर कुछ खोज भी की; जैसे—स्मरण, दीपक आदि में। फिर भी संस्कृत-शास्त्र का अच्छा अध्ययन न होने के कारण दो-एक स्थान पर लालाजी ने भ्रमवश कुछ-का-कुछ लिख दिया है। जैसे श्लेष के दो भेद (शब्द और अर्थ) आपने इस प्रकार किए हैं—'जहाँ कवि का मुख्य तात्पर्य एक ही अर्थ से होता है (शब्द-श्लेष) और

जहाँ कवि का तात्पर्य दोनों वा तीनों अर्थों से होता है (अर्थ-श्लेष)।' अलंकाराभ्यासी जानते हैं कि वस्तुतः बात ऐसी नहीं है। इसी प्रकार क्रम (यथासंख्य) के 'भग्न-क्रम' और 'विपरीत-क्रम' नामक भेद हैं। फिर भी कहना पड़ता है कि हिंदी में विद्यार्थियों के लायक ऐसी उत्तम पुस्तक आज तक नहीं बनी। अलंकारों में प्रवेश पाने के लिये 'मंजूषा' अद्वितीय पुस्तक है।

हिंदी की दिनोदिन उन्नति होने के कारण लोगों का ध्यान अलंकारों की वैज्ञानिक खोज की ओर भी गया। पं० रामशंकर शुक्ल 'रसाल' एम० ए० ने अपना 'अलंकार-पीयूष' नामक एक ग्रंथ अभी हाल ही में हिंदी-जनता के समक्ष प्रस्तुत किया है। इसमें 'अलंकारों के वैज्ञानिक विकास' पर विचार किया गया है और संस्कृत तथा हिंदी के अलंकार-शास्त्र का इतिहास भी दिया गया है। प्रत्येक अलंकार के सूक्ष्मातिसूक्ष्म भेद दिखलाए गए हैं। कहने का तात्पर्य यह कि पुस्तक में भारी भरकम ढाँचा खड़ा किया गया है। पुस्तक के पढ़ने से पता चलता है कि 'रसालजी' ने अलंकारों के संबंध की बाहरी सामग्री विभिन्न ग्रंथ से जुटाकर रखने में जितना परिश्रम किया है, उतना उनका मार्मिक और आंतरिक रहस्य समझने की चिंता नहीं की है। अलंकार के अभ्यासियों का कहना है कि इसके उदाहरण कई स्थलों पर लक्षणों से घटित नहीं होते। हमारे विचार से यदि पुस्तक में हिंदी की प्रकृति का ध्यान रखकर अलंकारों का चयन होता, तो पुस्तक सुंदर हो जाती। संभव है, 'रसालजी' ने यह सामग्री एकत्र करके उसे भविष्य के अनुसंधान के लिये छोड़ दिया हो। कुछ भी हो, पुस्तक अच्छी है। हिंदी में वैज्ञानिक खोज की वृत्ति बढ़ने की निदर्शिका होने से और इसका सूत्रपात करने के कारण आदरणीय भी है। इस ओर विद्वानों के अग्रसर होने की आवश्यकता है।

तृतीय उत्थान

इधर अलंकार-संबंधी छोटी-मोटी कई पुस्तकें निकली हैं। जैसे अध्यापक रामरत्न का 'हिंदी-अलकार-प्रबोध', 'रसालजी' की 'अलंकार-कौमुदी' और सेठ अर्जुनदासजी केडिया का 'भारती-भूषण'। अलंकार-प्रबोध' तो एकदम साधारण पुस्तक है, अलंकारों का विषय उसमें वैसा स्पष्ट नहीं है, जैसा आरंभिक पुस्तक में होना

अन्य ग्रंथ

ठीक कर दिया जाय। अब आवश्यकता इस बात की प्रतीत हो रही है कि अलंकारों का नये सिरे से वर्गीकरण हो और नये ढंग से उनका विभक्तीकरण एवं निरूपण किया जाय। उदाहरण रीति-ग्रंथों से न लेकर कविता-ग्रंथों से लिए जायँ।

२. हिंदी-साहित्य में वीर-काव्य

संसार में दो प्रकार के काव्य विशेष रूप से स्थायी रह सकते हैं, एक भक्ति-काव्य और दूसरे वीर-काव्य। भक्ति-काव्य का संबंध ईश्वर से होता है; इसलिये उसके पाठ अथवा अनुशीलन से आंतरिक भावनाओं के विप्लव शांत होते हैं। वीर-काव्य का संबंध व्यावहारिक जगत से होता है। उसमें जनता के पूर्व-पुरुषों की पराक्रमपूर्ण कृतियों का वर्णन रहता है, इससे जनता इस प्रकार के काव्यों को भी सुरक्षित रखना चाहती है। इन काव्यों के पारायण से जनता को अपना आदर्श ऊँचा करने का अवसर मिलता है और वीरतापूर्ण वर्णनों के कारण चित्त में उत्साह एवं उल्लास का अच्छा उद्रेक होता रहता है। इससे समाज की मर्यादा अक्षुण्ण बनाए रखने और जीवन की संकटापन्न स्थिति में अपनी रक्षा कर सकने की शिक्षा भी मिलती रहती है। समाज की संस्कृति को सनातन बनाने के लिये जनता में इस प्रकार के वीर-काव्यों का प्रचलन इसीलिये बड़े काम का होता है। संसार की कितनी ही संस्कृतियाँ अतीत की गोद में समा गईं, कितनी ही जातियाँ विदेशी सभ्यता की बेड़ियों में जकड़ी जाकर विजेताओं द्वारा पददलित और धर्म-विमुख हो गईं, पर भारतीय आर्य-जाति अभी तक अपनी पुरानी संस्कृति को पकड़े इधर-उधर अनेक टक्कर खाती हुई चली चल रही है। इसका कारण है वीर-काव्यों का पठन-पाठन और उनका अनुसरण। संसार-प्रसिद्ध महाकाव्य 'रामायण' और 'महाभारत' को यह जाति बिलकुल नहीं भूली है। अब तक इसकी दृष्टि इन्हीं महाकाव्यों पर अँटकी है। इसका जीवन-स्रोत इन्हीं के क्षेत्रों से होकर बह रहा है। मुसलमानी जमाने में हमने धोती के स्थान पर ढीली मोहरी का पायजामा पहना, बगलबंदी उतारकर ढीलमढाली मिर्जई और अचकन आदि पहने, चौगोशिया

स्थायी काव्य

टोपी उतारकर दुपलिया टोपी दी; अँगरेजी राज में कोट, पतलून और हैट-नकटाई आदि से बने-ठने; पर अपने 'राम' को फिर भी नहीं भूले, रामायण और महाभारत की कथाओं का पठन-पाठन नहीं त्यागा। यही कारण है कि आज हिंदू-जाति अत्यंत प्राचीन सभ्यता और संस्कृतिवाली होकर भी समय के प्रवाह में ज्यों-की-त्यों टिकी है।

संसार का कोई भी ऐसा साहित्य नहीं है, जिसमें वीर-गाथाओं अथवा वीर-काव्यों का अभाव हो। सभी जातियों में वीर-गाथाएँ पाई जाती हैं और अधिकांश में वे महाकाव्यों के ही रूपों में मिलती हैं। बहुधा ये काव्य सभी जातियों के साहित्य के आदिकाल में ही मिलते हैं। इसका कारण भी है। प्राचीन-काल में जीवन-संग्राम केवल गृहस्थी के दायरे तक ही सीमा-बद्ध नहीं था। उस समय संसार में अपनी स्थिति दृढ़ करने के लिये प्रत्येक जाति को दूसरे से भिड़ने की आवश्यकता हुआ करती थी। किसी प्रभाव-शाली व्यक्ति के शासन से संभवतः अल्प-काल के लिये जनता विश्राम पा ले, अन्यथा उसके अंत होते ही उसे एक हाथ से तलवार और दूसरे से गृहस्थी को सँभालते हुए जीवन-यापन करना पड़ता था। प्राचीन इतिहास के पन्ने पलटिए, वे आपको स्थान-स्थान पर गृह-कलह और राज-कलह दोनों से रक्त-रंजित मिलेंगे। संस्कृत के उक्त महाकाव्यों के अतिरिक्त संसार के साहित्य के सबसे प्रसिद्ध महाकाव्य यूनानियों के हैं। इनका नाम है 'इलियड' (Iliad) और 'ओडेसी' (Odyssey) और इनका लेखक प्रसिद्ध कवि 'होमर' (Homer) है। ये दोनों ही वीर-महाकाव्य हैं और इनमें 'ट्राय' (Troy) के युद्धों का वर्णन किया गया है। कहने का तात्पर्य यह कि सभी देशों के साहित्य में वीर-काव्यों का प्राधान्य और प्रचलन पाया जाता है तथा वे उन जातियों के साहित्य के आदिकाल में ही मिलते हैं।

वीर-काव्य की व्यापकता

हिंदी-साहित्य का आरंभ भी ऐसे समय में ही होता है, जब भारत का पश्चिमी भाग अभिनव मुसलमान जाति के आक्रमणों से आक्रांत था और उत्तर भारत के प्राय: सभी प्रमुख नरेशों की दृष्टि उस ओर खिंची हुई थी। बुद्ध भगवान् के शांतिमय उपदेशों का समय बीत चुका था। वीरता

के नवोन्मेष से परिपूर्ण राजपूतों का राज्य चारों ओर बढ़ गया था। कम-से-कम भारत का पश्चिमोत्तर प्रदेश तो इन्हीं के हाथों से शासित हो रहा था। बर्बर भावनाओं से भरी-पूरी और लूट-पाट के लोभ से लालायित मुस्लिम जाति के आक्रमण बराबर बढ़ते ही जाते थे। उस समय उनसे सामना करने के लिये राजपूतों के ही समान दृढ़ और युद्ध-प्रिय जाति की आवश्यकता थी और उन्हें कविता द्वारा प्रोत्साहित करनेवाले ऐसे कवियों की सहयोगिता अपेक्षित थी, जिनकी वाणी में उन्माद और आवेश के उत्पन्न करने की सच्ची शक्ति हो तथा जिनकी भुजाओं में आवश्यकता पड़ने पर रण-कौशल दिखला देने का बल भी हो। विक्रमादित्य और भोज-राज का वह स्वर्णयुग बीत चुका था, जब युक्ति-चमत्कार पर प्रसन्न होकर बात-की-बात में लाखों रुपये बाँट दिए जाते थे। राज-दरबार में बैठे-बैठे पेंचीले भाव-संघटन का समय अब नहीं था। अब तो रण-क्षेत्र में खड़े होकर ललकारते हुए वीरों में युद्धोत्साह और वीरोन्मेष भर देने की आवश्यकता थी। इन्हीं कारणों से हिंदी के आदियुग में वीर-गाथाओं का ही प्रचुरता से प्रणयन हुआ और अधिकांश वीर-गाथाएँ मौखिक-रूप में ही कही-सुनी जाती रहीं। इस मौखिक परंपरा का परिणाम बहुत कुछ बुरा हुआ। एक तो वे गाथाएँ स्वभावतः जिह्वा के पथ पर दौड़ती हुई परिवर्तित और विकृत हो गईं। दूसरे बहुत से लोगों ने उनमें प्रक्षिप्तांश जोड़कर उनके मूल-स्वरूप को एकदम ढँक दिया। इसके प्रमाण में 'जगनिक' का 'आल्हा' उपस्थित किया जा सकता है।

हिंदी में वीर-काव्य का आरंभ

वीर-रस की कविता वस्तुतः समय-सापेक्ष होती है। भक्ति की कविता की भाँति प्रत्येक काल में न्यूनाधिक परिमाण में उसका प्रणयन निरंतर नहीं हुआ करता। हिंदी-साहित्य की वीर-कविता के संबंध में यह बात नहीं कही जा सकती। क्योंकि पराक्रम-प्रिय राजपूत जाति के राज्यों में राजकवियों के रखने की एक प्रथा-सी चली आ रही है। राजपूतों का प्राचीन प्रभुत्व हट जाने पर भी उनके छोटे-छोटे राज्यों में राजकवि बराबर रखे जाते रहे।

हिंदी में वीर-काव्य का स्वरूप

उन्होंने अपने आश्रयदाताओं की प्रशंसा अथवा पराक्रम के संबंध में पर्याप्त परिमाण में कविताएँ की हैं। पर क्षेत्र के संकुचित होने के कारण उन कविताओं का प्रचार एवं प्रसार सार्वजनीन् न होकर एकदेशीय ही रहा। इसीसे हिंदी में वीर-रस की कविता का अभाव-सा देख पड़ता है, किंतु उन कविताओं के संकुचित क्षेत्रत्व की बात छोड़कर यदि वीर-रस की कविता पर व्यापक दृष्टि से विचार किया जाय, तो पता चलेगा कि हिंदी के आदिकाल से लेकर अब तक वैसी कविताओं का निर्माण पर्याप्त मात्रा में होता चला आ रहा है। इसके अतिरिक्त हमें वीर-कविता के थोड़े-बहुत दर्शन काव्य-रीति के ग्रंथों और महाकाव्यों में भी हो जाते हैं। रसों का स्वरूप-विवेचन एवं निरूपण करते समय वीर-रस के भी दो-चार छंद लिखने ही पड़ते थे और महाकाव्यों में वीरतापूर्ण प्रसंग के आ पड़ने पर वीर-कविता रची ही जाती थी। पर इनकी गणना 'वीर-काव्य' में नहीं हो सकती। ये सब तो वस्तुतः विवश होकर लिखने पड़ते थे, हृदय का स्वाभाविक उद्गार इनमें कहाँ! हिंदी में कुछ कविता वीर-देवताओं के आश्रयण से भी बनी है; जैसे—हनुमान, दुर्गा, काली, नृसिंह आदि। यद्यपि इस प्रकार की कविताओं का आकार प्रकार छोटा ही हुआ करता था, पर ये वस्तुतः हृदय के सच्चे उद्गार के ही रूप में लिखी जाती थीं। अवश्य ही इनमें अधिकांश में भक्ति का उन्मेष ही मिला होता था, पर इन्हें 'वीर-रस' की कविताओं में अवश्य ग्रहण करना पड़ेगा।

हम ऊपर कह चुके हैं कि हिंदी में वीर-रस की कविता बराबर होती रही, उसकी समय-सापेक्षता इसपर भरपूर घटित नहीं होती, किंतु स्मरण रखना चाहिए कि हिंदी-कवियों ने इस प्रकार की कविताएँ द्रव्य-लोभ से ही की थीं। कितने ही अकर्मण्य और घोर शृंगारी राजाओं की झूठी प्रशंसा में भी इसीलिये इन कवियों की दिव्य एवं पवित्र वाणी का व्यय हुआ। अपनी प्रतिभा के बल पर इन लोगों ने उन कविताओं में चमत्कार तो बहुत दिखलाया है, पर हृदय की सच्ची पुकार न होने से और थोथा चमत्कार रहने से ऐसी कविताओं में अच्छा स्वारस्य भी नहीं पाया जाता। हाँ यह बात

वीर-कविता के तीन उत्थान

अवश्य है कि जिन कवियों के आश्रयदाता सचमुच वीर थे, जिनके हृदय में देश, जाति और समाज की सच्ची लगन थी, उनके वर्णन हृदय का ठीक-ठीक उद्गार होने के कारण सरस भी हो गए हैं। इतने पर भी वीर-रस की वास्तविक कविता तभी हुई है जब जनता में वीर-भावनाओं का उभाड़ होने लगा है अथवा कुचले हुए साँप की भाँति अवसर पाकर उठ खड़ी होनेवाली जनता के सामने किसी वीर ने उसका नेतृत्व ग्रहण करने की रुचि दिखलाई है। इस कारण हिंदी-साहित्य में वीर-रस की कविता का उत्थान तीन रूपों में मिलता है। एक उत्थान तो उसके आदिकाल में वीर-गाथाओं के रूप में देख पड़ता है, जिसमें वीर-काव्यों, वीर-गीतों और मुक्तक वीर-कविताओं के प्रणयन की अभिरुचि देखी जाती है। दूसरा उत्थान उस समय दिखाई देता है, जब मुसलमानी साम्राज्य की बर्बरतापूर्ण शासन-नीति से जनता भली-भाँति पददलित होकर किसी अच्छे नेता की बाट जोह रही थी। इस द्वितीय उत्थान का आरंभ महाराणा प्रताप से ही हो गया होता, पर अकबर की कूट-नीति ने मृगतृष्णा की भाँति लोगों को आशा में ही अँटका रहने दिया। इसीसे इस द्वितीय उत्थान के वास्तविक दर्शन छत्रपति शिवाजी और महाराज छत्रसाल के उदय होने पर होते हैं। द्वितीय उत्थान वस्तुतः शुद्ध वीर-काव्य के रूप में ही मिलता है, उसमें प्रथम उत्थान की भाँति वीरता और प्रीति की दो धाराएँ साथ-साथ नहीं बहतीं। तीसरा उत्थान उस समय से आरंभ होता है जब से जनता में स्वतंत्रता की लहर उठ खड़ी हुई है। इसमें कुछ-कुछ करुण-रस का भी पुट मिलता है। इसका स्वरूप भारत, भारत-माता, मातृ-भूमि की दयनीय दशा पर आँसू बहाते हुए, उसके उद्धार के लिये कटि-बद्ध होने और अन्य भारतीय-बंधुओं को बद्धपरिकर करने के ढंग का है। विदेशी शासन की निंदा और आत्म-गौरव की चेतावनी इन कविताओं का विषय होता है। वीर-रस की कुछ कविताएँ इस स्वाभाविक धारा से भिन्न भी आधुनिक समय में देखी जाती हैं, उनमें वीरत्व की सच्ची और साहित्यिक ललकार भी दिखाई पड़ती है; किंतु जनता की अभिरुचि उसमें विशेष न होने से वैसी कविताओं का प्रचार एवं प्रसार दोनों रुका पड़ा है।

प्रथम उत्थान में जो वीर-गाथाओं की परंपरा चली वह दो रूपों में

मिलती है—एक प्रबंध-काव्यों के रूप में और दूसरी मुक्तक अथवा वीरगीतों (Ballads) के रूप में। प्रथम प्रकार की वीर-गाथाओं का रूप बहुत-कुछ साहित्यिक है, पर वीरगीत अथवा मुक्तक वीर कविताएँ बहुत काल तक मौखिक रही हैं। इसलिये उनका मूल-रूप बहुत ही परिवर्तित हो गया है। प्रबंध-काव्यों के संचय और रक्षण की ओर लोगों का ध्यान रहा है। ये प्रबंध-काव्य दो स्थानों में सुरक्षित रहते थे। एक तो उस राज-दरबार में, जहाँ का कवि होता था और दूसरे उस कवि के वंशजों के पास। ऐतिहासिक महत्त्व के तत्त्व प्रायः दोनों ही नहीं जानते थे। इस कारण प्रबंध-काव्यों में भी दोनों ओर से प्रक्षिप्तांशों के जोड़ने का प्रयत्न किया गया है। इसका परिणाम यह हुआ कि दोनों स्थानों में रक्षित वीर-काव्यों के रूपों में, आकाश-पाताल का अंतर हो गया है। उन लोगों ने केवल कुछ अंश जोड़कर ही अपनी कर्तव्यता की इतिश्री नहीं की, वरन् ग्रंथ के मूल-रूप में भी मनमाना संशोधन कर डाला। इसलिये तथ्य की बातों का ही केवल लोप नहीं हो गया, प्रत्युत प्राचीन काव्य-भाषा का स्वरूप भी बहुत-कुछ इसी उलट-फेर में ढँक गया। जब रक्षित काव्यों की यह दशा हुई तो जनता के जिह्वाग्र पर नाचनेवाली मुक्तक वीर-कविता का तो कहना ही क्या। जगनिक का 'आल्हा' इसका बड़ा बढ़िया उदाहरण है, जिसका प्रचार उत्तरापथ के मध्यभाग में बहुत अधिक है। इसका स्वरूप विभिन्न स्थलों में विभिन्न प्रकार का हो गया है और इसके मूल-रूप का अब बिलकुल पता नहीं है। सभी स्थलों की बोलियों ने इसपर अपना रंग चढ़ा दिया है।

प्रथम उत्थान के दो रूप

इन वीरगाथाओं का नाम प्रायः 'रासो' मिलता है। जिस राजा अथवा वीर के कृत्यों का वर्णन पुस्तक में रहता है उसी के नाम के आगे 'रासो' शब्द जुड़ा रहता है। यह 'रासो' शब्द कैसे बना इस संबंध में विद्वानों में मतभेद है। कुछ लोग इसे 'रास' मानते हैं, जिसका अर्थ किसी के कृत्य का संग्रह खींच-खाँचकर करते हैं। कुछ लोगों का कहना है कि यह संस्कृत शब्द 'रहस्य' का बिगड़ा हुआ रूप है। इसका मूल चाहे जो हो, पर यह स्पष्ट है

युद्ध और प्रेम का मिश्रण

कि 'रासो' का तात्पर्य कविता-नायक के जीवन के समस्त चरित्रों के वर्णन से है। ये वीर-गाथाएँ शुद्ध वीर-काव्यों के रूप में नहीं मिलतीं और इनमें महाकाव्यों के ढंग की अनेकरूपता भी नहीं पाई जाती। पाश्चात्य वीर-काव्यों की भाँति प्रेम और युद्ध का वर्णनात्मक रूप ही इनमें अधिक पाया जाता है, घटनात्मक वह भी नहीं। इन गाथाओं में प्रायः वीर नायक के युद्ध की कल्पना किसी नायिका के रूप-लावण्य पर मुग्ध होने का आधार लेकर की गई है। जहाँ युद्ध के मूल में कोई कामिनी नहीं भी है, वहाँ भी बरबस किसी कामिनी की कल्पना करके उसी के प्रेम के बहाने युद्ध छिड़ जाने की कथा गाई है। इसका सबसे अच्छा उदाहरण 'पृथ्वीराजरासो' में मिलता है, जिसमें शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरी से पृथ्वीराज का युद्ध होने के सिलसिले में एक यवन-कामिनी की प्रेमगाथा घुसी हुई है। कहने का तात्पर्य यह है कि वीरता का प्रदर्शन इन गाथाओं में श्रृंगार के सहकारी के रूप में कराया गया है, स्वतंत्र रूप से बहुत कम। करुण-रस को आधार बनाकर वीर-रस का जैसा बढ़िया और सुंदर प्रदर्शन वीर-काव्यों के उपयुक्त हो सकता था, उसका निखरा स्वरूप भी इन गाथाओं में नहीं मिलता। वैसी गाथाओं का पर्यवसान भी श्रृंगार में हो सकता था; क्योंकि जिस रमणी के करुण-क्रंदन पर वीर नायक प्रतिपक्षी से युद्ध मोल लेता है, अंत में वह प्रायः उस वीर की वीरता, शरण्यता आदि गुणों पर रीझकर उसे ही आत्म-समर्पण भी कर देती है। इसका आभास किसी-किसी ग्रंथ में मिलता भी है, पर अधिकांश में वही पहले ढंग की दोहरी प्रवृत्ति ही पाई जाती है।

इन गाथाओं की भाषा के संबंध में भी विचार कर लेना आवश्यक प्रतीत होता है। वीर-काव्यों के संबंध में यह कहा जा चुका है कि ये मौखिक ही रहे हैं और इनमें केवल प्रक्षिप्त अंश जोड़कर ही आत्म-संवरण नहीं किया गया है, अपितु इनका संशोधन और संस्कार भी कर डाला गया है; वीर-गीतों अथवा मुक्तकों का तो कहना ही क्या! 'रासो' के नाम से मिलनेवाली वीरगाथाओं के रचयिता भाट या चारण होते थे। इनका स्थान राजपताना था। ये दो प्रकार की काव्य-पद्धति में कविता किया करते

वीरगाथाओं की भाषा

थे। एक का नाम 'डिंगल' था और दूसरी का 'पिंगल'। 'डिंगल' के ढर्रे पर की जानेवाली कविता उनके निवास-स्थान की भाषा अर्थात् राजपूतानी में होती थी। पर 'पिंगल' की कविता में सामान्य-काव्य-भाषा का प्रयोग किया जाता था। इन वीरगाथाओं में सामान्य-काव्य-भाषा का ही व्यवहार किया गया है, पर पूर्वोक्त कारणों से भाषा का वह स्वरूप नहीं मिलता जिसे उन चारणों ने सामान्य-काव्य-भाषा कहकर ग्रहण किया था। प्रायः सभी में राजस्थानी का पुट बहुतायत से मिलता है। फिर भी वीर-काव्यों के लिखित होने के कारण थोड़े-बहुत शब्द अपने पुराने रूप में ही दिखाई पड़ते हैं। अपभ्रंश का फाटक तोड़कर पुरानी हिंदी के मैदान में आने के समय भाषा का जो रूप होना चाहिए उसके दर्शन कहीं-कहीं हो जाते हैं। जैसे—मनह (मनस्), पवित्त (पवित्र), जंपिय आदि। यही नहीं कुछ ऐसे शब्द भी मिलते हैं, जो प्राकृत से अपभ्रंश में होते हुए ज्यों-के-त्यों चले आए हैं और जिनका प्रयोग प्राचीन ब्रजभाषा के समय तक होता रहा है। जैसे—बयन (वचन), सायर, साअर (सागर), बिसाउ (विषाद) आदि।

प्रबंध-काव्यों के रूप में मिलनेवाली वीरगाथाओं का सबसे पुराना ग्रंथ जो मिलता है वह 'दलपति-विजय' नाम के किसी कवि का रचा हुआ 'खुमानरासो' है। ये खुमान चित्तौर की गद्दी के रावल थे। सं० ८१० से लेकर १००० तक के बीच तीन खुम्माण चित्तौर की गद्दी पर बैठे थे। इनमें से यह किस खुम्माण की प्रशंसा में रचा गया है, इस संबंध में बड़ा घपला है। 'खुमानरासो' की जो प्रति मिलती है, वह खंडित है और उसमें प्रतापसिंह के समय तक का वर्णन है। पुस्तक किस खुम्माण की प्रशंसा में लिखी गई होगी, इस विवाद में पड़ना हम व्यर्थ समझते हैं, क्योंकि जब पुस्तक के मूल-रूप का ठीक-ठीक पता ही नहीं चलता, तब केवल नाम को लेकर एक ऐतिहासिक वितंडावाद खड़ा कर देना साहित्यिक दृष्टि से अधिक महत्त्व नहीं रखता। हमें केवल उस पुस्तक के साहित्यिक मूल्य की परख करनी चाहिए।

खुमानरासो

प्रबंध-काव्य के रूप में मिलनेवाला दूसरा ग्रंथ चंदबरदाई-कृत 'पृथ्वीराजरासो' है। इस ग्रंथ की कई प्रतियाँ मिलती हैं; पर एक-दूसरी में आकाश-

पृथ्वीराजरासो

पाताल का अंतर है। केवल इतना ही नहीं इसमें कथित घटनाओं और संवतों का मेल ऐतिहासिक घटनाओं और संवतों से नहीं मिलता। मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या, गौरीशंकर हीराचंद ओझा, हरप्रसाद शास्त्री आदि विद्वानों में इस संबंध में कितने ही वाद-विवाद हो चुके हैं और होते जा रहे हैं। ओझाजी तो इस निष्कर्ष तक पहुँच चुके हैं कि 'पृथ्वीराजरासो' केवल जाली ही नहीं है, प्रत्युत उसके कर्ता चंदबरदाई का महाराज पृथ्वीराज के दरबार में होना भी संदिग्ध है। हमारे विचार से इस विवाद को भी यहीं छोड़कर 'पृथ्वीराज-रासो' के साहित्यिक सौंदर्य और मूल्य पर प्रकाश डालना समीचीन होगा। यह ग्रंथ बहुत बड़ा है। इसमें ६९ समय (अध्याय) हैं। इसमें मात्रिक और वर्णिक दोनों प्रकार के छंदों का प्रयोग हुआ है। मुख्य-मुख्य छंद ये हैं—दूहा (दोहा), कवित्त (छप्पय), तोमर, गाहा (गाथा), त्रोटक, भुजंगप्रयात, आर्या आदि। पूरी पुस्तक चंदबरदाई की लिखी नहीं है, उसका पिछला भाग चंद के पुत्र जल्हन का लिखा हुआ है। इसका उल्लेख ग्रंथ में स्पष्ट रूप से मिलता है—'पृथीराज-सुजस कबि चंद-कृत चंद-नंद उद्धरिय तिमि।' शब्दवेधी बाणवाली कथा जो पृथ्वीराज के द्वारा शहाबुद्दीन गोरी के मारे जाने के संबंध में प्रचलित है, इसी ग्रंथ की कल्पना है। पुस्तक में स्थान-स्थान पर पूर्वोक्त प्रेम-गाथाओं की कल्पना करके उसके परिणाम-स्वरूप युद्ध का विस्तार कराया गया है। हम ऊपर कह चुके हैं कि इन वीर-काव्यों के भारी-भारी पोथों में वीरतापूर्ण कार्यों की वह अनेकरूपता नहीं पाई जाती, जो महाकाव्यों में होनी चाहिए। जो छोटी-छोटी अनेक 'प्रेम और युद्ध' की गाथाएँ जोड़ी हुई हैं, उनमें भी कार्यान्वय (Unity of Action) नहीं दिखाई पड़ता, जैसा किसी बड़े कथानक में होना चाहिए। ये छोटी-छोटी गाथाएँ फुटकर रूप में जोड़ी हुई हैं, एक के ऊपर एक रखकर ईंटें जोड़ दी गई हैं, प्रासाद को ठिकाने से खड़ा करने पर कुछ ध्यान ही नहीं दिया गया है। ग्रंथ की भाषा भी बेढंगी है। वर्णिक छंदों की भाषा तो और भी उखड़ी हुई है। शब्दों को अनुस्वारांत बना-बनाकर संस्कृत-प्राकृत का अनुकरण करने का प्रयत्न-मात्र जान पड़ता है। मात्रिक छंदों में कवित्त

(छप्पय) की भाषा कुछ-कुछ ठिकाने की मिलती है। भाटों अथवा चारणों की छप्पयवाली शैली प्रसिद्ध भी है। संभवतः छप्पय छंद मँजा होने के कारण ही उसमें भाषा का प्रवाह अधिक टेढ़ा-मेढ़ा नहीं हो पाया है। भाषा में प्राचीनता-नवीनता दोनों हैं। इसका कारण पहले कहा जा चुका है। वर्णन भी दो प्रकार के मिलते हैं—एक तो साहित्यिक रूप में, दूसरे इति-वृत्तात्मक। इस 'जगड्वाल को देखते हुए ग्रंथ के संबंध में कोई निश्चया-त्मक मत दे देना कठिन ही है, पर उसे साहित्यक संपत्ति मानकर सुरक्षित रखना आवश्यक है।

जयचंद्र-प्रकाश और जय-मयंक-जस-चंद्रिका

'पृथ्वीराजरासो' की जोड़-तोड़ में दो बड़े-बड़े ग्रंथ कन्नौज के प्रसिद्ध जयचंद की प्रशंसा में भी बने थे। एक है भट्ट केदार का लिखा 'जयचंद-प्रकाश' और दूसरा है मधुकर कवि कृत 'जय-मयंक-जस-चंद्रिका'। इन दोनों ग्रंथों का उल्लेख दयालदास निर्मित 'राठौड़ाँरी ख्यात' में मिलता है। ग्रंथ इस समय उपलब्ध नहीं है। पहले कहा जा चुका है कि कवियों में वैसी उदात्त भावनाओं का उद्भव उस समय नहीं हुआ था, जैसा परकाल में आकर 'भूषण' आदि में हुआ। यही कारण है कि जयचंद आदि और उससे भी गए-बीते नरेशों की झूठी प्रशंसा में वे लोग अपनी जबान घिसते रहे।

अन्य ग्रंथ

प्रबंध-काव्यों के ढंग पर बने वीर-चरितों में से तीन-चार ग्रंथ और उल्लेख-योग्य जान पड़ते हैं। एक है अन्हलवाड़े के राजकवि का 'कुमारपाल-चरित्र', यह अन्हलवाड़े के तत्कालीन नरेश कुमारपाल की प्रशंसा में लिखा गया है। दूसरा है 'हम्मीररासो' और तीसरा हम्मीर-काव्य'। इनका प्रणेता 'सारंगधर' नामक कोई भाट था, जो महाराज हम्मीरदेव का समकालीन था। 'हम्मीररासो' की जो प्रति अब प्राप्य है उसमें परकाल की रचना भी सम्मिलित है। इस-लिये इसकी प्राचीनता संदिग्ध ही है। हम्मीरदेव का हठ प्रसिद्ध है। इनके संबंध में जयचंद्र सूरि ने संस्कृत में भी 'हम्मीर-महाकाव्य' की रचना की है और आगे भी कई ग्रंथ रचे गए हैं, जिनमें जोधराज का 'हम्मीर-काव्य'

और चंद्रशेखर का 'हम्मीर-हठ' अच्छे ग्रंथ हैं। चौथा ग्रंथ 'विजयपाल रासो' है, जिसके प्रणेता नल्लसिंह भट्ट थे। इसमें वर्तमान करौली के पूर्वकालीन नरेश विजयपाल के चरित्रों का वर्णन है।

वीर-गीतों अथवा मुक्तक वीर-कविताओं के रूप में मिलनेवाले दो ही ग्रंथ उल्लेख-योग्य हैं। एक है नरपति नाल्ह का 'बीसलदेव-रासो' और दूसरा है जगनिक कथित 'आल्हा'। 'बीसलदेव-रासो में विग्रहराज चतुर्थ उपनाम बीसलदेव की छोटी-सी गाथा वर्णित है। पुस्तक में प्रणयन-काल 'बारह सै बह्वोत्तराँ मँझारि। जेठ बदी नवमी बुधवारि' दिया है। विग्रहराज चतुर्थ का समय सं० १२२० के आस-पास पड़ता है। नाल्ह की रचना भी १२१२ का निर्देश करती है। इससे यह कवि विग्रहराज का समकालीन, संभवतः उसका राजकवि जान पड़ता है। पुस्तक बहुत छोटी है। उसमें लगभग २००० चरण हैं। उसके चार खंड भी किए गए हैं। पुस्तक में बीसलदेव के विवाह और विवाहित स्त्री राजमती के विरह का वर्णन है, क्योंकि बीसलदेव उड़ीसा-विजय करने चला गया था। इतनी छोटी पुस्तक का 'रासो' नाम जँचता नहीं। संभवतः यह कोई बड़ा काव्य रहा हो, जिसका बहुत-सा अंश काल-क्रम से नष्ट हो चुका है। पुस्तक घटनात्मक नहीं है, इसे वर्णनात्मक ही मानना पड़ेगा। क्योंकि बीसलदेव का विवाह भोज परमार की पुत्री से कराया गया है, और व्याह में माघ एवं कालिदास आदि का भी नाम ले लिया गया है। भाषा में भी गड़बड़ी है। अधिकांश भाषा राजस्थानी है, कहीं-कहीं प्राचीन रूपों की भी झलक मिल जाती है। पुस्तक में बीसलदेव के पराक्रमों का लेशमात्र वर्णन नहीं है, केवल राजमती के विवाह और विरह की कथा दी गई है, इसी से इसे वीर-काव्य कहते हिचक भी होती है। पर वीरगाथाओं की दोहरी पद्धति पर ध्यान देकर इसे रासोवाली परंपरा में रख देने से कोई बुराई नहीं है।

वीर-गीत—
बीसलदेव रासो

जगनिक का 'आल्हा' वीर-गीतों में से दूसरा प्रसिद्ध काव्य है। जगनिक कालिंजर के परमाल राजा के यहाँ का भाट था। इसने महोवे के दो प्रसिद्ध वीरों आल्हा-ऊदल के वीरतापूर्ण कार्यों का विस्तार से वर्णन किया

है। आल्हा को जनता ने इतना अपनाया और इसका प्रचार उत्तर भारत में इस परिमाण में बढ़ा कि मूल-काव्य का पता ही नहीं चलता। विभिन्न बोलियों में अब इसके विभिन्न रूप हो गए हैं। इन वीर-गीतों का संग्रह 'आल्हाखंड' के नाम से छपा है। अनुमान किया जाता है कि मूल-ग्रंथ का नाम कुछ और ही रहा होगा और 'आल्हाखंड' संभवतः उसी का एक 'खंड' मात्र है। इससे स्पष्ट है कि मूल-ग्रंथ बहुत ही बड़ा रहा होगा और 'रासो' की पद्धति पर उसमें चंदेलों के समग्र पराक्रमों का उल्लेख किया गया होगा।

आल्हा

वीर-गाथाओं की यह परंपरा बहुत दिनों तक चलती रही होगी। क्योंकि प्राचीन 'रासो' आदि का संस्कार भी परकाल में देखा जाता है, पर काल-क्रम से अब बहुतों का लोप हो गया है। कुछ तो खोज के अभाव और पुराने कैंड़े के लोगों की संकुचित चित्तवृत्ति के कारण बेठनों में बँधे हुए दीमकों के आहार के काम में आते होंगे। मौखिक वीर-गीतों का तो नितांत लोप ही समझिए। ऐसा अनुमान करने का एक कारण यह भी है कि पीछे चलकर जो वीर-चरित बने, उनसे पता चलता है कि ये किसी बँधी चली आई हुई परंपरा के विकसित रूप हैं। अब आगे प्रथम और द्वितीय उत्थान की शृंखला जोड़नेवाले कवियों एवं ग्रंथों पर भी संक्षिप्त रूप से विचार करके तब हम दूसरे उत्थान के संबंध में कुछ कहेंगे।

'रासो' की पद्धति के कुछ धीमी पड़ने पर हिंदी में भक्ति-काव्य की बाढ़ आई और तदनंतर शृंगार ने जोर पकड़ा। हम पहले कह चुके हैं कि राज-दरबारों में कवियों के रखने की प्रथा थी। 'रासो' वाले कवि भी दरबारी ही थे। राजदरबारों में बैठे-बैठे कवि अपने आश्रयदाताओं का यश गाया करते थे। मुगल भारत में जम गए थे, अकबर ने राजपूतों की जो नकल आरंभ की थी, उसके फल-स्वरूप उसने दरबार में कवियों को भी स्थान दिया और वह स्वयं भी कविता करने का प्रयत्न करने लगा। यह प्रणाली औरंगजेब के बाद तक रही। राजकवि दरबार में खड़े होकर शाहंशाह की 'उमरदराज' की वांछा करते रहते थे। मुगल-दरबार के कवियों में गंग,

शृंखला जोड़ने-वाले वीर-काव्य

शिरोमणि भट्ट, चिंतामणि और कालिदास त्रिवेदी उल्लेख-योग्य हैं। रजवाड़ों में रहनेवाले कवियों में से केशवदास ने 'वीरसिंहदेव-चरित्र' और 'रतन-बावनी' नामक वीर-कविता की पुस्तकें लिखीं। रीवाँ के अजबेस कवि के कई फुटकर छंद मिलते हैं। दुरसाजी चारण ने महाराणा प्रतापसिंह की प्रशंसा और अकबर की निंदा में 'प्रताप-चौहत्तरी' लिखी। इसे 'भूषण' की 'शिवा-बावनी' के ढंग का समझना चाहिए। इस पुस्तक के द्वारा हमारे उस कथन की पुष्टि होती है, जो हमने द्वितीय उत्थान के आरंभ के संबंध में कहा है। अकबर की कूटनीति से समस्त रजवाड़े एक प्रकार से उसके हाथों में थे, महाराणा प्रताप अपनी ओर अकेले ही थे। कवियों में भी उन उदात्त भावनाओं का अभाव था जो सत्कवियों में होनी चाहिएँ। अन्यथा आज महाराणा प्रताप के वीर-चरितों का ढेर लग गया होता। 'रासो' की चली आती हुई पद्धति पर लिखा हुआ मान कवि का 'राजविलास' सभी से उत्तम है। इसमें उदयपुर के महाराणा राजसिंह का चरित वर्णित है।

यहीं पर हम प्रथम उत्थान को समाप्त करते हैं। इसके संबंध में केवल इतना ही कहना है कि राजदरबार के अनेक कवियों ने अपने आश्रयदाताओं का कहीं थोड़े में और कहीं विस्तार से वर्णन किया है, पर उसे हम वीर-काव्य की श्रेणी में नहीं लाते। खुशामदी कवियों की कविता वस्तुतः उस उच्च-पद की अधिकारिणी नहीं हो सकती। उसे साहित्य के इतिहास की दृष्टि से भी तो वीर-कविता के अंतर्गत नहीं ला सकते, क्योंकि वह बहुत थोड़ी, अप्राप्य और अप्रचलित है। उस समय राजाओं को शृंगार से विशेष अनुराग हो गया था, इससे उसी ढंग की कविता अधिक बनी।

द्वितीय उत्थान की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि इस समय विशुद्ध वीर-कविता कई अच्छे कवियों ने लिखी। इस उत्थान में पाँच प्रकार की पद्धतियों के दर्शन होते हैं—(१) शुद्ध-वीर-रसात्मक कविता,

द्वितीय उत्थान

(२) रासो-पद्धति की वीर-कविता, (३) देव-काव्य के रूप में वीर-कविता, (४) महाभारत ऐसे वीर काव्य के अनुवाद के रूप में वीर-कविता और (५) दरबारी फुटकर कवियों की वीर-कविता। स्मरण रखना चाहिए कि वीर-रसात्मक कविता का बढ़िया स्वरूप प्रथम तीन

पद्धतियों पर रची गई कविताओं में ही मिलता है।

प्रथम पद्धति पर चलनेवाले प्रधान कवि—भूषण, श्रीधर, लाल, सूदन और पद्माकर हैं। इन पाँचों में भी उदात्त भावनाओं से प्रेरित होकर वीर-कविता रचनेवाले केवल दो ही हैं—भूषण और लाल। कहना पड़ता है कि भूषण की उदात्त भावना लाल से बढ़ी-चढ़ी थी, क्योंकि भूषण ने सभी आश्रयदाताओं को परखकर तब महाराज शिवाजी और छत्रसाल ऐसे वीरों को अपना चरित-नायक बनाया था। भूषण ने शिवराज-भूषण, शिवा-बावनी, छत्रसाल-दशक रचे और कुछ फुटकर वीर-कविता की है। भूषण को कुछ लोग केवल जातीय कवि (National poet) मानते हैं, क्योंकि उन्होंने हिंदू-पति शिवाजी की प्रशंसा और मुसलमानों की निंदा की है। पर हमारे विचार से भूषण को 'राष्ट्रीय कवि' मानना उचित होगा। भूषण के उद्गार मुस्लिम-धर्म के विरोध में नहीं निकले थे, उनकी आवाज उस अत्याचार और अन्याय के विरोध में उठी थी जो औरंगजेब या उसके सूबेदार जनता पर कर रहे थे। यदि 'भूषण' की दृष्टि जातीय रही होती तो वे 'औरंगजेब' ही को क्यों, उसके पूर्व-पुरुषों और वंशजों को भी उसी ललकार के साथ खोटी-खरी सुनाते जैसी उन्होंने औरंगजेब को सुनाई है। पर उनकी दृष्टि औरंगजेब के व्यक्तित्व की ओर न होकर उसकी पाशविक और अराजोचित करतूतों पर थी। 'भूषण' कहते हैं—

शुद्ध वीर-काव्य —भूषण

(१) दौलति दिली की पाय कहाए अलमगीर,
बब्बर अकब्बर के बिरद बिसारे तैं।

(२) बब्बर अकब्बर हिमायूँसाह सासन सों,
नेह तें सुधारी हेम-हीरन तें सगरी ॥

(३) बब्बर अकब्बर हिमायूँ हद्द बाँधि गए,
हिंदू औ तुरुक की कुरान-वेद-ढब की।

इन उद्धरणों से स्पष्ट है कि औरंगजेब के प्रति उनकी खीझ उसके अकृत्यों के कारण थी, जातीयता के कारण नहीं। भूषण की वीर-कविता हमारे विचार से सभी दृष्टियों से गौरवान्वित है। राजनीतिक, साहित्यिक, सामाजिक और मानसिक सभी विचारों से आप उसमें उच्च आदर्श पावेंगे।

भूषण की कविता को यदि किसी प्रकार से क्षति पहुँची है तो उनके समय की आलंकारिक पद्धति से। अलंकार के डब्बे में ठूँसने के कारण भूषण की कविता कई स्थानों पर अपना स्वाभाविक सौंदर्य खो बैठी है। 'शिवराज-भूषण' के आदि में जो 'रायगढ़-वर्णन' की कविता है और 'शिवा-बावनी' आदि में कविता का जो निखरा हुआ स्वाभाविक सौंदर्य देख पड़ता है, उससे हमारे उक्त कथन की पुष्टि होती है। यदि इन्होंने 'शिव-चरित्र' वीर-महाकाव्य के रूप में लिखा होता तो इनकी कविता बहुत अधिक चमक उठी होती।

श्रीधर ने फ़र्रुख़सियर और जहाँदारशाह के युद्ध का वर्णन 'जंगनामा' में किया है। यह ६६ पृष्ठों की एक बहुत ही बढ़िया पुस्तक है। इसके पश्चात् लाल कवि का नाम आता है। इन्होंने महाराज छत्रसाल के वीर-चरितों पर कई वीर-रसात्मक ग्रंथ लिखे, जिसमें 'छत्र-प्रकाश' बहुत प्रसिद्ध है। लाल कवि के ग्रंथ इतिवृत्तात्मक हैं स्थान-स्थान पर साहित्यिक छटा भी मिल जाती है, पर वैसी नहीं जैसी एक काव्य-ग्रंथ के लिये आवश्यकता होती है। लाल ने वीर-कविता के लिये छंदों का चुनाव करने में ही सबसे बड़ी भूल की है। दोहा-चौपाई तो मसनवियों के ढंग पर लिखी गई प्रेम-गाथाओं के लिये ही उपयुक्त छंद थे। तुलसीदासजी ने रामचरितमानस में वीर-रस का जहाँ वर्णन किया है छंद बदल दिया है, कम-से-कम दोहा-चौपाई तो नहीं रखे हैं। इतने पर भी कवित्त आदि उद्धत छंदों के अभाव में 'रामचरितमानस' का वीर-रस कुछ शिथिल भासता है। कवितावली में योग्य छंदों के मेल में आकर वह खिल उठा है। यही बात 'लाल' के संबंध में भी है, दोहा-चौपाई में वीर-कविता कहने के कारण भी उसमें वह ओज नहीं, जो भूषण में है। एक दूसरी बात भाषा-संबंधी भी है। उक्त छंद अवधी भाषा के खास छंद हैं, व्रजभाषा का स्वारस्य इन छंदों में वैसा नहीं आता जैसा कवित्तादि में। लाल के जो फुट-कर कवित्त मिलते हैं उनसे उनकी काव्य-प्रतिभा का पता चलता है। यदि लाल ने थोड़ा-सा भी ध्यान दिया होता तो इनका स्थान आज भूषण से भी ऊँचा होता।

श्रीधर और लाल

सूदन ने भरतपुर के महाराजा बदनसिंह के पुत्र सुजानसिंह उपनाम

सूरजमल के युद्धों का विशद वर्णन 'सुजान-चरित्र' में किया है। सूदन का यह ग्रंथ बहुत ही बढ़िया है। वीर-काव्य का यथावत् वर्णन इसमें पाया जाता है। पर इसमें एक भद्दी प्रवृत्ति भी दिखाई देती है। स्थान-स्थान पर घोड़ों, तलवारों, विभिन्न अस्त्रों आदि की लंबी तालिका देने और इसी प्रकार वस्तुओं के प्रकारों के नाम ढूँढ़-ढूँढ़कर गिनाने की प्रवृत्ति के कारण ग्रंथ की सरसता बहुत कुछ मारी गई है। सूदन ने यहीं इति-श्री नहीं की है, इसी भोंड़ी प्रवृत्ति के कारण उन्होंने उर्दू, फारसी, अरबी आदि भाषाओं के अप्रचलित शब्दों को जबर्दस्ती ठूँसा है। इसलिये कविता कई स्थलों पर दुरूह भी हो गई है।

सूदन

पद्माकर-कृत 'हिम्मतबहादुर-विरुदावली' भी एक अच्छी पुस्तक है। पर इसकी कविता साधारण है। पद्माकर के फुटकर वीर-रस के छंदों में जो ओज और चोज पाया जाता है, उसका इसमें अभाव है। इस पुस्तक में बाँदा-नवाब के सरदार 'हिम्मतबहादुर' के वीरता-पूर्ण कृत्यों का वर्णन है। पद्माकर में काव्य-प्रतिभा अच्छी थी, पर वह शृंगार की ओर अधिक झुकी हुई थी। यह पुस्तक पद्माकर की आरंभिक रचना होने के कारण भी वैसी नहीं बन सकी है, जैसी उनमें प्रतिभा थी।

पद्माकर

रासोवाली पद्धति पर वीर-कविता करनेवाले चार कवि उल्लेखनीय हैं—जोधराज, बाँकीदास, चंद्रशेखर और सूर्यमल्ल। जोधराज ने 'हम्मीररासो' बनाया है। इस पुस्तक में केवल चारणोंवाली पद्धति का ही नहीं, भाषा का भी अनुकरण देख पड़ता है। बाँकीदास ने राठौर राजाओं की प्रशंसा में कविता की है, पर उसकी भाषा अधिकतर राजपूतानी है। चंद्रशेखर वाजपेजी ने 'हम्मीर-हठ' नामक छोटा पर बहुत ही उत्तम वीर-काव्य बनाया। यद्यपि कथा-भाग चारणों की चली आती हुई रासो की पद्धति पर रचे गए हम्मीर-काव्यों से ही लिया गया है, पर उसे साहित्यिक रूप देने में कवि ने कोई बात उठा नहीं रखी है। भाषा के सौष्ठव, वर्णनों की समीचीनता, सूदन की सी भद्दी तालिकावाली प्रणाली के त्याग और अन्य काव्य-गुणोपेत होने के कारण यह ग्रंथ बहुत ही उत्तम बन पड़ा है। हमारे विचार से छोटा होने पर भी यह हिंदी के समस्त वीर-काव्यों में

रासो-पद्धति

साहित्यिक दृष्टि से बहुत ऊँचा स्थान पाने योग्य है। एक स्थान पर कवि ने अपने साहित्यिक अधिकार का उपयोग करने का सुअवसर न जाने कैसे हाथ से निकल जाने दिया है। हम्मीर के प्रतिनायक अलाउद्दीन को महल में एक चुहिया के फुदुकने-मात्र से डरा दिया गया है। चरित-नायक का अधिक-से-अधिक उत्कर्ष प्रदर्शन करने के लिये प्रतिनायक की वीरता बहुत बढ़ा-चढ़ाकर कही जाती है, पर कवि ने परंपरा से चली आती हुई कथा को ज्यों-का-त्यों ग्रहण करते हुए उक्त दोष को दूरकर अलाउद्दीन के पराक्रम का उत्कर्ष नहीं दिखलाया है। जन-साधारण में प्रचलित—'तिरिया तेल हमीरहठ, चढ़ै न दूजी बार' कहावत इसी ग्रंथ की है। इसके अतिरिक्त सूर्यमल्ल का 'वंश-भास्कर' नामक एक भारी पोथा है, जिसमें बूँदी-राज्य का विशद वर्णन है।

वीर-देवकाव्य

हम पहले कह चुके हैं कि देव-काव्य के रूप में रची गई कविताओं में वीर-काव्य का बहुत ही निखरा हुआ स्वरूप पाया जाता है। इसका कारण यह था कि ऐसी कविता किसी प्रकार के दबाव से न लिखी जाकर 'स्वांतः सुखाय' लिखी जाती थी। वीर-रसात्मक देवकाव्य का सिलसिला प्रथम उत्थान से ही चला आ रहा था। इस पद्धति पर अधिकांश पुस्तकें वीर-केसरी हनूमान् के यशोगान में ही मिलती हैं; अन्य वीर देवताओं के यश-वर्णन में बहुत कम। शेष देवताओं की संख्या भी सीमित ही है—दुर्गा, कालिका, नृसिंह तक ही कवियों की दृष्टि गई थी। संस्कृत के हनुमन्नाटक का उस समय बहुत प्रचार था, उसके हिंदी में कई अनुवाद भी हुए थे, जिनमें से 'हृदयराम' का किया हुआ अनुवाद कवित्त-सवैयों में बड़ा सुंदर है। इसी कारण हनुमच्चरित्र की चर्चा इस समय विशेष देख पड़ती है। इस पद्धति पर रची गई पुस्तकों में भगवंतराय खीची का हनुमान-पचासा; मानसिंह-कृत हनुमान-नखशिख, हनुमान पचीसी, हनुमान-पंचक, महावीर-पचीसी, लछिमन-शतक, नरसिंह-चरित्र, नरसिंह-पचीसी; मरियार सिंह की हनुमत्-छब्बीसी, मून का राम-रावण-युद्ध, बहादुरसिंह (चरखारी) कृत हनुमान-चरित्र, वीर-रामायण; खुमान 'मान' (चरखारी) कृत हनुमान-नखशिख, हनुमान-पंचक, हनुमान-पचीसी, लक्ष्मण-शतक, नृसिंह-चरित्र, नृसिंह-पचीसी आदि का नाम उल्लेख

योग्य है। ध्यान रखना चाहिए कि ऊपर प्रमुख कवियों का ही उल्लेख किया गया है, इस ढर्रे पर सैकड़ों पुस्तकें रची गई हैं। यह क्रम पुराने कैंड़े के कवियों में अब तक चला आता है।

महाभारत के अनुवाद

महाभारत ऐसे वीर-काव्य का अनुवाद भी कई कवियों ने किया। कुछ लोगों ने तो केवल आधार लेकर स्वतंत्र रूप से भी कितने ही छंद बनाकर उसमें रखे हैं। सबसे पुराना अनुवाद सबलसिंह चौहान का है जो दोहे-चौपाई में मिलता है। कुछ लोगों ने पूरा अनुवाद न करके एक अंश का ही अनुवाद कर डाला था। ऐसे लोगों में प्रसिद्ध काव्याभ्यासी कुलपति का 'द्रोणपर्व' और गणेशपुरी 'पद्मेश' का 'कर्णपर्व' बहुत अच्छा है। कुलपति ने दुर्गा पर भी कुछ कविताएँ लिखी हैं। छत्रसिंह कायस्थ का 'विजय-मुक्तावली' नामक ग्रंथ महाभारत के आधार पर होते हुए भी बहुत कुछ स्वतंत्र है। कवि ने इसमें वर्णन अपने ढंग के बनाकर जोड़े हैं। महाभारत का सबसे उत्तम अनुवाद काशिराज के तीन दरबारी कवियों का किया हुआ है। प्रसिद्ध कवि रघुनाथ के पुत्र गोकुलनाथ, उनके पौत्र गोपीनाथ तथा गोकुलनाथ के शिष्य मणिदेव ने मिलकर यह विशालकाय ग्रंथ प्रस्तुत किया है। ग्रंथ में जिस कवि ने जितने अंश का अनुवाद किया है वह भी लिखा है। इस अनुवाद की भाषा परिमार्जित और सभी काव्य गुणों से युक्त है।

दरबारी कवि

दरबारी कवियों के संबंध में कुछ कहने के पहले यह जान लेना चाहिए कि पिछले समय में हिंदी-काव्य-चर्चा के बढ़ जाने के कारण कुछ राजदरबार ऐसे भी हुए हैं, जहाँ विशेष रूप से कवियों की जमात-की-जमात रहा करती थी। इस प्रकार के नरेश स्वयं कवि या काव्य-मर्मज्ञ हुआ करते थे। ऐसे नरेशों में महाराजा छत्रसाल, भगवंतराय खीची (फतेहपुर), रीवाँ-नरेश, अयोध्या-नरेश महाराज मानसिंह, काशी-नरेश आदि का नाम उल्लेखनीय है। इन दरबारों के आश्रय में सब प्रकार की कविताएँ रची गई हैं। उन्हीं के अंतर्गत वीर-कविता भी समझनी चाहिए। उल्लेख-योग्य दरबारी कवि ये हैं—घनश्याम शुक्ल, इन्होंने दलेल खाँ की प्रशंसा में कविताएँ लिखी हैं। मोहनलाल भट्ट, ये पद्माकर के पिता

थे। इन्होंने कई राजाओं की युद्ध-वीरता और दान-वीरता का वर्णन किया है। हरिकेस, ये महाराज छत्रसाल के दरबारी कवियों में बड़े ही काव्य-निपुण कवि हो गए हैं। भगवंतराय खीची के दरबारी-कवि शंभुनाथ, मल्ल, सून, भूधर, नाथ आदि। राजा जोरावर सिंह के पुत्र और नरेंद्र-भूपण के रचयिता भान कवि: 'दलेल-प्रकाश' के प्रणेता थान कवि और पंडित-प्रवीन, लछिराम आदि।

स्मरण रखना चाहिए की इन सभी कवियों में केवल दो ही प्रकार के कवियों की कविता का अधिक प्रचार हुआ। एक तो वे जिनके चरित-नायक देश-प्रसिद्ध वीर हुए हैं; जैसे—शिवाजी, छत्रसाल आदि। दूसरे वे जो देव-काव्य के रूप में लिखी गई हैं। शेष कवियों में से बहुतों की तो कविता काल के चक्र में ही नष्ट हो गई। वह जनता द्वारा गृहीत न होने से भी प्रसिद्धि और प्रचार न पा सकी। मुख्यतः अधिकांश दरबारी कवियों ने तो अपनी काव्य-प्रतिभा और वाणी का अनुपयोग केवल द्रव्य-लोभ में पड़कर किया। समाज अथवा देश के मेल में अपने जीवन-स्रोत को बहानेवाले चरित-नायकों को त्यागकर साधारण लोगों की खुशामद में व्यर्थ ही जबान घिसते फिरने से कवियों की कविता की ऐसी गति होना, उचित ही हुआ। कवि खुशामदी टट्टू नहीं है, उसे तो सदा निर्भीक और तथ्य-कथन के लिये उद्यत रहना चाहिए। कविता हृदय की उमंग है, रुपयों के बल पर की जानेवाली दिमागी कसरत नहीं। जिन्होंने इन सत्सिद्धांतों की अवहेलना की उनकी वाणी की दुर्गति अवश्यंभावी थी। हमें जान पड़ता है कि तृतीय उत्थान के समय कवियों के सामने दरबारी कवियों के खुशामदीपन का कुपरिणाम भी था इसी-लिये वे देश, मातृ-भूमि, समाज-संबंधी उदात्त भावनाओं की ओर झुके और उनके चरित-नायक भी वे ही बने, जो देश या मातृभूमि पर मर मिटनेवाले हैं।

तृतीय उत्थान की राष्ट्रीय झलक के दर्शन हमें भारतेंदु बाबू से ही मिलने लगते हैं। नीलदेवी, भारत-दुर्दशा आदि में इसके पर्याप्त परिमाणु पाए जाते हैं। कांग्रेस की स्थापना और देश में राजनीतिक हलचल उठ खड़ी होने से राष्ट्रीय कविताएँ अधिक मात्रा में रची गई हैं और रची जा रही हैं। ये कविताएँ काव्य-ग्रंथों के रूप में नहीं लिखी गई हैं। सभी मुक्तक अथवा गीति-रूप में ही मिलती हैं। इस

तृतीय उत्थान

प्रकार की कविता करनेवाले बड़े-बड़े कवियों से लेकर नवसिखुए व्यक्ति तक हैं। साथ ही यह कविता वीर और करुण दोनों को लिए हुए है। कहीं-कहीं तो लोग केवल करुणरस को ही रखकर राष्ट्रीय कविताओं का ढाँचा खड़ा कर देते हैं। इतना होने पर भी इस प्रकार की कविता लिखनेवाले कुछ खास व्यक्ति हैं जिनका जीवन देश की राजनीतिक लहर के साथ मिला हुआ है। मुख्य राष्ट्रीय कवि ये हैं—पं० गयाप्रसाद शुक्ल 'त्रिशूल', पं० माखनलाल चतुर्वेदी, पं० बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', पं० अनूप शर्मा, बा० मैथिलीशरण गुप्त, पं० गुलाबरत्न वाजपेयी 'गुलाब', माधव शुक्ल, हितैषी, स्वर्गीय पद्मधर अवस्थी 'पद्म' आदि। अनूप शर्मा तो प्राचीन ढंग की काव्य-पद्धति पर आधुनिक भाषा में भी बड़ी सुंदर वीर-रसात्मक कविता लिखते हैं। वीर-रस की कविता के लिये ये प्रसिद्ध हैं। राष्ट्रीय कविताओं की यह पद्धति किसी निश्चित मार्ग पर नहीं चल रही है। इसमें सामयिकता की ही विशेष छाप देख पड़ती है, स्थायित्व और साहित्यिकता के दर्शन तो कहीं-कहीं होते हैं।

इस तृतीय उत्थान के बीच में दो कवि और देख पड़ते हैं, जिनका वीर-काव्य से बहुत गहरा संबंध है। दोनों प्राचीन पद्धति पर काव्य-ग्रंथ तैयार करनेवाले हैं। एक हैं स्वर्गीय लाला भगवानदीन और दूसरे हैं वियोगी हरि। लालाजी ने 'वीर-पंचरत्न' नामक एक बहुत बढ़िया वीर-काव्य लिखा है, जिसमें पौराणिक और ऐतिहासिक वीर-बालकों, वीर-युवकों, वीर-रमणियों आदि का चरित्र बड़ी ही फड़कती हुई और ओजपूर्ण भाषा में वर्णित है। पुस्तक कुछ उर्दू-मिश्रित खड़ी बोली में है। इसके लिये छंदों का चुनाव भी उर्दू से ही हुआ है। भाषा बहुत चलती हुई और वर्णन अत्यंत सजीव हैं। इस पुस्तक का प्रचार मध्य-प्रदेश की ओर बहुत अधिक है। अच्छे-अच्छे कवियों तक ने इसके अध्याय-के-अध्याय कंठस्थ कर लिए हैं। पुस्तक में वीर-रस की सामग्री एकत्र करने में कोई बात लालाजी ने उठा नहीं रखी है। लालाजी सचमुच बीसवीं शताब्दी के 'भूषण' थे। उन्होंने एक दूसरा 'वीर-रसात्मक' खंडकाव्य लिखने का लग्गा लगाया था, जिसका नाम 'महाराष्ट्र देश की वीरांगनाएँ' था, पर वह आरंभ होकर ही रह गया। लालाजी राष्ट्रीय ढंग की कविता भी किया

वीर-पंचरत्न

करते थे, पर वे परिमाण में अपेक्षाकृत कम हैं। इस शताब्दी में 'वीरपंचरत्न' की जोड़ का दूसरा वीर-काव्य आज तक नहीं बना।

वियोगी हरि ने अभी कुछ दिन पूर्व 'वीर-सतसई' नाम्नी एक वीर-कविता की पुस्तक दोहों में लिखी है। तृतीय उत्थान के साथ-ही-साथ काव्य-भाषा भी बदल चुकी थी, इसलिये अधिकांश वीर-कविताओं का प्रणयन खड़ी बोली में ही हुआ था। वियोगी हरि ब्रज-भाषा के प्रेमी हैं, इसलिये उन्होंने यह पुस्तक ब्रजभाषा में ही लिखी है। इस पुस्तक पर हिंदी-साहित्य-सम्मेलन की ओर से १२००) का 'मंगलाप्रसाद-पारितोषिक' भी मिला है। पुस्तक में प्राचीन काल से लेकर आज तक के वीरों, वीरों के स्थानों, उपकरणों आदि पर कविता की गई है। कवि ने 'वीर' शब्द को बहुत व्यापक अर्थ में ग्रहण किया है, इससे इसमें ऐसे लोगों के भी दर्शन होते हैं जो काव्याभ्यासियों की दृष्टि में वीर नहीं कहे जा सकते। वीर ही नहीं, वीर-रस को भी आपने बहुत विस्तृत रूप में ग्रहण किया है। यही कारण है कि रसाभ्यासियों के लक्षणानुसार शृंगार के अंतर्गत आने-वाली कविताएँ भी इसमें घुसेड़ दी गई हैं। वीर-सतसई मुक्तक रचना है। अतः प्रत्येक पद्य में रस-परिपाक होने से ही रचना उत्तम हो सकती थी। पर रस-परिपाक के विचार से रचना बहुत-कुछ उखड़ी हुई है। दोहों में वीर-रस की रचना कैसी हुई होगी, इसे साहित्य के जानकार स्वयं ही समझ सकते हैं।

वीर-सतसई

इस लंबे-चौड़े वीर-काव्य के इतिहास के देखने से पता चलेगा कि वीर-रस के कवियों में 'भूषण' ने जिस प्रकार लोक-रंजन एवं लोक-रक्षण के सिद्धांतों को समझते हुए कविता की, उस प्रकार का ध्यान बहुत कम कवियों ने रखा है। परिणाम भी ठीक वैसा ही हुआ। आज प्राचीन वीर-कविताकारों में नाम के लिये चाहे लोग 'चंद' आदि का भी स्मरण कर लें, पर 'भूषण' की ही कविता लोगों की जिह्वा पर चढ़ी रहती है। हमारे विचार से वीर-कवियों में बहुत कम ऐसे हैं, जिन्होंने अपने कर्तव्य को समझा है। देश और समाज के जीवन से मिलाकर अपनी जीवन-धारा बहानेवाले वीरों पर वीर-काव्य बहुत कम ने रचे हैं। आज भी ऐसे काव्यों की कमी है। आधुनिक काल में 'वीर-पंचरत्न' ही एक ऐसा

उपसंहार

काव्य-ग्रंथ मिलता है, जिसमें इस बात पर ध्यान दिया गया है। महाकाव्यों के ढंग के वीर-काव्यों के प्रबंध-बद्ध-शैली में लिखे जाने की बड़ी भारी आवश्यकता है। ऐसे ग्रंथ वही लिख सकता है, जिसमें सचमुच वीर-भावनाएँ उमड़ पड़ने के लिये जोर मार रही हों। राष्ट्रीय कवियों में से बहुत से व्यक्ति जो केवल वाचनिक वीरता का प्रदर्शन कर रहे हैं, वह साहित्यिक और राजनीतिक दोनों दृष्टियों से त्याज्य है। महाराणा प्रताप ऐसे वीरों पर कोई महाकाव्य हिंदी में न होना बहुत दिनों से हमें खटक रहा है। महाकाव्यों की अनेकरूपता पर विचार करते हुए शिवाजी पर भी बहुत थोड़ा प्रकाश पड़ा है। आशा है, हमारे राष्ट्रीय कवि-गण इन मुक्तक और गीति-रूपों में लिखी जानेवाली वीर-कविताओं के साथ-साथ कोई वीर-काव्य लिखने का भी प्रयत्न करेंगे, जो साहित्य और देश दोनों की स्थायी संपत्ति समझा जा सके।

---

३. आलोचना

विभिन्न प्रकार की कविताओं की आलोचना के विभिन्न आदर्श हैं। समालोचना की शैलियाँ भी दो हैं; एक प्राचीन और दूसरी नवीन। महाकाव्यों की समालोचना में प्राचीन काव्याभ्यासी रीतिशास्त्र में गिनाई हुई सामग्रियों को अपना आधार बनाते हैं और नवीन शैलीवाले उसमें जीवन की अनेकरूपता तथा उसके दोनों पक्ष बहिर्द्वंद्व और अंतर्द्वंद्व को सामने लाते हैं। यही आदर्श प्रबंध-काव्यों और खंडकाव्यों के संबंध में भी है। परंपरा की लीक पीटनेवाले इनमें सर्गबद्ध शैली और कतिपय गिने गिनाए प्राकृतिक दृश्यों की योजना से ही संतोष कर लेंगे। उनके अनुसार यदि साहित्य-शास्त्र में गृहीत सामग्रियों का संकलन स्फुट रूप में ही हो गया है, तो भी वे संतुष्ट हो जायँगे। कथा की धारा अविच्छिन्न रूप से प्रवाहित हो रही है या नहीं, इससे उन्हें कोई मतलब नहीं; जैसे 'केशव' की रामचंद्रिका। पर नवीन शैली के अनुसार जीवन के जिस अंग का निरूपण किया जा रहा है, उसकी पूर्णता के साथ-ही-साथ कथा का प्रवाह भी बहुत आवश्यक समझा जाता है। फिर भी महाकाव्यों, प्रबंध-काव्यों एवं खंडकाव्यों में—जिनमें कथा का आधार लेकर काव्य-रचना

आलोचना का आदर्श

की जाती है—कुछ सामान्य बातें ऐसी हैं जो दोनों शैलियों के अनुसार उभयनिष्ट हैं। ये बातें तीन हैं—भाषा, भाव और वस्तु-संकलन। इनका विश्लेषण कर लेने पर इस प्रकार के काव्यों की मीमांसा एक प्रकार से दोनों शैलियों के अनुकूल समझी जाती है। मुक्तक-काव्यों में वस्तु-संकलन की आवश्यकता नहीं होती। प्राचीन शैलीवाले मुक्तक-काव्यों में 'रस' को प्रधानता देते हैं। नवीन शैली के अनुसार भी मुक्तक-रचना में भाव का निरूपण प्रधान माना जाता है। 'रस' भावों की पूर्णता और परिपाक से ही उत्पन्न होता है। इस विचार से दोनों शैलियों के अनुसार मुक्तक-रचना में भाषा, भाव और वर्णन-शैली का विवेचन ही उसकी समीचीन समीक्षा है।

'भूषण' की कविता मुक्तक है। इसलिये इसकी आलोचना के लिये भी भाषा, भाव और वर्णन-शैली को ही आधार मानना समीचीन होगा। भाव के विस्तार में रसाभ्यासियों के रस की भी गणना स्वतः हो जाती है। पर भूषण की समस्त कविता की समीक्षा के लिये इतना ही पर्याप्त नहीं है। इनकी कविता का संबंध इतिहास से भी है। वर्ण्य-विषय के ऐतिहासिक होने के कारण उस दृष्टिकोण से भी इसपर प्रकाश डालना आवश्यक है। 'शिवराज-भूषण' में रीतिशास्त्र का भी सहारा लिया गया है, अलंकारों का निरूपण किया गया है, इसलिये अलंकार-शास्त्र के दृष्टिकोण से भी इसका विश्लेषण उतना ही आवश्यक है, जितना इतिहास का। अधुना कवियों की परिपूर्ण मीमांसा के लिये तुलनात्मक पद्धति का भी आश्रय लिया जाने लगा है। इस पद्धति के अनुसार समालोचना करने पर आलोच्य काव्यकार की उत्कृष्टता का भी पता चल जाता है। इसलिये भूषण की आलोचना में वीर-काव्य के प्रमुख कविताकारों को भी तुलना के लिये सामने लाना पड़ेगा।

भाषा

'भूषण' के समय में पहले से ही साहित्य-क्षेत्र में एक सामान्य-काव्य-भाषा का प्रचार था। इसका प्रयोग हिंदी के सभी कवि करते थे। राजपूताने में इस भाषा का नाम 'पिंगल' था। वे लोग अपनी राजपूतानी भाषा को 'डिंगल' कहा करते थे। 'पिंगल' वस्तुतः छंद-शास्त्र का नाम है, पर राजपूताने में सामान्य-काव्य-भाषा और उसकी शैली का नाम 'पिंगल' ही रख लिया गया था। इससे

अपनी भाषा और शैली को भिन्न दिखलाने के लिये इसी की जोड़ पर 'डिंगल' नाम गढ़ा गया था। सामान्य-काव्य-भाषा का नाम 'भाषा' था और वह व्रजभाषा का ही व्यावहारिक अथवा सार्वजनिक रूप था। प्रेम-गाथावाले 'जायसी' आदि कवियों के समय से काव्य-क्षेत्र में अवधी भी आई थी। उसे व्यावहारिक एवं काव्योपयुक्त बनाने के लिये आगे चलकर तुलसी ने बहुत उद्योग किया, पर बहुत दिनों से काव्य-क्षेत्र में मँजी हुई व्रजभाषा के व्यावहारिक रूप और स्वाभाविक माधुर्य के सामने कवियों ने उसे ग्रहण ही नहीं किया। दूसरी बात यह थी कि अवधी की मिठास उसके ठेठ रूप की थी। उसके परिष्कृत रूप में वैसी व्यावहारिकता नहीं थी, जैसी व्रज-भाषा में पाई जाती थी। अवधी भाषा वस्तुतः प्रेम-गाथाओं के ही लिये विशेष रूप से उपयुक्त थी। प्रबंध-काव्य उसमें भली भाँति लिखे जा सकते थे, पर स्फुट काव्य-रचना के लिये वह चुस्त नहीं पाई गई। इतना ही नहीं, वह भाषा केवल दोहे-चौपाइयों में ही माँजी गई थी; अन्य छंदों की शान पर न चढ़ने के कारण उसमें व्यापकता भी नहीं आई थी। यही कारण था कि तुलसी ऐसे कवियों को भी कवितावली, गीतावली आदि की रचना के लिये व्रजभाषा के ही व्यावहारिक रूप को ग्रहण करना पड़ा। उन्होंने 'रामचरित-मानस' में अवधी को काव्य-गुणोपेत बनाने में पर्याप्त विचारशीलता से काम लिया था, पर अवधी में वस्तुतः वैसी विशेषताएँ ही नहीं थीं, जो सार्व-जनीन हों। यही कारण था कि तुलसी के पश्चात् अवधी जहाँ-की-तहाँ स्थिर रह गई, उसे किसी ने ग्रहण नहीं किया; पर व्यावहारिक व्रजभाषा बराबर काम में आती रही और आज भी उसका व्यवहार काव्य-क्षेत्र से उठा नहीं है।

व्रजभाषा का नाम लेकर जो उसके ठेठ-स्वरूप को देखने दौड़ते हैं, वे भ्रम में हैं। उन्हें सामान्य-काव्य-भाषा पर दृष्टि रखनी चाहिए। घनानंद और रसखान ऐसे व्रजवासी कवि सभी नहीं हो सकते और न होने की आव-श्यकता ही है। अन्य प्रांतवासी अथवा व्रज-प्रदेश से कुछ हटकर रहनेवाले कवियों की भाषा में उनके देश की कुछ-न-कुछ छाप पड़ ही जाती थी। 'केशव' में हम 'बुँदेली' का पुट पाते हैं, तो देव, भूषण आदि में बैसवाड़ी की झलक। 'तुलसी' की व्रजभाषा में अवधी चिपकी हुई है। व्रजभाषा

में केवल एक ही कमी रह गई थी, जिसपर तुलसी के सिवाय किसी दूसरे कवि का ध्यान नहीं गया था। काव्योपयुक्त बनाने के लिये व्रजभाषा के सामान्य या व्यावहारिक रूप में संस्कृत की कोमल-कांत-पदावली को ग्रहण करने की बड़ी भारी आवश्यकता थी। 'केशव' ऐसे संस्कृत के पंडित कविता में संस्कृत के शब्दों को ग्रहण करने बैठे, तो उनकी दृष्टि केवल शब्द के श्लिष्ट अर्थ और चमत्कार में ही अँटकी रह गई; संस्कृत की कोमल-कांत-पदावली से भाषा में सौंदर्य, साहित्यिकता एवं सरसता बढ़ाने की ओर उन्होंने ध्यान ही नहीं दिया। इसी से 'केशव' ने संस्कृत के अप्रचलित एवं अव्यावहारिक शब्दों का प्रयोग तो किया, पर तुलसी की भाँति भाषा में 'प्रसाद' लाने का कोई प्रयत्न नहीं किया।

इधर सामान्य-काव्य-भाषा में प्रांतीय शब्द तो आते ही थे, लोगों ने विदेशी शब्दों को भी ग्रहण करना आरंभ कर दिया। इसलिये इस सामान्य भाषा में देशी एवं विदेशी दोनों प्रकार की भाषाओं के प्रचलित शब्द आप-से-आप घुस गए। वीर-गाथावाले कवियों के समय से ही फारसी आदि विदेशी भाषाओं के शब्द काव्य-क्षेत्र में आ चुके थे। भक्ति और श्रृंगार की बाढ़ में तो कितने ही शब्द सिमट कर एकदम घुल-मिल गए। उनके विकृत रूप से उन्हें अब सहसा पहचाना भी नहीं जा सकता। भक्ति काल एवं रीति-काल में पहले की तरह केवल शब्दों का ग्रहण मात्र नहीं होता था, वे 'भाषा' की खराद पर चढ़ाकर रगड़े एवं माँजे भी जाते थे और इस प्रकार उन्हें सुडौल, मधुर एवं व्यावहारिक बनाकर काम चलाया जाता था। घनानंद आदि व्रजभाषा के आदर्श-स्वरूप के अभ्यासी भी विदेशी शब्दों को अछूत नहीं समझते थे। बात यह थी कि मुसलमान भारत में जम गए थे। अकबर के उद्योग से दोनों जातियों में समन्वय उत्पन्न हो रहा था और निर्गुणिए संतों एवं प्रेम-गाथावाले कवियों के उद्योग से राम-रहीम की एकता थोड़ी-बहुत स्थापित हो चुकी थी। देशी-विदेशी भाषाओं के समन्वय के विचार से केवल 'खालिकबारी' ही नहीं, और भी कई कोश-ग्रंथ बने थे। जिनमें से 'पारसीक-प्रकाश' नामक कोश खंडित रूप में मिला है। इसमें फारसी और संस्कृत के समानार्थक शब्दों की सूची दी गई है। ऐसे ही

कोषों का प्रभाव है कि संस्कृत में पुंलिंग माने जानेवाले आत्मा आदि शब्द रूह आदि के स्त्रीलिंग होने से हिंदी में स्त्रीलिंग ही माने जाने लगे हैं; नहीं तो व्याकरण की दृष्टि से 'आत्मा' को स्त्रीलिंग और 'परमात्मा' को पुंलिंग मानने के ढंग की घपलेबाजी हिंदी में कभी न हो पाती। आगे चलकर जो हिंदू-मुस्लिम-संग्राम भड़क उठा, उसका कारण औरंगजेब का धार्मिक कट्टरपन एवं अत्याचार था। यदि गंभीर दृष्टि से विचार किया जाय तो औरंगजेब के समय में भी उक्त विरोध सार्वजनिक न होकर राजवर्गीय ही रहा। हिंदुओं ने केवल अन्याय के परिशोध एवं अत्याचार के दमन के लिये मुसलमानी राज को हटाने का उद्योग किया था। उन्होंने मुसलमानों को निकाल बाहर करने का कभी प्रयास नहीं किया, बल्कि उसे ध्यान में भी नहीं लाए। कहने का तात्पर्य यह कि जिस प्रकार दोनों के जीवनों में एकता की प्रतिष्ठा हो रही थी, उसी प्रकार भाषा और साहित्य में भी सामंजस्य स्थापित करने का प्रयत्न किया जा रहा था। जहाँगीर ने तो देशी भाषा के क्रियापदों एवं प्रत्ययों तथा कुछ विदेशी शब्दों को लेकर एक विनिमय-भाषा ही बनाई थी, जो मूलतः सैनिकों के व्यवहार की होने के कारण 'उर्दू' कहलाने लगी।

दो जातियों के संपर्क से भाव-विनिमय को सुगम बनाने के लिये कुछ विदेशी शब्द स्वयमेव केंद्र-स्थान में प्रयुक्त होने लगते हैं। पुरानी भाषा में जो विदेशी शब्द मिलते हैं, उसका कारण भी यही है। मुसलमान यद्यपि भारत में नहीं आए थे, पर उनसे व्यवहार और व्यापार तो पहले से ही चला आ रहा था। जब संस्कृत ऐसी सुदृढ़ भाषा में भी विदेशी शब्द बहुत न सही क्षीण अंश में ही अपना स्थान बना सकते हैं, तो प्रतिदिन बोलचाल में व्यवहृत होनेवाली भाषा में विदेशी शब्दों का ग्रहण आश्चर्य की बात नहीं। मुसलमानी राज के आरंभ होने से फारसी ने राज-भाषा का पद पाया। इसलिये देशी भाषा के जानकार के लिये भी फारसी का जानना आवश्यक हो गया। यही कारण था कि हिंदी के कवियों ने जहाँ-कहीं मुसलमानी दरबार के प्रसंग में कुछ कहा है, वहाँ भाषा के खड़े रूप का ही प्रयोग किया है। इसीसे कुछ विकसित होकर प्रचलित भाषा ने दो प्रकार के रूप धारण किए। संस्कृत-बहुल होने से वही भाषा आगे चलकर 'खड़ी बोली' के रूप

में सामने आई और फारसी आदि विदेशी शब्दों के आधिक्य से उसने एक दूसरा ही रूप धारण किया, जिसे उर्दू नाम दिया गया। व्यवहार में तो नहीं, पर पुस्तकों में भाषा ने केवल विदेशी शब्द ही नहीं वरन् विदेशी मुहावरों और शब्द-संगठन को भी ग्रहण किया। भूषण की भाषा में विदेशी शब्दों के अधिक प्रयोग का एक कारण यह भी था। स्मरण रखना चाहिए कि 'भूषण' ने विदेशी शब्दों का अधिक प्रयोग मुसलमानों के ही प्रसंग में किया है। साथ ही दरबारों के सिलसिले में भाषा का खड़ा रूप भी देख पड़ता है—

(१) अफजल खानजू को मारा मयदान जाने,
बीजापुर गोलकुंडा डराया दराज है।
(२) बचैगा न समुहाने बहलोल खाँ अयाने,
'भूषन' बखाने दिल आनि मेरा बरजा।
(३) झुके निसान सके समर, मक्के तक्क तुरक्क भजि।
(४) औरँग अठाना साह सूर की न मानै आनि,
जब्बर जोराना भयो जालिम जमाना को।
(५) सिवा की बड़ाई औ हमारी लघुताई क्यों,
कहत गरो परिबे को पातसाह गरजा।

केवल शब्द-ग्रहण करके ही लोगों ने संतोष नहीं किया था। विदेशी शब्दों से अपनी भाषा के नियमानुकूल क्रियापद बनाना भी आरंभ हो गया था। विदेशी प्रत्यय तो लोगों ने नहीं ग्रहण किए, पर विदेशी शब्दों में देशी प्रत्यय लगाना और उनसे नाम-धातु बनाना बहुत पहले से ही आरंभ था। 'तुलसी' तक ने शरीकता और 'गस' से गमना क्रियापद बना लिया था। लरजा से लरजना, जोर से जोराना आदि प्रयोग पहले से ही चले आ रहे थे और भूषण के बाद भी इनका प्रयोग बिना किसी संकोच के होता था। लरजना आदि का प्रयोग तो 'पद्माकर' ऐसे लोगों ने भी किया है, जो भाषा की सफाई के उस्ताद समझे जाते हैं—

(१) कहै 'पदमाकर' लवंगन की लोनी लता,
लरजि गई तो फेरि <u>लरजन</u> लागी री।

(२) पात बिन कीन्हें ऐसी भाँति गन बेलिन के,
परत न चीन्हें जे ये लरजत लुंज हैं।

इस प्रकार के प्रयोग इतने घुल-मिल गए थे कि इनका परदेशीपन बिलकुल दूर हो गया था। 'भूषण' ने विदेशी शब्दों से क्रियापद अवश्य बनाए हैं, पर उनके प्रयोग प्रायः परंपराभुक्त ही हैं। क्रियाओं में नये प्रयोग उन्होंने कम रखे हैं—

(१) 'भूषन' भनत तहाँ सरजा सिवाजी गाजी,
तिनको तुजुक देखि नेकहू न लरजा।

(२) पेसकसैं भेजत बिलाइति पुरुतगाल,
सुनिकै सहमि जाति करनाट-थली है।

(३) कीरति के काज महाराज सिवराज सब,
ऐसे गजराज कबिराजन को बकसै।

(४) ताते ह्वै अनेक कोऊ सामने चलत कोऊ,
पीठ दै चलत मुख नाइ सरमात हैं।

(५) सुनिए खुमान हरि तिनको गुमान, तिन्हैं
देवे को जवाब कवि 'भूषन' यों अरजा।

'भूषण' ने विदेशी शब्दों में 'भाषा' के प्रत्यय तो लगाए हैं, पर संस्कृत के प्रत्यय बहुत कम दिखाई देते हैं। 'न' लगाकर बहुवचन बना लेना तो किसी गिनती में नहीं, सभी ने ऐसा किया है। मुग़लेटे, पठनेटे आदि शब्द 'भूषण' ने बनाए हैं। संस्कृत प्रत्यय या उपसर्ग लगाकर 'अनचैन' आदि शब्द कहीं-लिखे हैं। विदेशी प्रत्यय देशी शब्दों में भी कहीं-कहीं देखे जाते हैं, जैसे 'दलदार'।

'भूषण' ने अरबी, फारसी और तुर्की के शब्द अधिक प्रयुक्त किए हैं। इसका एक मुख्य कारण और भी था। इनके आश्रयदाता शिवाजी थे और महाराष्ट्र देश में जाकर इन्हें अपनी कविता को उस देश के निवासियों के लिये बोधगम्य बनाना था। यही कारण था कि 'भूषण' ने तत्कालीन मराठी की प्रवृत्ति को ग्रहण किया। यद्यपि आधुनिक मराठी बँगला की ही भाँति संस्कृत-शब्द-बहुल होती जा रही है, पर शिवाजी के समय की मराठी में

अरबी-फारसी के शब्दों का अत्यधिक प्रयोग होता था। यह बाहुल्य यहाँ तक बढ़ गया था कि तत्कालीन मराठी को अरबी-फारसी जाने बिना समझना दुरूह है। उस समय के मराठी के लिखे पत्रों में ९६ प्रतिशत तक फारसी के शब्द मिलते हैं। केवल पत्र-व्यवहार ही में नहीं, मराठी कविता में भी फारसी के शब्द घुस गए थे। बाह्यसंगठन और भाषा की शैली पर भी फारसी का बहुत अधिक प्रभाव पड़ा था। मराठी में प्रयुक्त होनेवाले किल्लें, परगणें, मौजें आदि शब्द फारसी के किलये, परगनये और मौजये के घिसे हुए रूप हैं। मराठी भाषा के नियमानुसार इन्हें किल्ला, परगणा, मौजा होना चाहिए था। बेदिल, गैरमिसिल आदि शब्द 'भूषण' की भाषा में मराठी से ही होते हुए आए हैं। फारसी का प्रभाव इतना अधिक बढ़ गया था कि उपाधियाँ भी उसी भाषा से ले ली गई थीं और घरेलू व्यवहार में भी विदेशी भाषा के शब्द प्रयुक्त होने लगे थे; जैसे—चिटणीस, फड़नीस, अब्बा, बाव आदि। 'भूषण' की भाषा में मराठी का अनुकरण और उक्त भाषा में प्रयुक्त होनेवाले देशी-विदेशी शब्दों को जान-बूझकर ग्रहण करना स्पष्ट लक्षित होता है। आदिलशाह को 'एदिल' और बहादुर खाँ को 'बादर खाँ' लिखना मराठी की ही नकल है। माची, गुसुलखाना, भठी, फिरंगें, बीछू, हुन्नैं, जुमिला, नालबंदी, बारगीर, बरगी, आमखास, तोड़ादार आदि शब्द मराठी से ही लिए गए हैं अथवा मराठी से ही होकर 'भूषण' की कविता में आए हैं; सीधे विदेशी भाषा से इनका संकलन नहीं किया गया है। उक्त शब्द मराठी में मिलते हैं और इनका प्रयोग बखर आदि में निःसंकोच किया गया है।

हम ऊपर सामान्य-काव्य-भाषा का नाम ले चुके हैं। सामान्य-काव्य-भाषा का प्रयोग करनेवाले विदेशी शब्द तो लेते ही थे, साथ-ही-साथ कुछ प्रांतीय शब्द भी ग्रहण करते जाते थे। कवि जिस प्रांत का निवासी होता था, उस प्रांत के शब्द उसकी भाषा में स्वतः आ जाते थे। इसके अतिरिक्त अन्य प्रांतीय बोलियों के ऐसे शब्द भी ले लिए जाते थे, जो परंपरा से प्रयुक्त होते आ रहे थे। व्रजभाषा में बुँदेली के शब्द और क्रियापद अन्य प्रांतीय बोलियों की अपेक्षा अधिक घुस गए थे। शुद्ध व्रजभाषा लिखनेवाले घनानंद, रसखान आदि तो इस प्रांतीयता के प्रभाव से बच गए हैं, पर अन्य कवियों

ने बुँदेली के क्रियापद लिए हैं। बिहारी तक ने 'देखबी' का प्रयोग किया है। तुलसी ने तो अवधी में भी इस रूप को ले लिया था; जैसे—'ये दारिका परिचारिका करि पालिबी करुनामई'। भूषण ने भी बुँदेली के भविष्यत् काल के उक्त रूप को कहीं-कहीं ग्रहण किया है—(१) धीर धरबी न धरा कुतुब के धुर की'। (२) 'कीबी कहैं कहा औ गरीबी गहे भागी जाहिं'। प्रांतीयता के नाते भूषण ने बैसवाड़ी एवं अंतर्वेदी शब्दों का भी कहीं-कहीं प्रयोग किया है, क्योंकि ये दोनों प्रदेशों की सीमा पर रहते थे जैसे—

(१) लागैं सब और छितिपाल छिति मैं छिया।
(२) सूबन साजि पठावत है नित फौज लखे मरहट्टन केरी।
(३) काल्हि के जोगी कलींदे को खप्पर।
(४) गजन की ठेल-पेल सैल उसलत है।
(५) तेरी तरवार स्याह नागिन तें जासती।

भूषण ने अपनी कविता में सामान्य-काव्य-भाषा का जो स्वरूप रखा है वह साहित्यिक दृष्टि से बहुत परिष्कृत और ग्राह्य तो नहीं है, पर व्यावहारिक दृष्टि से बुरा भी नहीं कहा जा सकता। भूषण ने अपनी भाषा को जो रूप दिया है वह जान-बूझकर ही दिया है। व्रजभाषा की प्रकृत माधुरी से ये अनभिज्ञ नहीं थे। भूषण ने 'छत्रसाल-दशक' और 'शिवा-बावनी' में भाषा का जो निखरा हुआ रूप दिखाया है और अपनी शृंगार रस की कविताओं में जैसी मँजी हुई भाषा प्रयुक्त की है, उससे यही निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि इन्हें अपनी कविता का प्रचार सुदूर दक्षिण में 'भाषा' के मूल-क्षेत्र से बहुत दूर हटकर करना था और मराठे वीरों में उत्साह भरना था, जिनके लिये वैसी ही भाषा बोधगम्य हो सकती थी, जैसी भूषण ने रखी है।

विदेशी शब्दों के प्रयोग में भूषण ने कहीं-कहीं ज्यादती से काम लिया है। एक तो ऐसे अप्रचलित शब्द रख दिए हैं जिनका अर्थ साधारण जनता नहीं जान सकती और दूसरे विदेशी शब्दों को तोड़ा-मरोड़ा भी है। उदाहरणार्थ फारसी के तकिया (आश्रय), तनाय (तनाव=डोर), बादबान (पाल), बगार (बलगार=दुर्गम घाटी) आदि शब्द; अरबी के सरजा

(शरजः=सिंह), अवस (व्यर्थ), हमाल (बोझ ढोनेवाला), तुजुक (प्रबंध), मुहीम (चढ़ाई) आदि शब्द; तुर्की के तुरमती, तिलक (तिरलीक=चोली) आदि शब्द प्रस्तुत किए जा सकते हैं। भूषण ने तत्सम रूपों का प्रयोग कम किया है। देशी और विदेशी सभी प्रकार के शब्द अधिकांश में अर्धतत्सम या तद्भव रूप में ही मिलते हैं। पर कहीं-कहीं ऐसे तद्भव एवं ठेठ शब्दों का प्रयोग भी मिलता है जो व्यापक नहीं हैं। जैसे—आह (हियाव, सामर्थ्य), ओत (आश्रय), गारो (गर्व), नेतु (निश्चय), धोप (तलवार), पैली (उस पार) कलकानि (दुःख) आदि। कहीं-कहीं दो-एक क्रियाएँ संस्कृत के मूल रूप से भी ले ली गई हैं—जैसे, जहत हैं, सिदति है आदि।

वीरगाथाओं की भाषा के संबंध में विचार करते समय यह कहा गया है कि कुछ शब्द पुरानी हिंदी में अपभ्रंश-काल से चले आते हैं। उनका प्रयोग बहुत दिनों तक हिंदी में होता रहा है। भूषण ने ऐसे पुराने रूप कम लिए हैं और जो लिए भी हैं वे बहुत चलते हैं। जैसे—बयन, पैज, नयर, पब्बय, पुहुमि, गढ़ोइ (गढवइ) आदि। इस दिग्दर्शन से तात्पर्य यह है कि भूषण की भाषा एक प्रकार की मिश्रित भाषा है। इनकी भाषा में ऐसी खिचड़ी है कि प्रायः सभी प्रकार के शब्द मिल सकते हैं। शब्दों को तोड़ने में भी भूषण ने कहीं-कहीं ज्यादती की है। पर शब्द अधिक तोड़े-मरोड़े नहीं गए हैं। महिमावान को महिमेवाने, अंबरीष को अंबरीक आदि जहाँ कहीं किया है, वहाँ तुकांत के ही लिये। बीच में शब्दों का विकृत-रूप उतना अधिक और बेठिकाने का नहीं है, जैसा समझा जाता है। जहाँ विकृत रूप मिलते भी हैं वहाँ उनका कोई विशेष कारण होता है। जैसे मराठी से होकर आने के कारण कई शब्द बिगड़ गए हैं। खुमान (आयुष्मान), सरजा (सरजाह) आदि इसी प्रकार के शब्द हैं।

रीतिकारों ने भाषा के लिये 'ओज' का विशेष रूप से विधान किया है। भूषण की कविता में 'ओज' पर्याप्त मात्रा में है। 'प्रसाद' भी भूषण में मानना ही पड़ेगा। जहाँ कहीं क्लिष्टता आई है, वहाँ विदेशी शब्दों के ही कारण। दो-एक स्थानों पर अप्रचलित शब्दों के प्रयोग से किसी की भाषा को

क्लिष्ट या अप्रासादिक मान लेना ठीक नहीं। केवल छेकानुप्रास (वस्तुतः वृत्त्य-नुप्रास) में भाषा के व्यवस्थित रूप का ध्यान नहीं रखा गया है। इसका कारण है, अमृतध्वनि छंद। वीर या उसके सहायक रसों से भिन्न स्थानों में माधुर्य भी है। शिवराज-भूषण के आरंभ के वर्णन में और शृंगार-रस के छंदों में माधुर्य बहुत अच्छा है। कहीं-कहीं तो माधुर्य उत्पन्न करने के लिये अपभ्रंश की 'उकार' वाली प्रवृत्ति भी ग्रहण की गई है। यथा—

मलय समीर परलै को जो करत अति,
जम की दिसा तें आयो जम ही को गोतु है।
साँपन को साथी न्याय चंदन छुए तें डसै,
सदा सहबासी बिष-गुन को उदोतु है॥
सिंधु को सपूत कलपद्रुम को बंधु,
दीनबंधु को है लोचन सुधा को तनु सोतु है।
'भूषन' भनत भुव-भूषन द्विजेस तैं,
कलानिधि कहाय कै कसाई कत होतु है॥

यहाँ गोतु, उदोतु, सोतु, होतु के स्थान पर गोत, उदोत, सोत, होत से भी काम चल सकता था, पर माधुर्य के लिये यही रूप ग्रहण किया गया है। इसी प्रकार दाटियतु, पाटियतु, बाहियतु, चाहियतु, मारु, दुवारु, दरकतु, धरकतु, अवतारु, पारु, गाइयतु, आइयतु, काँधियतु, बाँधियतु आदि के प्रयोग हैं।

भाषा के लिये मुहावरे-बंदिश भी आवश्यक हुआ करती है। प्राचीन कवियों में से मुहावरे-बंदिश पर ध्यान देनेवाले कवि गिने-गिनाए हैं। सबसे अधिक मुहावरेदार और लोकोक्तियों से लदी हुई भाषा 'ठाकुर' की है। 'तुलसी' की पुस्तकों में भी मुहावरे-बंदिश अच्छी है। कवितावली में तो इसका बहुत अधिक ध्यान रखा गया है। 'भूषण' की कविता में मुहावरे उतने तो नहीं हैं पर फिर भी भाषा बेमुहावरे नहीं कही जा सकती। प्रांतीय मुहावरे कम रखे गए हैं, पर वे मुहावरे जहाँ आए हैं, उनका रूप ठीक है। उदाहरणार्थ कुछ मुहावरे और लोकोक्तियाँ उद्धृत की जाती हैं—

मुहावरे-(१) केते धौं नदी-नदन की रेल उतरति है।

(२) पाग बाँधियतु मानौं कोट बाँधियतु है।
(३) दंत तोरि तखत तरैं तें आयो सरजा।
(४) मीरन के अवसान गए मिटि।
(५) नाह दिवाल की राह न धाओ।

लोकोक्ति-(१) काल्हि के जोगी कलींदे को खप्पर।
(२) सौ-सौ चूहे खायकै बिलाई बैठी जप के।

उपर्युक्त बातों पर विचार करने के बाद हमारी धारणा है कि भूषण की भाषा यद्यपि साहित्यिक दृष्टिकोण से उखड़ी हुई है, पर उसके इस विकृत रूप के अनिवार्य कारण हैं। अवसर के अनुरोध और समय के प्रभाव से भाषा को यह रूप जान-बूझकर दिया गया है। भूषण की भाषा अन्ततोगत्वा बहुत मुहावरेदार एवं परिष्कृत न होने पर भी अव्यावहारिक नहीं है।

भाव से हमारा तात्पर्य उस वस्तु से है जिसे रसाभ्यासी 'रस' कहते हैं। नये संप्रदाय के समालोचक चित्त-वृत्ति को भाव मानते हैं।

भाव

नये ढंग के समालोचक के लिये भूषण में वृत्तियों का विश्लेषण भले ही न मिले, पर इनकी कविताओं में भावोन्मेष है अवश्य। पहले रसज्ञों की रसशाला में भूषण की कविता को परख लेना चाहिए, फिर कलावादियों की कसौटी पर भी इसे कसेंगे। भूषण की कविता में यदि रसवादी इसके चारो अंगों की सम्यक् योजना देखने दौड़ेंगे, तो इस प्रकार के अवसर उन्हें कम मिलेंगे। पर यदि चारों अवयवों को यथास्थान शाब्द एवं आर्थ दोनों रूपों में ग्रहण करेंगे तो उन्हें भूषण की कविता में रसमग्नता पर्याप्त परिमाण में मिलेगी। भूषण की कविता में वीर-रस प्रधान है, इसे समझाने की तो आवश्यकता ही नहीं। साथ ही वीर-रस के सहकारी रौद्र और भयानक भी आएँगे ही। पर यही नहीं, भूषण की प्रस्तुत कविता में हमें रसवादियों के प्रायः सभी रस मिल जाते हैं; केवल वत्सल नहीं है। प्राचीन आचार्यों ने वत्सल को पूर्ण-रसत्व नहीं दिया है। भूषण की कविता में ऐसा अवसर ही नहीं आया है, इसीसे यह रस नहीं मिलता।

वीर-रस का स्थायीभाव 'उत्साह' माना गया है। अतः जितने प्रकार के वीरत्व में 'उत्साह' होगा, वे सभी वीर-रस के अंतर्गत आ जायँगे। कुछ लोग तो उत्साह के क्षेत्र को विस्तृत बनाकर सभी प्रकार की स्फूर्तिपूर्ण भावनाओं में उत्साह को प्रत्यक्ष रूप से स्थित मानते हैं; यहाँ तक कि शृंगार में भी। किंतु 'उत्साह' और 'स्फूर्ति' में अंतर है। स्फूर्ति तो एक प्रकार से सभी स्थायी भावों में वर्तमान रहती है। स्फूर्ति का तात्पर्य भाव के 'वेग' से है। यही कारण है कि भावों को मनोवेग (emotion) भी कहते हैं। इसलिये सभी स्थायियों में उत्साह को मिश्रित मानना ठीक नहीं है। उत्साह वह मनोवेग है, जो किसी महत्कार्य के संपन्न करने में प्रवृत्त कराता है। यह महत्कार्य भी हृदय से संबंधित होना चाहिए। बुद्धिपरक कार्यों में जो उत्साह होता है, वह 'रस' का विषय नहीं है। यही कारण है कि कुछ आचार्यों ने 'विद्यावीर' को वीर-रस के अंतर्गत नहीं माना। क्योंकि यह हृदयपरक नहीं है। 'कर्मवीर' को भी वे अलग नहीं मानते हैं, क्योंकि 'कर्मवीरत्व' सभी में सन्निविष्ट रहता है। दानवीर, दयावीर, धर्मवीर और युद्धवीर—ये चार प्रकार के प्रधान वीर हो सकते हैं। भूषण ने इन चारों का वर्णन किया है। दानवीर का उदाहरण लीजिए—

मंगन-मनोरथ के प्रथमहिं दाता तोहिं,
कामधेनु कामतरु सो गनाइयतु है।
यातें तेरे गुन सब गाय को सकत, कबि
बुद्धि अनुसार कछु तऊ गाइयतु है॥
'भूषन' भनत साहितनै सिवराज, निज
बखत बढ़ाय करि तोहिं ध्याइयतु है।
दीनता को डारि औ अधीनता बिडारि,
दीह-दारिद को मारि तेरे द्वार आइयतु है॥

'दयावीर' का उदाहरण देखिए—

जाहि पास जात सो तौ राखि ना सकत यातें
तेरे पास अचल सुप्रीति नाधियतु है।

'भूषन' भनत सिवराज तव कित्ति सम,
और की न कित्ति कहिबे को काँधियतु है॥
इंद्र को अनुज तैं उपेंद्र-अवतार यातैं,
तेरो बाहुबल लै सलाह साधियतु है।
पायतर आय नित निडर बसायबे को,
कोट बाँधियतु मानो पाग बाँधियतु है॥

'धर्मवीर' के भी कई सुंदर उदाहरण हैं। एक उद्धृत किया जाता है—

बेद राखे बिदित पुरान परसिद्ध राखे,
राम-नाम राख्यो अति रसना सुघर मैं।
हिंदुन की चोटी रोटी राखी है सिपाहिन की,
काँधे मैं जनेऊ राख्यो माला राखी गर मैं॥
मीड़ि राखे मुगुल मरोड़ि राखे पातसाह,
बैरी पीसि राखे बरदान राख्यो कर मैं।
राजन की हद्द राखी तेग-बल सिवराज,
देव राखे देवल स्वधर्म राख्यो घर मैं॥

सब प्रकार के वीरत्व में युद्धवीरत्व प्रधान माना जाता है। ऊपर 'धर्मवीर' का जो उदाहरण दिया गया है उसमें शुद्ध धर्मवीरत्व नहीं है, युद्धवीरत्व भी मिला है। दान और दया में जो वीरत्व होता है उसमें वीर-रस के सभी अवयव नहीं आते, पर युद्धवीरत्व में वीर-रस की समग्र सामग्री का पर्यवसान हो जाता है। दान में जो उत्साह होता है, वह कोरे दान तक भी रह सकता है; पर दया और धर्म का परिणाम प्रायः युद्ध के रूप में ही सामने आता है। एक प्रकार से युद्धवीरत्व उत्साह का बहुत ही परिपक्व रूप है। देखिए—

छूटत कमान बान बंदूकरु कोकबान,
मुसकिल होत मुरचानहू की ओट मैं।
ताहि समै सिवराज हुकुम कै हल्ला कियो,
दावा बाँधि द्वेषिन पै बीरन लै जोट मैं॥
'भूषन' भनत तेरी हिम्मति कहाँ लौं कहौं,
किस्मति इहाँ लगि है जाकी भट-झोट मैं।

ताव दै-दै मूँछन कगूँरन पै पाँव दै-दै,
घाव दै-दै अरि-मुख कूदे परैं कोट मैं ॥

कहीं-कहीं तो भूषण ने चारो प्रकार की वीरता का वर्णन एक ही कवित्त में बड़ी खूबी के साथ किया है। एक उदाहरण लीजिए—

दान-समै द्विज देखि मेरहू कुबेरहू की,
संपति लुटाइबे को हियो ललकत है।
साहि के सपूत सिवसाहि के वदन पर,
सिव की कथान मैं सनेह झलकत है।
'भूषन' जहान हिंदुवान के उबारिबे को,
तुरकान मारिबे को बीर बलकत है।
साहिन सों लरिबे की चरचा चलति आनि,
सरजा के दृगनि उछाह छलकत है॥

रसाभ्यासियों को यह बतलाने की आवश्यकता नहीं कि पहले चरण में दान, दूसरे में धर्म, तीसरे में दया, चौथे में युद्धवीरता दिखाई गई है। कुछ लोग चौथे चरण में 'उछाह' देखकर स्वशब्द वाच्यत्व दोष मानने के लिये तैयार हो जायँगे, किंतु पिछले चरणों में उत्साह की भरपूर सामग्री संकलित कर लेने पर स्थल-संकोच से अंतिम चरण में 'उछाह' का आ जाना कोई भारी दोष नहीं है।

वीर-रस साहित्य के तीन प्रधान रसों में से है। सत्त्व, रज और तम नामक तीन गुणों के अनुकूल तीन प्रधान रस भी माने गए हैं, जिनका नाम क्रमशः शांत, शृंगार और वीर है। इन्हीं तीनों के दो-दो रस सहकारी माने गए हैं। इस प्रकार साहित्य के नवरसों का विधान किया गया है। दृश्य-काव्य में नाटकीय तत्त्वों को प्रधानता देनेवाले केवल आठ ही रस मानते हैं। शांत को वे रस नहीं मानते। अभिनय में केवल दो ही प्रधान रस माने गए हैं—शृंगार और वीर। शांत को वे अभिनय में इसलिये नहीं लेते कि अभिनय-संबंधी प्रभावोत्पादकता उसमें नहीं है। पर दृश्य-काव्य में शांत को भी स्थान दिया गया है। यहाँ पर हमें अन्य रसों की सार्थकता से कोई प्रयोजन नहीं है। इसीलिये उनके रसत्व का विश्लेषण भी अनपेक्षित है। वीर-रस

क्या दृश्य और क्या श्रव्य दोनों में प्रधान माना जाता है। वीर-रस का स्थायी 'उत्साह' उदात्त-वृत्तियों में परिगणित होता है। 'उत्साह' में अनेक-रूपता भी होती है। भूषण में यद्यपि 'उत्साह' के समस्त रूपों का समावेश नहीं है, क्योंकि उन्होंने वीर-रसात्मक महाकाव्य न लिखकर स्फुट रचना की है; पर उसके कुछ रूप स्पष्ट दृष्टि गोचर होते हैं। वीर-रस के चारों अवयवों में विभावों के अंतर्गत जो आलंबन होता है, उसके दो पक्ष आश्रय और अलंबन पक्षी और प्रतिपक्षी ही नहीं हुआ करते। दान में प्रतिपक्षी कोई व्यक्ति-विशेष नहीं हुआ करता। इसीलिये कुछ आचार्य 'उत्साह' में प्रतिपक्षी की स्थिति न मानकर महत्कार्य को उसका आलंबन मानते हैं। भूषण की कविता में खुले तौर पर महत्कार्य आलंबन के रूप में इसीलिये नहीं मिलता कि उसमें प्रतिपक्षी बहुत स्पष्ट है।

वीर-रस के सहकारी रौद्र और भयानक कहे गए हैं। इन दोनों रसों का भी वर्णन 'भूषण' ने पर्याप्त मात्रा में किया है। भयानक रस का वर्णन 'भूषण' ने बहुत अधिक किया है। कुछ लोग स्थान-स्थान पर शिवाजी की धाक से प्रतिपक्षियों को भयभीत करा देने पर एतराज करते हैं, पर उसका कारण एक तो भयानक-रस को वीर के सहकारी के रूप में दिखलाना है, दूसरे छत्रपति शिवाजी की युद्ध-नीति का दिग्दर्शन है। शिवाजी ने औरंगजेब ऐसे प्रतिपक्षी को भी नाकों चने अपनी युद्ध-नीति से ही चबवाए थे। शिवाजी की युद्ध-नीति सहसा-आक्रमण की थी। खुलकर युद्ध करना उनकी नीति के प्रतिकूल था। मराठों ने जब तक शिवाजी की उक्त नीति का अनुगमन किया, तब तक उनका उत्थान हुआ और ज्यों ही वे इस नीति को छोड़कर खुले मैदान में शत्रुओं को ललकारने लगे, त्यों ही उनका पतन आरंभ हुआ। पानीपत की तीसरी लड़ाई में हार इसी अनुपयुक्त नीति का परिणाम थी। जमकर भिड़ना समान शक्तिवाले से ही ठीक होता है। जिसकी सैन्य-सामग्री और अपने से बढ़ी हुई हो, उसको सहसा-आक्रमणों द्वारा भयभीत कर देने से ही पर्याप्त आतंक छा जाता है। शिवाजी ने इस नीति के स्वरूप को भली भाँति समझा था। वे जो सदा विजयी होते रहे, उसका वास्तविक कारण यही था। उस समय शिवाजी की धाक ने शत्रुओं को जितना खोखला बना

दिया था, उतना उनकी जमकर लड़ाइयों ने नहीं। इस कथन का तात्पर्य यह नहीं है कि शिवाजी में वह सामर्थ्य नहीं थी, जो ऐसे प्रभावशाली व्यक्ति में होनी चाहिए। सामर्थ्य केवल सैन्य ही की नहीं होती, युद्ध की नीति का तात्विक सिद्धांत जानना ही वस्तुतः सामर्थ्य है।

काव्याभ्यासी जानते हैं कि नायक में प्रतिभा अथवा शक्ति का प्राबल्य दिखलाने के लिये प्रतिपक्षी में भी वैसी शक्ति की योजना की जाती है। प्रायः प्रतिपक्षी का ऐश्वर्य और पराक्रम नायक से अधिक ही दिखाया जाता है। रावण के विभव का विस्तार और उसके विक्रम की विशालता दिखाकर वस्तुतः उसे राम के योग्य प्रतिनायक बनाया गया है। पर 'हम्मीर-हठ' के लेखक चंद्र-शेखर वाजपेजी ने 'हम्मीर' के प्रतिनायक अलाउद्दीन को चुहिया के फुदकने से डरवा दिया है। काव्य की दृष्टि से यह कल्पना असाहित्यिक है। भूषण ने ऐसी गलती नहीं की है। औरंगजेब के ऐश्वर्य और उसकी सामर्थ्य को इन्होंने पर्याप्त रूप में दिखाया है—

उत्तर पहार विधनोल खँडहर भार-
खंडहु प्रचार चारु केली है बिरद की।
गोर गुजरात अरु पूरब पछाँह ठौर,
जंतु जंगलीन की वसति मारि रद की॥
'भूषन' जो करत न जाने बिनु घोर सोर,
भूलि गयो आपनी उँचाई लखे कद की।
खोइयो प्रबल मदगल गजराज एक,
सरजा सों बैर कै बड़ाई निज मद की।

सहकारी रसों के भी उदाहरण इसी सिलसिले में देख लीजिए। रौद्र रस का उदाहरण देखिए—

सबन के ऊपर ही ठाढ़ो रहिवे के जोग,
ताहि खरो कियो छ-हजारिन के नियरे।
जानि गैरमिसिल गुसीले गुसा धारि मनु,
कीन्हों ना सलाम न वचन बोले सियरे॥

'भूषन' भनत महावीर बलकन लाग्यो,
सारी पातसाही के उड़ाय गए जियरे।
तमक तें लाल मुख सिवा को निरखि भए,
स्याहमुख नौरँग सिपाह मुख पियरे॥

इस कवित्त में भी कुछ लोगों को 'गुसीले गुसा धारि मनु' में 'स्वशब्द-वाच्यत्व दोष' की गंध आवेगी, पर विभाव, अनुभाव आदि की योजना इतनी प्रबल है कि वह बेचारा दब-सा गया है।

भयानक-रस की पूर्णता भूषण की कविता में बहुत अधिक है। इस रस के आलंबन में पक्षी तो स्पष्ट है, पर प्रतिपक्षी प्रायः प्रच्छन्न है। फिर भी शिवाजी के विकट कर्म विपक्षी के रूप में परोक्ष होते हुए भी स्वयमेव आश्रय की दुर्दशा से उद्भूत हो जाते हैं—

कत्ता की कराकनि चकत्ता को कटक काटि,
कीन्ही सिवराज बीर अकह कहानियाँ।
'भूषन' भनत और मुलुक तिहारी धाक,
दिल्ली औ बिलाइत सकल बिललानियाँ॥
आगरे अगारन की नाँघती पगारन,
सम्हारती न बारन मुखन कुम्हलानियाँ।
कीबी कहैं कहा औ गरीबी गहे भागी जाहिं,
बीबी गहे सूथनी सुनीबी गहे रानियाँ॥

वीर-रस के व्यापक क्षेत्र में भूषण ने इस रस के अविरोधी रसों से जो सहायता ली है, उसका भी दिग्दर्शन इसी लपेट में करा देना आवश्यक है। वीर के विरोधी शांत और शृंगार को भूषण ने छोड़ दिया है, पर अन्य रसों को इस रस की अनेकरूपता के सिलसिले में गौण रूप से बराबर ले आए हैं। कहीं-कहीं तो शांत-रस के स्थायी 'निर्वेद' को भी संचारी के रूप में घसीट लिया है। केवल अछूता शृंगार ही रह गया था। पर एक प्रकार से प्रायश्चित्त करने के लिये शृंगार के भीतर वीरता की सामग्री को सावयव रूपक की लपेट रखकर, उसे भी खींच लाए हैं।

रण-वर्णन में वीभत्स-व्यापारों को सभी कवियों ने दिखाया है।

बीभत्स इसीलिये अंगी के रूप में नहीं आता। कुशल कवियों की भाँति भूषण ने भी इन बीभत्स व्यापारों में कहीं-कहीं सौंदर्य की योजना की है। इनका बीभत्स-वर्णन भोंड़ा कहीं भी नहीं होने पाया है। देखिए—

(१) भूप सिवराज कोप करि रन-मंडल मैं,
खग्ग गहि कूद्यो चकता के दरबारे मैं।
काटे भट बिकटरु गजन के सुंड काटे,
पाटे उर भूमि काटे दुवन सितारे मैं॥
'भूषन' भनत चैन उपजै सिवा के चित्त,
चौसठ नचाई जबै रेवा के किनारे मैं।
आँतन की ताँत बाजी खाल की मृदंग बाजी,
खोपरी की ताल पसुपाल के अखारे मैं॥

(२) किलकति कालिका कलेजे की कलल करि,
करिकै अलल भूत भैरो तमकत हैं।
कहूँ रुंड-मुंड कहूँ कुंड भरे स्रोनित के,
कहूँ बखतर करी-झुंड झमकत हैं॥
खुले खग्ग कंध धरि ताल गति बंध पर,
धाय-धाय धरनि कबंध धमकत हैं।

इन्हीं उदाहरणों को देखने से पता चल गया होगा कि भूषण ने बीभत्सता को कहीं भी प्रधान नहीं होने दिया है, कहीं वीरता के आवेश से और कहीं सौंदर्य की योजना से उसे बराबर दबा दिया है। ठीक यही दशा 'करुण' की है। भयानक के बोझ से और वीर-रस के जोश से यह भी सिमटा पड़ा है। केवल इसका आभास मात्र दे दिया गया है। कविता की गति के साथ यह केवल चिपका हुआ दिखाई देता है—

(१) बिझपूर बिदनूर सूर सर-धनुष न संधहिं।
मंगल बिनु मल्लारि-नारि धम्मिल नहिं बंधहिं॥
गिरत गर्भ कोटीन, गहत चिंजी चिंजाउर।
चालकुंड दलकुंड गोलकुंडा संका उर॥

(२) सरजा समत्थ वीर तेरे वैर बीजापुर,
वैरि-वैयरनि-कर चीन्ह न चुरीन के।
तेरे वैर देखियतु आगरे दिली के बीच,
सिंदुर के बिंदु मुख-इंदु जमनीन के॥

यहाँ 'विषाद' संचारी इसलिये नहीं है कि वहाँ आशा रहती है। उसमें मरण नहीं होता, केवल वियोग होता है। करुणा का आभास हम इसीलिये मानते हैं कि यहाँ शोक शत्रु-नारि-परक है। वीर नायक के प्रति-पक्षी का मरण अवश्यंभावी है। मृत शत्रु के लिये तो यह मरण वीर-रस के ही अंतर्गत होगा। 'मरण' अनुभाव माना जायगा। पर स्त्रियों के लिये उनका शोक स्थायी के रूप में आएगा।

अद्भुत-रस की योजना भी कहीं-कहीं सुंदर है। देखिए—

सुमन मैं मकरंद रहत है साहिनंद,
मकरंद सुमन रहत ज्ञान बोध है।
मानस मैं हंस-बंस रहत हैं तेरे जस-
हंस मैं रहत करि मानस विरोध है॥
'भूषन' भनत भौंसिला भुवाल भूमि, तेरी
करतूति रही अद्भुत रस ओध है।
पानी मैं जहाज रहे लाज के जहाज,
महाराज सिवराज तेरे पानिप पयोध है॥

यद्यपि विरोधाभास अलंकार के चमत्कार में अद्भुत-रस दब गया है, पर उस अलंकार के द्वारा ही आश्चर्योत्पादकता लाने के कारण इसमें अद्भुत को चिपका हुआ अवश्य मानना पड़ेगा। अलंकार सभी स्थानों में अव्यंग्य नहीं हुआ करता।

बादशाह और बेगमों की बातचीत में कहीं-कहीं स्मित हास्य भी रखा है। वीर या उसके सहकारी रसों की लपेट में वह इतना अधिक चिपक गया है कि कहीं-कहीं सहसा उसपर ध्यान भी नहीं जाता—

चित्त अनचैन आँसू उमगत नैन देखि,
बीबी कहैं बैन मियाँ कहियत काहिनै।

'भूषन' भनत बूझे आए दरबार तें,
कँपत बार-बार क्यों सँम्हार तन नाहिनै ॥
सीनो धकधकत पसीनो आयो देह सब,
हीनो भयो रूप न चितौत बाएँ दाहिनै ।
सिवाजी की संक मानि गए हौ सुखाय, तुम्हैं
जानियत दक्खिन को सूबा करो साहि नै ॥

'निर्वेद' को भी वीर-रस की लपेट में देखिए—

साहिन के उमराव जितेक सिवा सरजा सब लूटि लए हैं ।
'भूषन' ते बिन दौलति ह्वैकै फकीर ह्वै देस-बिदेस गए हैं ॥
लोग कहैं इमि दच्छिन-जेय सिसौदिया रावरे हाल ठए हैं ।
देत रिसायकै उत्तर यों हमहीं दुनियाँ तें उदास भए हैं ॥

रसाभ्यासी चौंकें नहीं । इसमें हम 'शांत-रस' नहीं मानते हैं । केवल 'निर्वेद' को वीर-रस की लपेट में लाने की बानगी दे रहे हैं । भूषण के शांत-रस का उदाहरण यों है—

देह देह देह फिर पाइए न ऐसी देह,
जौन तौन जो न जानै कौन जौन आइबो ।
जेते मनि-मानिक हैं तेते मन मानि कहैं,
धराई में धरे ते तौ धराई धराइबो ॥
एक भूख राखै भूख राखै मत भूषन की,
यही भूख राखै भूप 'भूषन' बनाइबो ।
गगन के गौन जम गिननन दैहै नग,
नगन चलैगो साथ नग न चलाइबो ॥

यद्यपि रस-सामग्री की सम्यक् योजना की कमी से इस छंद में भी पूर्ण-रस नहीं है, पर शांत का स्थायी 'निर्वेद' यहाँ अपने शुद्ध रूप में है, इस बात में किसी का झगड़ा न होगा । पूर्ण-रस केवल इसीलिये नहीं कह सकते कि यहाँ सांसारिक वस्तुओं से विरागजन्य उपदेश मात्र है, जिसे काव्याभ्यासी स्थायी ही मानते हैं, परिपक्व रूप में 'रस' नहीं ।

'भूषण' ने श्रृंगार के भीतर भी अपनी वीररसात्मक प्रवृत्ति का

आभास दिया है। इस प्रकार की योजना और कवियों ने भी की है, पर भूषण के लिये यह खास बात है। क्योंकि ये वीर-रस की ओर ही झुके हैं, अन्य रसों, और खासकर शृंगार, का तो दरवाजा ही झाँककर रह गए हैं।

मेचक कवच साजि बाहन बयारि बाजि,
गाढ़े दल गाजि रहे दीरघ बदन के।
'भूषन' भनत समसेर सोई दामिनी है,
हेतु नर-कामिनी के मान के कदन के॥
पैदरि बलाका धुरुवान के पताका गहे,
घेरियत चहूँ ओर सूने ही सदन के।
ना करु निरादर पिया सों मिलु सादर,
ये आए बीर बादर बहादर मदन के॥

नायिका मानिनी है। दूती मदन की चढ़ाई दिखाकर मान-मोचन करा रही है।

यहाँ सभी रसों का उदाहरण वीर की लपेट में दिखाकर हम वीर के सिर 'रसराजत्व' का सेहरा बाँधने की वैसी कठहुज्जती नहीं करना चाहते, जैसी केशव आदि ने शृंगार के पेटे में अन्य रसों को दिखाकर की है। जिस तर्क से वे लोग शृंगार को 'रसराज' सिद्ध करना चाहते हैं, उससे तो सभी रस 'रसराज' सिद्ध किए जा सकते हैं। यहाँ पर दिखाना यही है कि वीर-रस की अनेकरूपता भूषण ने बड़े कौशल से दिखाई है। कुछ लेखकों ने भ्रमवश 'भावों के वेग' को 'उत्साह' का रूप समझकर घोर शृंगार तक के छंदों को वीर-रस का कहकर ग्रहण किया है, पर भूषण ने ऐसा दुराग्रह कहीं नहीं किया और न कोई समझदार साहित्यिक ऐसा करने का साहस ही कर सकता है। 'भूषण' की कविता से शुद्ध शृंगार का एक उदाहरण उद्धृत करके हम रस के शास्त्रीय विवेचन को यहीं समाप्त करते हैं—

अति सोंधे भरी सुखमा सु खरी मुख ऊपर आइ रहीं अलकैं।
'कवि भूषन' अंग नवीन बिराजत मोतिन-माल हिये झलकैं॥
उन दोउन की मनसा मन सी नित होत नई ललना ललकैं।
भरि भाजन बाहिर जात मनौं मुसुकानि किधौं छवि की छलकैं॥

एक प्रकार से काव्य की दृष्टि से विचार हो चुका। अब कला की दृष्टि से भूषण की कविता पर विचार करना चाहिए। कला से हमारा तात्पर्य भावों के उस रमणीक निरूपण से है, जिसके कारण कविता में मनोहरता आती है। यद्यपि यह प्राचीन शास्त्रीय पद्धति के अनुसार व्यंग्य, लक्षणा आदि से भिन्न नहीं है, पर नये लोगों ने इसे 'कला' नाम दे रखा है। भूषण की कविता में कला का कौशल दिखाने के लिए एक प्रकार से अवसर कम था। सीधी-सादी भाषा में स्पष्ट रूप से जोशीली उक्तियाँ कहकर वीरों को प्रोत्साहित करना था। स्फुट रूप में होने के कारण यह अवसर और भी कम मिला है। जहाँ अवसर आया भी है, वहाँ जान-बूझकर ध्यान नहीं दिया गया। कारण हम कह चुके हैं कि कविता प्रयोग के लिये लिखी गई थी। भाव-निरूपण के जंजाल से उसे संश्लिष्ट करना कवि का उद्देश्य नहीं था। पर मनोरंजन के लिये कहीं-कहीं ऐसी प्रवृत्ति दिखला अवश्य दी गई है। कथा की व्यापक योजना के भीतर न होने से यद्यपि उसमें अधिक गहराई नहीं है, पर फिर भी भावमग्नता पर्याप्त है। नमूने के लिये दो-चार उदाहरण दिए जाते हैं।

जोई सूबेदार जात सिवाजी सों हारि,
तासों अवरंग साहि इमि कहै मन भायो है।
मुलुक लुटायो तो लुटायो कहा भयो,
तन आपनो बचायो महाकाज करि आयो है॥

उद्धृत अंश में काक्वाक्षिप्त व्यंग्य है। इस प्रकार के वचनों से औरंगजेब के हृदय की खीझ बहुत स्पष्ट रूप में लक्षित हो जाती है।

तोरि कै छरा सों अच्छरा-सी यों निचोरि कहैं,
'तुमने कहे ते कंत मुकतों में पानी हैं।'

बेगमों ने सुन रखा था कि मोतियों में 'पानी' होता है। प्यास से व्याकुल होने पर वे मोतियों को दबा-दबाकर पानी निकालने का प्रयत्न कर रही हैं। इस वर्णन द्वारा उनकी व्याकुलता का अच्छा निरूपण किया गया है।

भीख माँगि खैहैं बिन मनसब रैहैं,
पै न जैहैं हजरत महाबली सिवराज पै।

औरंगजेब के सरदार शिवाजी से इतने भयभीत हो गए हैं कि वे भीख

माँगने को तैयार हैं, पर शिवाजी पर चढ़ाई करना उन्हें मंजूर नहीं। मनसब तो वे इसलिये नहीं चाहते कि शिवाजी से बचकर आना कठिन है। उस मनसब को भोगेगा कौन?

करि मुहीम आए कहत, हजरत मनसब दैन।
सिव सरजा सों बैर करि ऐहैं बचिकै है न॥

औरंगजेब का हृदय शिवाजी के आतंक से इतना घबड़ाया हुआ है कि वे रातोदिन उसके दिमाग में चढ़े रहते हैं। शाहंशाह कहता है—

चौंकि-चौंकि चकता कहत चहुँघा तें यारो,
लेत रहौ खबरि कहाँ लौं सिवराज है।

घर में पाले हुए पक्षी, लोगों को जिस प्रकार कहते सुनते हैं, स्वयं भी वैसे ही कहने लगते हैं। कवि कहता है—

मानव की कहा चली एते मान आगरे मैं,
आयो-आयो सिवराज रटैं सुक-सारिका॥

शिवाजी का कितना आतंक छा गया था, इसका निरूपण इस पंक्ति से बहुत ही अच्छी तरह हो जाता है।

वीर-रस को छोड़कर श्रृंगार से भी कुछ भाव-निरूपण की बानगी लेनी चाहिए। रात में अन्यत्र वास करके आए हुए नायक को देखकर नायिका बादलों को संबोधन कर कह रही है—

रावरेहू आए हाय-हाय मेघराय सब,
धरती जुड़ानी पै न बरती जुड़ानी मैं।

नायिका कितनी खीझी हुई है! पानी पड़ने पर उसकी रोषाग्नि और भभक उठती है। नायक के मधुर वचन उसे और अधिक चुभते हैं।

आगमिष्यत्पतिका का निरूपण 'भूषण' ने अच्छा किया है। सब प्रकार की काली वस्तुएँ जो संयोग में सुखद थीं, वियोग में दुःखद हो गई हैं; पर फिर भी उसके हृदय में नायक के आने की जो एक आशा छिपी है उसके कारण वह कौए का भरोसा अब भी कर रही है—

कारो जल जमुना को काल सो लगत आली,
छाय रह्यो मानो यह विष कालीनाग को।

वैरिन भई है कारी कोयल निगोड़ी यह,
तैसो ही भँवर कारो बासी बन-बाग को ॥
'भूषन' भनत कारे कान्ह को बियोग हिये,
सबै दुखदाई जो करैया अनुराग को।
कारो घन घेरि-घेरि मारयो अब चाहत है,
एते पर करति भरोसो कारे काग को ॥

कौआ आकर नायिका के मकान पर बैठा है। वह सगुंन विचार रही है कि यदि नायक आनेवाला होगा तो कौआ 'काँव-काँव' करके उड़ जायगा। स्त्रियों का विश्वास होता है कि यदि मकान पर कौआ आकर 'काँव-काँव' करे और उड़ जाय तो कोई-न-कोई बाहर से अवश्य आता है। निराश हृदयों में भी आशा की झलक किस प्रकार छिपी रहती है इसका चित्रण इस कवित्त में बहुत बढ़िया है।

संक्षेप में भाव-निरूपण दिखा दिया गया। अब हम भूषण के विभाव-पक्ष पर आते हैं। विभाव-पक्ष का तात्पर्य बाह्य-दृश्य-चित्रण से है। हम पहले लिख चुके हैं कि भूषण की स्फुट रचना में ऐसा अवसर कम आया है। केवल शिवराज-भूषण के आदि में कवि ने ऐसे चित्रण की बानगी भर दे दी है। बाह्य-दृश्य के निरूपण में कवि लोग दो प्रकार की योजनाएँ करते हैं—एक स्फुट-योजना और दूसरी संश्लिष्ट-योजना। कहना नहीं होगा कि स्फुट-योजना केवल विभाव का चित्रण चलता कर देने के लिये है। 'केशव' आदि ने अधिकांश में स्फुट-योजना से ही काम लिया है। हिंदी के पिछले खेवे के कवियों ने दृश्य-निरूपण की अनेकरूपता पर अधिक ध्यान नहीं दिया। प्रकृति के नाना रूपों में उनकी वृत्ति केवल रम कर ही रह गई। उसके भीतर पैठकर उसके अंग-प्रत्यंग का माधुर्य प्रत्यक्ष करने में मग्न नहीं होने पाई। इसीलिये हिंदी में संस्कृत के कवियों की भाँति वर्ण्य-विषय के संबंध में संश्लिष्ट-योजना बहुत कम मिलती है। भूषण इसके अपवाद नहीं थे।

बाह्य-दृश्य-चित्रण

रायगढ़ का वर्णन करते हुए कवि लिखता है—

कहुँ बावरी सर कूप राजत बद्धमनि सोपान हैं।
जहँ हंस सारस चक्रवाक विहार करत सनान हैं॥
कितहूँ विसाल प्रबाल-जालन जटित अंगन-भूमि है।
जहँ ललित बागन द्रुम-लतनि मिलि रहे झिलमिल झूमि है॥
चंपा चमेली चारु चंदन चारिहू दिसि देखिए।
लवली लवंग यलानि केरे लाखहौं लगि लेखिए॥
कहुँ केतकी कदली करौंदा कुंद अरु करवीर हैं।
कहुँ दाख दाड़िम सेब कटहल तूत अरु जंभीर हैं॥

काव्याभ्यासियों को यह बतलाने की आवश्यकता नहीं कि इस वर्णन में केवल परंपरा की लीक भर पीटी गई है। चित्रण में केवल योजना ही स्फुट नहीं है, वरन् दाख, दाड़िम, सेब आदि के पेड़ भी उत्तर से उखाड़ कर दक्षिण में लगाए गए हैं। इस दोष के परिहार के लिये पुराने कैंड़े के लोग कह बैठेंगे कि बड़े लोग विदेशी फलों और फूलों के पौधे अपने बाग में शौकिया लगाया करते हैं। पर उन्हें जानना चाहिए कि शिवाजी के बगीचे में ऐसे बेमेल पेड़ नहीं थे।

'भूषण' का वर्णन सरासर संश्लिष्ट-योजना से शून्य भी नहीं है। इन्होंने केवल उसमें अपनी रुचि नहीं दिखलाई है। देखिए—

(१) मुकुतान की झालरिन मिलि मनि-माल छज्जा छाजहीं।
संध्या-समै मानहु नखत-गन लाल-अंबर राजहीं॥
जहँ तहाँ ऊरध उठे हीरा-किरन घन समुदाय हैं।
मानो गगन तंबू तन्यो ताके सपेत तनाय हैं॥
'भूषन' भनत जहँ परसिकै मनि पुहुपरागन की प्रभा।
प्रभु पीतपट की प्रगट पावत सिंधु, मेघन की सभा॥

(२) महत उतंग मनि-जोतिन के संग आनि,
कैयो रंग चकहा गहत रबि-रथ के।

इस प्रकार की योजना पुस्तक भर में कहीं नहीं है। 'भूषण' का अभिप्रेत रस 'वीर' था। इसमें भी संश्लिष्ट-योजना हो सकती थी। वीर-रस की अनेकरूपता को परिपूर्ण करने के लिये इसमें भी संश्लिष्ट-योजना का सहारा

होना चाहिए था। पर सब स्थानों पर स्फुट-योजना ही दिखाई पड़ती है। हिंदी में संश्लिष्ट-योजना की ओर कवियों ने कम रुचि दिखलाई है। यह योजना केवल प्रबंध-काव्य के भीतर ही नहीं, स्फुट पद्यों में भी दिखलाई जा सकती है। हाँ, प्रबंध के भीतर ऐसी योजना के लिये अधिक सुअवसर मिल सकते हैं, पर स्फुट रूप में कम। वीर-रस की जो परंपरा चली थी, उसमें रासो की पद्धति ही पहले मुख्य थी। इन ग्रंथों में ऐसी योजना बहुत कम मिलती है; यद्यपि ये ग्रंथ महाकाव्यों एवं प्रबंध-काव्यों के रूप में ही लिखे गए हैं। आगे चलकर कविगण केवल स्फुट वीर-काव्य में ही लगे, इससे उनकी योजना एकदम स्फुट हो गई। 'भूषण' ने भी केवल परंपराभुक्त शैली का ही अनुकरण किया, उसमें नवीन योजना कहीं नहीं की। देखिए—

(१) मुंड कटत कहुँ रुंड नटत कहुँ सुंड पटत घन।
गिद्ध लसत कहुँ सिद्ध हँसत सुख-वृद्धि रसत मन॥
भूत फिरत करि बूत भिरत सुर-दूत घिरत तहँ।
चंडि नचति गन मंडि रचति धुनि डंडि मचति जहँ॥
इमि ठानि घोर घमसान अति, 'भूषन' तेज कियौ अटल।
सिवराज साहिसुव खग्ग-बल, दलि अडोल बहलोल-दल॥

(२) कुंडन के ऊपर कड़ाके उठैं ठौर-ठौर,
जीरन के ऊपर खड़ाके खड़्गन के।

वर्ण्य-विषय का स्वरूप अधिक स्पष्ट करने के लिये कवि लोग अप्रस्तुत का आश्रय ग्रहण करते हैं। यह भी एक प्रकार की आलंकारिक शैली है। इसीसे इसे हम वर्णन की शैली के अंतर्गत ही लेते हैं। सीधे-सादे वर्णनों की अपेक्षा अप्रस्तुत-विधान द्वारा वर्ण्य का चित्रण करने में साहित्यिकता भी है और चमत्कार भी। अप्रस्तुत का विधान करने में दो बातें मुख्य होती हैं। एक तो प्रस्तुत का स्वरूप हृदयंगम कराया जाता है, दूसरे प्रस्तुत भाव में तीव्रता लाई जाती है। इसलिये अप्रस्तुत-विधान में यदि दोनों बातें साथ-साथ हों तो, वह सर्वोत्तम समझा जायगा। केवल सारूप्य से भी काम निकाला जाता है, और केवल भाव-तीव्रता दिखलाकर भी कवि लोग काम चलाते हैं। किंतु कभी-कभी केवल स्वरूप-साम्य के फेर में पड़ने से उद्देश्य की ठीक ठीक सिद्धि

नहीं भी होती। इसलिये अप्रस्तुत में केवल 'सारूप्य' न होकर 'साधर्म्य' होना चाहिए। भूषण ने अप्रस्तुत-विधान में साधर्म्य का ध्यान अधिक रखा है। कहीं-कहीं अलंकार के चक्कर में पड़ जाने से यह विधान गड़बड़ भी हो गया है, पर सर्वत्र ऐसी बात नहीं है। साधारण कवियों की भाँति भूषण ने इस विषय में केवल परंपरा की ही लकीर नहीं पीटी है; वरन् नवीन विधान भी सामने रखे हैं, जो दोनों दृष्टियों से अच्छे हैं।

शत्रुओं की स्त्रियाँ शिवाजी के डर से भाग रही हैं। उनके केश खुल गए हैं। उन केशों में से 'लाल' छूट-छूटकर गिरे जा रहे हैं। कवि कहता है—

छूटे बार, बार छूटे, बारन तें लाल देखि,
'भूषन' सुकबि बरनत हरखत हैं।
क्यों न उतपात होहिं बैरिन के झुंडन मैं,
कारे घन उमड़ि अँगारे बरखत हैं॥

काले केशों और काले बादलों एवं लाल अंगारों में सारूप्य तो है ही, उत्पात की भीषणता दिखलाने के लिये बादलों से पानी के स्थान पर आग बरसाने से भाव-तीव्रता में ही सहायता मिलती है। यदि शृंगार में केशों की उपमा बादल से देकर 'लाल' अंगारे की तरह टपकाए जाते तो यही विधान भोंड़ा हो जाता। उपद्रव की भयंकरता लक्षित कराने के लिये यह विधान बहुत ठीक है। दूसरा उदाहरण लीजिए—

समद लौं समद की सेना त्यों बुँदेलन की,
सेलैं समसेरैं भईं बाड़व की लपटैं।

यहाँ अब्दुस्समद की सेना को समुद्र कहने में उसकी अपारता व्यंग्य है। दूर से बहुत से मनुष्यों का जमावड़ा जलराशि की भाँति लहराता हुआ ज्ञात होता है। इसीसे जोर से चलती हुई भीड़ को बोल-चाल में 'रेला' (प्रवाह) कहते हैं। अतः सेना को समुद्र कहने में सारूप्य भी है और वस्तु-प्रतिवस्तु धर्म भी।

'भूषण' के कुछ नवीन विधान भी देखिए। औरंगजेब दक्षिण में जिन-जिन सूबेदारों को भेजता है, उनका पानी उतार लिया जाता है। वे अपना-सा मुँह लेकर लौट आते हैं। यदि बादशाह ने उन्हें उत्साहित करके पुनः भेजा

तो भी उनकी वही दशा होती है। इस भाव को हृदयंगम कराने के लिये कवि लिखता है—

> रहँट की घरी जैसे औरँग के उमराव,
> पानिप दिली तें ल्याइ ढारि-ढारि जात हैं।

उत्तर से दक्षिण और दक्षिण से उत्तर आने-जाने में जो चक्कर काटना पड़ता है, उससे 'रहँट' के घड़ों से बहुत अधिक साम्य है। घड़े जिस प्रकार पेंच के सहारे चला करते हैं, उसी प्रकार उमरावों में भी अपनी शक्ति कुछ नहीं है, वे औरंगजेब के उत्साहित करने और उभाड़ने पर विवश होकर वैसा करते हैं। इसके साथ ही इस विधान में श्लिष्ट 'पानिप' शब्द एक अनोखा चमत्कार उत्पन्न कर रहा है।

इसी प्रकार औरंगजेब के सूबेदारों को बदलते रहने पर 'भूषण' लिखते हैं—

> सूखत जानि सिवाजू के तेज तें पान-से फेरत औरँग सूबा।

पान यदि उलटा-पलटा न जाय, तो वह गर्मी से सूख या सड़ जाता है। सूबेदारों की दुर्दशा भी ऐसी है। इस पद्यांश में भी 'सूखत', 'तेज' और 'फेरत' का श्लिष्ट प्रयोग कवि की प्रतिभा का परिचायक है।

इन बेचारों की दोनों ओर से दुर्दशा है। यदि शिवाजी के सामने आते हैं तो मार-पीटकर भगा दिए जाते हैं और यदि लौटकर औरंगजेब के पास पहुँचते हैं तो वह उन्हें फटकारने लगता है। इससे विवश होकर वे फिर दक्षिण जाते हैं। इस दुर्गति का चित्रण 'भूषण' ने यों किया है—

> आलमगीर के मीर वजीर फिरैं चउगान बटान से मारे।

कहीं-कहीं 'भूषण' ने अप्रस्तुतों के लाने में असावधानी भी दिखलाई है। जैसे—

> मिलतहि कुरुख चकत्ता को निरखि कीन्हो,
> सरजा सुरेस ज्यों दुचित ब्रजराज को।

यहाँ औरंगजेब को 'ब्रजराज' (श्रीकृष्ण) कहना अप्रस्तुत का समीचीन प्रयोग नहीं है। एक तो श्रीकृष्ण ने इंद्र की वर्षा से जन-समाज की रक्षा का प्रयत्न किया था। दूसरे वे 'दुचित' नहीं हुए थे, पर्याप्त धैर्य से काम लिया था।

नहीं भी होती। इसलिये अप्रस्तुत में केवल 'सारूप्य' न होकर 'साधर्म्य' होना चाहिए। भूषण ने अप्रस्तुत-विधान में साधर्म्य का ध्यान अधिक रखा है। कहीं-कहीं अलंकार के चक्कर में पड़ जाने से यह विधान गड़बड़ भी हो गया है, पर सर्वत्र ऐसी बात नहीं है। साधारण कवियों की भाँति भूषण ने इस विषय में केवल परंपरा की ही लकीर नहीं पीटी है; वरन् नवीन विधान भी सामने रखे हैं, जो दोनों दृष्टियों से अच्छे हैं।

शत्रुओं की स्त्रियाँ शिवाजी के डर से भाग रही हैं। उनके केश खुल गए हैं। उन केशों में से 'लाल' छूट-छूटकर गिरे जा रहे हैं। कवि कहता है—

छूटे बार, बार छूटे, बारन तें लाल देखि,
'भूषन' सुकबि बरनत हरखत हैं।
क्यों न उतपात होहिं बैरिन के झुंडन मैं,
कारे घन उमड़ि अँगारे बरखत हैं॥

काले केशों और काले बादलों एवं लाल अंगारों में सारूप्य तो है ही, उत्पात की भीषणता दिखलाने के लिये बादलों से पानी के स्थान पर आग बरसाने से भाव-तीव्रता में ही सहायता मिलती है। यदि शृंगार में केशों की उपमा बादल से देकर 'लाल' अंगारे की तरह टपकाए जाते तो यही विधान भोंड़ा हो जाता। उपद्रव की भयंकरता लक्षित कराने के लिये यह विधान बहुत ठीक है। दूसरा उदाहरण लीजिए—

समद लौं समद की सेना त्यौं बुँदेलन की,
सेलैं समसेरैं भईं बाड़व की लपटैं।

यहाँ अब्दुस्समद की सेना को समुद्र कहने में उसकी अपारता व्यंग्य है। दूर से बहुत से मनुष्यों का जमावड़ा जलराशि की भाँति लहराता हुआ ज्ञात होता है। इसीसे जोर से चलती हुई भीड़ को बोल-चाल में 'रेला' (प्रवाह) कहते हैं। अतः सेना को समुद्र कहने में सारूप्य भी है और वस्तु-प्रतिवस्तु धर्म भी।

'भूषण' के कुछ नवीन विधान भी देखिए। औरंगजेब दक्षिण में जिन-जिन सूबेदारों को भेजता है, उनका पानी उतार लिया जाता है। वे अपना-सा मुँह लेकर लौट आते हैं। यदि बादशाह ने उन्हें उत्साहित करके पुनः भेजा

तो भी उनकी वही दशा होती है। इस भाव को हृदयंगम कराने के लिये कवि लिखता है—

रहँट की घरी जैसे औरँग के उमराव,
पानिप दिली तें ल्याइ ढारि-ढारि जात हैं।

उत्तर से दक्षिण और दक्षिण से उत्तर आने-जाने में जो चक्कर काटना पड़ता है, उससे 'रहँट' के घड़ों से बहुत अधिक साम्य है। घड़े जिस प्रकार पेंच के सहारे चला करते हैं, उसी प्रकार उमरावों में भी अपनी शक्ति कुछ नहीं है, वे औरंगजेब के उत्साहित करने और उभाड़ने पर विवश होकर वैसा करते हैं। इसके साथ ही इस विधान में श्लिष्ट 'पानिप' शब्द एक अनोखा चमत्कार उत्पन्न कर रहा है।

इसी प्रकार औरंगजेब के सूबेदारों को बदलते रहने पर 'भूषण' लिखते हैं—

सूखत जानि सिवाजू के तेज तें पान-से फेरत औरँग सूबा।

पान यदि उलटा-पलटा न जाय, तो वह गर्मी से सूख या सड़ जाता है। सूबेदारों की दुर्दशा भी ऐसी है। इस पद्यांश में भी 'सूखत', 'तेज' और 'फेरत' का श्लिष्ट प्रयोग कवि की प्रतिभा का परिचायक है।

इन बेचारों की दोनों ओर से दुर्दशा है। यदि शिवाजी के सामने आते हैं तो मार-पीटकर भगा दिए जाते हैं और यदि लौटकर औरंगजेब के पास पहुँचते हैं तो वह उन्हें फटकारने लगता है। इससे विवश होकर वे फिर दक्षिण जाते हैं। इस दुर्गति का चित्रण 'भूषण' ने यों किया है—

आलमगीर के मीर वजीर फिरैं चउगान वटान से मारे।

कहीं-कहीं 'भूषण' ने अप्रस्तुतों के लाने में असावधानी भी दिखलाई है। जैसे—

मिलतहि कुरुख चकत्ता को निरखि कीन्हो,
सरजा सुरेस ज्यों दुचित व्रजराज को।

यहाँ औरंगजेब को 'व्रजराज' (श्रीकृष्ण) कहना अप्रस्तुत का समीचीन प्रयोग नहीं है। एक तो श्रीकृष्ण ने इंद्र की वर्षा से जन-समाज की रक्षा का प्रयत्न किया था। दूसरे वे 'दुचित' नहीं हुए थे, पर्याप्त धैर्य से काम लिया था।

कवि औरंगजेब के प्रति जो अश्रद्धा का भाव उत्पन्न कराना चाहता था, वह इस अप्रस्तुत से सिद्ध नहीं होता। श्रीकृष्ण के उक्त कार्य में लोक-रक्षा थी, इससे वह श्रद्धा का विषय था। अतः यह विधान बिलकुल ठीक नहीं है, एक प्रकार से विरुद्ध है।

वीर-रस के वर्णन में कवि लोगों ने प्राचीन-काल से ही ऊहात्मक पद्धति का अनुसरण किया है। 'भूषण' ने परंपरा को ही पकड़ा है, पर चमत्कारवादी कवियों की भाँति अतिरंजित पद्धति को प्रचुरता से नहीं ग्रहण किया। सेना के चलने से शेष की दुर्दशा, समुद्र का हिलना, धूल से सूर्य का छिपना परंपरा-भुक्त ही हैं। देखिए—

(१) भूषन भनत नाद बिहद नगारन के,
नदी-नद मद गैबरन के रलत है।
ऐल-फैल खैलभैल खलक मैं गैल-गैल,
गजन की ठेल-पेल सैल उसलत है॥
तारा सो तरनि धूरि-धारा मैं लगत,
जिमि थारा पर पारा पारावार यों हलत है।

(२) टूटिगे पहार बिकरार भुव-मंडल के,
सेष के सहस-फन कच्छप कचकिगे।

(३) दल के दरारन तें कमठ करारे फूटे,
केरा के से पात बिहराने फन सेस के।

(४) उलटत पलटत गिरत झुकत उझकत,
सेस-फन बेदपाठिन के हाथ से।

(५) रंकीभूत दुवन करंकीभूत दिगदंती,
पंकीभूत समुद सुलंकी के पयान तें।

(६) काँच से कचरि जात सेष के असेष फन,
कमठ की पीठ पै पिठी सी बाँटियतु है।

इतना होने पर भी कहीं-कहीं ऐसे वर्णन भी मिलते हैं जो परंपराभुक्त होने पर भी अतिरंजित होने के कारण अव्यावहारिक हैं—

(१) 'आयो आयो' सुनत ही, सिव सरजा तुव नाँव।
वैरि-नारि-दृगजलन सों, बूड़ि जात अरि-गाँव॥
(२) रावरे नगारे सुनि बैरवारे नगरन,
नैनवारे नदन निवारे चाहियतु है।

इन सभी बातों पर विचार करने से ज्ञात होता है कि भूषण की वर्णन-शैली न तो बहुत उत्तम ही है और न बहुत साधारण। इसे हम मध्यम श्रेणी की कह सकते हैं।

अलंकार

अलंकारों का विवेचन करते समय हम कह आए हैं कि हिंदी में अलंकारों का शास्त्रीय स्वरूप-निरूपण बहुत कम पाया जाता है। हिंदी के प्राचीन अलंकाराचार्यों की पुस्तकों को भी कवित्व की ही दृष्टि से देखना उपयुक्त होगा। रीतिशास्त्र की विश्लेषणात्मक पद्धति का इनमें कहीं पता ही नहीं है। श्रीपति, सूरति मिश्र और कुलपति ऐसे आचार्य भी अपने विवेचन में सफल नहीं कहे जा सकते। इसका कारण यह था कि गद्य का विकास ही नहीं हुआ था। 'भूषण' की पुस्तक में भी अलंकार गौण रूप में ही हैं। आचार्यों की उस श्रेणी में इन्हें स्थान नहीं मिल सकता जो स्थान संस्कृत में मम्मट आदि आचार्यों को प्राप्त है। केशव और दास ऐसे आचार्यों ने भी रीतिशास्त्र के विवेचन में जब सफलता नहीं पाई तो 'भूषण' की बात ही क्या! उक्त दोनों आचार्यों ने जो ग्रंथ लिखे उनमें रीतिशास्त्र प्रधान था, काव्य नहीं। पर कविता के क्षेत्र में मँजी हुई वाणी रीतिशास्त्र के व्यापक रूप को बहुत-कुछ स्पष्ट करने में असमर्थ ही रही है। भूषण ने तो शिवाजी-विषयक अपनी कविताओं को ग्रंथ-रूप देने के लिये अलंकारों का सहारा-मात्र लिया है। उस समय एक प्रकार से सभी कवि किसी-न-किसी रूप में इसी प्रकार रीति का आधार लेकर अपनी कवित्व-शक्ति भर दिखाया करते थे। मोटे रूप में अलंकारादि के लक्षण लिखकर उनके उदाहरणों में अपनी कविताओं का संकलन कर देते थे और एक पुस्तक तैयार हो जाती थी। कुछ लोग तो सभी अलंकारों के लक्षण-लक्ष्य प्रस्तुत करते थे और कुछ लोग केवल मोटे-मोटे अलंकारों को ही दर्शा दिया करते थे। हमारी धारणा है कि भूषण ने अलंकारों के क्रम से पुस्तक का निर्माण न करके कविता

में अलंकार-निर्णय करके अपना ग्रंथ रचा है। इन्होंने कुछ अलंकार इसीलिये छोड़ दिए हैं। इन्होंने सीधे किसी संस्कृत के अलंकार-ग्रंथ को भी अपना आधार नहीं बनाया, वरन् हिंदी के कवियों में अलंकारों के संबंध में जो सामान्य भावना प्रचलित थी, उसी को पकड़ा है। यही कारण है कि भूषण के लक्षण और उदाहरण दोनों कई जगह अस्पष्ट और दूषित हैं। 'शिवराज-भूषण' की हस्तलिखित प्रतियाँ दो प्रकार की मिलती हैं। एक तो ऐसी हैं जिनमें उदाहरण कम हैं, प्रायः प्रत्येक अलंकार अथवा उसके भेद में केवल एक ही उदाहरण है और दूसरी वे जिनमें कहीं-कहीं अधिक उदाहरण भी पाए जाते हैं। इसके दो ही कारण हो सकते हैं। एक तो यह कि कवि ने पीछे से उदाहरण-बढ़ा दिए होंगे अथवा किसी दूसरे व्यक्ति ने उनकी कविताओं से तत्तत् अलंकारों के उदाहरण लेकर पीछे से मिलाए होंगे। शिवराज-भूषण में कथित घटनाओं में जो काल-क्रम का व्यतिक्रम देख पड़ता है, उसका कारण भी यही है। कवि ने अलंकारों का आधार मानकर यदि पुस्तक का निर्माण किया होता, तो कथित घटनाओं में काल-क्रम का व्यतिक्रम संभव नहीं था। पीछे से उदाहरणों के बढ़ाने से यह घपलेबाजी और भी बढ़ गई है। जिन प्रतियों में केवल एक-एक उदाहरण दिया गया है, उनके उदाहरणों पर विचार करने से काल-क्रम का झमेला बहुत-कुछ दूर हो जाता है। कहीं-कहीं जो व्यतिक्रम मिलता है उसकी संगति थोड़ा विचार करने से बैठ भी जाती है। पर जिनमें उदाहरण अधिक हैं, उनकी संगति बैठाने के लिये तो यह मानना ही पड़ता है कि ये छंद पीछे से रखे गए हैं।

कहने का तात्पर्य यही है कि हिंदी में आचार्यत्व के उत्तरदायित्व को समझनेवाले आचार्य यों ही कम थे, भूषण उनमें भी कुछ पिछड़े हुए हैं। संस्कृत में रीति का विवेचन करनेवाले अन्य कवियों के उदाहरणों द्वारा विषय का विवेचन करते थे, क्योंकि अलंकारादि की शैली का निरूपण पूर्ववर्ती कवियों के उदाहरणों से ही समीचीन होता है। भाषा के बाद व्याकरण के सूत्र बनाए जाते हैं, और काव्य की नींव पर रीति का महल खड़ा किया जाता है। अलंकारों आदि को आधार मानकर उनके अनुकूल उदाहरण रचने में तो वस्तुतः काव्य की स्वाभाविक प्रगति की उपेक्षा की जाती

है। हिंदी में पहले से ही वह बात नहीं थी। कुलपति ने संस्कृत का अनुगमन किया था, पर लोगों ने उस परिपाटी को पकड़ा ही नहीं। 'भूषण' हिंदी के इन आचार्यों की परंपरा के बाहर नहीं थे। इन्होंने भी अपनी कविता द्वारा 'शिवराज-भूषण' में अलंकारों का ढाँचा खड़ा किया।

'भूषण' के अलंकार-निरूपण में एक बात और खटकती है। लक्षण में कहीं-कहीं अलंकारों के प्रकार तो कई गिनाए हैं, पर उदाहरण सबके नहीं दिए। इसका कारण भी यही होगा कि भूषण की प्रस्तुत कविता में उस अलंकार का उदाहरण न रहा होगा। कहने का तात्पर्य यह है कि 'भूषण' में आलंकारिक विशेषता ढूँढ़ना और इनके ग्रंथ में अलंकार-शास्त्र के सूक्ष्म विभेद की दृष्टि से छान-बीन करना व्यर्थ है। आलंकारिक दृष्टि से भूषण का ग्रंथ उस श्रेणी से बहुत नीचे है, जिसमें वस्तुतः इस प्रकार के ग्रंथों को होना चाहिए। विषय को स्पष्ट करने के लिये यहाँ पर कुछ आलोचनात्मक विचार किया जाता है।

हम पहले कह चुके हैं कि पद्यों में लक्षण भली भाँति नहीं लिखे जा सकते। भूषण के लक्षण भी इसीलिये स्पष्ट नहीं हैं। पुस्तक अलंकार का आरंभ करनेवालों के काम की नहीं है। जो लोग अलंकार का ज्ञान पहले ही प्राप्त कर चुके हों, वे ही इसे पढ़कर उचित लाभ उठा सकते हैं। जिन लक्षणों की संगति बैठ सकती है, उन्हें हम छोड़ देते हैं। कुछ ऐसे लक्षणों पर यहाँ विचार किया जाता है जो विवादग्रस्त हैं।

पंचम 'प्रतीप' का लक्षण भूषण ने यों लिखा है—'हीन होय उपमेय सों, नष्ट होत उपमान'। इसका अर्थ है कि उपमेय से 'हीन' (घटकर) होने के कारण उपमान नष्ट हो जाय। पर रीति-ग्रंथों में पंचम 'प्रतीप' का यह लक्षण नहीं है। चंद्रालोककार इसका लक्षण इस प्रकार लिखते हैं—'उपमानस्य कैमर्थ्यमपि मन्वते'। इसका तात्पर्य यह है कि जब उपमेय उपमान का भी कार्य कर सकने में समर्थ है तो उसकी (उपमान की) क्या आवश्यकता ? अन्य लोगों ने पंचम 'प्रतीप' का यही लक्षण माना है। पुस्तक में इस अलंकार के तीन उदाहरण दिए गए हैं। पहले उदाहरण में उपमान के नष्ट होने की बात स्पष्ट वर्णित है। शेष जो उदाहरणों में उपमानों का 'कैमर्थ्य' दिखाया

गया है। भूषण के लक्षणानुसार 'प्रतीपता' नहीं रह जाती। उपमानों की केवल हीनता दिखाने से यह 'व्यतिरेक' का विषय हो जाता है।

'भूषण' ने विरोध और विरोधाभास दो अलंकार माने हैं। 'विरोध' का लक्षण यों लिखा है—'द्रव्य क्रिया गुन मैं जहाँ उपजत काज-विरोध।' यह लक्षण वस्तुतः बहुत भ्रामक है। 'विरोध' को कुछ लोगों ने स्वतंत्र अलंकार नहीं माना है, क्योंकि दो वस्तुओं के प्रत्यक्ष विरोध में कोई चमत्कार नहीं होता। दो वस्तुओं के बीच में उत्पन्न होनेवाले वैषम्य को लोगों ने 'विषम' अलंकार का विषय माना है उसका लक्षण इस प्रकार लिखा है—

'गुणक्रियाभ्यां कार्यस्य कारणस्य गुणक्रिये।
क्रमेण च विरुद्धे यत्स एव विषमो मतः॥'

'कार्य और कारण की गुण-क्रियाओं में विरोध हो।' यदि भूषण के उक्त लक्षण की संगति बैठाई भी जाय तो 'द्रव्य' शब्द उसमें व्यर्थ भासता है। यदि 'द्रव्य' के स्थान पर 'हेतु' होता तो लक्षण की विधि बैठ जाती। जान पड़ता है भूषण ने 'विरोध' में 'विरोधाभास' का लक्षण लिख दिया है। क्योंकि 'विरोधाभास' में द्रव्य, क्रिया, गुण और जाति का परस्पर विरोध दिखाया जाता है। 'विरोधाभास' के लक्षण में भूषण ने इन चारों पदार्थों का नाम भी नहीं लिखा है, केवल अलंकार के नाम की व्याख्या भर कर दी है। 'विरोध' के उदाहरण में वैषम्य तो है, पर कार्य-कारण का सबंध बहुत अच्छा नहीं है।

छेकानुप्रास और लाटानुप्रास का लक्षण 'भूषण' ने यों लिखा है—

स्वर-समेत अच्छर पदनि, आवत सदस-प्रकास।
भिन्न अभिन्ननि पदन सों छेक लाट-अनुप्रास॥

जहाँ अक्षरों का सादृश्य-प्रकाश हो वहाँ छेकानुप्रास और जहाँ अभिन्न पदों का सादृश्य-प्रकाश हो वहाँ लाटानुप्रास होता है।' भूषण के उक्त लक्षण में 'स्वर-समेत' पद चिंत्य है। बिना स्वर मिले भी केवल व्यंजनों से अनुप्रास होता है। 'भूषण' ने भी अपने उदाहरण में उसे ग्रहण किया है। जैसे 'दिल्लिय दलन' में 'द ल' अक्षरों का अनुप्रास है। पर दोनों शब्दों में इनकी मात्राएँ एक-सी नहीं हैं।

'संकर' का लक्षण भी 'भूषण' ने भ्रामक लिखा है--'भूषन एक कवित्त

मैं भूषन होत अनेक' यह वस्तुतः 'उभयालंकार' का लक्षण है, 'संकर' का नहीं। उभयालंकार के दो भेद 'संकर' और 'संसृष्टि' माने गए हैं। 'संकर' में अलंकारों की मिलावट दूध-पानी की तरह होती है और संसृष्टि में तिल-तंदुलवत्।

लक्षणों की अपेक्षा 'भूषण' के उदाहरण अधिक अशुद्ध हैं। उपमा के दूसरे उदाहरण में उपमान तो आया है, पर उपमेय का पता ही नहीं चलता। उक्त छंद का जो पाठांतर मिलता है, उससे छंद की संगति बैठ सकती है। पर पाठांतर में 'अलिफत्तै' मिलता है। इतिहास से इस नाम की पुष्टि नहीं होती। यदि इसे शाइस्ता खाँ के पुत्र 'अबुल फतह' का विकृत नाम मान लें, तो विधि बैठ सकती है। लुप्तोपमा के दूसरे उदाहरण में लिखा है—'तारे सम तारे गए मूँदि तुरकन के।' इसमें उपमा के चारों अंग स्पष्ट हैं। इससे यहाँ पूर्णोपमा होगी, लुप्तोपमा नहीं।

परिणाम अलंकार का उदाहरण भूषण ने ठीक नहीं दिया है। जगह-जगह वह रूपक हो गया है। लक्षण भी स्पष्ट नहीं है। रूपक और परिणाम में अंतर यह है कि रूपक में उपमान अपना कार्य करने की योग्यता स्वयं रखता है, पर परिणाम में उपमान असमर्थ होते हुए उपमेय के साहचर्य से समर्थ हो जाता है। 'भूषण' का पहला उदाहरण यह है—

भौंसिला भूप बली भुव को भुज भारी भुजंगम सों भरु लीनो।
'भूषन' तीखन तेज तरन्नि सों वैरिन को कियो पानिप हीनो॥
दारिद-दौ करि-बारिद सों दलि त्यों धरनीतल सीतल कीनो।
साहितनै कुल-चंद सिवा जस-चंद सों चंद कियो छबि छीनो॥

इसमें केवल पहली पंक्ति में परिणाम है। 'भुजंगम' उपमान पृथ्वी का भार उठाने में असमर्थ है, पर 'भुज' उपमेय के साहचर्य से उसमें उक्त योग्यता आ गई है। कुछ लोग 'भारी भुजंगम' का अर्थ 'शेषनाग' करते हैं। यदि 'भूषण' का तात्पर्य 'शेष' से हो, तो पहली पंक्ति में भी 'परिणाम' न होगा, क्योंकि शेष पृथ्वी का भार उठा सकते हैं। अन्य चरणों में शुद्ध रूपक है। इस अलंकार का दूसरा उदाहरण भी ठीक नहीं है।

भ्रमालंकार का उदाहरण भी अशुद्ध है। भ्रमालंकार में प्रकृत (उप-

मेय) को अप्रकृत (उपमान) के रूप में देखकर उसे अप्रकृत के तुल्य मान बैठना दिखाया जाता है। यह भ्रम निश्चयात्मक होता है। प्रकृत को भ्रम से अप्रकृत मान लिया जाता है। पर भूषण ने जो उदाहरण दिया है उसमें कहनेवाले को किसी प्रकार का भ्रम नहीं है—

सिंह सिवा के सुबीरन सों गो अमीर न बाचि गुनीजन घोषै।

यदि 'धोषै' पाठ रखते हैं और अर्थ करते हैं कि अमीर लोग गुणियों के धोखे से बचकर निकल नहीं जाने पाए तो भी 'भ्रम' की वास्तविक पुष्टि नहीं होती। यदि गुणियों के धोखे अमीर बच जाते तो इस अलंकार का कुछ आभास अवश्य मिलता। किंतु वहाँ भी चमत्कार के अभाव में अलंकारता की सिद्धि न होती।

'निदर्शना' के प्रथम भेद का उदाहरण भी चमत्कारहीन है। इसमें दो विभिन्न वाक्यों को उपमा के द्वारा एक किया जाता है। मम्मट लिखते हैं— 'अभवन्वस्तु-संबंध उपमापरिकल्पक:।' भूषण के उदाहरण में न तो दो विभिन्न वाक्य ही स्पष्ट हैं और न उपमा द्वारा उनका एकीकरण ही दिखाया गया है। देखिए—

बौद्ध मैं जो अरु जो कलकी महँ बिक्रम हूबे को आगे सुनो है।
साहस भूमि-अधार सोई अब श्री सरजा सिवराज मैं सोहै॥

'जो विक्रम बौद्ध और कल्कि में सुना गया था वही शिवाजी में शोभित है'। यहाँ दो विभिन्न वाक्य नहीं हैं। केवल 'जो सो' के द्वारा दोनों के विक्रम की एकरूपता मात्र दिखाई गई है। इससे यह एकदम अशुद्ध है। मम्मट ने कालिदास का यह प्रसिद्ध श्लोक इसके उदाहरण में उद्धृत किया है—

क्व सूर्यप्रभवो वंशः क्व चाल्पविषया मतिः।
तितीर्षुर्दुस्तरं मोहादुडुपेनास्मि सागरम्॥

इस श्लोक में पहली पंक्ति एक वाक्य और दूसरी पंक्ति दूसरा वाक्य है। दोनों की एकता उपमा के द्वारा दिखाई गई है।

समासोक्ति में श्लिष्ट विशेषणों के बल पर प्रस्तुत से अप्रस्तुत स्फुरित होता है। भूषण ने जो लक्षण दिया है उसमें अतिव्याप्ति दोष है, क्योंकि

वह अप्रस्तुत-प्रशंसा में भी घटित हो सकता है। दूसरा उदाहरण श्लेषालंकार हो गया है, क्योंकि 'भूषण' शिवाजी के पक्षवाले जिस अर्थ को अप्रस्तुत मानते हैं वह स्पष्टतया प्रस्तुत हो गया है। दोनों अर्थों के प्रस्तुत होने से श्लेष ही होगा, समासोक्ति नहीं—

तुही साँच द्विजराज है, तेरी कला प्रमान।
तो पर सिव किरपा करी, जानत सकल जहान॥

यही दशा तीसरे उदाहरण की भी है।

अप्रस्तुत-प्रशंसा में अप्रस्तुत के वर्णन द्वारा प्रस्तुत का बोध कराया जाता है। इसके पाँच भेद भी होते हैं, जिनमें एक 'अन्योक्ति' नामक प्रसिद्ध अलंकार भी है। भूषण के उदाहरणों में अन्योक्ति का एक भी उदाहरण नहीं है। जो उदाहरण दिए गए हैं, वे अस्पष्ट हैं। इन तीनों को कार्य-निबंधना का उदाहरण माना जा सकता है। पहले दो उदाहरणों में विशेष-निबंधना भी मान सकते हैं। पर भूषण ने एक 'सामान्य-विशेष' नामक अलंकार अलग माना है, जो विशेष-निबंधना से भिन्न नहीं है। एक उदाहरण देखिए—

हिंदुनि सों तुरुकिनि कहैं, तुम्हैं सदा संतोष।
नाहिन तुम्हरे पतिन पै, सिव सरजा को रोष॥

इस वर्णन से 'रोष के कारण' की ओर ध्यान जाता है, इसीसे इसे 'कार्य-निबंधना' कहा गया है। पर चमत्कार के अभाव में इसे अलंकारता नहीं प्राप्त हो सकती।

द्वितीय पर्यायोक्ति के उदाहरण में जो छंद रखा गया है, वह गोविंद गिल्ला भाई की प्रति को छोड़कर अन्य प्रतियों में कैतवापह्नुति में मिलता है। कैतवापह्नुति में एक उदाहरण और है। उसमें तो अपह्नुति किसी प्रकार सिद्ध भी हो जाती है, पर उक्त उदाहरण में पर्यायोक्ति ही होगी, अपह्नुति नहीं। कैतवापह्नुति में मिस, व्याज आदि शब्दों का प्रयोग निषेध के लिये होता है। इस प्रकार उपमेय का निषेध करके उपमान की स्थापना की जाती है, पर पर्यायोक्ति में 'मिस' कार्य-साधन के लिये होता है। यहाँ उपमेय-उपमान की स्थिति नहीं होती। 'पक्का मतो करिकै मलेच्छ मनसब छाँड़ि, मक्का ही के मिस उतरत दरियाव है।' में मक्का जाने का बहाना

प्राण बचाने के अभिप्राय से है। इसीसे हमने इसे 'पर्यायोक्ति' ही में रखा है। कैतवापह्नुति के उदाहरण में 'अमर के नाम के बहाने गो अमरपुर' में 'अमरसिंह' उपमेय का निषेध होकर 'देवता' उपमान की स्थापना की जा रही है, इससे इसमें अपह्नुति ही होगी।

समालंकार के उदाहरण भी अस्पष्ट हैं। भूषण दिखलाना चाहते हैं कि जैसा औरंगजेब था वैसे ही उसको शिवाजी मिले। पर कहने में न तो चमत्कार है और न अनुरूप वस्तुओं के योग की सम्यक् प्रशंसा। केवल 'जोर सिवा करता अनरत्थ भली भई हत्थ हथ्यार न आया' और 'भली करै सिवराज सों, औरंग करै सलाह' में 'भली भई' एवं 'भली करै' समालंकार के द्योतक आ गए हैं।

ऊपर समासोक्ति में शिवाजी वाले अर्थ की प्रधानता हो जाने से अलंकार के बिगड़ जाने का विवेचन किया जा चुका है। अलंकारों में बरबस शिवाजी के अर्थ को प्रकट करने के कारण 'विकल्प' अलंकार की भी दुर्दशा हो गई है। 'विकल्प' में दो समान बलवाली वस्तुओं का विरोध दिखाया जाता है। साहित्यदर्पणकार लिखते हैं—'विकल्पस्तुल्यबलयोर्विरोधश्चातुरीयुतः'। इसीलिये उक्त दोनों वस्तुओं में से किसी एक के होने का निश्चय नहीं होता; दोनों में विकल्प रहता है। पर भूषण ने शिवाजी की महत्ता दिखलाने के लिये अंत में जाकर शिवाजी के पक्ष को निश्चित कर दिया है। इसीसे विकल्प बिगड़ गया।

(१) मोरँग जाहु कि जाहु कमाऊँ सिरीनगरै कि कबित्त बनाए।
'भूषन' गाय फिरौ महि मैं बनिहै चित-चाह सिवाहि रिझाए॥
(२) और करौ किन कोटिक राह सलाह बिना बचिहौ न सिवा सों।

यदि कहा जाता कि या तो 'मोरँग' आदि में चित-चाह की पूर्ति हो सकती है या शिवाजी के यहाँ, तो अलंकार बन जाता। हाँ, बात ठीक न होती। यह अलंकार किसी दूसरे ढंग से रखा जा सकता था। जैसे यदि कहा जाता कि मनोभिलाष या तो शंकर पूर्ण कर सकते हैं या शिवाजी, तो अलंकार भी न बिगड़ता और बात भी बनी रह जाती। विकल्प में केवल दो समान बलवाली वस्तुएँ इसीलिये दिखाई जाती हैं कि तीसरी का अभाव होता है।

काकु-वक्रोक्ति के संबंध में हिंदी में पहले से ही गड़बड़ी चली आ रही है और आज तक वह दूर नहीं हो पाई है। वक्रोक्ति में दूसरे की उक्ति का भिन्नार्थ किया जाता है, अपनी उक्ति का नहीं। यदि कहें कि 'आप तो बड़े महाशय हैं' और इसका तात्पर्य कंठ-ध्वनि-विकार से 'आप तो बड़े दुराशय हैं' हो तो यह अपनी उक्ति का भिन्नार्थ हुआ। इस प्रकार के कथनों में विपरीत-लक्षणा के बल पर काक्वाक्षिप्त व्यंग्य सिद्ध होता है, वक्रोक्ति-अलंकार नहीं। भूषण ने भी परंपरा की लीक पीटी है, इसलिये वे इसके दोषी नहीं कहे जा सकते। संस्कृत के अलंकार-ग्रंथों में स्पष्ट परोक्ति की भिन्नार्थ-कल्पना लिखी है। मम्मटाचार्य लिखते हैं—

यदुक्तमन्यथा वाक्यमन्यथाऽन्येन योज्यते।
श्लेषेण काक्वा वा ज्ञेया सा वक्रोक्तिस्तथा द्विधा॥

साहित्य-दर्पणकार भी लिखते हैं—

अन्यस्यान्यार्थकं वाक्यमन्यथा योजयेद्यदि।
अन्यः श्लेषेण काक्वा वा सा वक्रोक्तिस्ततो द्विधा॥

इन ग्रंथों में जो उदाहरण दिए गए हैं, उनकी व्याख्या में परोक्ति का विश्लेषण किया गया है। उदाहरणों मात्र के पढ़ने से वहाँ भी अलंकार स्पष्ट नहीं होता। यथा—

काले कोकिलवाचाले सहकारमनोहरे।
कृतागसः परित्यागात्तस्याश्चेतो न दूयते॥

पहले एक सखी ने निषेधार्थ में कहा कि इस वसंत में भी अपराधी पति के त्याग से नायिका का चित्त खिन्न नहीं है। दूसरी सखी ने 'खिन्न नहीं है' को जरा गले की आवाज से दूसरी तरह से कहकर उसी बात को दोहराया। इसलिये अर्थ पलट गया। यहाँ वक्रोक्ति की सिद्धि के लिये दो सखियों की कथा का लंबा-चौड़ा अध्याहार करना पड़ा है। काव्य-प्रकाश का उदाहरण भी इसी प्रकार का है। हिंदीवालों ने केवल कंठ-ध्वनि-विकार को ही पकड़ा, परोक्ति को छोड़ दिया। वस्तुतः काकु की ऐसी योजना स्वतः भ्रामक है।

अधिक विश्लेषण की आवश्यकता नहीं। अन्य उदाहरणों की असार्थकता के लिये फलोत्प्रेक्षा, परिकर, विभावना (चतुर्थ), काव्यलिंग, अर्थांतरन्यास (वि-

शेप-भेद), मिथ्याध्वसिति, निरुक्ति और छेकानुप्रास के उदाहरण देखने चाहिएँ।

भूषण ने दो नवीन अलंकार भी लिखे हैं। इनके संबंध में हम पहले ही विचार कर चुके हैं। 'सामान्य-विशेष' अलंकार विशेष-निबंधना से भिन्न नहीं है। 'भाविक-छवि' एक स्वतंत्र अलंकार होने योग्य नहीं। उसे भाविक का ही भेद मानना चाहिए। भाविक में काल के अंतर पर उक्ति रहती है और भाविक-छवि में स्थान के अंतर पर उक्ति लिखी गई है। इसलिये इसे भाविक से भिन्न मानना ठीक नहीं। यह इसी का भेद कहा जा सकता है।

भूषण ने कुल १०५ अलंकार कहे हैं। जिनमें १०० अर्थालंकार हैं और ५ अलंकार अनुप्रास, यमक, पुनरुक्तिवदाभास, चित्र और संकर हैं। पहले चार शब्दालंकार हैं। संकर उभयालंकार का एक भेद है। अर्थालंकारों में भेदों की संख्या भी मिली हुई है। इससे इन्होंने अर्थालंकार भी पूरे नहीं कहे। अल्प, विकस्वर, ललित, मुद्रा, रत्नावली, गूढ़ोत्तर, सूक्ष्म, गूढ़ोक्ति, विवृतोक्ति, युक्ति, प्रतिषेध, विधि आदि अलंकार छूट गए हैं। जितने अलंकार लिखे हैं, उनमें से कुछ के पूरे भेद कहे हैं, कुछ के कुछ ही भेद कहे हैं और कुछ अलंकारों के भेद लिखे ही नहीं। उक्त नामावली को देखने से ज्ञात होगा कि भूषण ने मोटे तौर पर दो-एक अलंकारों को छोड़कर सभी मुख्य अलंकारों का वर्णन कर दिया है।

यद्यपि भूषण ने शिवाजी का चरित्र यथाक्रम नहीं लिखा है, पर उन्होंने स्फुट रूप से अपनी कविता में ऐसे-ऐसे उल्लेख किए हैं और उनके लिये ऐसी-ऐसी वाक्यावलियों का प्रयोग किया है, जिनका इतिहास से सामंजस्य सूक्ष्म बातों के जानने से ही भली भाँति समझा जा सकता है। कहीं-कहीं तथ्य की बातें आलंकारिक प्रयोगों के भीतर इस प्रकार छिपी हैं कि सहसा उनपर दृष्टि भी नहीं जाती। यही नहीं भूषण ने कई स्थलों पर जिस स्थान का जिस रूप में वर्णन किया है, ठीक वैसा ही वर्णन विदेशी भी अपने व्यक्तिगत पत्रों में करते पाए जाते हैं। विदेशी लोगों को हमने इसलिये लिया कि इन लोगों ने जो कुछ लिखा है उसपर पक्षपात का दोषारोपण सहसा नहीं हो सकता। यहाँ पर ऐतिहासिक समन्वय दिख-

इतिहास का समन्वय

लाने के लिये कुछ समानांतर पंक्तियाँ उद्धृत की जायँगी और कुछ स्थलों की व्याख्या की जायगी ।

(१) सूरत को मारि बदसूरत सिवा करी । (फु. २०)

Everything of beauty existing in Surat was that day reduced to ashes and many considerable merchants lost all that the enemy had not plundered through this terrible fire, narrowly escaping with their lives.

[Foreign Biogrophies of Shivaji, p. 361]

(२) होरी-सी जराय सिवा सूरत फनाँ करी । (फु. २१)

Meanwhile the burning and blazing, the weeping, wailing and lamenting of the unhappy people abandoned in the town were terrible to see and hear. Also, in spite of the already great danger caused by conflagration, Shivaji's people continued to augment it with fresh fuel.

[Vide, p. 361]

(३) सोचच्चकित भरोचच्चलिय बिमोचच्चखजल ।

(शि. भू. २५६)

One may indeed wonder that so populous a Town should so patiently suffer itself to be phundered by a handful of men. No sooner did *Shivagy* appear with his small body of Men; but all fled, some to the Country to save themselves at *Baroche*, and others to the Castle, whither the Governour retreated with the first. [Vide, p. 179]

(४) ऐसो ऊँचो दुरग महाबली को जामैं,

नखतावली सों बहस दीपावली करति है । (शि. भू. ५१)

It was so high and lofty that it could be seen from the adjacent country to the distance of many leagues. It was situated thirteen leagues from the sea × × × it was so shaped that from the highest top of that steep hill could be seen every place round its base. [Vide, p. 20]

Wee received order to assend up the hill into the castle; the Rajah having enordered us a house there, which we did, leaving Puncharra about 3 of the clock in the afternoon, we arrived at the top of that strong mountain about sunset. [Vide, p. 461]

(५) जहाँ पातसाही तहाँ दावा सिवराज को। (बा. २)

He has vowed to his Pagod never to sheath his sword till he has reached Dilly and shutt up Orangsha in it. Mora Punt, one of his Generalls, hath alsoe of late plundered Trumbeck Nasser and other consiredable places within the Mogulls territoryes which hath added much to his treatsure. [Vide, pp. 475-6]

(६) भौंसिला भुवाल साहितनै गढ़पाल दिन,
ढ़ैहू ना लगाए गढ़ लेत पचतीस को।
सरजा सिवाजी जयसाह मिरजा को लीबे,
सौगुनी बड़ाई गढ़ दीन्हे हैं दिलीस को॥

(शि. भू. २१४)

A discussion arose about the forts, and it was finally settled that out of the thirty-five forts, that he possessed, the keys of twenty-three should

be given up, with their revenues, amounting to ten lacs of huns, or forty lacs of rupees.

[Source Book of Maratha History (Khafi Khan), p. 147]

(७) दंत तोरि तखत तरे तें आयो सरजा। (शि. भू. १९९)

तत्सर्वं स्वामिभिस्तावन्न श्रुतं वा न वीक्षितम् ।
भवतामग्रतोत्युग्रैः सभायां तैर्महत्तरैः ॥
दशद्वादशसाहस्रैरश्ववाराधिपैः स्थितम् ।
तत्राप्यशल्लककरः क्रूरत्वं न विमुक्तवान् ॥

—पर्णालपर्वतग्रहणाख्यान, अध्याय २, श्लोक ३६-३७ ।

(८) परथो रह्यो पलँग परेवा सेवा ह्वै गयौ । (फु. २५)

द्रष्टव्यं स्वामिभिस्तत्र यद्यत्नेन रक्षितः ।
तथापि पक्षिवत्तूर्णं पुत्रेण सह निर्गतः ॥

—पर्णालपर्वतग्रहणाख्यान, अ० २, श्लो० ३८ ।

(९) साहि निजाम सखा भयो, दुग्ग देवगिरि खंभु । (शि. भू. ७)

एतस्मिन्नेव समये दुर्गं देवगिरिं श्रयन् ।
निजामशाहो धर्मात्मा पालयामास मेदिनीम् ॥

—शिव-भारत, अध्याय १, श्लोक ५९ ।

(१०) दानव आयो दगा करि जावली दीह भयारो महामद भारथो ।
(शि. भू. ९८)

इत्थं चेतसि चिन्तितं बत निजे म्लेच्छेन तेनच्छलम् ।
तद्विज्ञाय शिवः स एष सकलं सद्यस्तदीयं फलम् ॥
तस्मै दातुमथोद्यतो युधि यथा वक्ष्यामि सर्वं तथा ।
मन्ये तद्यशसा सुधामधुकथा पीयूषवार्ता वृथा ॥

—शिव-भारत, अध्याय २०, श्लोक ६५ ।

बलादफजलं नाम दनुजं हन्तुमुद्यतः ।
प्रस्थितोऽमित्रविजयी जयवल्लीं यदा शिवः ॥

—शिव-भारत, अध्याय २३, श्लोक ७ ।

(११) सिंह-थरि जाने विन जावली जँगल भठी,
हठी गज एदिल पठाय करि भटिक्यौ। (शि. भू. ६३)
जयवल्लीवनं घोरं गृहं कण्ठीरवस्य मे।
विशन्निधनमागन्ता द्विषन्नफजलो गजः ॥

—शिव-भारत, अ० १८, श्लो० ३९।

आलंकारिक प्रयोगों की लपेट में पड़े हुए कुछ ऐतिहासिक तथ्यों की भी बानगी लीजिए—

(१) ऊँचे सुछज्ज छटा उचटी प्रगटी परभा परभात की मानौ।
(शि. भू. ९९)

यह पंक्ति 'सिंहगढ़' के प्रसंग में आई है। ऐतिहासिक तथ्य के बिना जाने 'ऊँचे सुछज्ज छटा उचटी' का अर्थ नहीं लग सकता। तानाजी मालसरे ने अँधेरी रात में सिंहगढ़ पर आक्रमण किया था। जब मराठों ने किले पर आधिपत्य स्थापित कर लिया तो उन्होंने घुड़सवारों की झोपड़ियाँ जलाकर उसके प्रकाश द्वारा शिवाजी को विजय की सूचना दी थी। शिवाजी उस समय सिंहगढ़ से ९ मील की दूरी पर राजगढ़ में थे। इसी प्रकाश को लक्ष्य करके कवि ने उक्त पंक्ति कही है।

(२) आकुत महाउत सुअंकुस लै सटक्यौ। (शि. भू. ६३)

इस पद्यांश में कवि ने 'अंकुश' शब्द का श्लिष्ट प्रयोग किया है। याकूत खाँ, अंकुश खाँ आदि बीजापुरी योद्धा थे, जो अफजल खाँ की सहायता कर रहे थे। जब अफजल खाँ मारा गया तो ये सब भाग गए। अपने अपमान का बदला लेने के लिये इन सबने शिवाजी से युद्ध करने की एक नई योजना तैयार की थी, पर ये उसमें भी असफल रहे।

(३) ये अब सूबहु आवैं सिवा पर कालिह के जोगी कलींदे को खप्पर। (शि. भू. ३२१)

यह पंक्ति बहादुर खाँ के संबंध में लिखी गई है। छंद छेकोक्ति के उदाहरण में रखा गया है। छेकोक्ति में अर्थांतरर्भित लोकोक्ति का प्रयोग होता है। ऐतिहासिक तथ्य जाने बिना उक्त लोकोक्ति का अभिप्रायांतर स्पष्ट नहीं हो सकता। इसीसे कुछ लोगों ने इसे लोकोक्ति का उपयुक्त उदाहरण नहीं

माना है। पर बहादुर खाँ का इतिहास जान लेने से कवि का अभिप्रेत स्पष्ट हो जाता है। यह गुजरात का सूबेदार था। महाबत खाँ के धीमे कार्य से असंतुष्ट होकर औरंगजेब ने इसे दिलेर खाँ के साथ शिवाजी को दबाने के लिये भेजा था। जब महाबत खाँ और शाहजादा मुअज्जम दक्षिण से लौट आए तो यह १६७२ में वहाँ का सूबेदार नियत किया गया। इसके कार्य से प्रसन्न होकर औरंगजेब ने जनवरी या फरवरी १६७३ में इसे 'खाँ जहाँबहादुर' की उपाधि से विभूषित किया था। भूषण का ग्रंथ मई १६७३ में समाप्त होता है। बहादुर खाँ की चढ़ाई को लक्ष्य करके कवि ने इसीसे उसे 'कालिह के जोगी' कहा है। जिन शिवाजी से शाइस्ता खाँ ऐसे पुराने और राज्य-कार्य में मँजे हुए व्यक्ति भी हारकर भाग जाते हैं, उनपर चढ़ाई करे और जीत जाय, यह कैसे संभव हो सकता है!

अधिक उदाहरण देकर विषय को बढ़ाना व्यर्थ है, यदि पाठक ऐतिहासिक विवरण को सामने रखकर उसके प्रकाश में भूषण की कविता देखेंगे, तो उन्हें इस प्रकार के सैकड़ों स्थल मिलेंगे। अभी तक ऐतिहासिक छान-बीन के साथ भूषण की कविता पर भरपूर विचार नहीं हो पाया है। जिन्होंने ऐतिहासिक तथ्यों को लेकर भूषण की कविता की आलोचना की है, वे केवल अपने पक्ष के ही समर्थन में लगे रहे हैं। इससे उनका विचार इस दृष्टि से पक्षपातहीन नहीं कहा जा सकता। इधर-उधर से ईंटे-रोड़े जुटाकर एक कामचलाऊ घर बना लेना दूसरी बात है और गहरी नींव देकर सुडौल पत्थरों से महल उठाना दूसरी बात। हिंदी में बहुत शीघ्र वह दिन आनेवाला है, जब भूषण-कथित ऐतिहासिक तथ्यों की भरपूर जाँच होगी और कितने ही छिपे हुए रहस्य सामने आवेंगे।

भूषण की कविता में काव्य-दोष भी पर्याप्त पाए जाते हैं। इन काव्य-दोषों के कारण भूषण की कविता का महत्त्व घटा हुआ दिखाना हमारा तात्पर्य

काव्य-दोष

नहीं है; वरन् दोषों की स्थिति से काव्य के रसास्वादन में जो बाधा पड़ती है, उसपर विचार करना है। भूषण की कविता में जो दोष पाए जाते हैं, वे इतने बड़े भी नहीं हैं कि उनके कारण भूषण अपनी श्रेणी से नीचे उतार दिए जा सकें। हमारा विश्वास

है कि इसमें बहुत से दोष प्रतिलिपिकारों की असावधानी और भाटों आदि के अज्ञान से भी आ गए हैं। पर दोष किसी प्रकार से हो अथवा किसी प्रकार का हो, छोटा हो या बड़ा, उसका न होना ही अच्छा है। संभव है अधिक जाँच-पड़ताल होने पर ये दोष भ्रामक भी सिद्ध हों। विभिन्न हस्तलिखित प्रतियों से पाठांतरों का चुनाव करते समय हमें ज्ञात हुआ कि कितने ही दोष प्रमाद से ही प्रचलित हो गए हैं।

भूषण की कविता में अधिक आनेवाले दोष विरति-भंग और यति-भंग हैं। कवित्तों के चरणों में 'विश्राम' यथास्थान नहीं है। प्रवाह तो स्थान-स्थान पर उखड़ा हुआ देखा जाता है। मंगलाचरण के पहले कवित्त में दो स्थानों पर विरति-भंग है। देखिए—

इहिलोक परलोक सुफल करन कोक-
नद से चरन हिये आनिकै जुड़ाइए।
अलि-कुल-कलित कपोल ध्याइ ललित,
अनंद-रूप सरित मैं 'भूषन' अन्हाइए॥

कवित्त में १६ अक्षरों के बाद चरण के बीच में 'विश्राम' होता है। यहाँ पहले चरण में 'विश्राम' के कारण 'कोकनद' के दो टुकड़े हो जाते हैं। दूसरे चरण में नियमानुसार विश्राम 'अनंद' के 'अ' अक्षर के बाद पड़ता है। एक उदाहरण और लीजिए—

सुभट सराहे चंदावत कछवाहे,
मुगलौ पठान ढाहे फरकत परे फर मैं॥

यहाँ 'मुगलौ' के 'मुग' के बाद 'विश्राम' पड़ता है। यहीं नहीं, पहले उदाहरण में तो 'प्रवाह' अधिक बिगड़ा नहीं है, पर दूसरे उदाहरण में बिलकुल प्रवाह नहीं है।

सातौ बार आठौ याम जाचक नेवाजै नव,
अवतार थिर राजै कृपन हरि गदा।

इस चरण के उत्तरार्द्ध में कई लघु अक्षरों के आ जाने से धारा बिगड़ गई है। यहाँ 'कृपान' के लिये 'कृपन' का प्रयोग बहुत खटकता है।

चंपा चमेली चारु चंदन चारिहू दिसि देखिए।
लवली लवंग यलानि केरे लाखहों लगि लेखिए॥
कहुँ केतकी कदली करौंदा कुंद अरु करवीर हैं।
कहुँ दाख दाड़िम सेव कटहल तूत अरु जंभीर हैं॥

यहाँ 'केरे' कह लेने के बाद 'कदली' कहना पुनरुक्ति है। यदि 'केरे' का अर्थ 'के' लगाया जाय तो भी 'आकांक्षा' रह जाती है। 'केरे' के बाद 'वृक्ष' आदि शब्द के न रहने से फिर भी 'न्यूनपदत्व दोष' होगा।

वैरि-नारि दृग-जलन सों वूड़ि जात अरि-गाँव।

इस पंक्ति में 'वैरि' और 'अरि' में पुनरुक्ति-दोष है। दोहा बहुत छोटा छंद है, उसके एक ही दल में शत्रुवाची दो शब्दों का आना खटकता है। 'अरि' तो व्यर्थ ही रखा है। केवल 'गाँव' से ही 'शत्रु-ग्राम' की अभिव्यक्ति हो जाती है।

दावा द्रुम-दंड पर चीता मृग-झुंड पर,
'भूषन' बितुंड पर जैसे मृगराज है।

यहाँ पर दावाग्नि द्वारा पेड़ की डाल (दंड) जलने की बात कही गई है। दावाग्नि से केवल पेड़ की शाखा ही नहीं जलती, वन-का-वन जल जाता है। कहीं-कहीं 'दंड' के स्थान पर 'डुंड' पाठ मिलता है। इस पाठ से 'सूखा वृक्ष' अर्थ होगा। यदि कवि का भाव शीघ्रता से जलाने अथवा भस्मीभूत करने का हो, तो भी संगति नहीं बैठती।

दुहूँ कर सों सहसकर मानियतु तोहि,
दुहूँ बाहु सों सहसबाहु जानियतु है।

यहाँ 'दुहूँ' का प्रयोग 'दो ही' के अर्थ में हुआ है। पर 'दुहूँ' का अर्थ 'दोनों ही' होता है। 'दो ही' के लिये 'दोई' या 'दुही' का प्रयोग हो सकता था, 'दुहूँ' खटकता है।

बिन अवलंब कलिकानि आसमान में ह्वै,
होत बिसराम जहाँ इंदु औ उदथ के।

यहाँ 'उदय' का अर्थ है 'उदय और अस्त होनेवाले सूर्य'। यह शब्द

गड़ा हुआ है। इसका रूप इतना बिगड़ गया है कि सहसा इसका अर्थ स्फुरित नहीं होता। कहीं-कहीं 'उडु थके' पाठ भी है। 'होत' की जगह 'लेत' मिलता है। इस पाठ से उक्त दोष तो नहीं रह जाता, पर अर्थ में चमत्कार 'सूर्य' के रहने से ही अधिक है, उडु (तारा) के रहने से नहीं।

वीर-रस-ख्याल सिवराज भुवपाल लुव,
हाथ को बिसाल भयो 'भूषन' बखान को।

यह शिवाजी के खड्ग का वर्णन है। 'हाथ को बिसाल' का अर्थ है—'हाथ की विशालता का कारण'। केवल 'बिसाल' शब्द से यह अर्थ प्रकट नहीं हो सकता। यह शब्द उक्त अर्थ के लिये असमर्थ है।

तेहि निषेध अभ्यास ही, भनि भूषन सो और।

यह 'निषेधाक्षेप' का लक्षण है। उक्त पंक्ति का अर्थ तो यह है कि जहाँ निषेध का अभ्यास (दिखाया गया) हो वहाँ अन्य आक्षेप (निषेधाक्षेप) होता है। निषेधाक्षेप में निषेध का आभास होता है अभ्यास नहीं। जान पड़ता है प्रतिलिपिकारों के प्रमाद से 'आभास' के स्थान पर 'अभ्यास' हो गया है। 'अभ्यास' से तो लक्षण एकदम विरुद्ध हो जाता है।

नरलोक मैं तीरथ लसै महि तीरथों की समाज मैं।
महि मैं बड़ी महिमा भली महिमै महारज लाज मैं॥

यहाँ 'महि' शब्द का अर्थ अस्पष्ट है। 'महि' का अर्थ 'पृथ्वी' नहीं होगा; क्योंकि तीर्थ ही वस्तुतः पृथ्वी में होते हैं, तीर्थों में पृथ्वी नहीं। यदि 'महि' का अर्थ 'महाराष्ट्र' लिया जाय, जैसा कुछ लोगों ने लिखा है, तो भी ठीक-ठीक संगति नहीं बैठती। 'महि' शब्द इस अर्थ का बोध कराने में भी असमर्थ है।

'शिवराज-भूषण' के छंद ३१५ में 'को चकवा को सुखद ?' का उत्तर 'साहिनंद' पड़ता है। शिवाजी के पक्ष में तो 'साहिनंद' का अर्थ स्पष्ट है, पर उक्त उत्तर में इसकी विधि नहीं बैठती। यदि 'चकवा' का अर्थ 'चक्रवाक' किया जाय तो उत्तर में सूर्यवाची कोई शब्द आना चाहिए। 'साहिनंद' का अर्थ 'सूर्य' नहीं हो सकता। यदि 'चकवा' का अर्थ 'चक्रवर्ती' लिया जाय तो

'साहिनंद' का अर्थ 'राजपुत्र' होगा। दूसरे अर्थ से संगति बैठ तो जाती है, पर शब्दावली इतनी भ्रामक है कि यह अर्थ भी शीघ्र स्फुरित नहीं होता।

कंस के कन्हैया, कामदेवहू के कंठनील,
कैटभ के कालिका बिहंगम के बाज हो।

यहाँ 'कंस के कन्हैया' आदि कह लेने पर 'बिहंगम के बाज' कहना पतत्प्रकर्ष दोष है।

अधिक विवेचन की आवश्यकता नहीं। भूषण की कविता में शब्द का चुनाव और वाक्यों का संगठन जगह-जगह इतना बेढंग और उखड़ा हुआ है कि वास्तविक तात्पर्य या तो खींचा-तानी से निकालना पड़ता है या बहुत देर में प्रकट होता है। अलंकारों के दोष पहले ही दिखाए जा चुके हैं। इन सब दोषों पर दृष्टि डालने से भूषण की कविता बहुत छिन्न-भिन्न ज्ञात होती है।

अलंकारों की दृष्टि से भूषण की तुलना किसी कवि से करना व्यर्थ है। केवल वीर-काव्य की दृष्टि से भूषण की कविता तुलना के लिये सामने लाई जा सकती है। वीर-कविताकारों में भी कितने ही कवि चरितनायकों के अनुपयुक्त चुनाव के कारण भूषण के मेल में नहीं आ सकते। 'रासो' के रचयिताओं को भी समता के लिये सामने नहीं ला सकते, क्योंकि उन्होंने वीर-रस की जो धारा बहाई है उसे बेमेल शृंगार के खारे समुद्र में गिराया है। भूषण की कविता दुरंगी नहीं है। शृंगार पर इन्होंने जो कुछ कहा है, वह एकदम अलग है। वीर में कहीं भी शृंगार का पुट नहीं दिया है। इससे शुद्ध वीर-काव्य लिखनेवालों से ही इनकी तुलना की जा सकती है। शुद्ध वीर-काव्यकारों में केवल लाल और सूदन ही ऐसे हैं, जो किसी प्रकार भूषण के सामने लाए जा सकते हैं। पर इन दोनों कवियों ने भी वीर-रस के वर्णन में भाषा एवं छंद का चुनाव ठीक नहीं किया है। अपने वर्ण्य-विषय को भी ऐसे बेढंगे तौर से हाथ में लिया है कि उसका स्वारस्य बिगड़ गया है। लाल ने काव्य को इतिहास मानकर कोरी कथा कही है। सूदन ने निष्प्रयोजन वस्तुओं की सूची गिनाने की ऐसी रुचि दिखाई है कि वीर-काव्य अस्त्र-शस्त्रों एवं युद्ध-वाहनों का एक कोष हो गया है। लाल ने वीर-रस के लिये दोहे-चौपाइयों को

तुलनात्मक आलोचना

लिया है और इन छंदों में ब्रजभाषा का प्रयोग किया है। इसी से वीर-रस का 'ओज' उसमें बहुत दब गया है। सूदन ने अरबी-फ़ारसी के शब्दों का ऐसा ढेर लगाया है कि उसी में भाव दबकर रह गए हैं, प्रसाद का कहीं पता भी नहीं है। इस विचार से भूषण की कविता हिंदी के सभी वीर-कविताकारों से उत्कृष्ट है। भूषण इस क्षेत्र के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। ये वीर-काव्यकारों के 'भूषण' हैं।

उपसंहार

उक्त विवेचन पर भली भाँति विचार करने और भूषण की कविता पर सूक्ष्म दृष्टिपात करने से पता चलेगा कि इनकी कविता का इतना अधिक प्रचार काव्य की दृष्टि से नहीं हुआ है। अलंकार का ज्ञान प्राप्त करने के लिये कोई 'शिवराज-भूषण' को नहीं उठाता, काव्य की बारीकियाँ ढूँढ़ने और सूक्तियों पर लोट-पोट होने के लिये कोई भूषण की कविता नहीं पढ़ता। काव्य की चमत्कारपूर्ण सूक्तियाँ तो वीर-देवकाव्यों में भूषण से कहीं अच्छी हैं, पर उनका प्रचार एकदम नहीं है। इनकी कविता के पढ़ने और सुनने की लालसा का कारण दूसरा ही है इन्होंने अपनी कविता में लोक-रक्षा और लोक-रंजन के भावों को प्रधानता दी है। इसीलिये इन्होंने शिवाजी ऐसे लोकोपकारक एवं देश-रक्षक नायक का आश्रय लिया था। जिन भावनाओं से लोक में शांति और सुख की प्रतिष्ठा होती है अथवा जिन वीरों के द्वारा लोक का कल्याण एवं उद्धार होता है, जनता उन्हीं को अपने हृदय-मंदिर में प्रतिष्ठित करती है। भूषण ने इस बात को भली-भाँति समझा था। इसी से वे लिखते हैं—

'भूषन' यों कलि के कबिराजन राजन के गुन गाय नसानी।
पुन्य-चरित सिवा सरजै सर न्हाय पवित्र भई पुनि बानी॥

जब तक पृथ्वी पर हिंदू जाति का अस्तित्व रहेगा, छत्रपति शिवाजी का गुण-गान होता रहेगा, और जब तक भारत में हिंदी-भाषा जीवित रहेगी, भूषण की कविता चाव के साथ पढ़ी जायगी।

ब्रह्मनाल, काशी।
विजयादशमी, १९८८ } **विश्वनाथप्रसाद मिश्र**

कविवर भूषण

हिंदी के प्राचीन कवियों की जीवनी का पूरा पता लगना बहुत कठिन हो गया है। साधारण कवियों की कौन कहे, महाकवियों के संबंध में भी बहुत थोड़ी बातें ज्ञात होती हैं। महाकवि भूषण इसके अपवाद नहीं थे। बाह्य और आभ्यंतर प्रमाणों के द्वारा भूषण का जो जीवन-वृत्त ज्ञात हुआ है, वह संक्षेप में यहाँ दिया जाता है।

कवि ने 'शिवराज-भूषण' के आदि में अपने वंश, जाति और ग्राम के संबंध में कुछ दोहे लिखे हैं। उनका आशय यह है—'भूषण कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। इनका गोत्र कश्यप था। इनके पिता का नाम रत्नाकर (त्रिपाठी) था। ये त्रिविक्रमपुर (तिकवाँपुर) में यमुना के किनारे रहते थे, जहाँ वीरबल के ऐसे वीर राजा उत्पन्न हुए थे और जहाँ विश्वेश्वर के समान देव-विहारीश्वर महादेव हैं।' तिकवाँपुर कानपुर जिले की घाटमपुर तहसील में यमुना के बाँयें किनारे पर है। इसके पास 'अकबरपुर वीरबल' नाम का एक छोटा-सा गाँव है, जहाँ वीरबल के उत्पन्न होने की बात कही जाती है। गाँव से कुछ दूर सड़क के किनारे 'देव-विहारीश्वर' का मंदिर भी है। गाँव में भूषण के वंश का अब कोई नहीं है। वहाँ के लोग भूषण की कविता भी नहीं जानते।

कहा जाता है कि रत्नाकर त्रिपाठी देवी के बड़े भक्त थे। गाँव से थोड़ी दूर पर 'रन-बन की भुइयाँ' नाम की देवियों का एक स्थल है, वहीं वे चंडी-पाठ किया करते थे। इनके चार पुत्र कहे जाते हैं—चिंतामणि, भूषण, मतिराम और नीलकंठ (उपनाम जटाशंकर)। चिंतामणि और भूषण के भाई होने की बात कई जगह पाई जाती है। 'चिटणीस बखर' में भी भूषण के भाई चिंतामणि का नाम लिया गया है। मीर गुलामअली ने अपने 'तजकिरए सर्व आजाद' में चिंतामणि के दो भाइयों—भूषण और मतिराम का नाम लिखा है। यह ग्रंथ सं० १८०८ का बना है। केवल नीलकंठ के भ्रातृत्व का लिखित प्रमाण अभी तक नहीं मिला है। भूषण के भ्रातृत्व के संबंध में बहुत मतभेद है। पर किसी पुष्ट प्रमाण के अभाव में इस जनश्रुति को सरासर अशुद्ध भी नहीं माना जा सकता।

ये चारों भाई कवि थे। चिंतामणि मुगल-दरबार में रहते थे और मतिराम बूँदी में। भूषण और नीलकंठ घर पर ही रहा करते थे। नीलकंठ साधु-सेवा में अधिक रहते थे। भूषण घर से निकलकर शिवाजी के दरबार में कैसे पहुँचे इस संबंध में कई किंवदंतियाँ प्रचलित हैं। एक किंवदंती का आशय यह है कि एक बार दाल में नमक कम था। इन्होंने अपनी भाभी से नमक माँगा। उसने कह दिया कि क्या नमक कमाकर लाए हो, जो दूँ ? इसी पर भूषण भोजन छोड़कर उठ गए और यह कहकर घर से बाहर निकले कि जब नमक लावेंगे तभी भोजन करेंगे। दूसरी किंवदंती यह है कि भूषण की स्त्री गणेश-चतुर्थी के दिन गणेशजी की पूजा में घाट पर नहीं गई इसपर उसकी जेठानी ने ताना मारा कि अपने पति से कहो दरवाजे पर जीवित गणेश (हाथी) लाकर बाँध दें। यहीं पूजा किया करो। फलतः भूषण हाथी के प्राप्त करने के लिये घर से बाहर निकल पड़े। पहली किंवदंती में कहा जाता है कि भूषण ने एक लाख का नमक भेजा था। दूसरी के अनुसार कई हाथी भेजे गए थे।

घर से बाहर निकलने पर भूषण किस प्रकार शिवाजी के दरबार में पहुँचे इस संबंध में भी दंत-कथाएँ प्रचलित हैं। कहा जाता है कि भूषण पहले औरंगजेब के दरबार में गए और वहाँ इन्होंने वीर-रस की कविता सुनाई। इन्होंने कविता सुनाने के पहले बादशाह से कहा कि आपका हाथ श्रृंगार-रस की कविता सुनने से कुठौर में लगा होगा, हमारी वीर-रस की कविता सुनकर वह मूछों पर जायगा, इसलिये उसे धो डालिए। बादशाह ने यह कहकर हाथ धो लिया कि यदि मूछों पर हाथ न गया तो तुम्हारा सिर उतरवा लिया जायगा। भूषण ने कविता सुनाई। बादशाह का हाथ मूछों पर चला गया। वह बहुत प्रसन्न हुआ। अब भूषण का दरबार में मान होने लगा। एक दिन औरंगजेब ने कवियों से कहा कि आप लोग हमारी प्रशंसा ही करते हैं, क्या हममें कोई दोष ही नहीं है ? और कवि तो चापलूसी करते रह गए, पर भूषण ने बादशाह से कहा कि यदि आप मुझे कविता सुनने के बाद माफ कर देने का वचन दें तो मैं कुछ कहूँ। बादशाह ने बात स्वीकार की और भूषण ने "किबले के ठौर बाप बादशाह साहजहाँ" (फु० ४२) पढ़ सुनाया। औरंगजेब बहुत क्रुद्ध हुआ और उसने भूषण को मार डालने का हुक्म दिया।

लोगों ने उसे उसके वचन की याद दिलाई। इससे भूषण बच गए। औरंगजेब ने कहा कि तू मेरी आँखों के सामने से हट जा। भूषण डेरे पर आए और अपनी 'कबूतरी घोड़ी' पर चढ़कर वहाँ से चल पड़े।

जिस समय भूषण घोड़ी पर चढ़े जा रहे थे, उसी समय बादशाह नमाज पढ़ने के लिये हाथी पर निकला। बादशाह ने इन्हें देख लिया और पुछवाया कि कहाँ जा रहे हो। भूषण ने कह दिया कि महाराज शिवाजी के यहाँ। औरंगजेब ने यह बात सुनकर कई सवार भूषण को पकड़ लाने के लिये भेजे, पर उनकी 'कबूतरी घोड़ी' को कोई पा न सका।

भूषण ने इन बातों का वर्णन कहीं नहीं किया है। उन्होंने केवल निम्न-लिखित दोहा लिखा है, जिससे सुलंकियों के यहाँ जाने की बात सिद्ध होती है—

कुल-सुलंक चितकूटपति, साहस-सील-समुद्र।
कवि-भूषन पदवी दई, हृदयराम-सुत-रुद्र॥

'हृदयराम-सुत-रुद्र' का ठीक-ठीक पता अभी तक नहीं चला है। एक कवित्त भूषण ने किसी 'सुलंकी' के रण-प्रस्थान पर लिखा है। इससे जान पड़ता है कि ये उनके यहाँ अवश्य गए थे। उक्त दोहे से यह भी ज्ञात होता है कि संभवतः इनका नाम भूषण नहीं था, यह पदवी इन्होंने सुलंकियों के यहाँ पाई थी। कुछ दिन हुए 'विशाल-भारत' में एक लेख निकला था, जिसमें इनका नाम 'पतिराम' बतलाया गया है।

कुछ लोग कहते हैं कि भूषण पहले महाराज छत्रसाल के दरबारी कवि थे, फिर उनके यहाँ से ये शिवाजी के यहाँ गए। चिटणीस बखर में भूषण का पहले कमाऊँ जाना लिखा है, उसके बाद शिवाजी के दरबार में और शिवाजी के दरबार से औरंगजेब के दरबार में जाने की बात कही गई है। चाहे जो हो, शिवाजी की उदात्त-वृत्तियों और लोक-रक्षक चरित्र से ही आकृष्ट होकर ये उनके दरबार में गए थे। भूषण लिखते हैं—

सिव-चरित्र लखि यों भयो, कवि भूषन के चित्त।
भाँति-भाँति भूषननि सों, भूषित करौं कवित्त॥

भूषण से शिवाजी की भेंट कैसे हुई, इस संबंध में भी एक कथा प्रच-

लित है। भूषण जब रायगढ़ पहुँचे तो किसी देव-मंदिर में ठहरे। वहाँ भेस बदले हुए शिवाजी यह पता लगाने आए कि यह यात्री किस अभिप्राय से यहाँ आया है। भूषण ने बतलाया कि हम शिवाजी को अपनी कविता सुनाना चाहते हैं। उन्होंने कहा कि कुछ हमें भी सुनाइए। इसपर भूषण ने उनका परिचय पूछा। उन्होंने अपने को शिवाजी का सिपाही कहा। तब भूषण ने उन्हें शिवाजी का निकटस्थ समझकर कविता सुनानी प्रारंभ की। इन्होंने 'इंद्र जिमि जंभ पर' (शि० भू० ५६) ५२ बार पढ़ा। कुछ लोगों का कहना है कि भूषण ने केवल १८ बार ही यह कवित्त पढ़ा था। दूसरे लोग कहते हैं कि भूषण ने ५२ बार में ५२ कवित्त या छंद पढ़े थे, जो आगे चलकर 'शिवा-बावनी' के नाम से संगृहीत हुए। यदि 'शिवा-बावनी से।उक्त कथा का संबंध जोड़ा जाता है, तो भिन्न-भिन्न ५२ छंदों का पढ़ना ही उचित जँचता है। यह बात अवश्य है कि भूषण की वे ५२ कविताएँ ठीक उसी क्रम और उसी रूप में 'शिवा-बावनी' में संगृहीत नहीं मिलतीं।

जब भूषण ने आगे पढ़ने से इनकार कर दिया तो उक्त सिपाही उनसे यह कहकर चला गया कि कल शिवजी के दरबार में आइएगा, वहीं भेंट होगी। भूषण जब दरबार में पहुँचे तो उसी व्यक्ति को सिंहासन पर विराजमान पाया। इन्हें यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। इन्होंने तब समझा कि वस्तुतः कल शिवाजी से ही भेंट हुई थी। महाराज ने इनका बड़ा सत्कार किया और इन्हें ५२ लाख रुपये, ५२ हाथी और ५२ गाँव पुरस्कार में दिए। उन्होंने कहा कि कल मैंने प्रतिज्ञा की थी आप जितने (अथवा जितनी बार) कवित्त सुनावेंगे उतने लाख रुपये, उतने ही हाथी और उतने ही गाँव आपको पुरस्कार में दूँगा। आपने बावन से अधिक नहीं सुनाए, अन्यथा आपको इससे भी अधिक पुरस्कार मिलता। इन्हीं रुपयों से इन्होंने भाभी के पास नमक भेजवाया था।

कहा जाता है कि शिवाजी के यहाँ कुछ दिनों तक रहकर ये अपने घर को लौटे। लौटते समय ये महाराज छत्रसाल के दरबार में गए। इन्हें शिवाजी का राजकवि समझकर महाराज छत्रसाल ने इनका बड़ा आदर किया और इनका यथोचित सम्मान करने के लिये बिदा करते समय

इनकी पालकी का डंडा अपने कंधे पर रख लिया। 'भूषण' यह देखकर पालकी से कूद पड़े और उनकी प्रशंसा में दस कवित्त पढ़े, जो 'छत्रसाल-दशक' नाम से संकलित किए गए हैं।

कहते हैं कि घर पर कुछ दिनों आराम करने के बाद ये कमाऊँ-नरेश के यहाँ गए। जब ये वहाँ से चलने लगे तो राजा इन्हें विदाई में एक लाख रुपये देने लगा। भूषण ने यह कहकर रुपये नहीं लिए—'शिवाजी ने मुझे इतने रुपये दे दिए हैं कि मुझे अधिक की चाह नहीं रही। मैं तो यह देखने आया था कि यहाँ तक छत्रपति शिवाजी का यश फैल गया है या नहीं?' 'चिटणीस बखर' में शिवाजी के यहाँ जाने के पहले ही भूषण का कमाऊँ जाना लिखा है और भूषण के वहाँ से चले आने के संबंध में यह बात लिखी है—"एक दिन राजा ने पूछा कि क्या मेरे ऐसा भी कोई दानी इस पृथ्वी पर कहीं होगा? भूषण ने कहा 'बहुत से हैं'। जब राजा इन्हें एक लाख रुपये देने लगा तो इन्होंने यह कहकर रुपया लेना अस्वीकार कर दिया कि अभिमान से दिया हुआ रुपया हम नहीं लेंगे। यह कहकर ये वहाँ से दक्षिण चले आए।"

लोगों का कहना है कि घर आने के बाद ये पुन: एक बार दक्षिण गए। इन्होंने अपने 'शिवराज-भूषण' में इसीलिये शिवाजी के राज्याभिषेक का वर्णन नहीं किया अथवा उसमें उत्सव की कविता नहीं मिलती क्योंकि ये उस समय घर पर थे। दूसरी बार दक्षिण जाने पर ये महाराज शिवाजी के स्वर्गवासी होने पर घर लौटे। कहा जाता है कि साहू के गद्दी पर बैठने पर ये एक बार और दक्षिण गए और वहाँ से दो-एक वर्ष बाद चले आए।

कुछ लोगों का कहना है कि भूषण कई राजदरबारों में गए थे। ये अपने भाई मतिराम के राजदरबार बूँदी में भी गए थे। बूँदी के राव बुद्ध के बारे में इनके दो पद्य भी मिलते हैं। भूषण के फुटकर कई छंद ऐसे मिलते हैं जिनमें विभिन्न नरेशों की प्रशंसा की गई है। इसके आधार पर भूषण के बहुत से आश्रयदाता नहीं माने जा सकते। क्योंकि उन छंदों में से सभी 'भूषण' के ही रचे हैं, इस बात का भी कोई पुष्ट प्रमाण नहीं है।

'शिवसिंह-सरोज' में भूषण के बनाए हुए चार ग्रंथों का नाम लिखा

है—शिवराज-भूषण, भूषण-हजारा, भूषण-उल्लास और दूषण-उल्लास। शिवसिंहजी ने केवल सुनी हुई बात लिखी है। इन चारों ग्रंथों में से केवल 'शिवराज-भूषण' मिलता है, शेष नहीं मिलते। 'शिवराज-भूषण' के अतिरिक्त 'शिवा-बावनी', 'छत्रसाल-दशक' तथा कुछ स्फुट छंद भी मिलते हैं। इनमें कुछ कविताएँ शृंगार-रस की भी हैं। भूषण की कविता अवश्य अधिक रही होगी, पर काल-चक्र के प्रभाव से वह उपलब्ध नहीं है।

हिंदी में भूषण के समय के संबंध में बहुत बड़ा वितंडावाद उठ खड़ा हुआ है। एक महाशय तो भूषण को शिवाजी का दरबारी कवि ही नहीं मानते, वे इन्हें साहू का दरबारी कवि कहते हैं। भूषण ने शिवराज-भूषण का निर्माण-काल यह दिया है—

संवत सतरह तीस पर, सुचि बदि तेरसि भान।
भूषन सिव-भूषन कियो, पढ़ियो सकल सुजान॥

कहीं-कहीं 'सुभ सत्रह सै तीस' या 'सं सत्रह सै तीस' पाठ भी मिलता है। इस 'सै तीस' को उक्त महाशय 'सैंतीस' मानते हैं। पर संवत् १७३७ के 'सुचि बदि तेरस' को 'भानु' (रविवार) नहीं पड़ता, संवत् १७३० में ही पड़ता है। 'शुचि' का अर्थ गोविंद गिल्ला भाई ने 'आषाढ़' माना है। पर १७३० की आषाढ़ कृष्णा त्रयोदशी को रविवार नहीं था। 'शुचि' का अर्थ 'आषाढ़' और 'ज्येष्ठ' दोनों होता है यदि 'शुचि' का अर्थ यहाँ 'ज्येष्ठ' लिया जाय तो तिथि मिल जाती है। गणना करने से पता चला कि सं० १७३० की ज्येष्ठ कृष्णा त्रयोदशी को रविवार था। मिश्रबंधुओं के दोहे का पाठ भिन्न है। इसलिये उन्होंने ग्रंथ की निर्माणतिथि उक्त संवत् के कार्तिक मास में मानी है। उनका दोहा यों है—

सुभ सत्रह सै तीस पर, बुध सुदि तेरसि मान।
भूषन सिव-भूषन कियो, पढ़ियौ सुनो सुजान॥

इसलिए भूषण का कविता-काल सं० १७३० के आस-पास ही माना जा सकता है। भूषण का जन्म कब हुआ था और वे कब स्वर्गवासी हुए थे, इसका ठीक-ठीक पता नहीं चलता। उनकी जन्म और मरण की तिथियों के संबंध में कितने ही अनुमान लड़ाए गए हैं, पर अभी तक कोई निष्कर्ष नहीं

निकला है। व्यर्थ अनुमान लड़ाने की अपेक्षा यही अच्छा है कि इतने से ही संतोष किया जाय। जब तक कोई प्रबल प्रमाण न मिले तब तक अनुमान के हवाई किले बाँधते रहने से क्या फायदा!

भूषण वीर-रस के सर्वश्रेष्ठ कवि थे। उन्होंने अपनी कविता के द्वारा धन और यश दोनों ही पाए। शिवाजी ऐसे चरितनायक का आधार मिल जाने से इनकी कविता जगमगा उठी अथवा यों कहना चाहिए कि इन्होंने अपनी कविता के द्वारा शिवाजी का यश जगमगाया। दोनों का परस्पर संबंध सोने में सुगंध का काम कर गया। यही कारण है कि आज भूषण की कविता लोगों की जिह्वा पर चढ़ी हुई है। शिवाजी के नाम के साथ भूषण और भूषण के नाम के साथ शिवाजी स्मरण आते हैं। शिवाजी और भूषण की दो मूर्तियाँ प्रत्येक हिंदू के हृदय-मंदिर में प्रतिष्ठित हो चुकी हैं और जब तक हिंदू-जाति या हिंदी का अस्तित्व है, इन्हें वहाँ से कोई नहीं हटा सकता।

छत्रपति शिवाजी

सिसौदिया-कुल-कमल दिवाकर महाराणा प्रताप के प्रताप तथा विमल वंश का नाम स्मरण आते ही ऐसा कौन हिंदू होगा जिसके हृदय में देश-भक्ति की भावना एवं इस जर्जरित हिंदू-जाति को फिर से जागरित करने की नवीन जीवन ज्योति न जगमगा उठती हो। इसी विमल-वंश में आगे चलकर भोंसाजी और देवराजजी हुए। जिस राजपूताने की रेत पर महाराणा उदयसिंह के 'प्रताप' ने उदय होकर इस भाग्यहीन भारत की शताब्दियों की कलंक-कालिमा धोते हुए एक बार पुनः सारे भारतवर्ष एवं हिंदू-जाति का मुख उज्ज्वल कर दिया था, वहीं उसे अस्त होते देख देवराजजी को दक्षिणापथ की ओर प्रयाण करना पड़ा। देवराजजी राजस्थान छोड़ दक्षिण महाराष्ट्र देश में जा बसे। भोंसाजी के पुत्र होने के कारण इनका वंश 'भोंसले' नाम से विख्यात हुआ। इसी भोंसले वंश में आगे चलकर क्रमशः संभाजी, बावजी तथा शाहजी हुए। शाहजी का विवाह देवगिरि के यादव-वंश के जागीरदार लखूजी यादव की कन्या जीजीबाई के साथ हुआ। इन्हीं जीजीबाई की कोख से हमारे चरित्र-नायक का जन्म हुआ था।

जिस समय शाहजी अपने प्राणों की रक्षा के लिये घर-बार छोड़कर दर-दर मारे-मारे फिरते थे, उसी समय पूना से १२-१३ कोस के अंतर पर शिवनेरी गढ़ में फाल्गुन शुक्ल ३ संवत् १६८५ वि० शुक्रवार को सायंकाल शिवाजी का जन्म हुआ। शिवाजी के पूर्वज शिव तथा देवी के उपासक थे। इनकी माता यद्यपि कुछ पढ़ी-लिखी नहीं थीं तथापि अन्य भारतीय स्त्रियों की भाँति धर्म पर उनकी अटल श्रद्धा थी। उन्होंने अपने नव-जात शिशु का नाम शिवनेरी किले की अधिष्ठात्री देवी 'शिवाई' के नाम पर शिवाजी रखा। शिवाजी के जन्म के समय महाराष्ट्र-प्रदेश में युद्ध की धूम-सी मची हुई थी। स्वयं इनके पिता शाहजी भी युद्ध में व्यस्त थे जन्म से लेकर तीन वर्ष तक शिवाजी अपनी माता के साथ उक्त दुर्ग में ही रहे। तदनंतर शाहजी ने इन्हें बंगलौर

छत्रपति शिवाजी

बुला भेजा और वहाँ से कुछ दिनों के पश्चात् अपने प्रबंधकर्ता दादाजी कोणदेव की देख-रेख में शिवाजी और इनकी माता को अपनी जागीर पर पूना भेज दिया। दादाजी कोणदेव के ही निरीक्षण में शिवाजी की शिक्षा का प्रबंध किया गया। अन्य भारत-संतानों की भाँति महाराष्ट्र लोग भी—विशेषतः क्षत्रिय वंशवाले—पढ़ने-लिखने ही में सारी विद्याओं की इतिश्री नहीं समझ बैठते थे। पढ़ना-लिखना सीखने की अपेक्षा वीर-पुरुषों के योग्य गुणों को सीखने में उनका उत्साह कहीं अधिक था। अतएव शिवाजी ने दादाजी के अधीन रहकर घुड़सवारी, तीर, बर्छा तथा तलवार इत्यादि चलाना थोड़े ही दिनों में भली भाँति सीख लिया। इनके अभिभावक दादाजी ने युद्धकला तथा राजकीय शिक्षा देने में कोई बात उठा नहीं रखी। बस, थोड़े ही दिनों में शिवाजी के हृदय पर स्वजाति-सेवा, स्वधर्म-श्रद्धा तथा स्वदेश-प्रेम की छाप पड़ गई। इतना ही नहीं, दादाजी की कृपा से ही थोड़ी ही अवस्था में इन्होंने सेना रखकर जागीर की रक्षा करने, उसकी मालगुजारी का हिसाब-किताब रखने तथा भली भाँति उसके प्रबंध-संचालन में कुशलता भी प्राप्त कर ली। इन्हीं शिक्षाओं से प्रभावित हो वीर-केसरी शिवाजी महाराष्ट्र के क्षेत्र में उतरे।

मावली जाति पर शिवाजी का बड़ा विश्वास और स्नेह था, क्योंकि वे लोग बड़े ही लड़ाकू, साहसी तथा परिश्रमी होते थे। उन्हीं के लड़कों को साथ ले शिवाजी जंगलों एवं पहाड़ों में घूमते और शिकार खेलते थे। यों ही घूमते-घूमते ये थोड़े ही दिनों में पहाड़ी मार्गों से पूर्ण परिचित हो गए। धीरे-धीरे इनके साथियों की संख्या बढ़ती गई और कुछ ही दिनों में इन्होंने एक छोटी-सी पलटन बनाकर १९ वर्ष की अवस्था में तोरन का विकट पहाड़ी दुर्ग ले लिया। फिर क्या था, एक के पश्चात् दूसरे दुर्ग सर होने लगे। यहाँ तक कि बीजापुर राज्य की अनेक गढ़ियों पर भी इन्होंने अपना झंडा गाड़ ही तो दिया।

शिवाजी की शक्ति का बढ़ना बीजापुर की सरकार सह न सकी। उसने इनके पिता शाहजी को बीजापुर में कैद कर लिया और कहला भेजा कि जब तक शिवाजी अपनी यह करतूत न त्यागेगा शाहजी कैद रहेंगे। इसपर शिवाजी ने पिता के कारागार से मुक्त होने तक बीजापुर के इलाकों पर धावा करना स्थगित कर दिया। शाहजी मुक्त हो गए। उनके मुक्त होते

ही शिवाजी ने फिर से कार्य आरंभ कर दिया। इधर अपने राज्य पर दिनों-दिन शिवाजी का अधिकार बढ़ते देख बीजापुर-नरेश ने अपने प्रधान सेनापति अफजल खाँ को इन्हें दमन करने के लिये भेजा। उस समय शिवाजी प्रताप-गढ़ में थे। इन्होंने इस अवसर पर उसकी बड़ी सेना से युद्ध ठानना ठीक नहीं समझा। अतएव इन्होंने अफजल खाँ को कहलाया कि मैं तो बीजापुर राज्य का साधारण सेवक हूँ, मुझमें आपसे युद्ध करने का साहस नहीं है। हाँ, आज तक मैंने जो कुछ किया है उसे आप भूल जायँ, तो मैंने जितने किले लिए हैं सब छोड़ दूँ। अफजल खाँ ने समझा, शिवाजी सचमुच क्षमा माँग रहे हैं। अस्तु, गोपीनाथ पंत के द्वारा शिवाजी और अफजल खाँ में परस्पर कुछ परामर्श करने के लिये भेंट की बात ठहराई गई। भेंट करने की शर्त यह थी कि दोनों व्यक्ति केवल एक-एक अर्दली लेकर किले के नीचे किसी डेरे में मिलें। ऐसा ही हुआ। शिवाजी ने आकर बड़ी नम्रता और शिष्टाचार के साथ उठकर अफजल खाँ का स्वागत किया। पर ज्यों ही गले मिलने लगे त्यों ही अफजल खाँ ने इनपर आघात करने के लिये अपनी तल-वार खींच ली। यह देखकर शिवाजी ने अपना बघनखा निकालकर अफजल के कलेजे में भोंक दिया। वहीं उसका काम तमाम हो गया। थोड़ी ही देर में शिवाजी की सेना ने बीजापुर की सेना को भी वहाँ से मार भगाया। इसके पश्चात् बीजापुर की सरकार ने दो बार फिर शिवाजी को दबाने की चेष्टा की अवश्य, किंतु व्यर्थ।

बीजापुर की ओर से निश्चिंत हो शिवाजी ने मुगलों से लड़ाई ठानी और उनके किलों पर क़ब्जा करना प्रारंभ किया। औरंगजेब ने दक्षिण के सूबेदार शाइस्ता खाँ को शिवाजी से लड़ने के लिये भेजा। शिवाजी ने इतने प्रबल शत्रु से इस प्रकार लड़ना ठीक नहीं समझा। ये रायगढ़ छोड़ सिंहगढ़ में चले गए। इधर शाइस्ता खाँ को अच्छा मौका मिला। उसने महाराष्ट्र का उत्तरी भाग अपने अधीन कर पूने पर अधिकार कर लिया और उसी महल में रहने लगा जिसको दादाजी कोणदेव ने शिवाजी तथा इनकी माता के रहने के लिये बनवाया था। एक दिन अच्छा अवसर देख, शिवाजी रात्रि के समय केवल २५ सिपाहियों को लेकर किसी बारात के

साथ पूने में घुस गए और सीधे महल में जा धमके। शिवाजी ने जाते ही उसे ललकारा। शाइस्ता खाँ इस अकस्मात् आक्रमण से घबड़ा उठा। उससे कुछ करते-धरते न बना। वह उठकर खिड़की के रास्ते से कूदकर भागा। कूदते समय एक मराठे की तलवार से बेचारे की अँगुली उड़ गई। शाइस्ता खाँ पूने से दुम दबाकर भाग गया। शिवाजी आनंद-ध्वनि करते हुए सिंहगढ़ को लौट आए। प्रातःकाल होते ही मुगल सवारों ने शिवाजी को सिंहगढ़ में घेर लिया। शिवाजी ने उन्हें किले के पास तक बेखटके चला आने दिया। पर ज्यों ही वे किले के पास पहुँचे उनपर गोलाबारी करनी आरंभ की। बहुत से मुगल सैनिक धराशायी हो गए। कुछ बचे-बचाए वहाँ से भाग खड़े हुए। इस विजय से शिवाजी की ख्याति और भी बढ़ गई। अब ये औरंगजेब की आँखों में करकने लगे।

इस विजय के बाद शिवाजी दूर-दूर तक धावा मारने लगे। सं० १७२१ वि० में इन्होंने सूरत के समृद्धिशाली नगर को लूटा। सूरत-विजय के बाद ये रायगढ़ के किले में चले आए। यहाँ आते ही इन्हें समाचार मिला कि इनके पूज्य पिता शाहजी का शरीरांत हो गया। शिवाजी ने सिंहगढ़ में आकर विधिपूर्वक पिता का श्राद्ध किया और ये पुनः रायगढ़ में लौट आए। इनकी ख्याति प्रतिदिन बढ़ती जाती थी और ये नित्य नये-नये देश अपने राज्य में मिलाते जाते थे।

इधर औरंगजेब ने अंबराधिपति महाराजा जयसिंह और दिलेर खाँ को शिवाजी पर चढ़ाई करने के लिये भेजा। शिवाजी ने उनकी बड़ी सेना से युद्ध करना उचित नहीं समझा। इन्होंने संधि की बातचीत आरंभ कर दी। संधि हो गई। शिवाजी ने संधि की सारी शर्तें स्वीकार कर लीं। इस प्रकार आई हुई बला टल गई। पर औरंगजेब कब माननेवाला था। उसने सं० १७२३ वि० में शिवाजी को अपने दरबार में बुलाने के लिये निमंत्रण-पत्र भेजा। शिवाजी अपने पुत्र संभाजी, पाँच सौ सवार तथा एक हजार मावली सेना को साथ ले मुगल-दरबार में पहुँचे। किंतु दरबार में पहुँचते ही औरंगजेब का असली रूप प्रकट हो गया। उसने शिवाजी को साधारण सरदारों में बैठाना चाहा। स्वाभिमानी शिवाजी ने इसे स्वीकार नहीं किया। क्रोध से इनकी आँखें

महाराज छत्रसाल

वर्तमान मध्यभारत के पूर्व की ओर यमुना, विंध्याचल पर्वत तथा मालवा से घिरा हुआ बुँदेलखंड नाम का एक प्रांत है। यहाँ अधिकतर बुँदेले क्षत्रिय रहते हैं। प्राचीन काल में गहिरवार (गहरवार) वंशीय राजा वीरभद्र के पुत्र हेमकर्ण काशी से वहिष्कृत हो यहाँ आकर विंध्यवासिनी देवी की उपासना करने लगे। एक दिन उन्होंने अपना शिर काटकर देवी को अर्पण करना चाहा। देवी ने प्रसन्न होकर हाथ पकड़ लिया, किंतु रक्त की कुछ बूँदें गिर ही पड़ीं। इन्हीं बूँदों के गिरने से उनके वंशज बुँदेला नाम से प्रसिद्ध हुए और उक्त प्रांत का नाम भी बुँदेल खंड पड़ा। इसी बुँदेला-वंश में आगे चलकर चंपतरायजी जन्मे। ये ही महाराज छत्रसाल के पिता थे। चंपतरायजी एक साधारण जागीरदार थे। उनकी जागीर की वार्षिक आय ३५०) के लगभग थी। चंपतरायजी बड़े ही पराक्रमी, उत्साही तथा वीर पुरुष थे। शाहजहाँ के शासन-काल में जब मुगलों ने बुँदेलखंड पर आक्रमण किया तो उनसे जाति एवं स्वधर्म की दुरवस्था देखी नहीं गई। बुँदेलखंड के सभी अत्याचारपीड़ित स्वधर्म तथा स्वजाति प्रेमी वीर चंपतराय के संग हो गए। इस छोटी-सी चमू को लेकर भी चंपतराय चुप बैठनेवाले नहीं थे। उन्होंने मुगल-शासित प्रांतों पर आक्रमण करना प्रारंभ कर दिया।

यद्यपि रायजी ने अपना कार्य आरंभ कर दिया किंतु शाहजहाँ के ऐसा बादशाह एक साधारण जागीरदार का सहसा शिर उठाना कब सहन कर सकता था। वह बिगड़ उठा। मुग़लों के कृपापात्र बुँदेलवंशीय अन्यान्य राजागण भी चंपतराय के पीछे पड़ गए। अब एक साथ दो-दो प्रबल शत्रुओं का सामना करना पड़ा। इसी घोर संकट के समय मोर पहाड़ी के जंगल में ज्येष्ठ शुक्ला तृतीया सोमवार संवत् १७०६ वि० में छत्रसाल का जन्म हुआ। जब छत्रसाल ६ मास के हुए तभी पिता ने इन्हें ननिहाल भेज दिया। वहाँ ये अपनी माता के साथ ४ वर्ष तक रहकर फिर पिता के पास चले आए और ७ वर्ष की अवस्था तक पिता के साथ ही रहे। जब रायजी ने देखा कि सात साल के बालक की समुचित शिक्षा का प्रबंध जंगलों में नहीं हो सकता तो उन्होंने इन्हें पुनः ननिहाल भेज दिया। इस

वीर छत्रसाल

के दो ही मास बाद चंपतरायजी का शरीरांत हो गया। मामा के यहाँ रहकर इन्होंने भाषा और गणित का साधारण ज्ञान प्राप्त कर लिया।

१२ वर्ष की अवस्था तक मामा के यहाँ रहने के बाद इन्होंने अपने घर जाने का निश्चय किया। एक दिन ये अकेले ही उठ खड़े हुए। मार्ग में क्षुधा से व्याकुल हो उठे। अचानक इनके पिता का एक पुराना नौकर मिल गया। उसने इनकी बड़ी सहायता की और साथ-साथ जाकर इनको महेवा तक पहुँचा आया। वहाँ इनके चाचा सुजानरायजी रहते थे। सुजानरायजी ने कभी पहले छत्रसाल को नहीं देखा था। किंतु परिचय पाते ही उन्होंने बड़े स्नेह से इनका सत्कार किया और इनके लिये समयोचित शिक्षा का प्रबंध भी कर दिया। वहाँ रहकर छत्रसालजी ने शास्त्र के साथ ही साथ शस्त्र-विद्या का भी भली भाँति अभ्यास कर लिया।

जब छत्रसाल युवक हुए तो अपने पिता के शत्रुओं की श्रीवृद्धि देख इनका हृदय संतप्त होने लगा। यद्यपि शत्रु प्रबल था, उसका साथ देनेवाले अनेक विभीषण थे तथापि छत्रसाल हताश नहीं हुए। एक दिन अवसर पाकर इन्होंने अपने चाचा की सेवा में पूज्य पिता की मृत्यु का बदला लेने, देश एवं जाति की गिरी हुई अवस्था को सुधारने और उसे पूर्व-स्वतंत्रता की सुध दिलाने के लिये मुगलों से मुठभेड़ करने की चर्चा की। सुजानरायजी इस बात को सुनकर घबड़ा उठे। उन्होंने छत्रसाल को बहुत कुछ समझाया और मुगलों से लड़ाई ठानना अनुचित बताया। परंतु सज्जन सुजानरायजी के स्नेह-भरे वचनों का प्रभाव इनके हृदय पर तनिक भी नहीं पड़ा।

एक दिन छत्रसाल चाचा का घर छोड़ चुपचाप निकल पड़े। अभी तक इन्होंने यह निश्चय नहीं किया था कि कहाँ जायँ और क्या करें? इसी बीच सुनने में आया कि आमेराधिपति महाराज जयसिंह देवगढ़ पर चढ़ाई करने जा रहे हैं। छत्रसाल उनसे जा मिले और अपने भाई अंगदरायजी के साथ मुगल सेना में सम्मिलित हो देवगढ़वालों को युद्ध में परास्त भी कर दिया। इस अवसर पर जयसिंह दिल्ली चले गए थे और उनके स्थान पर नवाब बहादुर खाँ सेनापति था। देवगढ़ विजय कर बहादुर खाँ के साथ ही साथ छत्रसाल भी दिल्ली गए, किंतु जिन आशाओं को लेकर ये दिल्ली आए

उनमें से एक भी पूरी नहीं हुई। यह देख इनका चित्त बहुत ही दुखी हुआ पर आशा ने पिंड नहीं छोड़ा। नवाब बहादुर खाँ दक्षिण विजय करने जा रहा था। छत्रसाल भी अपनी भाग्य-परीक्षा करने उसके साथ गए। युद्ध में इन दोनों भाइयों ने बड़ी वीरता दिखलाई। विजय के पश्चात् बहादुर खाँ और उसके साथियों की पूर्ण प्रतिष्ठा हुई, पुरस्कार भी मिला, किंतु छत्रसाल के हाथ कुछ न आया। तब इन दोनों भाइयों का माथा ठनका।

निदान दोनों भाइयों ने मुगल-दरबार से चलने और मुगलों से लड़ने का निश्चय किया। किंतु औरंगजेब से लोहा लेने के पूर्व किसी अनुभवी पुरुष से परामर्श ले लेना भी आवश्यक था। यही सोचकर सं० १७२८ वि० में ये शिवाजी के पास पहुँचे। शिवाजी ने इनका बड़ा सम्मान किया और यथेष्ट सहायता भी की शिवाजी से बिदा होने के पूर्व इन्होंने उनके यहाँ कुछ दिनों तक रहकर सेना एवं शासन का प्रबंध, प्रजापालन, विजित राज्यों से कर वसूल करना और मुगलों से युद्ध करने की रीति इत्यादि बहुत-सी बातें सीख लीं। धन से तो शिवाजी ने इनकी सहायता की, पर सेना के बिना युद्ध आरंभ नहीं हो सकता था। मार्ग में ये शुभकर्ण नामक बुँदेले सरदार से मिले। किंतु शुभकर्ण ने कोरा जवाब दिया। आगे औरंगाबाद में ये चचेरे भाई बलिदिवानजी से मिले। बहुत कुछ वाद-विवाद के पश्चात् बलिदिवानजी ने इनका साथ देना स्वीकार किया और अंत तक इनके अनुयायी बने रहे। धीरे-धीरे बहुत से बुँदेले-सरदार इनकी सेना में आकर सम्मिलित हो गए, यहाँ तक कि स्वयं ओरछा-नरेश, जो इनके प्रबल शत्रुओं में से थे, इनकी सहायता करने के लिये उद्यत हो गए।

इस प्रकार भावी युद्ध के लिये सुसज्जित होकर छत्रसाल ने मुगल-संरक्षित धँधेरा सरदार कुँअरसेन पर सं० १७२८ वि० में आक्रमण किया। कुँअरसेन ने हारकर इन्हें भतीजी ब्याह दी और एक सरदार को इनकी सेना में सम्मिलित कर दिया। यह समाचार पाकर पास के सिरौंज थाने के थानेदार मुहम्मद हाशिम खाँ ने एक छोटी-सी सेना लेकर इन्हें रोकना चाहा। परंतु सफलता न हुई। इसके बाद इन्होंने धामुनी पर चढ़ाई की। वहाँ के सरदारों ने इनके पिता चंपतरायजी को धोखा देकर मुगल सेना से घिरवा दिया

था। घोर युद्ध के पश्चात् पराजित होकर धामुनीवालों को भी इनकी शरण में आना पड़ा। फिर मैहर से २०००) वार्षिक कर की प्रतिज्ञा कराकर बाँसी के केशवराय पर आक्रमण किया। केशवराय युद्ध में मारे गए और उनके पुत्र विक्रमसिंह गद्दी पाकर इनके सच्चे हितैषी एवं अनुगामी हो गए। एक दिन ये जंगल में शिकार खेलने गए। ग्वालियर के सूबेदार के सेनापति सैयद बहादुर खाँ ने इन्हें पकड़ना चाहा पर उसे लज्जित होकर लौटना पड़ा। फिर इन्होंने ग्वालियर इलाके के पवायँ स्थान पर धावा मारा और उसे लूट लिया। समाचार पाते ही सूबेदार आग-बबूला हो गया। एक बड़ी सेना लेकर इनसे लड़ने के लिये बढ़ा। इन्होंने ग्वालियर गढ़ तक उसका पीछा किया और नगर लूट लिया। सं० १७२५ वि० में छत्रसाल ने पन्ना नगर बसाया। इनका परिवार प्रायः पन्ना में ही रहता था, पर ये अपनी सेना लेकर मऊ छावनी में रहते थे। अब इनकी धाक जम गई थी। अभी तक जो लोग खुले मैदान इनका साथ नहीं दे सकते थे निडर होकर इनसे मिलने लगे। कुछ बुँदेले ऐसे भी थे जो इनके अभ्युदय को सहन नहीं कर सकते थे। उन लोगों ने इनका विरोध करना आरंभ किया और औरंगजेब से मिल गए।

अब औरंगजेब की आँखें खुलीं। यह देख वह काँप उठा। उसने सेना के प्रधान सेनापति रनदूला खाँ को तीस सहस्र सैनिक देकर इनका दमन करने के लिये भेजा। तोपखाने के अभाव में ये खुले मैदान शाही सेना का सामना करने में असमर्थ थे। थोड़ी ही दूर पर गढ़ा नामक मुगलों के किले पर बलिदिवान ने आक्रमण किया और उसे अपने अधीन कर लिया। छत्रसाल शाहगढ़ की नदी के पास छिपे हुए थे। किले के चले जाने से रनदूला के दिमाग का पारा और भी ऊँचे चढ़ गया। वह सीधे किले पर ही जा पहुँचा और उसे घेर लिया। किला घिरने पर भीतर से तो बलिदिवान ने गोला बरसाना आरंभ किया और बाहर से इन्होंने छापा मारा। रनदूला की सेना इस अचानक आक्रमण से भयभीत हो गई। उसे प्राण लेकर भागना पड़ा। समाचार पाकर सम्राट ने वक्का खाँ को रूमियों की एक सेना देकर भेजा। पहले तो बुँदेलों को पीछे हटना पड़ा, पर रात को सेना में गोला-बारूद बँटते समय बलिदिवान और ये मुसलमानी वेश में

वहाँ पहुँच गए। मशालची को धक्का देकर मेगज़ीन में आग लगा दी। सैकड़ों सैनिकों के प्राण-पखेरू उड़ गए, बचे बचाए भाग खड़े हुए।

औरंगजेब ने तहव्वरखाँ के सेनापतित्व में दूसरी सेना भेजी। इधर सँड़वा में भावरें पड़ रही थीं उधर तहव्वर खाँ ने घर घेर लिया। ये किसी प्रकार वहाँ से निकल गए। तहव्वर खाँ हताश होकर चला गया। कुछ दिनों बाद फिर सेना एकत्र कर राजगढ़ के पास इनपर चढ़ाई की। पर यहाँ भी तहव्वर खाँ को युद्ध-स्थल छोड़कर भागना पड़ा। इतने समय में इन्होंने कालिंजर का किला भी सर कर लिया था। ये वहाँ से दक्षिण की ओर बढ़े। जब बेतवा नदी पार कर रहे थे तो सैयद लतीफ़ ने इनको रोकना चाहा, किंतु वह हार गया।

दक्षिण से लौटकर छत्रसाल ने ग्वालियर पर चढ़ाई की। यहाँ के सूबेदार तहव्वर खाँ ने २००००) नगद दिया और चौथ देना स्वीकार कर अपना पीछा छुड़ाया। समाचार पाते ही औरंगजेब ने उसे राज-सेवा से निकाल दिया और शेख अनवर खाँ को एक बहुत बड़ी सेना देकर इन्हें पकड़ने के लिये भेजा। वह मऊ का मार्ग रोककर पड़ाव डाले पड़ा था। इन्होंने अनवर खाँ के पड़ाव पर छापा मारा। अंत में वह पकड़ा गया और सवा लाख रुपये तथा चौथ के वचन पर छूटा। औरंगजेब ने अनवर खाँ को तो पदच्युत कर दिया और धमौनी के सूबेदार मिर्ज़ा सदरुद्दीन को तीस सहस्र सेना देकर छत्रसाल पर धावा करने को भेजा। इस बार कुछ देर के लिये बुँदेलों के पाँव उखड़ गए। पर दूसरे ही दिन दोनों ओर से बुँदेलों ने मुग़ल सेना को घेर लिया। अंत में मिर्ज़ा साहब पकड़े गए और सवा लाख भेंट तथा चौथ के वचन पर छूटे।

छत्रसाल ने अभी तक राजा की उपाधि नहीं धारण की थी। सं० १७४४ में योगिराज प्राणनाथजी के आदेशानुसार वेद-विधि से राज्याभिषेक कराया। औरंगजेब का कलेजा अब और भी जलने लगा। उसने सं० १७४७ वि० में अमीर अबदुस्समद को बुँदेलखंड पर चढ़ाई करने के लिये भेजा। भौंधा के समीप दोनों ओर की सेनाओं का सामना हुआ। अब तक जितनी लड़ाइयाँ महाराज छत्रसाल और मुग़लों में हुई थीं उनमें यह भीषण थी। कई

बार स्वयं महाराज घोर संकट में पड़ गए। पर अंत में महाराज ही विजयी हुए, अबदुस्समद को पीछे हटना पड़ा। रात्रि के समय फिर बुँदेलों ने उसकी सेना पर छापा मारा। थोड़ी देर में मुगल-सेना भाग खड़ी हुई। अमीर साहब ने भी चौथ देकर अपनी रक्षा की और सेना ले यमुना की ओर चले गए।

इसके बाद महाराज छत्रसाल भेलसा लेने के लिये चले जो मुगलों के हाथ में चला गया था। बीच में सूबेदार बहलोल खाँ ने जगतसिंह बुँदेले को लेकर इनकी सेना पर छापा मारा। जगतसिंह मारा गया और सेना पीछे हट गई। जब इन्होंने शाहगढ़ को घेरा तो बहलोल खाँ दुबारा सेना लेकर वहाँ पहुँचा। वहाँ भी हार खाकर, धमौनी के स्थान पर तीसरी बार बुँदेलों से आ भिड़ा, पर यहाँ उसके प्राण-पखेरू उड़ गए। सं० १७५० वि० में बीजापुर के एक पठान ने पन्ना पर आक्रमण किया। परंतु पन्ना के पास पहुँचते ही उसे इस असार संसार से सदा के लिये छुट्टी ले लेनी पड़ी और उसके बचे बचाए साथी दक्षिण लौट गए। सं० १७५७ में इन्हें सैयद अफगान से भिड़ना पड़ा। पहले तो बुँदेले विचलित हो गए, पर पीछे घोर युद्ध करके उसे पराजित कर दिया। इधर औरंगजेब ने साह कुली को भेजा। पहले तो शाह कुली की जीत देखकर बुँदेले वीर निराश हो गए किंतु छत्रसाल के बहुत कुछ समझाने-बुझाने पर फिर से लड़ने को उद्यत हुए। अंत में बुँदेलों की विजय-वैजयंती फिर फहराने लगी। इनका मुगलों के साथ यह अंतिम युद्ध था।

अब तक महाराज छत्रसाल को औरंगजेब का डर था किंतु सं० १७६४ वि० में सम्राट् की मृत्यु के पश्चात् ये निडर हो गए। राजपूतों ने भी साम्राज्य-सहायता से हाथ खींच लिया था। भारत के पश्चिमोत्तर प्रदेश में सिक्खों ने, दक्षिण-पश्चिम में मराठों ने और बुँदेलखंड तथा उसके आस-पास के देशों में बुँदेलों ने मुगल-साम्राज्य को औरंगजेब के जीते ही जी खोखला कर रखा था। सम्राट् के मरते ही मुगल साम्राज्य रूपी दुर्ग ढह गया। लड़ाई झगड़े से इन्हें छुट्टी मिल गई। अब ये शासन-प्रबंध में लगे। महाराज की शासन-पद्धति छत्रपति शिवाजी की शासन-पद्धति से बहुत कुछ मिलती जुलती थी। अपने जीते जी इन्होंने अपने पुत्रों को राज्य के भिन्न-भिन्न विभागों का शासक नियत कर दिया था।

सं० १७८३ वि० में इनके पुत्र जगतराय के इलाके जैतपुर पर फरूखाबाद के नवाब मुहम्मद खाँ बंगश ने आक्रमण किया। वे हार गए। इनकी अवस्था इस समय ७७ वर्ष की थी। ये स्वयं लड़ने में असमर्थ थे और बुँदेलों में कोई ऐसा वीर न दिखता था जो इस प्रबल शत्रु से लोहा लेता। अतः इन्होंने बाजीराव पेशवा को दूत द्वारा पत्र में लिख भेजा—

जो गति ग्राह-गजेंद्र की, सो गति पहुँची आय।
बाजी जात बुँदेल की, राखो बाजीराव॥

महाराज का यह पत्र पाते ही पेशवा ने पन्ना-नरेश के सहायतार्थ दलबल-सहित प्रस्थान कर दिया। मराठों और बुँदेलों की संयुक्त सेना से बंगश ने बुरी हार खाई। उसने जैतपुर का जीता हुआ इलाका लौटा दिया और क्षति-पूर्ति के निमित्त धन दिया, साथ ही शपथ खाई कि फिर कभी बुँदेलखंड की ओर पैर न बढ़ावेंगे। इसके बाद पेशवा ने महाराज से भेंट की। महाराज ने पेशवा को धन्यवाद दिया और अपने राज्य का एक अंश देकर अपनी कृतज्ञता प्रकट की।

इस प्रकार बुँदेलखंड ही नहीं अपितु सारे भारत का मुख उज्ज्वल करनेवाले, दिल्लीश्वर के छत्र के 'छतसाल' महाराज छत्रसाल ने ८५ वर्ष की अवस्था में सं० १७९१ वि० में स्वर्गारोहण किया।

प्रातःस्मरणीय महाराजा छत्रसाल बड़े ही वीर, कुशल शासक और धर्मात्मा पुरुष थे। गुण-ग्राहकता तो इनमें कूट कूटकर भरी थी। कोई भी गुणी इनके यहाँ से विमुख नहीं जाता था। कवियों का इनके यहाँ विशेष आदर होता था। कविवर भूषण का सम्मान करने के लिये पालकी का डंडा ही अपने कंधे लगाया था। जिसके फल-स्वरूप उन्होंने दश फड़कते हुए कवित्तों में महाराज की प्रशंसा की थी। इनके दरबार में कितने ही कवि थे। उनमें 'लाल' कवि बहुत प्रसिद्ध हैं। लाल ने 'छत्रप्रकाश' नामक ग्रंथ में महाराज के यश का विशद वर्णन किया है।

महाराज स्वयं भी उच्च कोटि के कवि थे। इनके कतिपय काव्य ग्रंथ अभी मिले हैं। इनकी कुछ कविता पुस्तकाकार प्रकाशित भी हो गई है। महाराज जैसे वीर थे वैसे ही उदार भी थे। वीरसू भारत-भूमि को ऐसे वीरों का सदा गर्व रहेगा।

शिवराज-भूषण

मंगलाचरण

(मनहरण कवित्त)

अकथ[1] अपार भव-पंथ के चले को[2] श्रम-
हरन करन बिजना-से[3] बर-दाइए[4]।
इहि लोक परलोक सुफलकरन कोक-
नद-से चरन हिये आनिकै जुड़ाइए ॥
अलि-कुल-कलित-कपोल ध्याइ[5] ललित,
अनंद-रूप-सरित मैं भूषन अन्हाइए।
पाप - तरु - भंजन बिघन-गढ़-गंजन,
भगत[6]-मन-रंजन द्विरदमुख गाइए ॥१॥

(छप्पय)

जै जयंति जै आदिसकति जै कालि कपर्दिनि।
जै मधुकैटभ-छलनि देवि जै महिष-बिमर्दिनि ॥
जै चमुंड जै चंड-मुंड-भंडासुर-खंडिनि।
जै सुरक्त जै रक्तबीज-बिड्डाल-बिहंडिनि ॥
जै जै निसुंभ-सुंभद्दलनि, भनि भूषन जै जै भननि।
सरजा समत्थ सिवराज कहँ, देहि बिजै जै जगजननि ॥२॥

(दोहा)

तरनि, जगत-जलनिधि-तरनि, जै जै आनँद-ओक।
कोक - कोकनद - सोकहर, लोकलोक - आलोक ॥३॥

पाठांतर०—१ बिकट। २ बिलोकि। ३ बिजै तासों। ४ न्हाइए ध्याइए।
५ ध्यान। ६ जगत।

अथ राजवंश-वर्णन

राजत है दिनराज को वंस, अवनि-अवतंस।
जामैं पुनि पुनि अवतरे, कंसमथन प्रभु-अंस ॥ ४ ॥
महावीर ता बंस मैं, भयो एक अवनीस।
लियो बिरद सीसौदिया, दियो ईस कौं सीस ॥ ५ ॥
ता कुल मैं नृपवृंद सब, उपजे बखत-बलंद।
भूमिपाल तिनमैं भयो, बड़ो माल-मकरंद ॥ ६ ॥
सदा दान किरवान मैं, जाके आनन अंभु।
साहि निजाम सखा भयो, दुग्ग-देवगिरि-खंभु ॥ ७ ॥
तातैं सरजा बिरद भो, सोभित सिंह-प्रमान।
रन-भू-सिला सु भौंसिला, आयुषमान खुमान ॥ ८ ॥
भूषन भनि ताके भयो, भुव-भूषन नृप साहि।
रातौ दिन संकित रहैं, साहि सबै जग माहि ॥ ९ ॥

(मनहरण कवित्त)

एते हाथी दीन्हे मालमकरंदजू के नंद,
जेते गनि सकति बिरंचिहू की न तिया।
भूषन भनत जाकी साहिबी सभा के देखे,
लागैं सब और छितिपाल छिति मैं छिया ॥
साहस अपार हिंदुवान को अधार धीर,
सकल सिसौदिया सपूत कुल को दिया।
जाहिर जहान भयो साहिजू खुमान बीर,
साहिन कौं सरन सिपाहिन कौं तकिया ॥१०॥

(दोहा)

दसरथजू के राम भे, बसुदेव के गोपाल।
सोई प्रगटे साहि के, श्रीसिवराज भुवाल ॥११॥
उदित होत सिवराज के, मुदित भए द्विजदेव।
कलियुग हर्यो, मिट्यो सकल म्लेच्छन को अहमेव ॥१२॥

(मनहरण कवित्त)

जा दिन जनम लीन्हो भू पर भुसिल भूप,
ताही दिन जीत्यो अरि-उर के उछाह को।
छठी छत्रपतिन को जीत्यो भाग अनायास,
जीत्यो नामकरन मैं करन-प्रवाह को॥
भूषन भनत बाल-लीला गढ़-कोट जीत्यो,
साहि के सिवाजी करि चहूँ चक्क चाह को।
बीजापुर गोलकुंडा जीत्यो लरिकाइ ही मैं,
ज्वानी आए जीत्यो दिलीपति पातसाह को॥१३॥

(दोहा)

दच्छिन के सब दुग्ग जिति, दुग्ग सहार[1] बिलास।
सिव-सेवक सिव गढ़पती, कियो रायगढ़ वास॥१४॥

अथ रायगढ़-वर्णन

(मालती सवैया)

जा पर साहितनै सिवराज सुरेस की ऐसी सभा सुभ साजै।
यों कबि भूषन जंपत है लखि संपत को अलकापति लाजै॥
जा मधि तीनहु लोक की दीपति ऐसो बड़ो गढ़राज बिराजै।
बारि पताल-सी माची मही अमरावति की छबि ऊपर छाजै॥१५॥

(हरिगीतिका छंद)

मनिमय महल सिवराज के इमि रायगढ़ मैं राजहीं।
लखि जच्छ किन्नर सुर असुर गंधर्व हौंसनि साजहीं॥
उत्तंग मरकत-मंदिरन मधि बहु मृदंग जु बाजहीं।
घन-समै मानहु घुमरि करि घन घनपटल गलगाजहीं॥१६॥
मुकुतान की झालरनि मिलि मनि-माल छज्जा छाजहीं।
संध्या-समै मानहु नखत-गन लाल[2] अंबर राजहीं॥

---

१ सँहार, सहाइ। २ लाल।

जहँ तहाँ ऊरध्व उठे हीरा-किरन घन समुदाय हैं।
मानो गगन तंबू तन्यो ताके सपेत तनाय हैं॥१७॥
भूषन भनत जहँ परसि कै मनि पुहुपरागन की प्रभा।
प्रभु-पीतपट की प्रगट पावत सिंधु, मेघन की सभा॥
मुख नागरिन के राजहीं कहुँ फटिक-महलन संग मैं।
विकसंत[2] कोमल-कमल मानहुँ अमल-गंग-तरंग मैं॥१८॥
आनंद सों सुंदरिन के कहुँ बदन-इंदु उदोत हैं।
नभसरित के प्रफुलित कुमुद मुकुलित कमल-कुल होत हैं॥
कहुँ बावरी सर कूप राजत बद्ध-मनि सोपान हैं।
जहँ हंस सारस चक्रवाक बिहार करत सनान[3] हैं॥१९॥
कितहूँ बिसाल-प्रबाल-जालन जटित अंगन-भूमि है।
जहँ ललित बागनि द्रुमलतनि मिलि रहे झिलमिल झूमि है॥
चंपा चमेली चारु चंदन चारिहू दिसि देखिये।
लवली लवंग यलानि केरे लाखहों लगि लेखिये॥२०॥
कहुँ केतकी कदली करौंदा कुंद अरु करबीर हैं।
कहुँ दाख दाड़िम सेब कटहल तूत अरु जंभीर हैं॥
कितहूँ कदंब-कदंब कहुँ हिंताल ताल तमाल हैं।
पीयूष तें मीठे फले कितहूँ रसाल रसाल हैं॥२१॥
पुन्नाग कहुँ कहुँ नागकेसरि कतहुँ बकुल असोक हैं।
कहुँ ललित अगर गुलाब पाटल-पटल बेला-थोक हैं॥
कितहूँ नेवारी माधवी सिंगारहार कहूँ लसैं।
जहँ भाँति भाँतिन रंग-रंग विहँग आनँद सों रसैं॥२२॥

(छप्पय)

लसत बिहंगम बहु लवनित बहु भाँति बाग महँ।
कोकिल कीर कपोत केलि कल-कल करंत तहँ॥
मंजुल महरि मयूर चटुल चातक चकोर-गन।
पियत मधुर मकरंद करत झंकार भृंग घन॥

१ लखि अमल। २ बिकसित। ३ समान, गुमान।

भूषन सुबास फल फूल जुत छहुँ रितु बसत बसंत जहँ।
इमि राजदुग्ग राजत रुचिर, सुखदायक सिवराज कहँ॥२३॥

(दोहा)

तहँ नृप रजधानी[1] करी, जीति सकल तुरकान।
सिव सरजा रुचि दान मैं, कीन्हो सुजस जहान॥ २४॥

अथ कविवंश-वर्णन

देसन देसन तें गुनी, आवत जाचन ताहि।
तिनमैं आयो एक कबि, भूषन कहियतु जाहि॥२५॥
दुज कनौज कुल कस्यपी, रतनाकर-सुत धीर।
बसत तिबिक्रमपुर सदा, तरनि-तनूजा-तीर॥२६॥
बीर बीरबर-से जहाँ, उपजे कबि अरु भूप।
देव बिहारीस्वर जहाँ, बिस्वेस्वर-तद्रूप॥२७॥
कुल सुलंक चितकूटपति, साहस-सील-समुद्र।
कवि भूषन पदवी दई, हृदयराम सुत-रुद्र॥२८॥
सिव-चरित्र लखि यों भयो, कवि भूषन के चित्त।
भाँति भाँति भूषननि सों, भूषित करौं कवित्त॥२९॥
सुकबिन हूँ की कछु कृपा, समुझि कबिन को पंथ।
भूषन भूषनमय करत सिवभूषन सुभ ग्रंथ॥३०॥
भूषन सब भूषननि मैं, उपमहि उत्तम चाहि।
या तें उपमहि आदि दै, बरनत सकल निबाहि॥३१॥

अथ ग्रंथप्रारंभः

उपमा

लक्षण—जहाँ दुहुन की देखिए, सोभा बनत समान।
उपमा-भूषन ताहि को, भूषन कहत सुजान॥३२॥

---

1 तहाँ राजधानी।

जाको बरनन कीजिये, सो उपमेय प्रमान।
जाकी सरवरि दीजिये, ताहि कहत उपमान ॥ ३३ ॥

उदा०—मिलतहि कुरुख चकत्ता को निरखि कीन्हो,
सरजा सुरेस-ज्यों दुचित, ब्रजराज को।
भूषन कुमिस गैरमिसिल खरे किये कों,
किये म्लेच्छ मुरछित करि कै गराज को॥
अरे तैं गुसुलखाने बीच ऐसे उमराय,
लै चले मनाय महाराज सिवराज को।
दावदार[1] निरखि रिसानो दीह दलराय,
जैसे गड़दार अड़दार गजराज को ॥ ३४ ॥

सासता खाँ दुरजोधन-सो औ दुसासन-सो, जसवंत निहारयो।
द्रोन-सो भाऊ करन्न करन्न-सो और सबै दल सो दल भारयो॥
ताहि बिगोय सिवा सरजा भनि भूषन अल्लिफतैं यों पछारयो।
पारथ कै पुरुषारथ भारथ जैसे जगाय जयद्रथ मारयो ॥३५॥

लुप्तोपमा

लक्षण—उपमा-बाचक पद, धरम, उपमेयो उपमान।
जामैं सो पूर्नोपमा, लुप्त घटत लौं मान ॥३६॥

उदाहरण—

पावक-तुल्य अमीतन को भयो मीतन को भयो धाम सुधा को।
आनँद भो गहिरो समुदै मुकुदावलि तारन को बहुधा को॥
भूतल माहिं बली सिवराज भो भूषन भाखत सत्रु मुधा को।
बंदन तेज त्यों चंदन कीरति सोंधे सिंगार बधू बसुधा को ॥३७॥

आए दरबार बिललाने छरीदार देखि,
जापता करनहारे नेकहू न मनके।
भूषन भनत भौंसिला के आय आगे ठाढ़े,
बाजे भए उमराय तुजुक करन के॥

---

[1] दावेदार। [2] औनिछता।

साहि रह्यो जकि सिव साहि रह्यो तकि,
और चाहि रह्यो चकि बने ब्यौंत अनबन के।
ग्रीषम के भानु-सो खुमान को प्रताप देखि,
तारे-सम तारे गए मूँदि तुरकन के ॥३८॥

अनन्वय

लक्षण—जहाँ करत उपमेय को, उपमेयै उपमान।
तहाँ अनन्वै कहत हैं, भूषन सकल सुजान ॥ ३९ ॥

उदाहरण—

साहितनै सरजा तव द्वार प्रतिच्छन दान की दुंदुभि बाजै।
भूषन भिच्छुक भीरन को अति भोजहु तें बढ़ि मौजनि साजै ॥
राजन[1] को गन,राजन! को गनै? साहिन मैं न इती छवि छाजै।
आजु गरीबनेवाज मही पर तो सो तुही सिवराज बिराजै ॥४०॥

प्रथम प्रतीप

लक्षण—जहँ प्रसिद्ध उपमान को, करि[2] बरनत उपमेय।
तहँ प्रतीप उपमा कहत, भूषन कविता-प्रेय ॥ ४१ ॥

उदाहरण—

छाय रही जितही तितही अति ही छवि छीरधि रंग करारी।
भूषन सुद्ध सुधान के सौधनि सोधति सी धरि ओप उज्यारी।
यों तम तोमहि चाबिकै चंद चहूँ दिसि चाँदनि चारु पसारी।
ज्यों अफजल्लहि मारि मही पर कीरति श्रीसिवराज बगारी ॥४२॥

द्वितीय प्रतीप

लक्षण—करत अनादर बर्न्य को पाय और उपमेय।
ताहू कहत प्रतीप जे भूषन कविता-प्रेय ॥४३॥

उदा०—सिव! प्रताप तव तरनि सम, अरि-पानिप-हर मूल।
गरब करत केहि हेत है, बड़वानल तो तूल ॥४४॥

---

१ रावन को गन। २ कवि।

तृतीय प्रतीप

लक्षण—आदर घटत अवर्न्य को, जहाँ वर्न्य के जोर।
तृतिय प्रतीप बखानहीं तहँ, कवि-कुल-सिरमौर ॥४५॥

उदा०—गरब करत कत चाँदनी, हीरक छीर समान।
फैली इती समाज-गत, कीरति सिवा खुमान ॥४६॥

चतुर्थ प्रतीप

लक्षण—पाय बरन उपमान को, जहाँ न आदर और।
कहत चतुर्थ प्रतीप हैं, भूषन कबि-सिरमौर ॥४७॥

उदा०—चंदन मैं नाग, मदभरो इंद्र-नाग,
बिषभरो सेसनाग कहै उपमा अबस को ?
भोर ठहरात, न कपूर बहरात मेघ-
सरद उड़ात बात लागे दिसि दस को।
संभु नीलग्रीव, भौंर पुंडरीक ही बसत,
सरजा सिवाजी सन भूषन सरस को।
छीरधि मैं पंक, कलानिधि मैं कलंक,
यातें रूप एकटंक ये लहैं न तव जस को ॥४८॥

पंचम प्रतीप

लक्षण—हीन होय उपमेय सों, नष्ट होत[1] उपमान।
पंचम कहत प्रतीप तेहि[2], भूषन सुकबि सुजान ॥४९॥

उदा०—तो सम हो सेस सो तो बसत पताल लोक,
ऐरावत गज सो तो इंद्रलोक सुनियै।
दुरे हंस मानसर ताहि मैं कैलासधर,
सुधा-सरबर[3] सोऊ छोड़ि गयो दुनियै॥
सूर दानी-सिरताज महाराज सिवराज,
रावरे सुजस सम आजु काहि गुनियै ? ।

---

१ जहँ बरनत उपमेय तें हीनो करि। २ तासों कहैं प्रतीप हैं।
३ सुरवर।

भूषन जहाँ लौं गनौं तहाँ लौं भटकि हारयौं,
लखिये कछू न केती बातैं चित चुनियै ॥५०॥

कुंद कहा पय-बृंद कहा अरु चंद कहा सरजा-जस-आगे ?
भूषन भानु कृसानु कहाऽब खुमान प्रताप महीतल पागे ॥
राम कहा द्विजराम कहा बलराम कहा रन मैं अनुरागे ?
बाज कहा मृगराज कहा अति साहस मैं सिवराज के आगे ? ॥५१॥

यों सिवराज को राज अडोल कियो सिव जोऽब कहा ध्रुव धू है ?
कामना-दानि खुमान लखे न कछू सुर-रूख न देव-गऊ है।
भूषन भूषन[1] मैं कुल-भूषन भौंसिला भूप धरे सब भू है।
मेरु कछू न कछू दिगदंति न कुंडलि कोल कछू न कछू है ॥५२॥

उपमेयोपमा

लक्षण—जहाँ परस्पर होत है, उपमेयो उपमान।
भूषन उपमेयोपमा, ताहि बखानत जान ॥५३॥

उदा०—तेरो तेज, सरजा समत्थ ! दिनकर सो है,
दिनकर सोहै तेरे तेज के निकर सो।
भौंसिला भुवाल ! तेरो जस हिमकर सो है,
हिमकर सोहै तेरे जस के अकर सो।
भूषन भनत तेरो हियो रतनाकर सो,
रतनाकरो है तेरे हिये सुखकर सो।
साहि के सपूत सिव साहि दानि ! तेरो कर,
सुरतरु सो है, सुरतरु तेरे कर सो ॥५४॥

मालोपमा

लक्षण—जहाँ एक उपमेय के, होत बहुत उपमान।
ताहि कहत मालोपमा, भूषन सुकवि[2] सुजान ॥५५॥

उदा०—इंद्र जिमि जंभ पर बाड़व सुअंभ[3] पर,
रावन सदंभ पर रघुकुल-राज है।

१ भूषन। २ सकल। ३ ज्यों अंभ।

पौन वारिवाह पर संभु रतिनाह पर,
ज्यों सहसबाह पर राम-द्विजराज है।
दावा द्रुम-दंड[1] पर चीता मृगझुंड पर,
भूषन बितुंड पर जैसे मृगराज है।
तेज तम-अंस पर कान्ह जिमि कंस पर,
त्यों मलेच्छ-बंस पर सेर सिवराज है ॥५६॥

ललितोपमा

लक्षण—जहँ समता को दुहुन की, लीलादिक पद होत।
ताहि कहत ललितोपमा, सकल कबिन के गोत ॥५७॥
बहसत, निदरत, हँसत जहँ, छबि अनुहरत बखानि।
सत्रु मित्र इमि औरऊ, लीलादिक पद जानि ॥५८॥
उदा०—साहितनै सरजा सिवा की सभा जा मधि है,
मेरुवारी सुर की सभा को निदरति है।
भूषन भनत जाके एक एक सिखर तें,
केते धौं नदी-नद की रेल उतरति है।
जोन्ह को हँसत जोति हीरा-मनि-मंदिरन,
कंदरन मैं छबि कुहू की उछरति[2] है।
ऐसो ऊँचो दुरग महाबली को जामैं,
नखतावली सों बहस[3] दीपावली करति[4] है ॥५९॥

रूपक

लक्षण—जहाँ दुहुन को भेद नहिं, बरनत सुकबि सुजान।
रूपक भूषन ताहि को, भूषन करत बखान ॥६०॥
उदा०—कलयुग जलधि अपार उद्ध अधरम्म उम्मिमय।
लच्छनि लच्छ मलिच्छ कच्छ अरु मच्छ मगर-चय ॥
नृपति नदी-नद बृंद होत जाको मिलि नीरस।
भनि भूषन सब भुम्मि घेरि किन्निय सुअप्प-वस ॥

---

१ झुंड। २ उघरति। ३ बहसि। ४ धरति

हिंदुवान पुन्य-गाहक बनिक, तासु निवाहक साहिसुव ।
बर बादवान[1] किरवान धरि, जस-जहाज सिवराज तुव ॥ ६१ ॥

साहिन-मन-समरत्थ जासु नवरंग-साहि सिरु ।
हृदय जासु अब्बास साहि बहु-बल बिलास थिरु ॥
एदिलसाहि कुतुब्ब जासु जुग भुज भूषन भनि ।
पाय म्लेच्छ उमराय, काय-तुरकानि आनि गनि ॥
यह रूप अवनि अवतार धरि, जेहि जालिम जग दंडियव ।
सरजा सिव साहस खग्ग गहि, कलियुग सोइ खल खंडियव ॥ ६२

सिंह-थरि[2] जाने बिन जावली-जँगल-भठी,
हठी गज एदिल पठाय करि भटक्यो ।
भूषन भनत देखि भभरि भगाने सव,
हिम्मति हिये मैं धारि काहुवै न हटक्यौ ।
साहि के सिवाजी गाजी सरजा समत्थ महा,
मदगल अफजलै पंजा-बल पटक्यो ।
ता बिगिरि ह्वै करि निकाम निज धाम कहँ,
आकुत महाउत सुआँकुस लै सटक्यौ ॥ ६३ ॥

रूपक के दो अन्य भेद (न्यूनाधिक)

लक्षण—घटि बढ़ि जहँ बरनन करै, करिकै दुहुन अभेद ।
भूषन कबि औरौ कहत, द्वै रूपक के भेद ॥ ६४ ॥

उदा०—साहितनै सिवराज भूषन सुजस तव,
बिगिरि कलंक चंद उर आनियतु है ।
पंचानन एक ही वदन गनि[3] तोहि,
गजानन गज-वदन बिना बखानियतु है ।
एक सीस ही सहससीस कला करिवे कों,
दुहूँ दृग सों सहसदृग मानियतु है ।

---

१ पतवार बिरद । २ थरि । ३ एक ही आनन पंच आनन गनत ।
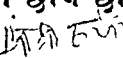
दुहुँ कर सों सहसकर मानियतु तोहि,
दुहूँ बाहु सों सहसबाहु जानियतु है ॥६५॥
जेते हैं पहार भुव-पारावार माहिं,
तिन सुनिकै अपार कृपा गहे सुख-फैल हैं।
भूषन भनत साहितनै सरजा के पास,
आइबे कों चढ़ी[1] उर हौंसनि की ऐल हैं।
किरवान बज्र सों बिपच्छ करिबे के डर,
आनिकै कितेक आए सरन की गैल हैं।
मघवा मही में तेजवान सिवराज बीर,
कोट करि सकल सपच्छ किए सैल हैं ॥६६॥

परिणाम

लक्षण—जहँ अभेद करि दुहुन सों, करत और ह्वे काम।
भनि भूषन सब कहत हैं, तासु नाम परिनाम ॥६७॥

उदाहरण—

भौंसिला भूप बली भुव को भुज भारी भुजंगम सों भरु लीनो।
भूषन तीखन तेज तरन्नि सों बैरिन को कियो पानिपहीनो॥
दारिद-दौ करि-बारिद सों दलि त्यों धरनीतल सीतल कीनो।
साहितनै कुल-चंद सिवा जस-चंद सों चंद कियो छबि छीनो॥
बीर बिजैपुर के उजीर निसिचर,
गोलकुंडावारे घूघू ते दुराए हैं जहान सों।
मंदरुचि कीनो मुखचंद चकता को पुनि[2],
भूषन भुषित द्विज-चक्र खानपान सों॥
तुरकान मलिन कुमुदिनी करी है
हिंदुवान नलिनी खिलायो बिबिध बिधान सों।
चारु सिव नाम को प्रतापी सिव साहिसुव,
तापी सब भूमि यों कृपान-भासमान सों ॥६८॥

---

१ बढ़ी। २ मंद करि मुखरुचि चंद चकता को कियो।

उल्लेख

लक्षण—कै बहुतै कै एक जहँ, एक वस्तु को देखि।
बहु बिधि करि उल्लेख हैं, सो उल्लेख उलेखि ॥७०॥

उदाहरण—

एक कहैं कलपद्रुम है इमि पूरत है सबकी चित-चाहैं।
एक कहैं अवतार मनोज को यों तन मैं अति सुंदरता है ॥
भूषन एक कहैं महि-इंदु यों राज विराजत बाढ़यो महा है।
एक कहैं नर-सिंह है संगर एक कहैं नरसिंह सिवा है ॥७१॥

कबि कहैं करन, करनजीत कमनैत,
अरिन के उर माहिं कीन्ह्यो इमि छेव है।
कहत धरेस सब धराधर सेस ऐसो,
और धराधरन को मेटयो अहमेव है ॥
भूषन भनत महाराज सिवराज तेरो,
राज-काज देखि कोऊ पावत न भेव है।
कहरी यदिल, मौज लहरी कुतुब कहै,
बहरी निजाम के जितैया कहैं देव है ॥ ७२ ॥

पैज[1]-प्रतिपाल भूमि-भार को हमाल चहूँ
चक्क को सम्हाल[2] भयो दंडत जहान को।
साहिन को साल भयो ज्वारि[3] को जवाल भयो,
कर[4] को कृपाल भयो हार के विधान को ॥
बीर-रस-ख्याल सिवराज भुवपाल तुव,
हाथ को बिसाल भयो भूषन बखान को?
तेरो करवाल भयो दच्छिन को ढाल भयो,
हिंदु को दिवाल भयो काल तुरकान को ॥ ७३ ॥

---

१ फौज। २ भमाल। ३ ज्वाल। ४ हर।

स्मृति

लक्षण—सम सोभा लखि आन की, सुधि आवत जेहि ठौर।
स्मृति भूषन तेहि कहत हैं, भूषन कवि-सिरमौर ॥७४॥

उदा०—तुम सिवराज ब्रजराज अवतार आज,
तुम ही जगत-काज पोषत-भरत हौ।
तुम्हैं छोड़ि यातें काहि बिनती सुनाऊँ,
मैं तुम्हारे गुन गाऊँ तुम ढीले क्यों परत हौ ?॥
भूषन भनत वहि कुल मैं नयो गुनाह,
नाहक समुझि यह चित मैं धरत हौ।
और बाँभनन देखि करत सुदामा सुधि,
मोहिं देखि काहे सुधि भृगु की करत हौ ? ॥७५॥

भ्रम

लक्षण—आन बात को आन मैं, होत जहाँ भ्रम आय।
तासों भ्रम सब कहत हैं, भूषन सुकबि बनाय ॥७६॥

उदाहरण—

पीय पहारन पास न जाहु यों तीय बहादुर सों कहैं सोषै[1]।
कौन बचैहै नवाब तुम्हैं भनि भूषन भौंसिला भूप के रोषै ?॥
बंदि सइस्तखँहू को कियो जसवंत से भाऊ करन्न से दोषै।
सिंह सिवा के सुबीरन सों गो अमीर न बाँचि[2] गुनीजन घोषै ॥७७॥

संदेह

लक्षण—कै यह कै वह यों जहाँ, होत आनि संदेह।
भूषन सो संदेह है, या मैं नहिं संदेह ॥७८॥

उदा०—आवत गुसुलखाने ऐसे कछू त्योर ठाने,
जानो अवरंग ही के प्रानन को लेवा है।
रस-खोट भए तें अगोट आगरे में सातौ,
चौकी डाँकि आय घर[3] कीन्ही हद्द रेवा है ॥

---

[1] वोषै। [2] नाँघि। [3] धर।

भूषन भनत मही चहूँ चक्क चाहि कियो,
पातसाह चकता की छाती माहिं छेवा है।
जान्यो न परत ऐसे कामहि करत, कोऊ
गंधरब, देवा है, कि सिद्ध है, कि सेवा है ॥ ७६ ॥

शुद्धापह्नुति

लक्षण—आन बात आरोपिये, साँची बात दुराय।
सुद्धापह्नुति कहत है, भूषन सुकबि बनाय ॥ ८० ॥

उदा०—चपला चमंकती न, फेरत फिरंगैं[1] भट,
इंद्र को न चाप, रूप बैरष समाज को
धाये धुरवा न, छाए धूरि के पटल व्योम,
गाजिबो न, बाजिबो[2] है दुंदुभि दराज[3] को ॥
भौंसिला के डरन डरानी रिपु-रानी कहैं,
पिय भजो देखि उदौ पावस के साज को।
घन की घटा न, गजघटनि सनाह साज,
भूषन भनत आयो सैन सिवराज को ॥ ८१ ॥

हेत्वपह्नुति

लक्षण—जहाँ जुगुति सों आन को, कहिये आन छिपाय।
हेतु-अपह्नुति कहत हैं, ता कहँ कवि-समुदाय ॥ ८२ ॥

उदा०—सिव सरजा के कर लसै, सो न होय किरवान।
भुज-भुजगेस-भुजंगिनी, भखति पौन-अरि-प्रान ॥ ८३ ॥

सिवाजी के कर किरवान है कहत सब[4],
भूषन भनत यह करिकै विचार को।
लीनो अवतार करतार के कहे तें काली[5],
म्लेच्छन हरन उद्धरन भूमि-भार को ॥

---

[1] फिरंगी। [2] साजिबो। [3] अवाज। [4] भाखत सकल सिवजी को करवाल पर। [5] कलि।

खंडिकै[1] घुमंडि अरि-चंडमुंड चावि करि,
पीवत रकत कछु लावत न वार को।
निज भरतार भृत्य[2] भूतन की भूख मेटि,
भूषित करत भूतनाथ भरतार को ॥८४॥

पर्यस्तापह्नुति

लक्षण—वस्तु गोय ताको धरम, आन वस्तु मैं रोपि।
पर्यस्तापह्नुति कहत, कवि भूषन मति ओपि ॥ ८५ ॥

उदा०—काल करत कलिकाल मैं, नहिं तुरकन को काल।
काल करत तुरकान को, सिव-सरजा-करवाल ॥ ८६ ॥

तेरे ही भुजानि पर भूतल को भार,
कहिबे को सेसनाग दिगनाग हिमाचल है।
तेरो अवतार जग-पोषन-भरनहार,
कछु करतार को न तामधि अमल है॥
साहितनै सरजा समत्थ सिवराज कवि,
भूषन कहत जीबो तेरोई सफल है।
तेरो करवाल कर म्लेच्छन को काल,
बिन काज होत काल बदनाम भूमितल[3] है॥८७॥

भ्रांतापह्नुति

लक्षण—संक आन को होत ही, जहँ भ्रम कीजै दूरि।
भ्रांतापह्नुति कहत हैं, तहँ भूषन कबि भूरि ॥८८॥

उदा०—साहितनै सरजा के भय सों भगाने भूप,
मेरु मैं लुकाने ते लहत जाय ओत हैं।
भूषन तहाऊँ मरहट्टपति के प्रताप,
पावत न कल अति कौतुक उदोत हैं॥
'सिव आयो सिव आयो' संकर के आगमन,
सुनिकै परान ज्यों लगत अरि-गोत हैं।

---

१ चंडी है। २ भूत। ३ धरातल

'सिव सरजा न, यह सिव है महेस' करि
यों ही उपदेस जच्छ रच्छक-से होत हैं ॥८६॥

छेकापह्नुति

एक समै सजिकै सब सैन सिकार को आलमगीर सिधाए।
'आवत है सरजा सम्हरौ' यक ओर तें लोगन बोल जनाए॥
भूषन भो भ्रम औरँग के सिव भौंसिला भूप की धाक धुकाए।
धायकै 'सिंह' कह्यो समुझाय करौलनि आय अचेत उठाए॥६०॥

लक्षण—जहाँ और की संक करि, साँच छिपावत बात।
छेकापन्हुति कहत हैं, भूषन कबि-अवदात॥६१॥

उदा०—तिमिर-बंस-हर अरुन-कर, आयो सजनी भोर।
'सिव सरजा' चुप रहि सखी, सूरज-कुल-सिरमोर॥६२॥
दुरगहि बल पंजन प्रबल, सरजा जिति रन मोहिं।
औरँग कहै देवान सों, सपन सुनावत तोहिं॥६३॥
सुनि सु उजीरन यों कह्यो, 'सरजा सिव महराज'।
भूषन कहि चकता सकुचि, 'नहिं, सिकार मृगराज'॥६४॥

कैतवापह्नुति

लक्षण—जहँ कैतव, छल, ब्याज मिस, इन सों होत दुराव।
कैतवपन्हुति ताहि सों, भूषन कहि सति-भाव॥६५॥

उदा०—साहितनै सरजा खुमान सलहेरि पास,
कीन्हों कुरुखेत खीझि मीर अलचन सों।
भूषन भनत करि कूरम बहानो,
रन-धरनी सों जान धर प्रान दै बलन सों॥[1]
अमर के नाम के बहाने गो अमरपुर,
चंदावत लरि सिवराज के दलन सों।
सरजा बचायो भजे काजी के बहाने, बानू
राव, उमराव ब्रह्मचारी के छलन[2] सों॥६६॥

---

१. बलि करी है अरीन धर धरनी पै डारि नभ। २. कालिकाप्रसाद

उत्प्रेक्षा

लक्षण—आन बात को आन में, जहँ संभावन होय।
बस्तु, हेतु, फल-युत, कहत उत्प्रेक्षा है सोय ॥ ९७ ॥

उदाहरण—

दानव आयो दगा करि जावली दीह भयारो महामद भारयो।
भूषन बाहुबली सरजा तेहि भेटिबे को निरसंक पधारयो ॥
बीछू के घाय गिरे अफजल्लहि ऊपर ही सिवराज निहारयो।
दाबि यों बैठो नरिंद अरिंदहि मानो मयंद गयंद पछारयो ॥९८॥

साहितनै सिव साहि निसा में निसाँक लियो गढ़सिंह सोहानौ।
राठिवरो को सँहार भयो लरिकै सरदार गिरयो उदैभानौ ॥
भूषन यों घमसान भो भूतल घेरत लोथिन मानो मसानौ।
ऊँचे सुछज्ज छटा उचटी प्रगटी परभा परभात की मानौ ॥९९॥

दुरजन-दार भजि भजि बेसम्हार[1] चढ़ीं,
उत्तर पहार डरि सिवाजी नरिंद तें।
भूषन भनत बिन भूषन बसन, साधे[2]
भूखन पियासन हैं नाहन को निंदते ॥
बालक अयाने बाट बीच ही बिलाने,
कुम्हिलाने मुख कोमल अमल अरबिंद तें।
दृगजल कज्जल कलित कढ़यो बढ़यो मानो,
दूजो सोत तरनि-तनूजा को कलिंद तें ॥१००॥

महाराज सिवराज तव, सुघर धवल धुव कित्ति।
छबि छटान सों छुवति-सी, छिति-अंगन दिग-भित्ति ॥१०१॥

हेतूत्प्रेक्षा

लूटयो[3] खानदौराँ जोरावर सफजंग अरु,
लूटयो मारि तलबखाँ[1] मानहुँ अमाल है

ने तें खवायो महि बाबू उमराव राव पसु के छलन सों।

१ बेसुमार। २ साध्य। ३ लह्यो कारतलब खाँ।

भूषन भनत लूट्यो पूना मैं सइस्तखान,
गढ़न मैं लूट्यो त्यों गढ़ोइन को जाल है ॥
हेरि हेरि कूटि सलेहरि बीच सरदार,
घेरि घेरि लूट्यो सब कटक कराल है।
मानो हय हाथी उमराव करि साथी,
अवरंग डरि सिवाजी पै भेजत रिसाल है ॥१०२॥

फलोत्प्रेक्षा

जाहि पास जात सो तौ राखि ना सकत यातें,
तेरे पास अचल सुप्रीति नाधियतु है।
भूषन भनत सिवराज तव किति सम,
और की न किति कहिवे को काँधियतु है ॥
इंद्र को अनुज तैं उपेंद्र अवतार यातें,
तेरो बाहुबल लै सलाह साधियतु है।
...नर आय नित निडर बसायवे कों,
कोट बाँधियतु मानो पाग बाँधियतु है ॥१०३॥
दुवन-सदन सबके बदन, 'सिव सिव' आठो जाम।
निज बचिबे को जपत जनु, तुरकौ हर को नाम ॥१०४॥

गम्योत्प्रेक्षा

लक्षण—मानो इत्यादिक बचन, आवत नहिं जेहि ठौर।
उत्प्रेक्षा गम, गुप्त सो, भूषन कहत अमौर ॥१०५॥
उदा०—देखत उँचाई उदरत पाग, सूधी राह,
द्यौसहू मैं चढ़ँ ते जे साहस-निकेत हैं।
सिवाजी हुकुम तेरो पाय पैदलन,
सलहेरि परनालो ते वै जीते जनु खेत हैं ॥
सावन भादौं की भारी कुहू की अँध्यारी चढ़ि,
दुग्ग पर जात मावली-दल सचेत हैं।
भूषन भनत ताकी बात मैं बिचारी, तेरे
परताप-रवि की उज्यारी गढ़ लेत हैं ॥१०६॥

और गढ़ोई नदी-नद, सिव गढ़पाल दरयाव।
दौरि दौरि चहुँ ओर तें, मिलत आनि यहि भाव ॥१०७॥

रूपकातिशयोक्ति

लक्षण—ज्ञान करत उपमेय को, जहँ केवल उपमान।
रूपकातिसय-उक्ति सो, भूषन कहत सुजान ॥१०८॥

उदा०—बासव-से बिसरत बिक्रम की कहा चली,
बिक्रम लखत बीर बखत-बलंद के।
जागे तेज-बृंद सिवाजी नरिंद मसनंद,
माल-मकरंद कुलचंद साहिनंद के॥
भूषन भनत देस-देस बैरि-नारिन मैं,
होत अचरज घर-घर दुख-दंद के।
कनकलतानि इंदु, इंदु माहिं अरबिंद,
झरैं अरबिंदन तें बुंद मकरंद के ॥१०९॥

भेदकातिशयोक्ति

लक्षण—जेहिं थर आनहिं भाँति की, बरनत बात कछूक।
भेदकातिसय-उक्ति सो, भूषन कहत अचूक ॥११०॥

उदा०—श्रीनगर नयपाल जुमिला के छितिपाल,
भेजत रिसाल चौर, गढ़, कुही, बाज की।
मेवार ढुँढार मारवाड़ औ बुँदेलखंड,
झारखंड बाँधौ-धनी चाकरी इलाज की॥
भूषन जे पूरब पछाँह नरनाह ते वै,
ताकत पनाह दिलीपति सिरताज की।
जगत को जैतवार जीत्यो, अवरंगजेब,
न्यारी रीति भूतल निहारी सिवराज की ॥१

अक्रमातिशयोक्ति

लक्षण—जहाँ हेतु अरु काज मिलि, होत एक ही साथ।
अक्रमातिसय-उक्ति सो, कहि भूषन कबिनाथ ॥१

उदा०—उद्धत अपार तव दुंदुभी-धुकार-साथ,
लंघैं पारावार बाल-बृंद[1] रिपुगन के।
तेरे चतुरंग के तुरंगन के अंग-रज,[2]
साथ ही उड़ात रजपुंज है परन के।
दच्छिन के नाथ सिवराज तेरे हाथ चढ़ैं,
धनुष के साथ गढ़-कोट दुरजन के।
भूषन असीसैं, तोहि करत कसीसैं पुनि,
बानन के साथ छूटैं प्रान तुरकन के ॥११३॥

चंचलातिशयोक्ति

लक्षण—जहाँ हेतु चरचाहि मैं, काज होत ततकाल।
चंचलातिसय-उक्ति सो, भूषन कहत रसाल ॥११४॥
उदा०—'आयो आयो' सुनत ही, सिव सरजा तुव नावँ।
बैरि-नारि-दृग-जलन सों, बूड़ि जात अरि-गावँ ॥११५॥
गढ़नेर, गढ़-चाँदा, भागनेर, बीजापुर,
नृपन की नारी रोय हाथन मलति हैं।
करनाट, हबस, फिरंगहू, बिलायत,
बलख, रूम अरि-तिय छतियाँ दलति हैं॥
भूषन भनत साहितनै सिवराज, एते मान
तव धाक आगे दिसा उबलति हैं।
तेरी चमू चलिबे की चरचा चले तें,
चक्रवर्तिन की चतुरंग-चमू बिचलति हैं ॥११६॥

अत्यंतातिशयोक्ति

लक्षण—जहाँ हेतु तें प्रथम ही, प्रगट होत है काज।
अत्यंतातिसयोक्ति सो, कहि भूषन कबिराज ॥११७॥
उदा०—मंगन मनोरथ के प्रथमहि दाता तोहिं,
कामधेनु कामतरु-सो गनाइयतु है।

---

१ बृंद बैरी-बालकन को। २ रँगे रज।

यातें तेरे गुन सब गाय को सकत, कवि-
बुद्धि-अनुसार कछु तऊ गाइयतु है ॥
भूषन भनत साहितनै सिवराज, निज
बखत बढ़ाय करि तोहिं ध्याइयतु है।
दीनता को डारि औ अधीनता बिडारि,
दीह-दारिद को मारि तेरे द्वार आइयतु है ॥११८॥

कबि तरुवर सिव-सुजस-रस, सींचे अचरज-मूल।
सुफल होत है प्रथम ही, पीछे प्रगटत फूल ॥११९॥

सामान्य-विशेष

लक्षण—कहिबे जहँ सामान्य है, कहै जु तहाँ बिसेष।
सो सामान्य-बिसेष है, बरनत सुकबि असेष ॥१२०॥
उदा०—और नृपति भूषन कहैं, करैं न सुगमौ काज।
साहितनै सिव सुजस तो, करै कठिनऊ आज ॥१२१॥

जीति लई बसुधा सिगरी घमसान घमंड कै बीरनहू की।
भूषन भौंसिला छीनि लई जगती उमराव अमीरनहू की ॥
साहितनै सिवराज की धाकनि छूटि गई धृति धीरनहू की।
मीरन के उर पीर बढ़ी यों जु भूलि गई सुधि पीरनहू की ॥१२२॥

प्रथम तुल्ययोगिता

लक्षण—तुल्यजोगिता तहँ धरम, जहँ बरन्यन को एक।
कहूँ अबरन्यन को कहत, भूषन बरनि बिबेक ॥१२३॥

उदा०—चढ़त तुरंग चतुरंग साजि सिवराज,
चढ़त प्रताप दिन-दिन अति अंग मैं।
भूषन चढ़त मरहट्टन के चित्त चाव,
खग्ग खुलि चढ़त है अरिन के अंग मैं ॥
भौंसिला के हाथ गढ़-कोट हैं चढ़त,
अरि-जोट हैं चढ़त एक मेरुगिरि-सृंग मैं।

तुरकान-गन ब्योमयान हैं चढ़त बिनु
मान, है चढ़त बदरंग अवरंग मैं ॥१२४॥
सिव सरजा भारी भुजन, भुव-भरु धरयो सभाग।
भूषन अब निहचिंत हैं, सेसनाग दिगनाग ॥१२५॥

द्वितीय तुल्ययोगिता

लक्षण—हित अनहित को एक सो, जहँ बरनत ब्यवहार।
तुल्यजोगिता और सो, भूषन ग्रंथ-विचार ॥१२६॥

उदा०—गुननि सों इनहूँ को बाँधि लाइयतु पुनि,
गुनन सों उनहूँ को बाँधि लाइयतु है।
पाय गहे इनहूँ को रोज ध्याइयतु अरु,
पाय गहे उनहूँ को रोज ध्याइयतु[1] है॥
भूषन भनत महाराज सिवराज तेरो,
रस; रोस एक भाँति ही को पाइयतु[2] है।
दोहा के[3] कहे तें कबि लोग ज्याइयतु है त्यों,
दोहा के कहे तें अरि लोग ज्याइयतु है ॥१२७॥

दीपक

लक्षण—बर्न्य अबर्न्यन को धरम, जहँ बरनत हैं एक।
दीपक ताको कहत हैं, भूषन सुकबि बिबेक ॥१२८॥

उदाहरण—

कामिनि कंत सों, जामिनि चंद सों, दामिनि पावस-मेघ-घटा सों।
कीरति दान सों, सूरति ज्ञान सों, प्रीति बड़ी सनमान महा सों॥
भूषन भूषन सों तरुनी, नलिनी नव-पूषनदेव-प्रभा सों।
जाहिर चारिहु ओर जहान लसै हिंदुवान खुमान सिवा सों॥१२९॥

दीपकावृत्ति

लक्षण—दीपक पद के अरथ जहँ, फिरि फिरि करत बखान।
आवृतिदीपक तहँ कहत, भूषन सुकबि सुजान ॥१३०॥

---

१ दाहियत। २ ध्याइयतु। ३ दोहाई।

उदा०—सिव सरजा तव दान को, करि को सकत बखान।
बढ़त नदीगन दान-जल, उमड़त नद गजदान ॥१३१॥

चक्रवती चकता चतुरंगिनि चारियौ चापि लई दिसि चंका[1]।
भूप दरीन दुरे भनि भूषन एक अनेकन बारिधि नंका[2]।
औरंगसाह सों साहि को नंद लरो सिवसाह बजायकै डंका[3]।
सिंह की सिंह चपेट सहै गजराज सहै गजराज को धंका[4] ॥१३२॥

अटल रहे हैं दिगअंतन के भूप, धरि
रैयति को रूप निज देस पेस करिकै।
राना रह्यौ अटल बहाना करि चाकरी को,
बाना तजि भूषन भनत गुन भरिकै॥
हाड़ा रायठौर कछवाहे गौर और रहे,
अटल चकत्ता को चवाँऊ धरि डरिकै।
अटल सिवाजी रह्यो दिल्ली को निदरि,
धीर धरि, ऐंड़ धरि, तेग धरि, गढ़ धरिकै ॥१३३॥

प्रतिवस्तूपमा

लक्षण—वाक्यन को जुग होत जहँ, एकै अरथ समान।
जुदो जुदो करि भाषिए, प्रतिवस्तूपम जान ॥१३४॥

उदा०—मद-जल-धरन द्विरद बल राजत है,
बहु जल-धरन जलद छबि साजै है।
भूमि के धरन फनिपति अति लसत है,
तेज ताप धरन ग्रीषम रबि छाजै है॥
खग्ग के धरन सोहैं भट भारे रन ही मैं,
भूषन लसत गुन-धरन समाजै है।
दिल्ली के दलन देस दच्छिन के थंभनहु,
ऐंड़ के धरन सिव सरजा बिराजै है ॥१३५॥*

---

1 चक्का। 2 नक्का। 3 डक्का। 4 धक्का।

* मिश्रबंधुओं की प्रति में यह कवित्त लीलावती छंद के रूप में है—

दृष्टांत

लक्षण—जुग वाक्यन को अरथ जहँ, प्रतिबिंबित-सो होत।
तहाँ कहत दृष्टांत हैं, भूषन सुमति उदोत ॥१३६॥

उदा०—सिव औरंगहि जिति सकै, और न राजा राव।
हत्थिमत्थ पर सिंह बिनु, आन न घालै घाव ॥१३७॥

देत तुरीगन गीत सुने बिनु, देत करीगन गीत सुनाए।
भूषन भावत भूप न आन, जहान खुमान की कीरति गाए॥
मंगन को भुवपाल घने, पै निहाल करै सिवराज रिझाए।
आन रितै बरसे सरसै, उमड़ै नदिया रितु पावस पाए ॥१३८॥

प्रथम निदर्शना

लक्षण—सहस वाक्य जुग अरथ को, करिए एक अरोप।
भूषन ताहि निदर्सना, कहत बुद्धि दै ओप ॥१३९॥

उदाहरण—

मच्छहु कच्छ मैं कोल नृसिंह मैं बावन मैं भनि भूषन जो है।
जो द्विज राम मैं जो रघुराज मैं जोऽब कह्यो बलरामहु को है॥
बौद्ध मैं जो अरु जो कलकी महँ बिक्रम ह्वै को आगे सुनो है।
साहस-भूमि-अधार सोई अब श्रीसरजा सिवराज मैं सोहै॥१४०॥

कीरति सहित जो प्रताप सरजा मैं बर,
मारतंड-मध्य तेज-चाँदनी सो जानी मैं।

मद जल-धरन द्विरद-बल राजत बहु-जल-धरन जलद छवि साजै।
पुहुमि-धरन फनिनाथ लसत अति, तेज-धरन ग्रीषम छवि छाजै॥
खग्ग-धरन सोभा तहँ राजत, रुचि भूषन गुन धरन समाजै।
दिल्लि-दलन दक्खिन-दिसि-थंभन, ऐंड़-धरन सिवराज बिराजै॥

बंगवासी प्रेसवाली प्रति में इसका नाम सवैया लिखा है। उसमें तुकांत 'साजई' आदि है। मिश्रबंधुओं की प्रति से उसमें ये पाठांतर हैं—राजत—लागत। पुहुमि—भूमि। फनिनाथ—फनिपति। लसत—बिलसत। खग्ग—खग्ग। समाजै—सभा जई।

सोहत उदारता औ सीलता खुमान में सो,
कंचन में मृदुता सुगंधता बखानी में ॥
भूषन कहत सब हिंदुन को भाग फिरै,
चढ़े तें कुमति चकताहू की पिसानी[1] में ।
सोहत सुबेस दान कीरति सिवा में सोई,
निरखी अनूप रुचि मोतिन के पानी में ॥१४१॥
औरन को जो जनम है, सो वाको यक रोज ।
औरन को जो राज सो, सिव सरजा की मोज ॥१४२॥
साहिन सों रन माँडिवो, कीवो सुकवि निहाल ।
सिव सरजा को ख्याल है, औरन को जंजाल ॥१४३॥

द्वितीय निदर्शना

लक्षण—एक क्रिया सों निज अरथ, और अर्थ को ज्ञान ।
ताही सों जु निदर्सना, भूषन कहत सुजान ॥१४४॥
उदा०—चाहत निर्गुन सगुन को, ज्ञानवंत की बान[2] ।
प्रगट करत निर्गुन सगुन, सिवा निवाजै दान[3] ॥१४५॥

व्यतिरेक

लक्षण—सम छबिवान दुहून मैं, जहँ बरनत बाढ़ एक ।
भूषन कबि कोबिद सबै, ताहि कहत व्यतिरेक ॥१४६॥
उदा०—त्रिभुवन मैं परसिद्ध एक अरि-बल वह खंडिय ।
यह अनेक अरि-बल बिहंडि रन-मंडल मंडिय ॥
भूषन वह रितु एक पुहुमि पानिपहि बढ़ावत ।
यह छहुँ रितु निसिदिन अपार पानिप सरसावत ॥
सिवराज साहिसुव सत्थ नित हय गय लक्खन संचरइ ।
यक्कइ गयंद यक्कइ तुरँग किमि सुरपति सरवरि करइ ॥१४७॥

---

१ निसानी । २ गुनधीर । ३ यही भाँति निरगुन गुनिहि सिवा निवाजत दान ।

दारुन दुगुन दुरजोधन तें अवरंग,
भूषन भनत जग राख्यो छल मढ़िकै।
धरम धरम, बल भीम, पैज अरजुन,
नकुल अकिल, सहदेव तेज, चढ़िकै॥
साहि के सिवाजी गाजी, करयो दिली माँहि,
चंड पांडवनहू तें पुरुषारथ सु बढ़िकै।
सूने लाखभौन तें कढ़े वै पाँच राति मैं,
जु द्यौस लाख चौकी तें अकेलो आयो कढ़िकै॥१४८॥

सहोक्ति

लक्षण—बस्तुन को भासत जहाँ, जन-रंजन सह-भाव।
ताहि सहोक्ति बखानहीं, जे भूषन कबिराव॥१४९॥

छूट्यो है हुलास आम खास एक संग छूट्यो,
हरम सरम एक संग बिनु ढंग ही।
नैनन तें नीर धीर छूट्यो एक संग छूट्यो,
सुख-रुचि मुख-रुचि त्यों ही बिन रंग ही॥
भूषन बखानै सिवराज मरदाने तेरी,
धाक बिललाने न गहत बल अंग ही।
दक्खिन के सूबा पाय दिली के अमीर तजैं,
उत्तर की आस जीव-आस एक संग ही॥१५०॥

बिनोक्ति

लक्षण—बिना कछू जहँ बरनिए, कै हीनो कै नीक।
ताको कहत बिनोक्ति हैं, कवि भूषन मति-ठीक॥१५१॥

उदा०—सोभमान जग पर किए, सरजा सिवा खुमान।
साहिन सों बिनु डर अगड़, बिनु गुमान को दान॥१५२॥

को कबिराज बिभूषन होत बिना कवि साहितनै को कहाए।
को कबिराज सभाजित होत सभा सरजा के बिना गुन गाए॥
को कबिराज भुवालन भावत भौंसिला के मन मैं बिनु भाए।
को कबिराज चढ़ै गज-वाजि सिवाजी की मौज मही बिनु पाए॥१५३

विना लोभ को विवेक विना भय जुद्ध-टेक,
साहिन सों सदा साहितनै सिरताज के।
विना ही कपट प्रीति विना ही कलेस जीति,
विना ही अनीति-रीति, लाज के जहाज के॥
सुकवि-समाज विन अपजस-काज भनि,
भूषन भुसिल भूप गरिवनेवाज के।
विना ही वुराई ओज विना काज घनी फौज,
विना अभिमान मौज राज सिवराज के॥१५४॥

कीरति को ताजी करी वाजी चढ़ि लूटि कीन्ही,
भई सब सेन विनु वाजी विजैपुर की।
भूषन भनत भौंसिला भुवाल धाक ही सों,
धीर धरबी न फौज कुतुब के धुर की॥
सिंह उदैभान बिन अमर सुजान बिन,
आन बिन कीन्ही साहिबी त्यों दिलीसुर की।
साहिसुव महाबाहु सिवाजी सलाह बिन,
कौन पातसाह की न पातसाही सुरकी॥१५५॥

समासोक्ति

लक्षण—बरनन कीजै आन को, ज्ञान आन को होय।
समासोक्ति भूषन कहत, कबि कोबिद सब कोय॥१५६॥

उदा०—बड़ो डील लखि पील को, सबन तज्यो बन-थान।
धनि सरजा तू जगत मैं, ताको हरयो गुमान॥१५७॥
तुही साँच द्विजराज है, तेरी कला प्रमान।
तो पर सिव किरपा करी, जानत सकल जहान॥१५८॥

उत्तर पहार बिधनोल खँडहर झार-
खंडहु प्रचार चारु केली है बिरद की।
गोर गुजरात अरु पूरब पछाँह ठौर,
जंतु जंगलीन की बसति मारि रद की॥

रस ।

भूषन जो करत न जाने बिनु घोर सोर,
भूलि गयो आपनी उँचाई लखे कद की।
खोइयो प्रबल मदगल गजराज एक,
सरजा सों बैर कै बड़ाई निज मद की ॥१५९॥

परिकर एवं परिकरांकुर

लक्षण—साभिप्राय बिसेषननि, भूषन परिकर मान।
साभिप्राय बिसेष्य तें, परिकर-अंकुर जान ॥१६०॥

परिकर

उदा०—बचैगा न समुहाने बहलोल खाँ अयाने,
भूषन बखाने दिल आनि मेरा बरजा।
तुझ तें सवाई तेरा भाई सलहेरि पास,
कैद किया साथ का न कोई बीर गरजा॥
साहिन के साहि उसी औरँग के लीन्हे गढ़,
जिसका तू चाकर औ जिसकी है परजा।
साहि का ललन दिली-दल का दलन अफ-
जल का मलन सिवराज आया सरजा ॥१६१॥

जाहिर जहान जाके धनद-समान,
पेखियतु पासवान यों खुमान-चित चाय है।
भूषन भनत देखे भूख न रहत सब,
आप ही सों जात दुख-दारिद बिलाय है॥
खीझे तें खलक माहिं खलभल डारत है,
रीझे तें पलक माहिं कीन्हें रंक राय है।
जंग जुरि अरिन के अंग को अनंग कीबो,
दीबो सिव साहब को सहज सुभाय है ॥१६२॥

सूर-सिरोमनि सूर-कुल, सिव सरजा मकरंद।
भूषन क्यों औरँग जितै, कुल-मलिच्छ-कुल-चंद ॥१६३॥

बिना लोभ को विवेक बिना भय जुद्ध-टेक,
साहिन सौं सदा साहितनै सिरताज के।
बिना ही कपट प्रीति बिना ही कलेस जीति,
बिना ही अनीति-रीति, लाज के जहाज के॥
सुकबि-समाज बिन अपजस-काज भनि,
भूषन भुसिल भूप गरिबनेवाज के।
बिना ही बुराई ओज बिना काज घनी फौज,
बिना अभिमान मौज राज सिवराज के॥१५४॥

कीरति को ताजी करी बाजी चढ़ि लूटि कीन्ही,
भई सब सेन बिनु बाजी बिजैपुर की।
भूषन भनत भौंसिला भुवाल धाक ही सौं,
धीर धरबी न फौज कुतुब के धुर की॥
सिंह उदैभान बिन अमर सुजान बिन,
मान बिन कीन्ही साहिबी त्यों दिलीसुर की।
साहिसुव महाबाहु सिवाजी सलाह बिन,
कौन पातसाह की न पातसाही मुरकी॥१५५॥

समासोक्ति

लक्षण—बरनन कीजै आन को, ज्ञान आन को होय।
समासोक्ति भूषन कहत, कबि कोबिद सब कोय॥१५६॥

उदा०—बड़ो डील लखि पील को, सबन तज्यो बन-थान।
धनि सरजा तू जगत मैं, ताको हर्‍यो गुमान॥१५७॥
तुही साँच द्विजराज है, तेरी कला प्रमान।
तो पर सिव किरपा करी, जानत सकल जहान॥१५८॥

उत्तर पहार बिधनोल खँडहर झार-
खंडहु प्रचार चारु केली है बिरद की।
गोर गुजरात अरु पूरब पछाँह ठौर,
जंतु जंगलीन की बसति मारि रद की॥

जस ।

भूषन जो करत न जाने बिनु घोर सोर,
भूलि गयो आपनी उँचाई लखे कद की।
खोइयो प्रबल मदगल गजराज एक,
सरजा सों बैर कै बड़ाई निज मद की ॥१५९॥

परिकर एवं परिकरांकुर

लक्षण—साभिप्राय बिसेषननि, भूषन परिकर मान।
साभिप्राय बिसेष्य तें, परिकर-अंकुर जान ॥१६०॥

परिकर

उदा०—बचैगा न समुहाने बहलोल खाँ अयाने,
भूषन बखाने दिल आनि मेरा बरजा।
तुझ तें सवाई तेरा भाई सलहेरि पास,
कैद किया साथ का न कोई बीर गरजा॥
साहिन के साहि उसी औरँग के लीन्हे गढ़,
जिसका तू चाकर औ जिसकी है परजा।
साहि का ललन दिली-दल का दलन अफ-
जल का मलन सिवराज आया सरजा ॥१६१॥

जाहिर जहान जाके धनद-समान,
पेखियतु पासवान यों खुमान-चित चाय है।
भूषन भनत देखे भूख न रहत सब,
आप ही सों जात दुख-दारिद बिलाय है॥
खीझे तें खलक माहि खलभल डारत है,
रीझे तें पलक माहिं कीन्हें रंक राय है।
जंग जुरि अरिन के अंग को अनंग कीबो,
दीबो सिव साहब को सहज सुभाय है ॥१६२॥

सूर-सिरोमनि सूर-कुल, सिव सरजा मकरंद।
भूषन क्यों औरँग जिते, कुल-मलिच्छ-कुल-चंद ॥१६३॥

पक्का मता करिकै मलेच्छ मनसब छाँड़ि,
मक्का ही के मिस उतरत दरियाव हैं ॥१७४॥

व्याजस्तुति

लक्षण—अस्तुति में निंदा कढ़े, निंदा अस्तुति होय।
व्याजस्तुति ताको कहत, कबि भूषन सब कोय ॥१७५॥

उदा०—पीरी-पीरी हुन्नै तुम देत हौ मँगाय हमैं,
सुबरन हम सों परखि करि लेत हौ
एक पल ही मैं लाख रूखन सों लेत लोग,
तुम राजा ह्वै कै लाख दीबे कों सचेत हौ
भूषन भनत महाराज-सिवराज बड़े,
दानी दुनी ऊपर कहाए केहि हेत हौ।
रीझि हँसि हाथी हमैं सब कोऊ देत,
कहा रीझि हँसि हाथी एक तुम हियै देत हौ ॥१७६॥

तू तो रातो दिन जग जागत रहत वेऊ,
जागत रहत रातौ दिन बन-रत हैं।
भूषन भनत तू बिराजै रज-भरो वेऊ,
रज-भरे देहिन दरी मैं बिचरत हैं॥
तूतौ सूर-गन को बिदारि बिहरत सूर-
मंडलै बिदारि वेऊ सुर-लोक-रत हैं।
काहे तें सिवाजी गाजी तेरोई सुजस होत,
तो सों अरिबर सरिबर-सी करत हैं ॥१७७॥

आक्षेप

प्रथम

लक्षण—पहिले कहिये बात कछु, पुनि ताको प्रतिषेध।
ताहि कहत आच्छेप हैं, भूषन सुकबि सुमेध ॥१७८॥

उदाहरण—

जाय भिरौ न भिरे बचिहौ भनि भूषन भौंसिला भूप सिवा सों।
जाय दरीन दुरौ दरिऔ तजिकै दरियाव लँघौ लघुता सों॥

सीछन-काज वजीरन को कढ़ै बोल यों एदिलसाहि-सभा सों।
छूटि गयो तौ गयो परनालो सलाह की राह गहौ सरजा सों॥

द्वितीय

लक्षण—जेहि निषेध आभास[1] ही, भनि भूषन सो और।
कहत सकल आच्छेप हैं, जे कबि-कुल-सिरमौर॥१८०॥

उदा०—पूरब के उत्तर के प्रबल पछाँहहू के,
सब पातसाहन के गढ़-कोट हरते।
भूषन कहै यों अवरंग सों वजीर, जीति
लीबे को पुरतगाल सागर उतरते॥
सरजा सिवा पर पठावत[2] मुहीम-काज,
हजरत हम मरिबे को नाहिं डरते।
चाकर ह्वै उजुर कियो न जाय नेक पै,
कछू दिन उबरते तौ घने काज करते॥१८१॥

विरोध

लक्षण— द्रव्य क्रिया गुन मैं जहाँ, उपजत काज-विरोध।
ताको कहत बिरोध हैं, भूषन सुकबि सुबोध॥१८२॥

उदाहरण—

श्रीसरजा सिव तो जस सेत सों होत हैं बैरिन के मुँह कारे।
भूषन तेरे अरुन्न प्रताप सपेत लखे कुनवा-नृप सारे॥
साहितनै तव कोप-कृसानु तें बैरि गरे सब पानिपवारे।
एक अचंभव होत बड़ो तिन ओंठ-गहे अरि जात न जारे॥

विरोधाभास

लक्षण—जहँ बिरोध-सो जानिए, साँच बिरोध न होय।
तहाँ बिरोधाभास कहि, बरनत हैं सब कोय॥१८४॥

उदाहरण—

दच्छिन-नायक एक तुही, भुव-भामिनि को अनुकूल ह्वै भावै।
दीनदयाल न तो सो दुनी पर म्लेच्छ के दीनहिं मारि मिटावै॥

१ अभ्यास। २ सिवाजी पर पठवौ।

श्रीसिवराज भनै कवि भूषन तेरे सरूप को कोउ न पावै।
सूर-सुबंस मैं सूर-सिरोमनि ह्वै करि तू कुलचंद कहावै ॥१८५॥

विभावना

प्रथम

लक्षण—भयो काज बिन हेतु ही, बरनत हैं जेहि ठौर।
तहँ बिभावना होत है, कवि भूषन-सिरमौर ॥१८६॥

उदाहरण—

बीर बड़े-बड़े मीर पठान खरो रजपूतन को गन भारो।
भूषन आय तहाँ सिवराज लयो हरि औरँगजेब को गारो॥
दीन्हो कुज्वाब दिलीपति को अरु कीन्हो वजीरन को मुँह कारो।
नायो न माथहि दक्खिननाथ न साथ मैं फौज न हाथ हथ्यारो॥

साहितनै सिवराज की, सहज-टेव यह ऐन।
अनरीझे दारिद हरै, अनखीझे अरि-सैन ॥१८८॥

द्वितीय एवं चतुर्थ

लक्षण—जहाँ हेतु पूरन नहीं, उपजत है पै काज।
कै अहेतु तें और यों, द्वै बिभावना साज ॥१८९॥

द्वितीय (अपूर्ण कारण से कार्य)

उदा०—दच्छिन को दाबि करि बैठो है सइस्तखान,
पूना माहि दूना करि जोर करवार को।
हिंदुवान-खंभ गढ़पति दलथंभ, भनि
भूषन भरैया कियो सुजस अपार को॥
मनसबदार चौकीदारन गँजाय,
महलन मैं मचाय महाभारत के भार को।
तो सो को सिवाजी जेहि दो सौ आदमी सों,
जीत्यो जंग सरदार सौ हजार असवार को ॥१९०॥

चतुर्थ (अहेतु से कार्य की उत्पत्ति)

उदा०—ता दिन अखिल खलभलैं खल खलक मैं,
जा दिन सिवाजी गाजी नेक करखत हैं।

सुनत नगारन अगार तजि अरिन की,
दारगन भाजत न बार परखत हैं॥
छूटे बार बार छूटे बारन तें लाल देखि,
भूषन सुकवि बरनत हरखत हैं।
क्यों न उतपात होहि बैरिन के झुंडन मैं,
कारे घन उमड़ि अँगारे बरखत हैं॥१९१॥

षष्ठ

लक्षण—जहाँ प्रगट भूषन भनत, हेतु काज तें होय।
सो बिभावना औरऊ, कहत सयाने लोय॥१९२॥

उदा०—अचरज भूषन मन बढ़यो, श्रीसिवराज खुमान।
तव कृपान-धुव-धूम तें, भयो प्रताप-कृसान॥१९३॥

साहितनै सिव तेरो सुनत पुनीत नाम,
धाम-धाम सब ही को पातक कटत है।
तेरो जस-काज आज सरजा निहारि कवि-
मन भोज बिक्रम कथा तें उचटत है॥
भूषन भनत तेरो दान-संकलप-जल,
अचरज सकल मही पै लपटत है।
और नदी-नदन तें कोकनद होत,
तेरो कर-कोकनद नदी-नद प्रगटत है॥१९४॥

विशेषोक्ति

लक्षण—जहाँ हेतु समरथ भयहु, प्रगट होत नहिं काज।
तहाँ बिसेसोकति कहत, भूषन कवि-सिरताज॥१९५॥

उदाहरण—

दै दस-पाँच रुपैयन को जग कोऊ नरेस उदार कहायो।
कोटिन दान सिवा सरजा के सिपाहिन साहिन को बिचलायो॥
भूषन कोऊ गरीबन सों भिरि भीमहुँ तें बलवंत गनायो।
दौलति इंद्र-समान बढ़ी पै खुमान के नेक गुमान न आयो॥

असंभव

लक्षण—अनहूवे की बात कछु, प्रगट भई-सी जानि।
तहाँ असंभव बरनिए, सोई नाम बखानि ॥१९७॥

उदा०—औरँग यों पछितात, मैं करतो जतन अनेक।
सिवा लेइगो दुरग सब, को जानै निसि एक ॥१९८॥

जसन के रोज यों जलूस गहि बैठो जोऽब,
इंद्र आवै सोऊ लागै औरँग की परजा।
भूषन भनत तहाँ सरजा सिवाजी गाजी,
तिनको तुजुक देखि नेकहू न लरजा॥
ठान्यो न सलाम भान्यो साहि को इलाम,
धूम-धाम कै न मान्यो रामसिंहहू को बरजा।
जासों बैर करि भूप बचै न दिगंत, ताके
दंत तोरि तखत तरे तें आयो सरजा ॥१९९॥

असंगति

प्रथम

लक्षण—हेतु अनत ही होय जहँ, काज अनत ही होय।
ताहि असंगति कहत हैं, भूषन सुमति समोय ॥२००॥

उदा०—महाराज सिवराज चढ़त तुरंग पर,
ग्रीवा जात नै करि गनीम अतिबल की।
भूषन चलत सरजा की सैन भूमि पर,
छाती दरकति है खरी अखिल खल की॥
कियो दौरि घाव उमरावन अमीरन पै,
गई कटि नाक सिगरेई दिली-दल की।
सूरत-जराई कियो दाह पातसाह उर,
स्याही जाय सब पातसाही मुख झलकी ॥२०१॥

द्वितीय

लक्षण—आन ठौर करनीय सो, करै और ही ठौर।
ताहि असंगति और कवि, भूषन कहत सगौर ॥२०२॥

उदा०—भूपति सिवाजी तेरी धाक सों सिपाहिन के,
राजा पातसाहिन के मन तें अहं गली।
भौंसला अभंग तू तौ जुरतो जहाँई जंग,
तेरी एक फते होत मानो सदा संग ली॥
साहि के सपूत पुहुमी के पुरहूत, कवि
भूषन भनत तेरी खरगऊ दंगली।
सत्रुन की सुकुमारी थहरानी सुंदरी औ,
सत्रु के अगारन में राखे जंतु जंगली॥२०३॥

तृतीय

लक्षण—करन लगै औरै कछू, करै औरई काज।
तहाँ असंगति होत है, कहि भूषन कविराज॥२०४॥

उदाहरण—

साहितनै सरजा सिव के गुन नेकहु भाषि सक्यो न प्रवीनो।
उद्यत होत कछू करिबे को करै कछु बीर महारस-भीनो॥
ह्याँ तें गयो चकतै सुख देन को गोसलखाने गयो दुख दीनो।
जाय दिली-दरगाह सुसाहि को भूषन वैरि बनाय ही लीनो २०५

विषम

लक्षण—कहाँ बात यह कहँ वहै, यों जहँ करत बखान।
तहाँ विषम भूषन कहत, भूषन सुकवि सुजान॥२०६॥

उदाहरण—

जावलिबार सिंगारपुरी औ जवारि को राम के नैरि को गाजी।
भूषन भौंसिला भूपति तैं सब दूरि किए करि कीरति ताजी।
वैर कियो सिवाजी सों खवास खाँ डौंड़ियै सैन विजैपुर बाजी।
बापुरो एदिलसाहि कहाँ कहाँ दिल्ली को दामनगीर सिवाजी २०७
लै परनालो सिवा सरजा करनाटक लौं सब देस बिगूँचे।
वैरिन के भगे बालक-वृंद कहै कवि भूपन दूरि पहूँचे॥
नाँघत नाँघत घोर घने बन हारि परे यों कटे मनो कूँचे।
राजकुमार कहाँ सुकुमार कहाँ बिकरार पहार वै ऊँचे॥२०८॥

सम

लक्षण—जहाँ दुहूँ अनुरूप को, करिए उचित बखान।
सम भूषन तासों कहत, भूषन सकल सुजान ॥२०६॥

उदाहरण—

पंच-हजारिन बीच खड़ा किया मैं उसका कुछ भेद न पाया।
भूषन यों कहि औरँगजेब उजीरन सों वेहिसाब रिसाया॥
कम्मर की न कटारी दई इसलाम को गोसलखाने बचाया।
जोर सिवा करता अनरत्थ भली भई हत्थ हथ्यार न आया।२१०।

कछु न भयो केतो गयो, हार्यो सकल सिपाह।
भली करै सिवराज सों, औरँग करै सलाह ॥२११॥

विचित्र

लक्षण—जहाँ करत हैं जतन, फल चित्त चाहि बिपरीत।
भूषन ताहि विचित्र कहि, बरतन सुकबि बिनीत ॥२१२॥

उदा०—तैं जयसिंहहिं गढ़ दिए, सिव सरजा जस-हेत।
लीन्हे कैयो बरस मैं, बार न लागी देत ॥२१३॥

बेदर कल्यान दै परेभा आदि कोट, साहि
एदिल गँवायहै नवाय निज सीस को।
भूषन भनत भागनगरी कुतुब साईं,
दै करि गँवायो रामगिरि-से गिरीस को॥
भौंसिला भुवाल साहितनै गढ़पाल, दिन
द्वै ना लगाए गढ़ लेत पचतीस को।
सरजा सिवाजी जयसाह मिरजा को लीबे,
सौ गुनी बड़ाई गढ़ दीन्हे हैं दिलीस को ॥२१४॥

प्रहर्षण

लक्षण—जहँ मन-वांछित अरथ तें, प्रापति कछु अधिकाय।
तहाँ प्रहरषन कहत हैं, भूषन जे कविराय ॥२१५॥

उदा०—साहितनै सरजा की कीरति सों चारों ओर,
चाँदनी बितान छिति-छोर छाइयतु है।
भूषन भनत ऐसो भूमिपति भौंसिला है,
जाके द्वार भिच्छुक सदाई भाइयतु है॥
महादानि सिवाजी खुमान या जहान पर,
दान के प्रमान जाके यों गनाइयतु है।
रजत की हौंस किए हेम पाइयतु जासों,
हयन की हौंस किए हाथी पाइयतु है॥२१६॥

विषादन

लक्षण—जहँ चित-चाहे काज तें, उपजत काज विरुद्ध।
ताहि बिषादन कहत हैं, भूषन बुद्धि बिसुद्ध॥२१७॥

उदाहरण—

दारहिं दारि मुरादहि मारि कै संगर साहसुजै बिचलायो।
कै कर मैं सब दिल्ली की दौलति औरहु देस घने अपनायो॥
बैर कियो सरजा सिव सों यह नौरंग के न भयो मन भायो।
फौज पठाई हुती गढ़ लेन को गाँठहु के गढ़-कोट गँवायो॥२१८॥
महाराज सिवराज तव, वैरी तजि रस-रुद्र।
बचिबे को सागर तिरे, बूड़े सोक-समुद्र॥२१९॥

अधिक

लक्षण—जहाँ बड़े आधार तें, बरनत बढ़ि आधेय।
ताहि अधिक भूषन कहत, जानि सुग्रंथ प्रमेय॥२२०॥
उदा०—सिव सरजा तव हाथ को, नहिं बखान करि जात।
जाको बासी सुजस सब, त्रिभुवन में न समात॥२२१॥
सहज सलीलसील जलद-से नील डील,
पब्बय-से पील देत नहिं अकुलात है।
भूषन भनत महाराज सिवराज देत,
कंचन को ढेरु जो सुमेरु-सो लखात है॥

सरजा सवाई कासों करि कविताई, तव
हाथ की बड़ाई को बखान करि जात है।
जाको जस-टंक सातो दीप नव खंड महि-
मंडल की कहा ब्रहमंड ना समात है ॥२२२॥

अन्योन्य

लक्षण—अन्योन्या उपकार जहँ, यह बरनन ठहराय।
ताहि अन्योन्या कहत हैं, अलंकार कबिराय ॥२२३॥

उदाहरण—

तो कर सों छिति छाजत दान है दानहु सों अति तो कर छाजै।
तैं ही गुनी की बड़ाई सजै अरु तेरी बड़ाई गुनो सब साजै॥
भूषन तोहि सों राज बिराजत राज सों तू सिवराज बिराजै।
तो बल सों गढ़-कोट गजैं अरु तू गढ़-कोटन के बल गाजै।२२४।

विशेष

प्रथम

लक्षण—बरनत हैं आधेय को, जहँ बिनही आधार।
ताहि बिसेष बखानहीं, भूषन कवि-सरदार ॥२२५॥
उदा०—सिव सरजा सों जंग जुरि, चंदावत रजवंत।
राव अमर गो अमरपुर, समर रही रज-तंत ॥२२६॥
सिवाजी खुमान सलहेरि मैं दिलीस-दल,
कीन्हो कतलाम करबाल गहि कर मैं॥
सुभट सराहे चंदावत कछवाहे,
मुगलौ पठान ढाहे फरकत परे फर मैं।
भूषन भनत भौंसिला के भट उदभट,
जीति घर आए धाक फैली घरघर मैं॥
मारु के करैया अरि अमरपुरै गे तऊ,
अजौं मारु-मारु सोर होत है समर मैं ॥२२७॥

द्वितीय

कोट गढ़ दै कै माल मुलुक मैं बीजापुरी,
गोलकुंडावारो पीछे ही को सरकतु है।
भूषन भनत भौंसिला भुवाल भुजबल,
रेवा ही के पार अवरंग हरकतु है॥
पेसकसैं भेजत इरान - फिरगान - पति,
उनहू के उर याकी धाक धरकतु है।
साहितनै सिवाजी खुमान या जहान पर,
कौन पातसाह के न हिए खरकतु है॥२२८॥

व्याघात

लक्षण—और-काज-करता जहाँ, करै औरई काज।
ताहि कहत व्याघात हैं, भूषन कवि-सिरताज॥२२९॥

उदाहरण—

ब्रह्म रचै पुरुषोत्तम पोसत संकर सृष्टि-सँहारनहारे।
तू हरि को अवतार सिवा नृप-काज सँवारे सबै हरिवारे।
भूषन यों अवनी जवनी कहैं कोऊ कहै सरजा सों हहा रे।
तू सबको प्रतिपालनहार विचारे भतार न मारु हमारे॥२३०॥

कसत मैं बार बार वैसोई बुलंद होत,
वैसोई सरस-रूप समर भरत है।
भूषन भनत महाराज सिव राज-मनि,
सघन सदाई जस-फूलन धरत है॥
बरछी कृपान गोली तीर केते मान,
जोरावर गोला बान तिनहू को निदरत है।
तेरो करवाल भयो जगत को ढाल अब,
सोई हाल म्लेच्छन के काल को करत है॥२३१॥

गुंफ

लक्षण—पूरब पूरब हेतु कै, उत्तर उत्तर हेतु।
या बिधि धारा वरनिए, गुंफ कहावत नेतु॥२३२॥

उदाहरण—

संकर की किरपा सरजा पर जोर बढ़ी कवि भूषन गाई।
ता किरपा सों सुबुद्धि बढ़ी भुवि भौंसिला साहितनै की सवाई॥
राज सुबुद्धि सों दान बढ्यो अरु दान सों पुन्य-समूह सदाई।
पुन्य सों बाढ्यो सिवाजी खुमान खुमान सों बाढ़ी जहान भलाई २३३

सुजस दान अरु दान धन, धन उपजै किरवान।
सो जग मैं जाहिर करी, सरजा सिवा खुमान॥२३४॥

एकावली

लक्षण—प्रथम बरनि जहँ छोड़िए, जहाँ अरथ की पाँति।
बरनत एकावलि अहै, कबि भूषन यहि भाँति॥२३५॥

उदा०—तिहुँ भुवन मैं भूषन भनै नरलोक पुन्य सुसाज मैं।
नरलोक मैं तीरथ लसै महि तीरथों की समाज मैं॥
महि मैं बड़ी महिमा भली महिमै महारज-लाज मैं।
रज-लाज राजत आजु है महराज श्रीसिवराज मैं॥२३६॥

मालादीपक एवं सार

लक्षण—दीपक एकावलि मिले, मालादीपक होय।
उत्तर उत्तर उतकरष, सार कहत हैं सोय॥२३७॥

मालादीपक

उदा०—मन कवि भूषन को सिव की भगति जीत्यो,
सिव की भगति जीत्यो साधुजन-सेवा ने।
साधु-जन जीते या कठिन कलिकाल,
कलिकाल महाबीर महाराज महिमेवा ने।
जगत मैं जीते महाबीर महाराजन तें,
महाराज बावनहू पातसाह-लेवा ने।
पातसाह बावनौ दिली के पातसाह दिल्ली-
पति पातसाहै जीत्यो हिंदुपति सेवा ने॥२३८॥

सार

उदाहरण—

आदि बड़ी रचना है बिरंचि की जामैं रह्यो रचि जीव जड़ो है।
ता रचना महँ जीव बड़ो अति काहे तें ता उर ग्यान गड़ो है॥
जीवन मैं नर लोग बड़े कबि भूषन भाषत पैज अड़ो है।
है नर लोग मैं राजा बड़ो सब राजन मैं सिवराज बड़ो है॥२३९॥

यथासंख्य

लक्षण—क्रम सों कहि तिनके अरथ, क्रम सों बहुरि मिलाय।
यथासंख्य ताको कहैं, भूषन जे कबिराय॥२४०॥

उदा०—जेई चहौ तेई गहौ सरजा सिवाजी देस,
संके दल दुवन के जे वै बड़े उर के।
भूषन भनत भौंसिला सों अब सनमुख,
कोऊ ना लरैया है धरैया धीर-धुर के।
अफजलखान रुस्तमे जमान फत्तेखान,
कूटे लूटे जूटे ए उजीर[1] बिजैपुर के।
अमर सुजान मोहकम बहलोलखान[2],
खाँड़े, छाँड़े, डाँड़े उमराव दिलीसुर के॥२४१॥

पर्याय

लक्षण—एक अनेकन में रहै, एकहि मैं कि अनेक।
ताहि कहत परयाय हैं, भूषन सुकवि-बिवेक॥२४२॥

उदा०—जीत रही औरंग मैं, सवै छत्रपति छाँड़ि।
तजि ताहू को अब रही, सिव सरजा-कर माँड़ि॥२४३॥

अगर के धूप धूम उठत जहाँई तहाँ,
उठत बगूरे अब अति ही अमाप हैं।
जहाँई कलावँत अलापैं मधुर-स्वर,
तहाँ भूत-प्रेत अब करत बिलाप हैं॥

---

1 खूटे कूटे लूटे ए उजीर। २ इखलास खान।

भूषन सिवाजी सरजा के वैर वैरिन के,
डेरन मैं परे मनो काहु के सराप हैं।
बाजत हे जिन महलन मैं मृदंग तहाँ,
गाजत मतंग सिंघ बाघ दीह दाप हैं।।२४४।।

परिवृत्ति

लक्षण—एक बात को दै जहाँ, आन बात को लेत।
ताहि कहत परिबृत्ति हैं, भूषन सुकवि सचेत ।।२४५।।

उदा०—दच्छिन-धरन धीर-धरन खुमान गढ़,
लेत गढ़धरन सौं धरम-दुवारु दै।
साहि नरनाह को सपूत महाबाहु लेत,
मुलुक महान छीनि साहन को मारु दै।।
संगर मैं सरजा सिवाजी अरि-सैनन को,
सार हरि लेत हिंदुवान-सिर सारु दै।
भूषन भुसिल जय-जस को पहारु लेत,
हरजू को हारु हरगन को अहारु दै।।२४६।।

परिसंख्या

लक्षण—अनत बरजि कछु बस्तु जहँ, बरनत एकहि ठौर।
तेहि परिसंख्या कहत हैं, भूषन कबि दिलदौर ।।२४७।।

उदा०—अति मतवारे जहाँ दुरदै[1] निहारियतु,
तुरगन ही मैं चंचलाई परकीति है।
भूषन भनत जहाँ पर[2] लागैं बानन मैं,
कोक पच्छिनहिं माहिं बिछुरन-रीति है।।
गुनि-गन चोर जहाँ एक चित्त ही के,
लोक बँधै जहाँ एक सरजा की गुन-प्रीति है।
कंप कदली मैं वैरु वृन्द बदरी मैं,
सिवराज अदली के राज मैं यों राजनीति है।।२४८।।

---

१ पंछी हितु। २ बारि वृंद बदली मैं।

विकल्प

लक्षण—कै वह कै यह कीजिए, जहँ कहनावति होय।
ताहि विकल्प बखानहीं, भूषन कवि सब कोय ॥२४९॥

उदाहरण—

मोरँग जाहु कि जाहु कमाऊँ सिरीनगरै कि कवित्त बनाए।
बाँधव जाहु कि जाहु अमेरि कि जोधपुरै कि चितौरहि धाए॥
जाहु कुतुब्ब कि एदिल पै कि दिलीसहु पै किन जाहु बोलाए।
भूषन गाय फिरौ महि मैं बनिहै चित-चाह सिवाहि रिझाए॥
देसन देसन नारि नरेसन भूषन यों सिख देहिं दया सों।
मंगन ह्वै करि, दंत गहौ तिन, कंत तुम्हैं हैं अनंत महा सों॥
कोट गहौ कि गहौ बन-ओट कि फौज की जोट सजौ प्रभुता सों।
और करौ किन कोटिक राह सलाह बिना बचिहौ न सिवा सों॥

समाधि

लक्षण—और हेतु मिलि कै जहाँ, होत सुगम अति काज।
ताहि समाधि बखानहीं, भूषन जे कबिराज ॥२५२॥

उदाहरण—

बैर कियो सिव चाहत हो तब लौं अरि बाह्यो कटार कठैठो।
यों ही मलिच्छहि छाँड़ै नहीं सरजा मन तापर रोस मैं पैठो॥
भूषन क्यों अफजल्ल बचै अठपाव कै सिंह को पाँव उमैठो।
बीछू के घाय धुक्योई धरक्क ह्वै तौ लगि धाय धरा धरि नैठो॥

समुच्चय

प्रथम

लक्षण—एक बार ही जहँ भयो, बहु काजन को बंध।
ताहि समुच्चय कहत हैं, भूषन जे मतिवंध ॥२५४॥

उदाहरण—

माँगि पठायो सिवा कछु देस वजीर अजानन बोल गहे ना।
दौरि लियो सरजा परनालो यों भूषन जो दिन दोय लगे ना॥

धाक सों खाक बिजैपुर भो मुख आय गो खान खवास के फेना।
भै भरकी करकी धरकी दरकी दिल एदिलसाह की सेना ।२५५।

द्वितीय

लक्षण—बस्तु अनेकन को जहाँ, बरनत एकहि ठौर।
दुतिय समुच्चय ताहि को, कहि भूषन कवि-मौर ॥२५६॥

उदाहरण—

सुंदरता गुरुता प्रभुता भनि भूषन होत है आदर जामैं।
सज्जनता औ दयालुता दीनता कोमलता झलकै परजा मैं ॥
दान कृपानहु को करिबो करिबो अभै दीनन को बर जामैं।
साहन सों रन, टेक-बिबेक इते गुन एक सिवा सरजा मैं ॥२५७॥

लक्षण—जहाँ जोरावर सत्रु के, पच्छी पै कर जोर।
प्रत्यनीक तासों कहैं, भूषन बुद्धि अमोर ॥२५८॥

उदाहरण—

लाज धरौ सिवजू सों लरौ सब सैयद सेख पठान पठाय कै।
भूषन ह्याँ गढ़-कोटन हारे उहाँ तुम क्यों मठ तोरे रिसाय कै ॥
हिंदुन के पति सों न बिसाति सतावत हिंदु गरीबन पाय कै।
लीजै कलंक न दिल्लि के बालम आलम आलमगीर कहाय कै ॥

और गरबीले अरबीले राठवर गह्यो,
लोहगढ़ सिंहगढ़ हिम्मति हरष तें।
कोट के कँगूरन मैं गोलंदाज, तीरंदाज,
राखे हैं लगाय गोली-तीरन बरषतें ॥
कैके सावधान किरवान कसि कम्मरन,
सुभट अमान चहुँ ओरन करषतें।
भूषन भनत तहाँ सरजा सिवा तैं चढ़ो,
राति के सहारे तें अराति-अमरष तें ॥२६०॥

अर्थापत्ति

लक्षण—वह कीन्ह्यो तो यह कहा, यों कहनावति होय।
अर्थापत्ति बखानहीं, तहाँ सयाने लोय ॥२६१॥

उदा०—सयन मैं साहन को सुंदरी सिखावैं ऐसे,
सरजा सों बैर जनि करौ महाबली है।
पेसकसैं भेजत बिलायति पुरतगाल
सुनिकै सहमि जात करनाट-थली है॥
भूषन भनत गढ़-कोट माल-मुलुक दै,
सिवा सों सलाह राखिए तौ बात भली है।
जाहि देत दंड सब डरिकै अखंड सोई,
दिल्ली दलमली तौ तिहारी कहा चली है॥२६२॥

काव्यलिंग

लक्षण—है दिढ़ाइबे जोग जो, ताको करत दिढ़ाव।
काव्यलिंग तासों कहैं, भूषन जे कविराव॥२६३॥

उदा०—साइति लै लीजिए बिलाइति को सर कीजै,
बलख बिलायति को बंदी अरि-डावरे।
भूषन भनत कीजै उत्तरी भुवाल बस,
पूरब के लीजिए रसाल गज-छावरे॥
दच्छिन के नाथ के सिपाहिन सों बैर करि,
अवरंग साहिजू कहाइये न बावरे।
कैसे सिवराज मानु देत अवरंगै गढ़,
गाढ़े गढ़पती गढ़ लीन्हे और रावरे॥२६४॥

अर्थांतरन्यास

लक्षण—कह्यो अरथ जहँ ही लियो, और अरथ-उल्लेख।
सो अर्थांतरन्यास है, कहि सामान्य विसेख॥२६५॥

सामान्यभेद

उदा०—विना चतुरंग संग बानरन लैके, बाँधि
बारिधि को लंक रघुनंदन जराई है।
पारथ अकेले द्रोन भीषम-से लाख भट,
जीति लीन्ही नगरी विराट मैं बड़ाई है॥

धाक सों खाक बिजैपुर भो मुख आय गो खान खवास के फेना।
सै भरकी करकी धरकी दरकी दिल एदिलसाह की सेना ।२५५।

द्वितीय

लक्षण—बस्तु अनेकन को जहाँ, बरनत एकहि ठौर।
दुतिय समुच्चय ताहि को, कहि भूषन कवि-मौर ॥२५६॥

उदाहरण—

सुंदरता गुरुता प्रभुता भनि भूषन होत है आदर जामैं।
सज्जनता औ दयालुता दीनता कोमलता झलकै परजा मैं॥
दान कृपानहु को करिबो करिबो अभै दीनन को बर जामैं।
साहन सों रन, टेक-बिबेक इते गुन एक सिवा सरजा मैं ॥२५७॥

लक्षण—जहाँ जोरावर सत्रु के, पच्छी पै कर जोर।
प्रत्यनीक तासों कहैं, भूषन बुद्धि अमोर ॥२५८॥

उदाहरण—

लाज धरौ सिवजू सों लरौ सब सैयद सेख पठान पठाय कै।
भूषन ह्याँ गढ़-कोटन हारे उहाँ तुम क्यों मठ तोरे रिसाय कै॥
हिंदुन के पति सों न बिसाति सतावत हिंदु गरीबन पाय कै।
लीजै कलंक न दिल्लि के बालम आलम आलमगीर कहाय कै॥

और गरबीले अरबीले राठवर गह्यो,
लोहगढ़ सिंहगढ़ हिम्मति हरष तें।
कोट के कँगूरन मैं गोलंदाज, तीरंदाज,
राखे हैं लगाय गोली-तीरन बरषतें॥
कैके सावधान किरवान कसि कम्मरन,
सुभट अमान चहुँ ओरन करषतें।
भूषन भनत तहाँ सरजा सिवा तैं चढ़ो,
राति के सहारे तें अराति-अमरष तें ॥२६०॥

अर्थापत्ति

लक्षण—वह कीन्ह्यो तो यह कहा, यों कहनावति होय।
अर्थापत्ति बखानहीं, तहाँ सयाने लोय ॥२६१॥

उदा०—सयन मैं साहन को सुंदरी सिखावैं ऐसे,
सरजा सौं बैर जनि करौ महाबली है।
पेसकसैं भेजत बिलायति पुरुतगाल
सुनिकै सहमि जात करनाट-थली है॥
भूषन भनत गढ़-कोट माल-मुलुक दै,
सिवा सौं सलाह राखिए तौ बात भली है।
जाहि देत दंड सब डरिकै अखंड सोई,
दिल्ली दुलमली तौ तिहारी कहा चली है॥२६२॥

काव्यलिंग

लक्षण—है दिढ़ाइबे जोग जो, ताको करत दिढाव।
काव्यलिंग तासों कहैं, भूषन जे कबिराव॥२६३॥

उदा०—साहति लै लीजिए बिलाइति को सर कीजै,
बलख बिलायति को बंदी अरि-डावरे।
भूषन भनत कीजै उत्तरी भुवाल बस,
पूरब के लीजिए रसाल गज-छावरे॥
दच्छिन के नाथ के सिपाहिन सौं बैर करि,
अवरंग साहिजू कहाइये न बावरे।
कैसे सिवराज मानु देतं अवरंगै गढ़,
गाढ़े गढ़पती गढ़ लीन्हे और रावरे॥२६४॥

अर्थांतरन्यास

लक्षण—कह्यो अरथ जहँ ही लियो, और अरथ-उल्लेख।
सो अर्थांतरन्यास है, कहि सामान्य विसेख॥२६५॥

सामान्यभेद

उदा०—बिना चतुरंग संग बानरन लैके, बाँधि
बारिधि को लंक रघुनंदन जराई है।
पारथ अकेले द्रोन भीषम-से लाख भट,
जीति लीन्ही नगरी बिराट में बड़ाई है॥

भूषन भनत है गुसुलखान पै खुमान,
अवरंग साहिबी हथ्थाय हरि लाई है
तौ कहा अचंभो महाराज सिवराज सदा,
बीरन के हिम्मतै हथ्यार होत आई है ॥२६६॥

विशेषभेद

साहितनै सरजा समरत्थ करी करनी धरनी पर नीकी ।
भूलि गे भोज-से बिक्रम-से औ भई बलि-बेनु की कीरति फीकी ॥
भूषन भिच्छुक भूप भए भलि भीख लै केवल भौंसिला ही की ।
नैसुक रीझि धनेस करै, लखि ऐसियै रीति सदा सिवजी की ॥

प्रौढ़ोक्ति

लक्षण—जहँ उतकरष अहेत को, बरनत हैं करि हेत ।
प्रौढ़ोकति तासों कहत, भूषन कबि-बिरदेत ॥२६८॥

उदा०—मानसरवासी हंस बंस न समान होत,
चंदन सों घस्यो घनसारऊ धरीक है ।
नारद की सारद की हाँसी में कहाँ की आभ,
सरद की सुरसरी को न पुंडरीक है ॥
भूषन भनत छक्यो छीरधि में थाह लेत,
फेन लपटानो ऐरावत को करी कहै ।
कयलास-ईस ईस-सीस रजनीस वहौ,
अवनीस सिवा के न जस को सरीक है ॥२६९॥

संभावना

लक्षण—'जु यों होय तौ होय इमि', जहँ संभावन होय ।
ताहि कहत संभावना, कवि भूषन सब कोय ॥२७०॥

उदा०—लोमस की ऐसी आयु होय कौनहू उपाय,
तापर कवत्त जो करनवारो धरिए ।

ताहू पर[1] हूजिए सहसबाहु ता पर,
सहस-गुनो साहस जो भीमहु तें करिए ॥
भूषन कहैं यों अवरंगजू सों उमराव,
नाहक कहौ तौ जाय दच्छिन मैं मरिए।
चलै न कछू इलाज भेजियत वेही काज[2],
ऐसो होय साज तौ सिवा सों जाय लरिए ॥२७१॥

मिथ्याध्यवसिति

लक्षण—झूठ अरथ की सिद्धि को, झूठो वरनन आन।
मिथ्याध्यवसित कहत हैं, भूषन सुकवि सुजान ॥२७२॥
उदा०—पग रन मैं चल यों लसैं, ज्यों अंगद पग पैन।
ध्रुव सो भुव सो मेरु सो, सिव सरजा को बैन ॥२७३॥
मेरु सम छोटो पन, सागर सो छोटो मन,
धनद को धन ऐसो छोटो जग जाहि को।
सूरज सो सीरो तेज चाँदनी सी कारी कित्ति,
अमिय सो कटु लागै दरसन ताहि को ॥
कुलिस सो कोमल कृपान अरि भंजिबे को,
भूषन भनत भारी भूप भौंसिलाहि को।
भुव सम चल पद सदा महिमंडल मैं,
ध्रुव सो चपल ध्रुव-बल सिवसाहि को ॥२७४॥

उल्लास

लक्षण—एकहि के गुन दोष तें, औरै को गुन दोस।
बरनत हैं उल्लास सो, सकल सुकवि मतिपोस ॥२७५॥

गुणेन दोषो

उदाहरण—

काज सही सिवराज बली हिंदुवान बढ़ाइबे को उर ऊटै।
भूषन भू निरम्लेच्छ करी चहै, म्लेच्छन मारिबे को रन जूटै ॥

---

१ तापर जो। २ जीवत हैं वै ही।

हिंदु बचाय बचाय यही अमरेस चँदावत लौं कोइ टूटै।
चंद-अलोक तें लोक सुखी यहि कोक अभागे को सोक न छूटै २७६॥

दोषेन गुणो

देस दहपट्ट कीने लूटिकै खजाने लीने,
बचे न गढ़ोई काहू गढ़-सिरताज के।
तोरि डारे सकल तिहारे मनसबदार,
डाँड़े, जिनके सुभाय जंयद मिजाज के॥
भूषन भनत बादसाह को यों लोग सब,
बचन सिखावत सलाह की इलाज के।
डावरे की बुद्धि ह्वै कै बावरे न कीजै वैरु,
रावरे के बैर होत काज सिवराज के॥२७७॥

दोषेन गुणो

नृप सभान मैं आपनी, होन बड़ाई काज।
साहितनै सिवराज के, करत कबित कबिराज॥२७८॥

दोषेन दोषो

सिव सरजा के बैर को, यह फल आलमगीर।
छूटे तेरे गढ़ सबै, कूटे गए वजीर॥२७९॥

दौलति दिली की पाय कहाए[2] अलमगीर,
बब्बर अकब्बर के बिरद बिसारे तैं।
भूषन भनत लरि लरि सरजा सौं जंग,
निपट अभंग गढ़ कोट सब हारे तैं॥
सुधरयो न एकौ काज भेजि भेजि ब्रेही[3] काज,
बड़े-बड़े बे इलाज उमराव मारे तैं।
मेरे कहे मेर करु सिवाजी सों बैर करि,
गैर करि नैर निज नाहक उजारे तैं॥२८०॥

जंग दे। २ कहाइ। ३ वैर।

अवज्ञा

लक्षण—औरे के गुन दोस तें, होत न जहँ गुन दोस।
तहाँ अवज्ञा होत है, भनि भूषन मतिपोस ॥२८१॥

उदाहरण—

औरन के अनवाढ़े कहा अरु बाढ़े कहा, नहिं होत चहा है।
औरन के अनरीझे कहा अरु रीझे कहा, न मिटावत हा है॥
भूषन श्रीसिवराजहि माँगिए, एक दुनी विच दानि महा है।
मंगन औरन के दरबार गए तौ कहा न गए तौ कहा है ॥२८२

अनुज्ञा

लक्षण—जहाँ सरस गुन देखिकै, करै दोस की हौस।
तहाँ अवज्ञा होत है, भूषन कवि यहि रौस ॥२८३॥

उदा०—जाहिर जहान सुनि दान के बखान आजु,
महादानि साहितनै गरिबनेवाज के।
भूषन जवाहिर जलूस जरबाफ जोति,
देखि देखि[2] सरजा की सुकबि-समाज के॥
तप करि करि कमलापति सों माँगत यों,
लोग सब करि मनोरथ ऐसे साज के।
बैपारी जहाज के न राजा भारी राज के,
भिखारी हमैं कीजै[3] महाराज सिवराज के ॥२८४॥

लेश

लक्षण—जहँ बरनत गुन दोष कै, कहै दोष गुन रूप।
भूषन ताको लेस कहि, गावत सुकबि अनूप ॥२८५॥

उदा०—उदैभानु राठौर बर, धरि धीरज, गढ़, एँड़।
प्रगटै फल ताको लह्यौ, परि गो सुरपुर पैंड़ ॥२८६॥
कोऊ बचत न सामुहें, सरजा सों रन साजि।
भली करी पिय! समर तें, जिय लै आए भाजि ॥२८७॥

---

१ महा। २ देखि सिव। ३ राज के न कीजियो भिखारी।

तद्गुण

लक्षण—जहाँ आपनो रंग तजि, गहे और को रंग।
ताको तदगुन कहत हैं, भूषन बुद्धि-उतंग ॥२८८॥

उदा०—पंपा मानसर आदि अगन तलाव लागे,
जाहि के परन में अकथ युत गथ के।
भूषन यों साज्यो राजगढ़ सिवराज रहे,
देव चक चाहि कै बनाए राजपथ के।
बिन अवलंब कलिकानि आसमान मैं है,
होत बिसराम जहाँ इंदु औ उदथ के[1]।
महत उतंग मनि जोतिन के संग आनि,
कैयो रंग चकहा गहत रबि-रथ के ॥२८९॥

पूर्वरूप

लक्षण—प्रथम रूप मिटि जात जहँ, फिरि वैसोई होय।
भूषन पूरवरूप सो, कहत सयाने लोय ॥२९०॥

उदाहरण—

ब्रह्म के आनन तें निकसे तें अत्यंत पुनीत तिहूँ पुर मानी।
राम जुधिष्ठिर के बरने बलमीकिहु व्यास के अंग सोहानी॥
भूषन यों कलि के कबिराजन राजन के गुन गाय नसानी।
पुन्यचरित्र सिवा सरजै सर न्हाय पवित्र भई पुनि बानी ॥२९१

यों सिर पै छहरावत छार हैं जाते उठै असमान बगूरे।
भूषन भूधरऊ धरकैं जिनके धुनि धक्कन यों बल रूरे॥
तें सरजा सिवराज दिए कबिराजन को गजराज गरूरे।
सुंडन सों पहिले जिन सोखिकै फेरि महामद सों नद पूरे ॥२९

श्रीसरजा सलहेरि के जुद्ध घने उमरावन के घर घाले।
कुंभ चँदावत सैद पठान कबंधन धावत भूधर हाले॥
भूषन यों सिवराज की धाक भए पियरे अरुने रँगवाले।
लोहे कटे लपटे अति लोहु भए मुँह मीरन के पुनि लाले ॥२९

---

1 होत बिसराम जहाँ इंदु औ उड़ थके।

यों कवि भूषन भाषत है यक तौ पहिले कलिकाल की सैली।
तापर हिंदुन की सब राह सु नौरंग साह करी अति मैली॥
साहितने सिव के डर सों तुरको गही बारिधि की गति पैली।
वेद पुरानन की चरचा अरचा द्विज-देवन की फिरि फैली॥

अतद्गुण

लक्षण—जहँ संगति तें, और को गुन कछूक नहिं लेत।
ताहि अतदगुन कहत हैं, भूषन सुकवि सचेत॥२६५॥

उदाहरण—

दीनदयाल दुनी-प्रतिपालक जे करता निरम्लेच्छ मही के।
भूषन भूधर उद्धरिबो सुने और जिते गुन ते सिवजी के॥
या कलि में अवतार लियो तऊ तेई सुभाव सिवाजी बली के।
आय धरयो हरि तें नर-रूप पै काज करै सिगरे हरि ही के॥

सिवाजी खुमान तेरो खग्ग बढ़े मान बढ़े,
मानस लौं बदलत कुरुख उछाह तें।
भूषन भनत क्यों न जाहिर जहान होय,
प्यार पाय तो से ही दिपत नरनाह तें॥
परताप फैटो रहो सुजस लपेटो रहो,
बरतन खरो नर-पानिप अथाह तें।
रंगरंग रिपुन के रकत सों रंगो रहै,
रातोदिन रातो पै न रातो होत स्याह तें॥२६७॥

सिव सरजा की जगत मैं, राजत कीरति नौल।
अरि-तिय-दृग-अंजन हरै, तऊ धौल की धौल॥२६८॥

अनुगुन

लक्षण—जहाँ और के संग तें, बढ़ै आपनो रंग।
ता कहँ अनुगुन कहत हैं, भूषन बुद्धि-उतंग॥२६९॥

उदा॰—साहितनै सरजा सिवा के सनमुख आय,
कोऊ बचि जाय न गनीम भुज-बल मैं।

भूषन भनत भौंसिला की दिलदौर सुनि,
धाक ही मरत म्लेच्छ औरँग के दल में ॥
रातौदिन रोवत रहत जवनी हैं, सोक
परोई रहत दिली आगरे सकल में ।
कज्जल कलित अँसुवान के उमंग संग,
दूनो होत रोज रंग जमुना के जल में ॥२००॥

मीलित

लक्षण—सदृस बस्तु मैं मिलि जहाँ, भेद न नेक लखाय ।
ताको मीलित कहत हैं, भूषन जे कविराय ॥२०१॥

उदा०—इंद्र निज हेरत फिरत गज-इंद्र अरु,
इंद्र को अनुज हेरै दुगध-नदीस को ।
भूषन भनत सुरसरिता को हंस हेरै,
बिधि हेरै हंस को चकोर रजनीस को ॥
साहितनै सरजा यों करनी करी है तैं नै,[1]
होत है अचंभो देव कोटियो तैंतीस को ।
पावत न हेरे तेरे जस मैं हिराने, निज
गिरि को गिरीस हेरैं गिरिजा गिरीस को ॥२०२॥

उन्मीलित

लक्षण—सदृस बस्तु मैं मिलत पुनि, जानत कौनेहु हेत ।
उनमीलित तासों कहत, भूषन सुकबि सचेत ॥२०३॥

उदा०—सिव सरजा तव सुजस मैं, मिले धौल छबि-तूल ।
बोल बास तें जानिए, हंस चमेली-फूल ॥२०४॥

सामान्य

लक्षण—भिन्न रूप जहँ सदृस तें, भेद न जान्यो जाय ।
ताहि कहत सामान्य हैं, भूषन कबि-समुदाय ॥२०५॥

पावस की यक राति भली सु महाबली सिंह सिवा गमके तें ।
म्लेच्छ हजारन ही कटि गे दस ही मरहट्टन के झमके तें ॥

---

१ तैं जु ।

भूपन हालि उठे गढ़-भूमि पठान-कबंधन के धमके तें।
मीरन के अवसान गए मिलि[1] धोपनि सों चपला चमके तें ॥३०६॥

विशेषक

लक्षण—भिन्न रूप सादृस्य में, लहिए कछू विसेख।
ताहि विसेपक कहत हैं, भूपन सुमति उलेख ॥३०७॥

उदा०—अहमदनगर के थान किरवान लै कै,
नवसेरीखान तें खुमान भिरयो बल तें।
प्यादन सों प्यादे पखरैतन सों पखरैत,
बखतरवारे बखतरवारे हलतें॥
भूपन भनत एते मान घमसान भयो,
जान्यो न परत कौन आयो कौन दल तें।
सम वेप ताके तहाँ सरजा सिवा के बाँके,
वीर जाने हाँके देत, मीर जाने चलतें ॥३०८॥

पिहित

लक्षण—पर के मन की जानि गति ताको देत जनाय।
कछू क्रिया करि कहत हैं, पिहित ताहि कबिराय ॥३०९॥

उदा०—गैरमिसिल ठाढ़ो सिवा, अंतरजामी नाम।
प्रकट करी रिस,साह को सरजा करि न सलाम ॥३१०॥
आनि मिल्यो अरि यों गह्यो, चखन चकत्ता चाव।
साहितनै सरजा सिवा, दियो मुच्छ पर ताव ॥३११॥

प्रश्नोत्तर

लक्षण—कोऊ बूझै बात कछु, कोऊ उत्तर देत।
प्रस्नोत्तर ताको कहत, भूपन सुकवि सचेत ॥३१२॥

उदाहरण—

लोगन सों भनि भूषन यों कहै खान खवास कहा सिख दैहौ।
आवत देसन लेत सिवा सरजै मिलिहौ भिरिहौ कि भगैहौ॥

1 मिटि।

पदिल की सभा बोलि उठी यों सलाह करौऽब कहाँ भजि जैहौ।
लीन्हो कहा लरिकै अफजल्ल कहा लरिकै तुमहू अब लैहौ ॥२१३॥

को दाता, को रन चढ़ो, को जग-पालनहार।
कवि भूषन उत्तर दियो, 'सिव नृप हरि-अवतार ॥२१४॥

कौन करै बस वस्तु, कौन इहलोक बड़ो अति।
को साहस को सिंधु, कौन रज-लाज धरे मति॥
को चकवा को सुखद, बसै को सकल सुमन महि।
अष्ट-सिद्धि नव-निद्धि देत, माँगे को सो कहि॥
जग बूझत उत्तर देत इमि, कविभूषन कवि-कुल-सचिव।
'दच्छिन नरेस सरजा सुभट साहिनंद मकरंद सिव' ॥२१५॥

व्याजोक्ति

लक्षण—आन हेतु सों आपनो, जहाँ छिपावै रूप।
व्याजउकुति तासों कहत, भूषन सुकबि अनूप ॥२१६॥

उदाहरण—

साहिन के उमराव जितेक सिवा सरजा सब लूटि लए हैं।
भूषन ते बिन दौलति ह्वै कै फकीर ह्वै देस-बिदेस गए हैं॥
लोग कहैं इमि दच्छिन-जेय सिसौदिया रावरे हाल ठए हैं।
देत रिसायकै उत्तर यों हम ही दुनियाँ तें उदास भए हैं ॥२१७॥

सिवा बैर औरँग, बदन, लगी रहै नित आहि।
कवि भूषन बूझे, सदा कहै देत दुख साहि ॥२१८॥

लोकोक्ति एवं छेकोक्ति

लक्षण—कहनावति जो लोक की, लोकउकुति सो जानि।
जहाँ कहत उपमान ह्वै, छेकउकुति तेहि मानि ॥२१९॥

लोकोक्ति

उदा०—सिव सरजा की सुधि करौ, भली न कीन्ही पीव।
सूबा ह्वै दच्छिन चले, धरे जात कित जीव ॥२२०॥

छेकोक्ति

उदा०—जे सोहात सिवराज को, ते कवित्त रस-मूल।
जे परमेस्वर पै चढ़ैं, तेई आछे फूल ॥३२१॥

औरँग जो चढ़ि दक्खिन आवै तो ह्याँ तें सिधावै सोऊ बिनु कप्पर।
दीनो मुहीम को भार बहादुर छागो सहै क्यों गयंद को झप्पर॥
सासता खाँ सँग वै हठि हारे जे साहब सातएँ ठीक भुवप्पर।
ये अब सूबहु आवैं सिवा पर काल्हि के जोगी कलींदे को खप्पर३२२

वक्रोक्ति

लक्षण - जहाँ स्लेष सों काकु सों, अरथ लगावै और।
वक्रउकुति ताको कहत, भूषन कवि-सिरमौर ॥३२३॥

श्लेष से वक्रोक्ति

उदा०—साहितनै तेरे वैर वैरिन को कौतुक सों,
बूझत फिरत कहौ काहे रहे तचि हौ।
सरजा के डर हम आए इतै भाजि तब,
सिंह सों डराय याहू ठौर तें उकचिहौ॥
भूषन भनत वे कहैं कि हम सिव कहैं,
तुम चतुराई सों कहत बात रचि हौ।
सिव जापै रूठैं तौ निपट कठिनाई,
तुम वैर त्रिपुरारि के त्रिलोक मैं न बचिहौ ॥३२४॥

काकु से वक्रोक्ति

उदा०—सासता खाँ दक्खिन को प्रथम पठायो तेहि,
बेटा के समेत हाथ जाय कै गँवायो है।
भूपन भनत जौ लौं भेजौ उत औरै, तिन
वेही काज बरजोर कटक कटायो है॥
जोई सूबेदार जात सिवाजी सों हारि,
तासों अवरंग साहि इमि कहै मन भायो है।

मुलुक लुटायो तौ लुटायो, कहा भयो,
तन आपनो बचायो महा-काज करि आयो है ॥३२५॥
करि मुहीम आए कहत, हजरत मनसब दैन।
सिव सरजा सौं जंग जुरि, पैहैं बचिकै है न ॥३२६॥

स्वभावोक्ति

लक्षण—साँचो तैसो बरनिए, जैसो जाति-स्वभाव।
ताहि सुभावोकति कहत, भूषन जे कबिराव ॥३२७॥
उदा०—दान-समै द्विज देखि मेरहू कुबेरहू की,
संपति लुटायबे को हियो ललकत है।
साहि के सपूत सिव साहि के वदन पर,
सिव की कथान मैं सनेह झलकत है॥
भूषन जहान हिंदुवान के उबारिबे को,
तुरकान मारिबे को बीर बलकत है।
साहिन सौं लरिबे की चरचा चलत आनि,
सरजा के दृगन उछाह छलकत है ॥३२८॥
काहू के कहे सुने तें जाही ओर चाहैं, ताही
ओर इकटक घरी चारिक चहत हैं।
कहे तें कहत बात कहे तें पियत खात,
भूषन भनत ऊँची साँसन जहत हैं॥
पौढ़े हैं तो पौढ़े बैठे बैठे खरे खरे हम,
को हैं कहा करत यों ज्ञान न गहत हैं।
साहि के सपूत सिव साहि तव बैर इमि
साहि सब रातौ दिन सोचत रहत हैं ॥३२९॥
उमड़ि कुड़ाल मैं खवासखान आए,
भनि भूषन त्यों धाए सिवराज पूरे मन के।
सुनि मरदाने बाजे हय हिहनाने घोर,
मूछैं तरराने मुख बीर धीर जन के॥

एकै कहैं मार मार सम्हरि समर एकै,
म्लेच्छ गिरे मार बीच वेसम्हार तन के।
कुंडन के ऊपर कड़ाके उठैं ठौर-ठौर,
जीरन के ऊपर खड़ाके खड़गन के ॥२३०॥

आगे आगे तरुन तरायले चलत चले,
तिनके अमोद मंद मंद मोद सकसे।
अड़दार बड़े गड़दारन के हाँके सुनि,
अड़े गैर-गैर माहिं रोस रस अकसे॥
तुंडनाय सुनि गरजत गुंजरत भौंर,
भूषन भनत तेऊ महामद छकसे।
कीरति के काज महाराज सिवराज सब,
ऐसे गजराज कविराजन को बकसे ॥२३१॥

भाविक

लक्षण—भयो होनहारो अरथ, बरनत जहँ परतच्छ।
ताको भाविक कहत हैं, भूषन कवि मति-स्वच्छ ॥२३२॥

उदा०—अजौं भूतनाथ मुंडमाल लेत हरषत,
भूतन अहार लेत अजहूँ उछाह है।
भूषन भनत अजौं काटे करवालन के,
कारे कुंजरन परी कठिन कराह है॥
सिंह सिवराज सलहेरि के समीप ऐसो,
कीन्हो कतलाम दिली-दल की[1] सिपाह है।
नदी रन-मंडल रुहेलन रुधिर[2] अजौं,
अजौं रवि-मंडल रुहेलन[3] की राह है॥२...

गजघटा उमड़ी महा घनघटा सी घोर,
भूतल सकल मदजल सों पटत है।
बेला छाँड़ि उछलत सातौ सिंधु-वारि,
मन मुदित महेस मग नाचत कढ़त है॥...

१ दल को। २ रुहेल औ हीरन। ३ भेदत मलेच्छ रविमंडल।

भूषन बढ़त भौंसिला भुवाल को यों तेज,
जेतो सब बारहौ तरनि में बढ़त है।
सिवाजी खुमान दल दौरत जहान पर,
आनि तुरकान पर प्रलै प्रगटत है ॥२३४॥

भाविक छवि

लक्षण—जहँ दूरस्थित वस्तु को, देखत बरनत कोय।
भूषन भूषन-राज भनि, भाविक-छवि सो होय ॥२३५॥

उदाहरण—

सूबन साजि पठावत है निज फौज लखे मरहट्टन केरी।
औरँग आपनि दुग्ग-जमाति बिलोकत तेरियै फौज दरेरी ॥
साहितनै सिव साहि भई भनि भूषन यों तुव धाक घनेरी।
रातहु द्योस दिलीस तकै तुव सैनिक-सूरति सूरति घेरी ॥२३६॥

उदात्त

लक्षण—अति संपति बरनन जहाँ, तासों कहत उदात।
कै आनै सु लखाइए, बड़ी आन की बात ॥२३७॥

उदा०—द्वारन मतंग दीसैं आँगन तुरंग हीसैं,
बंदीजन बारन असीसैं जस-रत हैं।
भूषन बखाने जरबाफ़ के सम्याने ताने,
झालरन मोतिन के झुंड झलरत हैं ॥
महाराज सिवा के नेवाजे कबिराज ऐसे,
साजिकै समाज तेहि ठौर बिहरत हैं।
लाल करैं प्रात तहाँ नीलमनि करैं रात,
याही भाँति सरजा की चरचा करत हैं ॥२३८॥

जाहु जनि आगे खता खाहु मति यारो,
गढ़-नाह के डरन कहैं, खान यों बखान कै।
भूषन खुमान यह सो है जेहि पूना माहिं,
लाखन मैं सासता खाँ डारयो बिन मान कै ॥

हिंदुवान द्रुपदी की ईजति बचैबे काज,
झपटि बिराटपुर बाहर प्रमान कै।
वहै है सिवा जी जेहि भीम है अकेले मारयो,
अफजल-कीचक को कीच घमसान कै ॥३३९॥
या पूना में मति टिकौ, खान बहादुर आय।
ह्याँई साइतखान को, दीन्हीं सिवा सजाय ॥३४०॥

अत्युक्ति

लक्षण—जहाँ सूरतादिकन की, अति-अधिकाई होय।
ताहि कहत अतिउक्ति हैं, भूपन जे कविलोय ॥३४१॥
उदा०—साहितनै सिवराज ऐसे देत गजराज,
जिन्हैं पाय होत कविराज बेफिकिरि हैं।
झूलत झलमलात झूलैं जरबाफन की,
जकरे जँजीर जोर करत किरिरि हैं॥
भूषन भँवर भननात घननात घंट,
पग झननात मनो घन रहे घिरि हैं।
जिनकी गरज सुने दिग्गज बे-आब होत,
मद ही के आब गड़काब होत गिरि हैं ॥३४२॥
आजु यहि समै महाराज सिवराज तुही,
जगदेव जनक जजाति अंबरीक सो।
भूषन भनत तेरे दान-जल-जलधि मैं,
गुनिन को दारिद गयो बहि खरीक सो॥
चंदकर किंजलक चाँदनी परागं,
उड़-बृंद मकरंद-बुंद-पुंज के सरीक सो।
कंद सम कयलास नाक-गंग नाल, तेरे
जस-पुंडरीक को अकास चंचरीक सो ॥३४३॥
महाराज सिवराज के, जेते सहज सुभाय।
औरन को अतिउक्ति से, भूषन कहत बनाय ॥३४४॥

कुंद।

निरुक्ति

लक्षण—नामन को निज बुद्धि सों, कहिए अरथ बनाय।
ताको कहत निरुक्ति हैं, भूषन जे कविराय ॥३४५॥

उदा०—कवि-गन को दारिद-द्विरद, याही दल्यो अमान।
यातें श्रीसिवराज को, सरजा कहत जहान ॥३४६॥

हरयो रूप इन मदन को, यातें भो सिव नाम।
लियो विरद सरजा सबल, अरि-गज दलि संग्राम॥३४७॥

आजु सिवराज महाराज एक तुही,
सरनागत-जनन को दिवैया अभै-दान को।
फैली महि-मंडल बड़ाई चहुँ ओर,
तातें कहिए कहाँ लौं ऐसे बड़े परिमान को॥
निपट गँभीर कोऊ लाँघि न सकत बीर,
जोधन को रन देत जैसे भाऊ खान को।
दिल दरियाव क्यों न कहैं कबिराव तोहिं,
तो मैं ठहरात आनि पानिप जहान को ॥३४८॥

हेतु

लक्षण—'या निमित्त यहई भयो', यों जहँ बरनन होय।
भूषन हेतु बखानहीं, कबि कोबिद सब कोय ॥३४९॥

दारुन दइत हरनाकुस बिदारिबे को,
भयो नरसिंह रूप तेज बिकरार है।
भूषन भनत त्यों ही रावन के मारिबे को,
रामचंद भयो रघुकुल-सरदार है॥
कंस के कुटिल बल-बंसन बिधंसिबे को,
भयो जदुराय बसुदेव को कुमार है।
पृथी-पुरहूत साहि के सपूत सिवराज,
म्लेच्छन के मारिबे को तेरो अवतार है ॥३५०॥

अनुमान

लक्षण—जहाँ काज तें हेतु कै, जहाँ हेतु तें काज।
जानि परत, अनुमान तहँ, कहि भूषन कबिराज ॥३५१॥

उदा०—चित्त अनचैन आँसू उमगत नैन देखि,
बीबी कहैं बैन मियाँ कहियत काहि नै।
भूषन भनत बूझे आए दरबार तें,
कँपत बार-बार क्यों सम्हार तन नाहि नै ॥[1]
सीनो धकधकत पसीनो आयो देह सब,
हीनो भयो रूप न चितौत बाएँ[2] दाहिनै।
सिवाजी की संक मानि गए हौ सुखाय, तुम्हैं[3]
जानियत दक्खिन को सूबा करो साहि नै ॥३५२॥

झंझा-सी दिन की भई संझा-सी सकल दिसि,
गगन लगन रही गरद छवाय है।
चील्ह गीध बायस समूह घोर रोर करैं,
ठौर ठौर चारों ओर तम मड़राय है॥
भूषन अँदेस देस-देस के नरेस-गन,
आपुस मैं कहत यों गरब गँवाय है।
बड़ो बड़वा को जितवार चहुँघा को दल,
सरजा सिवा को जानियत इत आय है ॥३५३॥

अथ शब्दालंकार

जे अरथालंकार ते, भूषन कहे उदार।
अब शब्दालंकार ये, कहत सुमति-अनुसार ॥३५४॥

छेक एवं लाटानुप्रास

—स्वर-समेत अच्छर पदनि, आवत सदस प्रकास।
भिन्न अभिन्नन पदन सों, छेक लाट-अनुप्रास ॥३५५॥

---

१ क्यों सम्हारत न ताहि नै। २ बामें। ३ सूबन के जीतवार सिवा पर सूबेदार जानियत कीन्हो तुम्हें अवरंग साहि नै।

छेकानुप्रास

उदा०—दिल्लिय दलन दबाय करि, सिव सरजा निरसंक।
लूटि लियो सूरति सहर, बंकक्करि अति डंक॥
बंकक्करि अति डंकक्करि अस संकक्कुलि खल।
सोचच्चकित भरोचच्चलिय विमोचच्चखजल॥
तट्ठट्ठह मन कट्ठट्ठिक सोइ रट्ठट्ठिल्लिय।
सद्दद्दिसि दिसि भद्दद्दवि भइ रद्दद्दिल्लिय॥३५६॥
गत बल खानदलेल हुव, खानबहादुर मुद्ध।
सिव सरजा सलहेरि ढिग, क्रुद्धद्धरि किय जुद्ध॥
क्रुद्धद्धरि किय जुद्दद्धुव अरि अद्धद्धरि करि।
मुंडड्डरि तहँ रुंडड्डकरत डुंडड्डग भरि॥
खेदिद्दर बर छेदिद्दय करि मेदद्दधि दल।
जंगग्गति सुनि रंगग्गलि अवरंगग्गतबल॥३५७॥
लिय धरि मोहकम सिंह कहँ, अरु किसोर नृपकुम्भ
श्रीसरजा संग्राम किय, भुम्मिम्मधि करि धुम्म।
भुम्मिम्मधि किय धुम्मम्मड़ि रिपु जुम्मम्मलि करि।
जंगग्गरजि उतंगग्गरब मतंगग्गन हरि॥
लक्खक्खन रन दक्खक्खलनि अलक्खक्खिति भरि।
मोलल्लहि जस नोलल्लरि बहलोलल्लिय धरि॥३५८॥
लिय जिति दिल्ली मुलुक सब, सिव सरजो जुरि जंग।
भनि भूषन भूपति भजे भंगग्गरब तिलंग॥
भंगग्गरब तिलंगग्गयउ कलिंगग्गलि अति।
दुंदद्दबि दुहु दंदद्दलनि बिलंदद्दहसति॥
लच्छच्छिन करि म्लेच्छच्छय किय रच्छच्छबि छिति।
हल्लल्लगि नरपल्लल्लरि परनल्लल्लिय जिति॥३५९॥

(छप्पय)

मुंड कटत कहुँ रुंड नटत कहुँ सुंड पटत घन।
गिद्ध लसत कहुँ सिद्ध हँसत सुख-वृद्धि रसत मन॥

भूत फिरत करि बूत भिरत सुरदूत घिरत तहँ।
चंडि नचत गन मंडि रचत धुनि डंडि मचत जहँ॥
इमि ठानि घोर घमसान अति भूषन तेज कियो अटल।
सिवराज साहिसुव खग्ग-बल, दलि अडोल बहलोल दल॥३६०॥
क्रुद्ध फिरत अति जुद्ध जुरत नहिं, रुद्ध मुरत भट।
खग्ग बजत अरि चग्ग तजत सिर पग्ग सजत चट॥
ढुक्कि फिरत मद झुक्कि भिरत करि कुक्कि गिरत गनि।
रंग रकत हर संग छकत चतुरंग थकत भनि॥
इमि करि संगर अति ही विषम, भूषन सुजस कियो अचल।
सिवराज साहिसुव खग्ग बल, दलि अडोल-बहलोल-दल॥३६१॥

(मनहरण कवित्त)

बानर बरार बाघ बैहर बिलार बिग,
बगरे बराह जानवरन के जोम हैं।
भूषन भनत भारे भालुक भयानक हैं,
भीतर भवन भरे लीलगऊ लोम हैं।
ऐंड़ायल गजगन गैंड़ा गररात गनि,
गेहन में गोहन गरूर गहे गोम हैं।
सेवाजी की धाक मिले खलकुल खाक,
बसे खलन के खेरन खबीसन के खोम हैं॥३६२॥

लाटानुप्रास

उदा०—तुरमती तहखाने तीतर गुसुलखाने,
सूकर सिलहखाने कूकत करीस हैं।
हिरन हरमखाने स्याही हैं सुतुरखाने,
पाढ़े पीलखाने औ करंजखाने कीस हैं॥
भूषन सिवाजी गाजी खग्ग सों खपाए खल,
खाने खाने खलन के खेरे भए खीस हैं।
खड़गी खजाने खरगोस खिलवतखाने,
खीसैं खोले खसखाने खाँसत खबीस हैं॥३६३॥

औरन के जाँचे कहा, नहिं जाँच्यो सिवराज।
औरन के जाँचे कहा, जो जाँच्यो सिवराज ॥३६४॥

यमक

लक्षण—भिन्न अरथ फिरि फिरि जहाँ, ओई अच्छर-बृंद।
आवत हैं, सो जमक करि, बरनत बुद्धि-बिलंद ॥३६५॥

उदा०—पूनावारी सुनिकै अमीरन की गति,
लई भागिबे को मीरन समीरन की गति है।
मार्‌यो जुरि जंग जसवंत जसवंत जाके,
संग केते रजपूत रज-पूत-पति है।
भूषन भनै यों कुलभूषन भुसिल,
सिवराज! तोहि दीन्ही सिवराज बरकति है
नौहू खंड दीप भूप भूतल के दीप आजु,
समै के दिलीप दिलीपति को सिदति है ॥३६६॥

पुनिरुक्तिवदाभास

-भासति है पुनरुक्ति-सी, नहिं निदान पुनरुक्ति।
वदाभासपुनरुक्ति सो, भूषन बरनत जुक्ति ॥३६७॥

उदा०—अरिन के दल सैन संगर मैं समुहाने,
टूक टूक सकल कै डारे घमसान मैं।
बार बार रूरो महानद परवाह पूरो,
बहत है हाथिन के मद-जल दान मैं।
भूषन भनत महाबाहु भौंसिला भुवाल,
सूर, रबि कैसो तेज तीखन कृपान मैं।
माल- मकरंद जू के नंद कलानिधि तेरो,
सरजा सिवाजी जस जगत जहान मैं ॥३६८॥

चित्र

लक्षण—लिखे सुने अचरज बढ़ै, रचना होय बिचित्र।
[illegible] त्र ॥३६९॥

कामधेनु

उदाहरण—(दुर्मिल सवैया)

ध्रुव जो	गुरता	तिनको	गुरु भूपन	दानि बड़ो	विरजा	पिव है ।
हुव जो	हरता	रिनको	तरु भूपन	दानि बड़ो	सिरजा	छिव है ॥
भुव जो	भरता	दिनको	नरु-भूपन	दानि बड़ो	सरजा	सिव है ।
तुव जो	करता	इनको	अरु भूपन	दानि बड़ो	बर जा	नि वहै ॥

अथ उभयालंकार

संकर

लक्षण—भूषन एक कवित्त में, भूषन होत अनेक।
संकर ताको कहत हैं, जिन्हैं कबित की टेक ॥३७१॥

उदा०—ऐसे बाजिराज देत महाराज सिवराज,
भूषन जे वाज की समाजैं निदरत हैं।
पौन पायहीन, दृग घूँघट में लीन, मीन
जल में बिलीन, क्यों बराबरी करत हैं ॥
सबतें चलाक चित तेऊ कुलि आलम के,
रहैं उर-अंतर में धीर न धरत हैं
जिन चढ़ि आगे को चलाइयतु तीर,
तीर एक भरि तऊ तीर पीछे ही परत हैं ॥३७२॥

ग्रंथालंकार-नामावली

(गीतिका)

।म। अनन्वं कहि बहुरि उपमा-प्रतीप प्रतीप।
मेय-उपमा है बहुरि मालोपमा कवि-दीप ॥

ललितोपमा रूपक बहुरि परिनाम पुनि उल्लेख।
सुमिरन भ्रमौ संदेह सुद्धापन्हुत्यौ सुभ-वेख ॥३७३॥
हेतूअपन्हुतियौ बहुरि परजस्तपन्हुति जान।
सुभ्रांतपूर्णअपन्हुत्यौ छेकाअपन्हुति मान ॥
बर कैतवापन्हुत्ति गनौ उतप्रेक्ष बहुरि बखानि।
पुनि रूपकातिसयोक्ति भेदक अतिसयोक्ति सु जानि ॥३७४॥
अरु अक्रमातिसयोक्ति चंचल अतिसयोक्तिहि लेखि।
अत्यंतअतिसैउक्ति पुनि सामान्य चारु बिसेखि॥
तुलियोगिता दीपकावृति प्रतिवस्तुपम दृष्टांत।
सु निदर्सना व्यतिरेक और सहोक्ति बरनत शांत ॥३७५॥
सु बिनोक्ति भूषन समासोक्तिहु परिकरौ अरु बंस।
परिकर सु अंकुर स्लेष त्यों अप्रस्तुतौपरसंस॥
परयायउक्ति गनाइए व्याजस्तुतिहु आक्षेप।
बहुरो बिरोध बिरोधभास बिभावना सुख-खेप ॥३७६॥
सु बिसेषउक्ति असंभवौ बहुरे असंगति लेखि।
पुनि बिषम सम सुबिचित्र प्रहषन अरु बिषादन पेखि॥
कहि अधिक अन्योन्यहु बिसेष ब्यघात भूषन चारु।
अरु गुंफ एकावली मालादीपकहु पुनि सारु ॥३७७॥
पुनि यथासंख्य बखानिए परयाय अरु परिवृत्ति।
परिसंख्य कहत बिकल्प हैं जिनके सुमति-संपत्ति॥
बहुरयो समाधि समुच्चयो पुनि प्रत्यनीक बखानि।
पुनि कहत अर्थापत्ति कबि-जन काव्यलिंगहि जानि ॥३७८॥
अरु अर्थअंतरन्यास भूषन प्रौढ़उक्ति गनाय।
संभावना मिथ्याध्यवसितऽरु यों उलासहि गाय॥
अवज्ञा अनुज्ञा लेस तदगुन पूर्वरूप उलेखि।
अनुगुन अतदगुन मिलित उन्मीलितहि पुनि अवरेखि॥३७९॥
सामान्य और बिसेष पिहितौ प्रश्नउत्तर जानि।
पुनि ब्याजउक्तिरु लोकउक्ति सु छेकउक्ति बखानि॥

वक्रोक्ति जान सुभावउक्तिहु भाविकौ निरधारि।
भाविकछबिहु सुउदात्त कहि अत्युक्ति बहुरि बिचारि ॥३८०॥
वरने निरुक्तिहु हेतु पुनि अनुमान कहि अनुप्रास।
भूषन भनत पुनि जमक गनि पुनरुक्तिवदआभास ॥
युत चित्र संकर एकसत भूषन कहे अरु पाँच।
लखि चारु ग्रंथन निज मतो युत सुकवि मानहु साँच ॥३८१॥

निर्माण-काल

संवत सतरह तीस पर, सुचि बदि तेरसि भान[१]।
भूषन सिव-भूषन कियो, पढ़ियो सकल सुजान[२] ॥३८२॥

उपसंहार

एक प्रभुता को धाम, दूजे तीनौ वेद काम,
रहैं पंच आनन षड़ानन सरबदा।
सातो बार आठो याम जाचक नेवाजै नव,
अवतार थिर राजै कृपन हरि गदा॥
सिवराज भूषन अटल रहै तौलौं,
जौलौं त्रिदस भुवन सब गंग औ नरमदा।
साहितनै साहसिक भौंसिला सुरज-बंस,
दासरथि राज तौलौं सरजा थिर सदा ॥३८३॥
पुहुमि पानि रबि ससि पवन, जब लौं रहै अकास।
सिव सरजा तब लौं जियौ, भूषन सुजस प्रकास ॥३८४॥

इति श्रीकविभूषणविरचिते शिवराजभूषणे
अलंकारवर्णनं समाप्तम्।

※ शुभमस्तु ※

---

[१] सुभ सत्रह सै तीस पर बुध सुदि तेरसि मान; सम सत्रह सै तीस वे बदि तेरस मान। [२] सुनो।

शिवा-बावनी

प्रताप-वर्णन

(कवित्त)

सक्र जिमि सैल पर अर्क तम-फैल पर,
  बिघन की रैल पर लंबोदर लेखिए।
राम दसकंध पर भीम जरासंध पर,
  भूषन ज्यों सिंधु पर कुंभज बिसेखिए॥
हर ज्यों अनंग पर गरुड़ भुजंग पर,
  कौरव के अंग[1] पर पारथ ज्यों पेखिए।
बाज ज्यों बिहंग पर सिंह ज्यों मतंग पर,
  म्लेच्छ[2]-चतुरंग पर सिवराज[3] देखिए॥ १॥

गरुड़ को दावा जैसे नाग[4] के समूह पर,
  दावा नागजूह पर सिंह-सिरताज को।
दावा पुरहूत को पहारन के कुल पर,
  दावा सबै[5] पच्छिन के गोल[6] पर बाज को॥
भूषन अखंड नवखंड-महि-मंडल मैं[7];
  तम पर दावा रबि-किरन-समाज को।
पूरब पछाँह देस, दच्छिन तें उत्तर लौं[8],
  जहाँ पातसाही[9] तहाँ दावा सिवराज को॥ २॥

बारिधि के कुंभभव[10], घन[11]-बन-दावानल,
  तिमिर पै तरनि की[12] किरन-समाज हौ।

---

१ बंस। २ तैसे। ३ चिंतामनि। ४ सदा। ५ जैसे, सदा। ६ गन। ७ भूषन भनंत सात द्वीप नवखंड माँहिं। ८ उत्तर दछिन दिसि पूरब पछाँह माँहि। ९ बादशाही। १० उदधि के अगस्त्य, बारिधि के कुंभज। ११ बाँस। १२ तरुन तिमिरहू के।

कंस के कन्हैया, कामदेवहू के कंठ-नील[1],
कैटभ के कालिका, बिहंगम के बाज हो ॥
भूषन भनत सबै असुर के इंद्र पुनि[2],
पन्नग के कुल के प्रबल पच्छिराज हो ।
रावन के राम, कार्तबीज[3] के परसुराम,
दिल्लीपति-दिग्गज के सिंह[4] सिवराज हो ॥ ३ ॥

रण-प्रस्थान-वर्णन

साजि चतुरंग-सैन अंग मैं उमंग धारि[5],
सरजा सिवाजी जंग जीतन चलत है ।
भूषन भनत नाद-बिहद नगारन के,
नदी-नद मद गैबरन के रलत[6] है ॥
ऐल-फैल खैल-भैल खलक मैं गैल-गैल,
गजन की ठैल-पैल सैल उसलत[7] है ।
तारा सो[8] तरनि धूरि-धारा मैं लगत जिमि,
थारा पर पारा पारावार यों हलत है ॥४॥
बाने फहराने घहराने घंटा गजन के,
नाहीं ठहराने राव-राने देस-देस के ।
नग भहराने ग्राम-नगर पराने, सुनि
बाजत निसाने सिवराजजू[10] नरेस के ॥
हाथिन के हौदा उकसाने, कुंभ कुंजर के[11]
भौन को भजाने अलि, छूटे लट केस के ।
दल के दरारन तैं[12] कमठ करारे फूटे,
केरा के से पात बिहराने फन सेस के ॥५॥

---

१ कामधेनुहू के कंटकाल, चूहा के बिड़ाल पुनि । २ जंग-जालिम के सचीपति । ३ सहसबाहु । ४ सेर । ५ बीर रंग मैं तुरंग चढ़ि । ६ नैन निरमद दिसा-गज के गलत, नैन मंद दिसा-गज को लगत । ७ उछलत । ८ सों । ९ अरु । १० दानसाहजू । ११ ककुभ के कुंजर कसमसाने 'गंग' भनै । १२ हुते ।

प्रेतिनी-पिसाचरु निसाचर-निसाचरिहू,
मिलि-मिलि आपुस में गावत बधाई है।
भैरो भूत-प्रेत भूरि भूधर-भयंकर-से,
जुत्थ-जुत्थ योगिनी जमाति जोरि आई है॥
किलकि-किलकिकै कुतूहल करति काली,
डिम-डिम डमरू दिगंबर बजाई है।
सिवा पूछैं सिव सों समाज आजु कहाँ चली,
काहू पै सिवा-नरेस भृकुटी चढ़ाई है॥६॥

रण-वर्णन

दावा पातसाहन सों कीन्हों सिवराज वीर,
जेर कीन्हों देस हद्द बाँधी दरबारे से।
हठी मरहठी तामैं राख्यो ना मवास कोऊ,
छीने हथियार डोलैं बन बनजारे-से॥
आमिष-अहारी माँसहारी दै-दै तारी नाचैं,
खाँड़े तोड़े किरचैं उड़ाए सब तारे-से।
पील-सम डीलवारे गिरि-से गिरन लागे,
मुंड मतवारे गिरैं झुंड मतवारे-से॥७॥

छूटत कमान बान बंदूकरु कोकबानँ,
मुसकिल होत मुरचानहू की ओट मैं।
ताही समै सिवराज हुकुम कै हल्ला कियो,
दावा बाँधि द्वेषिन पै बीरन लै जोट मैं॥
भूषन भनत तेरी हिम्मति कहाँ लौं कहौं,
किम्मति इहाँ लगि है जाकी भट-झोट मैं।

१ आपुस मैं। २ मिलि कै मुदित बनी बाँटत। ३ भ्रमत। ४ जुरि
५ कुलाहल। ६ नरेंद्र। ७ तीर गोली बानन के। ८ दै। ९ प
हल्ला बीर भट।

ताव दै-दै मूँछन कगूँरन पै पाँव दै-दै,
घाव दै-दै अरि-मुख कूदे परैं कोट में ॥८॥
उतै पातसाहजू के गजन के ठट्ट छूटे,
उमड़ि-घुमड़ि मतवारे घन कारे हैं।
इतै सिवराजजू के छूटे सिंहराज सो,
बिदारे कुंभ करिन के चिक्करत भारे हैं॥
फौजैं सेख सैयद औ मुगल पठानन की,
मिलि अफसर काहू भीर न सम्हारे हैं।[1]
हद्द हिंदुवान की बिहद्द तरवारि राखि,
कैयो बार दिल्ली के गुमान झारि डारे हैं ॥९॥
जीत्यो सिवराज सलहेरि को समर सुनि,
नर काहू सुरन के सीने[2] धरकत हैं।
देवलोकहू में अजौं मुगल पठानन के[3],
सरजा के सूरन के खग्ग[4] खरकत हैं॥
भूषन भनत भारी भूतन के भौनन में,
टाँगी चंदावतन की लोथैं लरकत हैं[5]।
कोऊ ना लपेटे अधफारे रन लेटे अजौं[6],
रुधिर लपेटे पठनेटे फरकत हैं ॥१०॥
आई चतुरंग-सैन सिंह सिवराजजू की,
देखि पातसाहन की सेना धरकत हैं।
तुरत सजोर जंग जोम-भरे सूरन के,
स्याह-स्याह नागिन लौं खग्ग खरकत हैं॥

---

1 मिलि इखलास खाँ हू भीर न, मिलि अफजल काहू भीर न। 2 सुनि-सुनि असुरन के सुसीने। 3 देवलोक नागलोक नरलोक गावैं जस। 4 अजहूँ लौं परे खग्ग दाँत। 5 कंटक-कटक काटि कीट-से उड़ाए केते, भूषन भनत मुख मोरे सरकत हैं। 6 रनभूमि लेटे अध-कटे फरलेटे परे।

भूषन भनत भूत-प्रेतन के कंधन पै,
टाँगी मृत-बीरन की लोथैं लरकत हैं।
काल-मुख भेंटे भूमि रुधिर लपेटे पर-
कटे पठनेटे मुगलेटे फरकत हैं ॥११॥

कोप करि चढ़्यो महाराज सिवराज बीर,
धौंसा की धुकार तें पहार दरकत हैं।
गिरे कुंभि मतवारे स्रोनित-फुहारे छूटे,
फड़ाकड़ छितिनाल लाखों करकत हैं॥
मारे रन जोम कै जवान खुरासान केते,
काटि-काटि दाढ़ि दावें छाती थरकत हैं।
रन-भूमि लेटे वै चपेटे पठनेटे परे,
रुधिर-लपेटे मुगलेटे फरकत हैं ॥१२॥

दिल्ली-दल दले सलहेरि के समर सिवा,
भूषन तमासे आय देव दमकत हैं।
किलकति कालिका कलेजे की कलल करि,
करिकै अलल भूत-भैरो तमकत हैं॥
कहूँ रुंड-मुंड कहूँ कुंड भरे स्रोनित के,
कहूँ बखतर करी-झुंड झमकत हैं।
खुले खग्ग कंध धरि ताल-गति-बंध पर,
धाय-धाय धरनि कबंध धमकत हैं ॥१

भूप सिवराज कोप करि रन-मंडल मैं,
खग्ग गहि कूद्यो चकता के दरबारे मैं।
काटे भट बिकटरु गजन के सुंड काटे,
पाटे डर भूमि काटे दुवन सितारे मैं॥
भूषन भनत चैन उपजै सिवा के चित्त,
चौसठ नचाईं जबै रेवा के किनारे मैं।
आँतन की ताँत बाजी खाल की मृदंग बाजी,
खोपरी की ताल पसुपाल के अखारे मैं ॥१४॥

तलवार-वर्णन

दरवर दौरि करि नगर उजारि डारे[1],
कटक कटायो कोटि[2] दुजन दरब की।
जाहिर जहान जंग जालिम है जोरावर,
चलै न कछूक जोर-जब्बर-जरब की[3] ॥
सिवराज तेरे त्रास दिल्ली भयो भुवकंप[4],
थर-थर[5] काँपति बिलाइत अरब की।
हालत दहलि जात[6] काबुल कँधार बीर[7],
रोष करि काढ़ै समसेर ज्यों गरब की ॥१५॥
जिन फन फुतकार उड़त पहार भारे,
कूरम कठिन जनु कमल बिदलि गो[8]।
विषजाल ज्वालामुखी लवलीन होत जिन[9],
झारन[10] चिकारी मद दिग्गज उगलि गो ॥
कीन्हों जेहि पान पयपान सो जहान कुल[11],
कोलहू उछलि जल-सिंधु खलभलि गो[12]।
खग्ग-खगराज महाराज सिवराजू को[13],
अखिल-भुजंग-मुगलद्दल[14] निगलि गो ॥१६॥
वेद राखे बिदित पुरान परसिद्ध राखे,
राम-नाम राख्यो अति रसना सुघर मैं।
हिंदुन की चोटी रोटी राखी है सिपाहिन की,
काँधे मैं जनेऊ राख्यो माला राखी गर मैं ॥

---

१ डारि। २ कों कूटि मारे। ३ अब एक राजा रब की। ४ डरत रहत सोई। ५ खरबर। ६ डोलत दहेली अरु। ७ जब। ८ भूतल हलत पीठ कमल बदलि गो। ९ सी पसरि सबै। १० उनतें। ११ कीन्हें पायमाल सब मालिक जहानहू के। १२ सिंधु-जल थल हलिगो। १३ तेरो। १४ ऐसे ही मुगल दल-नाग को।

मीड़ि राखे मुगल मरोड़ि राखे पातसाह,
बैरी पीसि राखे बरदान राख्यो कर में।
राजन की हद्द राखी तेग-बल सिवराज,
देव राखे देवल स्वधर्म राख्यो घर में ॥१७॥
राखी हिंदुवानी हिंदुवान को तिलक राख्यो,
अस्मृति पुरान राखे वेद-विधि सुनी में।
राखी रजपूती राजधानी राखी राजन की,
धरा में धरम राख्यो राख्यो गुन गुनी में॥
भूषन सुकवि जीति हद्द मरहट्टन की,
देस-देस कीरति बखानी तव सुनी में।
साहि के सपूत सिवराज समसेर तेरी,
दिल्ली-दल दाबिकै दिवाल राखी दुनी में ॥१८॥

नगाड़ा-वर्णन

कोट-गढ़ ढाहियतु एकै पातसाहन के,
एकै पातसाहन के देस दाहियतु है।
भूषन भनत महाराज सिवराज एकै,
साहन की सैन पर खग्ग बाहियतु है॥
क्यों न होहिं बैरिन की बाल बौरी कान सुनि[1],
दौरनि तिहारी कहौ क्यों निबाहियतु है।
रावरे नगारे सुनि बैरवारे नगरनि,
नैनवारे नदन निवारे चाहियतु है ॥१९॥
चकित चकत्ता चौंकि-चौंकि उठै बार-बार[2],
दिल्ली दहसति चितै चाह खरकति है[3]।

१ बौरी सुनि बैरि-बधू, बौरी-सी बर-बधू। २ चित्त चौंक उठै बेर-बेर। ३ चित चाहे सरकति है, चित चाहै खरकति है, चितै चाह करषति है।

बलख बिलात[1], बिलखात बीजापूर-पति,
भिरत फिरंगिन की नारी फरकति है ॥
थर-थर काँपत कुतुबसाही गोलकुंडा,
हहरि हबस भूप भीर[2] भरकति है।
सिंह सिवराज तेरे धौंसा की धुकार[3] सुनि,
केते पातसाहन की छाती धरकति है ॥२०
दुग्ग पर दुग्ग जीते सरजा सिवाजी गाजी,
उग्ग[4] नाचे उग्ग पर रुंड-मुंड फरके।
भूषन भनत बाजे जीति के नगारे भारे,
सारे करनाटी भूप सिंहल को सरके ॥
मारे सुनि सुभट पनारेवारे उद्भट,
तारे लागे फिरन सितारे-गढ़धर के।
बीजापुर-बीरन के गोलकुंडा-धीरन के,
दिल्ली उर मीरन के दाड़िम-से दरके ॥२१

आतंक-वर्णन

कत्ता की कराकनि[5] चकत्ता को कटक काटि,
कीन्ही सिवराज बीर अकह-कहानियाँ।
भूषन भनत और मुलुक[6] तिहारी धाक[7],
दिल्ली औ बिलाइत सकल बिललानियाँ ॥
आगरे-अगारन की नाँघती पगारन[8],
सँभारती[9] न बारन बदन कुम्हलानियाँ।
कीबी कहैं कहा औ गरीबी गहे भागी जाहिं[10],
बीबी गहे सूथनी सुनीबी गहे[11] रानियाँ ॥२२

---

१ बिलखि बदन, बिलखति मुख। २ भाग। ३ राजा सिवराज नगारन की धाक। ४ डग्ग। ५ धार सों। ६ तिहूँ लोक मैं। ७ हाँक ८ फाँदती कगारन ह्वै। ९ बाँधती। १० सीबी कहैं मुख तें गरीबी गां भाजि जैहैं। ११ बीबी बिन सुथनी ही नीबी बिन रानियाँ।

वाजि-गजराज[1] सिवराज सैन साजत ही,
दिल्ली-दल गही[2] दसा दीरघ-दुखन की।
तनियाँ न तिलक सुथनियाँ पगनियाँ न[3],
धामैं घुमरात[4] छोड़ि सेजियाँ सुखन की॥
भूषन भनत पति-बाँह-बहियान तेऊ[5],
छहियाँ छबीली ताकि रहियाँ रुखन की।
बालियाँ बिथुर जिमि आलियाँ नलिन पर[6],
लालियाँ मलिन[7] मुगलानियाँ मुखन की॥२३॥

बद्दल न होहिं दल-दच्छिन उमंड़ि आयो[8],
घटा ये[9] न होय इभ[10] सिवाजी हँकारी[11] के।
दामिनी-दमंक नाहिं खुले खग्ग वीरन के,
इंद्रधनु नाहिं ये निसान हैं सवारी के[12]॥
देखि-देखि मुगलों की हरमैं भवन[13] त्यागैं,
उझकि-उझकि उठैं बहत बयारी के[14]।
दिल्लीपति भूल मति गाजत न घोर घन[15],
बाजत नगारे ये सितारे-गढ़धारी[16] के॥२४॥

उतरि पलँग तें न दियो है[17] धरा पै पग,
तेऊ[18] सगबग निसि-दिन[19] चली जाती हैं।
अति अकुलातीं मुरझातीं न छिपातीं गात,
बात न सोहाती बोले अति अनखाती हैं॥

---

१ साजि गज-बाजि। २ दिलगीर। ३ न रहीं अंग। ४ घबरानी। ५ बहियाँ न तेऊ। ६ गालियाँ सिथिल भईं बालियाँ बिथरि गईं। ७ उतरि। ८ घमंड साहिं। ९ घटाहू। १० दल। ११ हँकारे। १२ बीर-सिर छाप लखु तीजा-असवारी के। १३ कामिनी बगर, हुरमाँ मंदिर। १४ घर छाँड़त बिडारे के। १५ दिल्ली मति भूली कहैं बात घन घोर-घोर। १६ गढ़वारे। १७ जिन दियो न। १८ सोहू। १९ द्यौस।

भूपन भनत सिंह[1] साहि के सपूत सिवा,
तेरी धाक[2] सुने अरि-नारी बिललाती हैं।
जोन्ह में न जातीं ते वै धूपै चली जातीं[3],
पुनि तीन बेर खातीं ते वै तीन बेर खाती हैं ॥२५॥

ऊँचे घोर[4] मंदर के अंदर रहनवारी।
ऊँचे घोर[4] मंदर के अंदर रहाती हैं।
कंद-मूल[5] भोग करैं कंद-मूल[5] भोग करैं,
तीन बेर खातीं ते वै[6] तीन बेर खाती हैं ॥
भूपन सिथिल अंग भूषन सिथिल अंग[7],
विजन डुलातीं ते वै विजन डुलाती हैं।
भूपन भनत सिवराज बीर तेरे त्रास[8],
नगन जड़ाती ते वै नगन जड़ाती हैं ॥२६॥

अंदर तें निकसीं न मंदिर को देख्यो द्वार,
बिन रथ पथ ते उघारे पायँ जाती हैं।
हवाहू न लागती ते हवा तें बिहाल भईं[9],
लाखन की भीर में सँभारती न छाती हैं ॥
भूपन भनत सिवराज तेरी धाक सुनि,
हार डारि चीर फारि[9] मन झुँझलाती हैं।
ऐसी परी[10] नरम हरम बादसाहन की,
नासपाती खातीं ते बनासपाती खाती हैं ॥२७॥

अतर गुलाब चोवा चंदन सुगंध[11] सब[12],
सहज सरीर[13] की सुबास[14] बिकसाती[15] हैं।

---

१ बलि। २ हाँक। ३ कोऊ करैं घाती कोऊ रोतीं पीटि छाती घरैं। ४ धौल। ५ पान। ६ खानवारी। ७ मैन-नारी-सी-प्रमान मैन-नारीसी-प्रमान। ८ कहै कबि 'इंदु' महाराज आज वैरि-नारी। ९ हयादारी चीर फारि। १० बनीं। ११ रस चोवा घनसार। १२ सम। १३ सुबास। १४ सुगंध, सुरति। १५ बिसराती।

पल भरि पलँग तें भूमि न धरत पाँव,
तेई[1] खान-पान छोड़ि[2] बन बिललाती हैं ॥
भूपन भनत सिवराज वीर तेरे त्रास[3],
हार-भार तोरि निज सुधि बिसराती हैं[4] ।
ऐसी परीं नरम हरम बादसाहन की,
नासपाती खातीं तें बनासपाती खाती हैं ॥२८॥
सोंधे को अधार किसमिस जिनको अहार,
चार-अंक-लंक मुख चंद के समानी हैं[5] ।
ऐसी अरि-नारि सिवराज वीर तेरे त्रास,
पायन में छाले परे काय कुम्हलानी[6] हैं ॥
ग्रीषम की तपती की बिपती न कान सुनी[7],
कंज की कली-सी बिनु पानी मुरझानी हैं ।
तोरिकै छुरा सों अच्छरा-सी यों निचोरि कहैं[8],
'तुमनै कहे ते कंत मुकता में पानी हैं' ॥२९॥
मालवा उजैन भनि[9] भूषन भेलास[10] ऐन[11],
सहर सिरौंज[12] लौं परावने परत हैं ।
गोड़वानो तिलगानो फिरगानो करनाट,
रुहिलानो रुहिलन[13] हिये हहरत हैं ॥
साहि के सपूत सिवराज तेरी धाक सुनि,
गढ़पति बीर तेऊ धीर न धरत हैं ।
बीजापुर गोलकुंडा आगरे दिली के कोट,
बाजे-बाजे रोज[14] दरवाजे उघरत हैं ॥३०॥

---

१ भूली । २ फिरैं । ३ तेरी धाक सुनि । ४ दारा हार बार न सँभार अकुलाती हैं । ५ चारि को-सो अंक लंक चंद सरमाती हैं । ६ कंद-मूल खाती । ७ तपनि एती तपती न कान सुनी । ८ अब कहाँ पानी मुकतों में पाती हैं तुम तो कहत कंत मुक्ता में पानी हैं । ९ लगि । १० भेलसा । ११ साँच । १२ सिरोंई । १३ हिंदुआनो हिंदुन को, हबसान खुरेसान । १४ दिन ।

फिरंगाने फिकिरि औ हदसनि हवसाने[1],
भूषन भनत कोऊ सोवत न घरी है।
बीजापुर-बिपति बिडरि सुनि भाजे सब,
दिल्ली-दरगाह बीच परी खरभरी है॥
राजन के राज सब साहिन के सिरताज,
आज सिवराज पातसाही चित धरी है।
कासमीर बलख बुखारे लौं परी पुकार,
धाम-धाम धूम-धाम रूम साम परी है॥३१॥
तेरी धाक ही तें नित हबसी फिरंगी औ,
बिलाइती बिलंदे करैं बारिधि बिहरनो।
भूषन भनत बीजापुर भागनेर दिल्ली,
तेरे वैर भयो उमरावन को मरनो॥
बीच-बीच उहाँ केते जोर सौं मुलुक लूटे,
कहाँ लगि साहस सिवाजी तेरो बरनो।
आठो दिगपाल त्रास आठ दिसि जीतिबे को,
आठ पातसाहन सों आठौ जाम लरनो॥३२॥

(छप्पय)

बिज्जपूर-बिदनूर-सूर, सर-धनुष न संधहिं।
मंगल बिनु मल्लारि-नारि धम्मिल नहिं बंधहिं॥
गिरत गब्भ कोटै गरब्भ चिंजी चिंजाउर[2]।
चालकुंड दलकुंड, गोलकुंडा संका उर॥
। प्रताप सिवराज तव, इमि दच्छिन दिसि संचरहि।
।-धरेस धकधक धकत, द्रविड़ निबिड़ अबिरल[3] डरहि॥३३॥

(कवित्त)

अफजलखानजू को मारो मयदान जानै[4],
बीजापुर गोलकुंडा डरायो दराज है।

---

१ औ हद्द सुनि हबसाने। २ गर्भ कोटीन गहत चिंजी चिंता (चिंजा) डर। ३ डर दबि (रबि)। ४ खान को जिन्होंने मयदान मारा। ५ मारो जिन आज।

भूषन भनत फराँसीस अँगरेज[1] मारि,
हब्सी फिरंगी मारे[2] उलटि जहाज है ॥
देखत मैं रुस्तम को छिन मैं खराब कियो[3],
सलहेरि-संगर की आवति[4] अवाज है।
चौंकि-चौंकि चकता कहत चहुँधा तें यारो,
लेत रहौ खबरि कहाँ लौं सिवराज है ॥३४॥
जोर करि जैहैं अब अपर-नरेस पर[5],
लरिहैं लराई ताके[6] सुभट-समाज पै।
भूषन भनत[7] रूम बलख-बुखारे जैहैं,
जैहैं साम चीन[8] तरि जलधि जहाज पै ॥
सब उमराव मिलि एकमत ठानि कहैं[9],
आइकै समीप अवरंग[10] सिरताज पै।
भीख माँगि खैहैं बिन मनसब रैहैं,
पै न जैहैं हजरत महाबली सिवराज पै ॥३५॥
दारा की न दौरि यह खजुए की रारि नाहिं,
बाँधिबो न होय या मुरादसाह-बाल को[11]।
मठ बिस्वनाथ को न बास ग्राम गोकुल को,
देवी को न देहरा न मंदिर गोपाल को ॥
गाढ़े गढ़ लीन्हें केते[12] बैरी कतलान कीन्हें,
जानत न भयो यहि साह-कुल-साल[13] को
बूड़ति है दिल्ली सो सँभारै क्यों न दिल्लीपति,
धक्का आनि लाग्यो सिवराज महाकाल को ॥३६॥

---

१ त्यों फिरंगी। २ तुरुक डारे। ३ खान रुस्तम ज़िन खाक किया। ४ सालति सुरति आजु सुनी जो। ५ जुमिलाहू के नरेस पर। ६ तोरि अरि खंड-खंड। ७ असाम। ८ चीन सिलहट। ९ उमरावन की हठ क्रूरताई देखो। १० कहैं नवरंगजेब साहि। ११ नहीं है किधौं मीर सहबाल को। १२ और। १३ ठौर-ठौर हासिल उगाहत है साल को।

चंद्राव[1] चूर करि जावली जपत कीन्ही,
घेरयो है सिंगारपुर-भूपन को जायकै[2]।
भूपन भनत सुलतान-दल खेदि डारे[3],
मारि डारे अफजल-दल को गिरायकै[4] ॥
एदिल सों बेदिल हरम कहैं बार-बार,
अब कहा सोए[5] सूते सिंहहिं जगायकै।
भेजिए सुभेंट सिवराज को रिसालैं कंत,
बाजीं करनालैं परनालैं गढ़[6] आयकै ॥३७॥

तेज-वर्णन

केतकी भो राना[7] और बेला सब राजा भए,
ठौर-ठौर रस लेत नित यह काज है।
सिगरे अमीर भए कुंद मकरंद-भरे[8],
भृंग सो भ्रमत लखि[9] फूल की समाज है ॥
भूषन भनत सिवराज देस-देसन की[10],
राखी है[11] बटोरि एक दच्छिन मैं लाज है।
तजत मलिंद जैसे तैसे तजि दूर भाग्यो[12],
अलि अवरंगजेब[13] चंपा सिवराज है ॥३८॥
कूरम कमल, कमधुज[14] है कदंब-फूल[15],
गौर है[16] गुलाब, राना केतकी बिराज[17] है।
पाँडरि[18] पँवार, जुही सोहत है[19] चंदावत,
बकुल बुँदेला, अरु हाड़ा हंसराज है[20] ॥

1 चंद्रावल। 2 मारे सब भूप औ सँहारे पुर धायकै। 3 तुरकान-दल-थंभ काटि। 4 तबल बजायकै। 5 सोओ सुख। 6 भेजना है भेजो सो रिसालैं सिवराजजू की। 7 राना भो चमेली। 8 आनि कुंद होत घर-घर। 9 भ्रमत भ्रमर जैसे। 10 बीर तैं ही देस-देसन मैं। 11 राखी सब। 12 त्यागे सदा षटपद-पद अनुमानि। 13 नवरंग। 14 कल द्विज। 15 कलिदंबर। 16 मुगल। 17 समाज। 18 पाटल। 19 कनैर जाही जूही पुनि। 20 सरस बुँदेला सो चमेली साजवान है, पाँड़री पवाँर गौर कँवरे दराज है।

भूषन भनत मुचकुंद बड़गूजर है,
बघेले बसंत सब[1] कुसुम-समाज है[2]।
सब ही को रस लैकै[3] बैठि न सकत आय[4],
अलि अवरंगजेब चंपा सिवराज है ॥३९॥

कैयक हजार किए[5] गुर्ज-बरदार ठाढ़े,
करिकै हुस्यार नीति सिखई[6] समाज की।
राजा जसवंत को बुलायकै निकट राखे,
जिनको सदाई रही[7] लाज स्वामि-काज की॥
भूषन तबहुँ ठिठकत ही गुसुलखाने[8],
सिंह-सी झपट मन मानी[9] महाराज की।
हठ तें[10] हथ्यार फैंट[11] बाँधि उमराव राखे[12],
लीन्ही तब नौरँग नै भेंट सिवराज की ॥४०॥

सबन के ऊपर ही ठाढ़ो रहिबे के जोग[13],
ताहि खरो[14] कियो छ-हजारिन[15] के नियरे।
जानि गैरमिसिल गुसीले गुसा धारि मन,
कीन्हो ना सलाम न बचन बोले सियरे॥
भूषन भनत महावीर बलकन लाग्यो,
सारी पातसाही के उड़ाय गए जियरे।
तमक तें लाल मुख सिवा को निरखि भए,
स्याहमुख नौरँग सिपाह-मुख पियरे ॥४१॥

सारी पातसाही के अमीर जुरि ठाढ़े तहाँ,
लायकै बिठायो कोऊ सूबन के नियरे।

---

१ आदि, सदा। २ सुमन समाज है, सुखद निवाज है। ३ लेइ रस एतन को। ४ अहै। ५ जहाँ। ६ पकरि। ७ तेऊ लखैं नीरे, तकैं नीरे।८ भूषन भनत ठाढ़ो पीठ है गुसुलखान। ९ गुनि साहि। १० हटकि। ११ फड़। १२ उमरावन की। १३ खड़े रहन योग्यता को। १४ आनि ठाढ़ो, तहाँ खड़ो। १५ जाय जारिन।

देखिकै रसीले नैंन गरव-गसीले भए,
करी न सलाम न वचन बोले सियरे ॥
भूपन भनत जवै धरयो कर मूठ पर,
तवै तुरकन के निकसि गए जियरे।
देखि तेग-चमक सिवा को मुख लाल भयो,
स्याहमुख नौरँग सिपाह-मुख पियरे ॥४२॥

पराक्रम-वर्णन

बाप तें बिसाल भूमि जीत्यो दस-दिसिन तें,
महि में प्रताप कीन्हो भारी भूप भान-सो।
ऐसो भयो साहि को सपूत सिवराज बीर,
जैसो भयो, होत है, न ह्वै है कोऊ आन सो ॥
एदिल कुतुबसाह औरँग के मारिबे को,
भूषन भनत को है सरजा खुमान सो।
तीन पुर त्रिपुर के मारे सिव तीन बान,
तीन पातसाही हनीं एक किरवान सो ॥४३॥
गढ़न गँजाय गढ़धरन सजाय करि,
छाँड़े केते धरम-दुवार दै भिखारी-से।
साहि के सपूत पूत बीर सिवराजसिंह,
केते गढ़धारी किए बन बनचारी-से ॥
भूषन बखाने केते दीन्हें बंदीखाने,
सेख सैयद हजारी गहे रैयत बजारी-से।
महतो-से मुगल महाजन-से महाराज,
डाँड़ि लीन्हे पकरि पठान पटवारी-से ॥४४॥
जानि पति बागबान मुगल पठान सेख,
बैल-सम फिरत रहत दिन-रात हैं।
नाते ह्वै अनेक कोऊ सामने चलत कोऊ,
पीठ दै चलत मुख नाय सरमात हैं ॥

भूषन भनत जुरे जहाँ-जहाँ जुद्ध-भूमि,
सरजा सिवा के जस बाग न समात हैं।
रहँट की घरी-जैसे औरँग के उमराव,
पानिप दिली तें ल्याइ ढारि-ढारि जात हैं ॥४५॥

सिवा की बड़ाई औ हमारी लघुताई क्यों,
कहत गरो परिबे को[1] पातसाह गरजा।
सुनिए खुमान हरि तिनको[2] गुमान तिन्हैं,
देबे को जवाब[3] कवि 'भूषन' यों अरजा ॥
तुम वाको पायकै जरूर रन[4] छोरो वह,
रावरे वजीर छोरि देत करि परजा।
मालुम तिहारो होत याहि में निबेरो रनु,
कायर सो कायर औ सरजा सो सरजा ॥

मोरँग कुमाऊँ आदि बाँधव पलाऊँ सबै,
कहाँ लौं गनाऊँ जेते भूपति के[5] गोत हैं।
भूषन भनत गिरि-बिकट-निवासी लोग,
बावनी बवंजा नवकोटि धुंध-जोत[6] हैं ॥
काबुल कँधार खुरासान जेर कीन्हे जिन,
मुगल पठान सेख सैयदहु रोत हैं।
अब लगि जानत हे बड़े होत पातसाह,
सिवराज प्रगटे तें राजा बड़े होत हैं ॥४७॥

देवल गिरावते फिरावते निसान अली[7],
ऐसे समै[8] राव-राने सबै गए लबकी।
गौरा गनपति आप, औरँग को देखि ताप[9],
आपने मुकाम[10] सब मारि गए दबकी[11] ॥

---

१ औ पलाऊ बाँधे एक पल। २ तुरुक। ३ महिदेवन जेंवायो। ४ उन। ५ जेऽब भूपन के। ६ धंध होत। ७ आली, नए। ८ डूबे। ९ औरन को देत ताप। १० आपके मकान, आपनी ही बार। ११ डुबकी।

पीरा पयगंबरा दिगंबरा दिखाई देत[1],
सिद्ध की सिधाई गई रही बात रब की[2]।
कासीहू की कला गई[3] मथुरा मसीत भई[4],
सिवाजी न होतो तो सुनति होति सबकी ॥४८॥
आदि की न जानो देवी-देवता न मानो साँच,
कहूँ सो पिछानो बात कहत हौं अब की[5]।
बब्बर अकब्बर[6] हिमायूँ हद बाँधि गए,
हिंदू औ तुरुक की[7] कुरान वेद-ढब की॥
इन[8] पातसाहन में हिंदुन की चाह हुती,
जहाँगीर साहजहाँ[9] साख पूरैं[10] तब की।
कासीहू की कला गई मथुरा मसीत भई,
सिवाजी न होतो तो सुनति होति सबकी ॥४९॥
कुंभकर्न औरँग को औनि अवतार लैकै[11],
मथुरा जराइकै दुहाई फेरी रब की।
खोदि डारे देवी-देव-देवल अनेक सोई[12],
पेखि निज पानिन तें छूटी माल सबकी[13]॥
भूषन भनत भाजे कासीपति बिस्वनाथ,
और का गनाऊँ नाम गिनती मैं अब की[14]॥
दिल मैं डरन लागे चारो बर्न ताही समै[15],
सिवाजी न होतो तो सुनति होति सबकी ॥५०॥

---

१ पैगंबर बीर सबै दिगंबर देख लिए। २ कहैते पूर कब की, बहै पूर सबकी। ३ जाती। ४ होती। ५ साँच को न मानै देवी-देवता न जानै अरु ऐसी उर आनै मैं कहत बात जब की। ६ के तब्बर, के टब्बर। ७ दो मैं एक करी ना। ८ और साहि। ९ अकबर। १० कहैं, सुनत। ११ असुर औतारी औरंगजेब कीन्हीं करल। १२ सहर मुहल्ला बाँके। १३ लाखन तुरुक कीन्हें छूटि गई तबकी, लाखों किए मुसल्मा माला छूटि गई तब की। १४ और कौन गिनती में भूली गति भव की। १५ चारों बर्न धर्म छोड़ि कलमा नेवाज पढ़ि।

विजय-वर्णन

मारि करि पातसाही खाकसाही कीन्ही जिन,
जेर कीन्हो जोर सों लै हद्द सब मारे की।
खिसि गई सेखी फिसि गई सूरताई सब,
हिसि गई हिम्मत हजारों लोग सारे की ॥
बाजत दमामे लाखौं धौंसा आगे घहरात,
गरजत मेघ ज्यों बरात चढ़े भारे की।
दूलहो सिवाजी भयो दच्छिन दमामेवारो,
दिल्ली दुलहिन भई सहर सितारे की ॥५१॥

सुमन में मकरंद रहत है साहिनंद,
मकरंद सुमन रहत ज्ञान-बोध है।
मानस में हंस बंस रहत हैं तेरे जस,
हंस में रहत करि मानस-विरोध है ॥
भूषन भनत भौंसिला भुआल भूमि,
तेरी करतूति रही अदभुत-रस-ओध है।
पानी में जहाज रहै लाज के जहाज,
महाराज सिवराज तेरे पानिप पयोध है ॥५२॥

छत्रसाल-दशक

आतंक-वर्णन

(कवित्त)

रैयाराव चंपति को चढ़ो छत्रसाल सिंह,
भूषन भनत गजराज जोम जमके[1]।
भादों की घटा-सी उड़ि[2] गरद[3] गगन घिरे[4],
सेलैं समसेरैं फिरे दामिनी-सी दमके॥
खान उमरावन के आन राजा-रावन के,
सुनि सुनि उर लागैं घन कैसे[5] घमके।
बैयर[6] बगारन की, अरि के अगारन की,
लाँघती पगारन नगारन के धमके[7] ॥१॥

चाकचक-चमू के अचाकचक चहूँ ओर,
चाक-सी फिरति धाक चंपति के लाल की।
भूषन भनत पातसाही मारि जेर कीन्ही,
काहू उमराव ना करेरी करवाल की॥
सुनि सुनि रीति बिरुदैत के बड़प्पन की,
थप्पन-उथप्पन की बानि छत्रसाल की।
जंग-जीतिलेवा तेऊ[8] ह्वैकै दामदेवा भूप,
सेवा लागे करन महेवा महिपाल की॥२॥

साँगन सों पेलि पेलि खग्गन सों खेलि खेलि,
समद सा जीता जो[9] समद लौं बखाना है।
भूषन बुँदेला मनि[10] चंपति-सपूत धन्य,
जाकी धाक बचा एक मरद मियाँ ना है॥

---

१ जमकैं। २ उठीं। ३ गरदैं। ४ घेरैं। ५ कैसी। ६ बैहर। ७ कैं। ८ ते वै। ९ सो। १० बुँदेले मन।

जंगल के बल से उदंगल प्रबल लूटा,
महमद अमी खाँ का कटक खजाना है।
वीर-रस-मत्ता जातें काँपता चकत्ता यारो,
कत्ता ऐसा बाँधिए जो छत्ता बाँधि जाना है ॥३॥

पराक्रम-वर्णन

देस दहपट्टि[1] आयो आगरे दिली के मेंड़े,
बरगी बहरि मानों दल जिमि देवा को।
भूषन भनत छत्रसाल छितिपाल-मनि,
ताके तैं कियो बिहाल जंग-जीतिलेवा को॥
खंड खंड सोर यों अखंड महिमंडल मैं,
मंडौ ते[2] बुँदेलखंड मंडल महेवा को॥
दच्छिन के नाह को कटक रोक्यो महाबाहु,
ज्यों सहसबाहु नै प्रबाह रोक्यो रेवा को ॥४॥

रण-वर्णन

अत्र[3] गहि छत्रसाल खिझ्यो खेत बेतवै के,
उत तें पठानन हूँ कीन्हीं झुकि झपटैं।
हिम्मति बड़ी कैं[4] कबड़ी[5] के खेलवारन लौं,
देत सै हजारन हजार बार चपटैं॥
भूषन भनत काली हुलसी असीसन कौं,
सीसन कौं ईस की जमाति जोर जपटैं।
समद लौं समद की सेना, त्यों बुँदेलन की,
सेलैं समसेरैं भईं बाड़व की लपटैं ॥ ५ ॥
बड़ी औंड़ी उमड़ी-नदी-सी फौज छेकी जहाँ,
मेड़ बेंड़ी छत्रसाल मेरु-से खरे रहे।

---

१ दहवट्टि। २ मंडित। ३ अस्त्र। ४ के। ५ गबड़ी।

चंपति के चक्कवै मचायो घमसान वैरी,
मलियै[1] मसानि आनि सौंहैं जे अरे रहे ॥
भूषन भनत भकरुंड रहे रुंड-मुंड,
भव के भुसुंड तुंड लोहू सों भरे रहे ।
कीन्हों जस-पाठ हर पठनेटे ठाट पर,
काठ लौं निहारे कोस साठ लौं डरे रहे ॥

तलवार-वर्णन

भुज-भुजगेस की वैसंगिनी[2] भुजंगिनी-सी,
खेदि खेदि खाती दीह दारुन दलन के ।
बखतर पाखरन बीच धँसि जाति, मीन
पैरि पार जात परवाह ज्यों जलन के ॥
रैयाराव चंपति के छत्रसाल महाराज,
भूषन सकै करि बखान को बलन के ।
पच्छी परछीने ऐसे परे परछीने बीर,
तेरी बरछी ने बर छीने हैं खलन के ॥ ९

तोपखाना-वर्णन

हैवर हरट्ट साजि गै-वर गरट्ट सबै[3],
पैदर के ठट्ट फौज जुरी तुरकाने की ।
भूषन भनत राय चंपति को छत्रसाल,
रोप्यो रन ख्याल ह्वैकै ढाल हिंदुवाने की ॥
कैयक हजार[4] एक बार बैरी मारि डारे,
रंजक दगनि मानो अगनि रिसाने की ।
सैद अफगन-सेन-सगर-सुतन लागी,
कपिल सराप लौं तराप तोपखाने की ॥ ८

---

१ मरियै । २ वै संगिनी । ३ सम । ४ करोर ।

प्रताप-वर्णन

(छप्पय)

तहवरखान हराय, एड़ अनवर कि जंग हरि।
सुतरुदीन बहलोल, गए अबदुल्ल समद मुरि॥
महमुद को मद मेटि, सेर अफगनहिं जेर किय।
अति प्रचंड भुजदंड, बलन केहीं न दंड दिय॥
भूषन बुँदेल छतसाल डर, रंग तज्यो अवरंग लजि।
झुके निसान सके समर, (सो) मक्के तक्क तुरक्क भजि॥ ६॥

दान-वर्णन

(कवित्त)

राजत अखंड तेज, छाजत सुजस बड़ो,
गाजत गयंद दिग्गजन हिय साल को।
जाहि के प्रताप सों मलीन आफताब होत,
ताप तजि दुजन, करत बहु ख्याल को॥
साज सजि गज तुरी पैदर कतार दीन्हे,
भूषन भनत ऐसो दीन-प्रतिपाल को।
आन राव राजा एक मन मैं न लाऊँ अब,

फुटकर

शिवाजी-विषयक

तलवार-वर्णन

(कवित्त)

साहि के सपूत रनसिंह सिवराज बीर,
 बाही समसेर सिर सत्रुन पै कढ़िकै।
काटे वै कटक कटकिन के विकट भू पै,
 हम सों न जात कह्यो सेष सम पढ़िकै॥
पारावार ताहि को न पावत है पार कोऊ,
 स्रोनित-समुद्र यहि भाँति रह्यो बढ़िकै।
नाँदिया की पूँछि गहि पैरिकै कपाली बचे,
 काली बचीं माँस के पहार पर चढ़िकै॥ १

मारे दल मुगल सम्हार करि वार[1] आज,
 उछलि उछलि म्यान-बामी तें निकासती।
तेरे कर वार[2] लागे दूसरी न माँगै कोऊ,
 काटिकै करेजा स्रोन पीवत बिनासती॥
साहि के सपूत महाराज सिवराज बीर,
 तेरी तलवार स्याह नागिन तें जासती।
ऊँट हय पैदल सवारन के झुंड काटि,
 हाथिन के मुंड तरबूज-लौं तरासती॥ २।

नगाड़ा-वर्णन

सिंहल के सिंह सम रन सरजा की हाक,
 सुनि चौंकि चलैं सब धाइ[3] पातसाहा के।

---

१ तिहारी तलवार। २ तेरी तलवार। ३ चलत बधाइ।

भूपन भनत भुचपाल दुरे द्राविड़ के,
पेल-फैल गैल गैल भूले उनमादा के॥
उछलि उछलि ऊँचे सिंह गिरे लंक माहिं,
बूड़ि गए महल बिभीपन के दादा के।
महि हाले मेरु हाले अलका-कुबेर हाले,
जा दिन नगारे बाजे सिव-साहजादा के॥ ३॥
ताही ओर परै घोर घर-घर जोर सोर,
जाही ओर सिवा के नगारे भारे गरजैं।
भूपन जो होइ पातसाही पाइमाल औ,
उजीर बेहवाल जैसे बाज आस चरजैं॥
एकै कहैं देस लेहु एकै कहैं दंड लेहु,
एकै कहैं लेहु गढ़-कोट जंग बरजैं।
करत उकील सरजा के दरबार,
छरीदारन सों ऐसी पातसाहन की अरजैं॥४॥

धाक-वर्णन

(सवैया)

साजि चमू जनि जाहु सिवा पर सोवत जाय न सिंह जगाओ।
तासों न जाय जुरौ न भुजंग महाबिष के मुख मैं कर नाओ॥
भूषन भाषति बैरि-बधू जनि एदिल औरँग लौं दुख पाओ।
तासु सलाह की राह तजौ मति नाह दिवाल की राह न धाओ॥५॥

(कवित्त)

कत्ता के कसैया महाबीर सिवराज तेरी,
रूम के चकत्ता लौं हू[2] संका सरसात है।
कासमीर काबुल कलिंग कलकत्ता अरु,
कुल करनाटक की हिम्मत हेरात है॥
बिकट बिराट बंग व्याकुल बलख बीर,
बारहो बिलाइत सकल बिललात है।

---

१ जंग। २ तक।

तेरी धाक धुंधरि धरा में अरु धाम धाम,
अंधाधुंध आँधी सी हमेस हहरात है ॥ ६ ॥
पारावार पार पैरि जैहैं भुजबल अरु,
तारक विहसि बड़वानल में जरिहैं।
दौरिहैं उपाहने पगन तरवारि पर,
महा बिषधरन के मुख कर करिहैं॥
भूषन भनत अवरंगजू को उमराव,
कहत रहत गिरिहू तें गिरि परिहैं।
छोरि समसेर सेर सिंहहु सों लरिहैं पै,
बाँधि समसेर सिवा सिंह पै न लरिहैं ॥७॥
एकै भाजि सकत न चौकरी भुलाने ऐसे,
जैसे मृग-जूथ दपटत मृगराज के।
भूषन भनत एकै पच्छुनि थकित भए,
पच्छी लों सटपटात झपटत बाज के॥
एकै सरजा के परताप यौं जरत, तिन-
पुंज ज्यौं बरत परे मुख-दौ-दराज के।
मीरजादे मुरि जात खानजादे खपि जात,
साहजादे सूखि जात दौरे सिवराज के ॥८॥
सूर-सरदार सूबेदार ऐंड़दार ते वै,
सरजा धँसाए धोप-धकनि धुकाइ कै।
भूषन भनत यातें संकत रहत नित,
कोऊ उमराव न सकत समुहाइ कै॥
दिल्ली तें चलत ह्याँ लौं आवत सिवा के डर,
कूटि-काटि फौजें जातीं भभरि भगाइ कै।
मध्य तें उमड़ि जैसे बीची बारि बारिधि की,
बेला न उलंघैं जातीं बीच ही बिलाइ कै ॥९॥
मारे तें रुहेलनि बिडारे तें बुँदेलनि के,
बहादुरखान ह्वैहै घाट को न घर को।

भूषन भनत सिव सरजा की धाक फेरि,
कोऊ नाहिं हैहैं सूवा दक्खिन के दर को ॥
वेदर के लीन्हे पर, देवगिरि छीने पर,
सत्रुन के सीने पर जैहैं महा धर को
दोई दिन भीतर विगोई सुनि आसरे सों,
कोई दिन जैहै गढ़ोई ग्वालियर को ॥१०॥
कारी भीति कालिंजर कँगूरे कनौज सदा,
सूरन के संका सरजा के करवाल की।
भूषन मिमार माड़े माड़व मुलुक कोऊ,
झंपि सोर भीमर गहे न वात वाल की ॥
विललाइ विकल बिलाइति को साह सुनि,
साइति में सूरति बिलाइत बिहाल की।
कहाँ लौं सराहौं सिवराज की सपूती भई,
कौंसिलापुरी लौं धाक भौंसिला भुआल की ॥११॥
कैयो देस परिब्रढ़ कैयो कोट-गढ़ी-गढ़,
कीन्हे अढ़अढ़ डिढ़ काहू मैं न गति है।
भूषन भनत सेना-बंध हलकंप सुनि,
सिंहल ससंक बंक लंक हहलति है ॥
गोलकुंडा बीजापुर हबस पुरतगाल,
बलख बिलाइत दिली मैं दहसति है।
डंका के बजत पातसाह या मलेच्छ-मन,
डाँकि चौकी धाक सिवाजी की पहुँचति है ॥१२॥
महाराज सरजा खुमान सिंह तेरी धाक,
छूटै अरि-नैननि मैं पानी की पनारिका।
भूषन भनत धार-धार सुनि बेसुमार,
बारक सम्हारैं न कुमार न कुमारिका ॥
देह की न खबरि सुगेह की चलावै कौन,
गात न सोहात न सोहाती परिचारिका।

मानव की कहा चली एते मान आगरे मैं,
आयो-आयो सिवराज रटैं सुक-सारिका ॥१३॥
साहि-तनै[1] सुभट सिवाजी गाजी तेरी धाक,
भसरि भगानी रानी बेगि[2] चुगलन की।
भूषन मुखनि[3] महताब की निकाई सुल-
फाई तिनके पगनि[4] गुलाब के गुलन की ॥
कच-कुच-भार कटि लचि लचकाइ थकि[5],
आई गरुआई पीन जंघ जुगलन की।
श्रम कुम्हिलानी[6] बिललानी बन-बन डोलैं[7],
मैगल-गवन मुगलानी मुगलन की ॥१४॥
हैवत हो फीलखाने पिलुआ पलंगखाने,
आफत वजीरखाने फाका मोदखाने में।
हुँगवा हरमखाने दारिद दरबखाने,
खाक मालखाने औ खबीस खसखाने में ॥
सरदी बरूदखाने फसली सिपाहखाने,
घुर्रा बाजखाने और सुस्ती जंगखाने में।
भूषन किताबखाने दीमक दिवानखाने,
खाने-खाने आफत ना अवाज तोपखाने में ॥१५॥
महाराज सिवराज तेरे त्रास साह भजे,
जिनके निकट सब नित्य ही लसत हैं।
आरिन में अरुआ अटारिन में आकज औ,
आँगन अलूसन में बाघ विलसत हैं ॥
भौनन के भीतर भुजंग भूत फैले फिरैं,
प्रेतन के पुंज पौरि पैठत ग्रसत हैं।
चारु चित्रसारिन में चौंकत चुड़ैल फिरैं,
खासे आमखासन में राकस हँसत हैं ॥१६॥

१ सहत न। २ राज। ३ भनत। ४ गुलफन की। ५ कटि-कुच-भारन तें लफि लचकाइ। ६ अकुलानी। ७ फिरैं।

(दोहा)

रेवा तें इत देत नहिं पथिक म्लेच्छ निवास ।
कहत लोग इन पुरनि में, है सरजा को त्रास ॥१७॥

प्रताप-वर्णन

(कवित्त)

साहि के सपूत सिवराज वीर तेरे डर,
अडग अपार महा दिग्गज सो डोलिया।
वेदर-बिलाइत सो उर अकुलाने अरु,
संकित सदाई रहै वेस बहलोलिया ॥
भूषन भनत कौल करत कुतुबसाह,
चाहै[1] चहुँ ओर रच्छा एदिल सा भोलिया।
दाहि दाहि दिल कीने दुखदाई दाग तातें,
आहि आहि करत औरंगसाह ओलिया ॥१८॥

तखत तखत पर तपत प्रताप पुनि,
नृपति नृपति पर सुनी है अवाज की।
दंड सातौ दीप नव खंडन अदंड पर,
नगर नगर पर छावनी समाज की ॥
उदधि उदधि पर दाबनी खुमान जू की,
थल थल ऊपर सुबानी कबिराज की।
नग नग ऊपर निसान झारि जगमगे,
पग पग ऊपर दुहाई सिवराज की ॥१९॥

(सवैया)

यों[2] पहिले उमराव लरे रन[3] जेर कियो[4] जसवंत अजूबा।
साइत खाँ अरु[5] दाउद खाँ पुनि हारि दिलेर महम्मद[6] डूबा।
भूषन देखे[7] बहादुर खाँ पुनि होय[8] महावत खाँ अति ऊबा।
सूखत जानि सिवाजू के तेज तें पान से फेरत औरँग सूबा ॥२०॥

---

१ चारे। २ कै। ३ अमीरुल। ४ फेर कियो। ५ फेरि कुतुब्ब खाँ।
६ कीन्हो दलेल महामद। ७ कीन्हे। ८ फिर भेस।

टूटि गए गढ़-कोट महा अरु छूटि गे मेड़े जे खाँड़नि खाँचे।
फूटे सवै उमराव सिवा अरु लूटिवे को कहूँ देस न बाँचे॥
भूषन कंचन की चरचा कहा रंच न हेम खजाननि काँचे।
झूठे कहावत हे पहिले अब आलमगीर फकीर भे साँचे॥२१॥

पराक्रम-वर्णन

(कवित्त)

औरँग अठाना साह सूर की न मानै आनि,
जब्बर जोराना भयो जालिम जमाना को।
देवल डिगाने[1] राव राने[2] मुरझाने[3] अरु,
धरम ढहाना पन मेट्यो है पुराना को॥
कीनो घमसाना मुगलाना को मसाना भरे,
जपत जहाना जस बिरद बखाना को॥
साहि के सपूत सिवराना किरवाना गहि,
राख्यो है खुमाना बर बाना हिंदुवाना को॥२२॥

कूरम कबंध हाड़ा तूँबर बघेला बीर,
प्रबल बुँदेला हुते जेते दलमनी सों।
देवल गिरन लागे मूरति लै बिप्र भागे,
नेकहू न जागे सोइ रहे रजधनी सों॥
सब नै पुकार करी सुरन मनाइबे को,
सुर नै पुकार भारी कीन्हीं बिस्वधनी सों,
धरम रसातल को डूबत उबार्यौ सिवा
मारि तुरकान घोर बल्लम की अनी सों॥२३॥

बंध कीन्हें बलख सो बैर कीन्हो खुरासान,
कीन्ही हबसान पर पातसाही पल ही॥
बेदर कल्यान घमसान कै छिनाय लीन्हे,
जाहिर जहान उपखान यही चलही।

---

१ डिगाना। २ राना। ३ मुरझाना।

जंग करि जोर सों निजामसाही जेर कीन्ही,
रन में नमाए हैं बुँदेल छल-बल ही।
ताके सब देस लूटि साहिजी के सिवराज,
कूटी फौज अजौं मुगलन हाथ मलही ॥२४॥
प्रबल पठान फौज काटिकै कराल महा,
आपनी मनाइ आनि जाहिर जहान को।
दौरि करनाटक में तोरि गढ़ कोट लीन्हे,
मोदी सों पकरि लोदी सेर खाँ अचानको ॥
भूषत भनत सब मारिकै बिहाल करि,
साहि के सुवन राचे अकथ कहान को।
बारगीर बाज सिवराज तो सिकार खेले,
साह-सैन-सकुन में ग्राही किरवान को ॥२५॥
सपत[1] नगेस आठौ[2] ककुभ गजेस,
कोल कच्छप दिनेस धरैं धरनि-अखंड को।
पापी घालै धरम सुपथ चालै मारतंड,
करतार प्रन पालै प्रानिन के चंड[3] को।
भूषन भनत सदा सरजा सिवाजी गाजी,
म्लेच्छन को मारै करि कीरति-घमंड को।
जग-काजवारे निहचिंत करि डारे सब,
भोर देत आसिष तिहारे भुजदंड को ॥२६॥
बाएँ लिखवैयन के बाम बिधि होन लागे,
दाएँ लिखवैयन पै दाप सी मढ़ै लगी।
छा गई उदासी खासी मस्जिद मक्कबरन,
मठ-मंदिरन कोटि रोसनी चढ़ै लगी ॥
भूषन भनत सिवराज आज तेरे राज,
तेज तुरकानन तें तेजता कढ़ै लगी।

---

१ चपत। २ चारौ। ३ झुंड।

माथन पै फेरि लागे चंदन चमक देन,
फेरि सिखा-सूत्रन की महिमा बढ़ै लगी ॥२७॥
कीन्हें खंड-खंड ते प्रचंड बलबंड बीर,
मंडन मही के अरि-खंडन भुलाने हैं।
लै-लै दंड छंडे ते न मंडे मुख रंचकहू,
हेरत हिराने ते कहूँ न ठहराने हैं ॥
पूरब पछाँह आन माने नहिं दच्छिनहू,
उत्तर धरा को धनी रोपै निज थाने हैं।
भूषन भनत नवखंड महिमंडल मैं,
जहाँ तहाँ दीसैं अब साहि के निसाने हैं ॥२८॥

(सवैया)

सूबा निरा नद[१] बादरखान गे लोगन बूझत ब्योंत बखानो।
दुग्ग सबै सिवराज लिए धरि चारु बिचारु हिये यह आनो ॥
भूषन बोलि उठे सिगरे हुतो पूना मैं साइतखान को थानो।
जाहिर है जग मैं जसवंत लियो गढ़सिंह मैं गीदर बानो ॥२९॥
औरंग-सा इक ओर सजै इक ओर सिवा नृप खेलनवारे।
भूषन दच्छिन दिल्लिय देस किए दुहुँ ठीक ठिकान मिनारे ॥
साह सिपाह खुमानहि के खग लोग बटान समान निहारे।
आलमगीर के मीर वजीर फिरैं चउगान बटान से मारे ॥३०॥

युद्ध-वर्णन

(कवित्त)

इत सिरजे खाँ उत सरजा सिवाजी सूर,
दोऊ उतसाहन लरैया खुरकन के।
भूषन भनत गढ़ नाले पर खाले भिरे,
देखैं दोऊ दीन पै न एको कुरकन के ॥
साहदी भवानी उन्हें माहदी सँघारै सबै,
बीजापुरी बीर अब लेन मुरकन के।

१ निरानँद।

लोह चले नाले पै न हाले दल साले चले,
भाले मरहट्टन के ताले तुरकन के ॥३१॥

यवनों का अत्याचार

बैठतीं दुकान लैकै[1] रानी रजवारन की,
तहाँ आइ बादसाह राह देखै सबकी।
बेटिन को यार और यार है लुगाइन को,
राहन के मार दाबादार गए दबकी॥
ऐसी कीन्ही बात तोऊ कोऊ वै न कीन्ही घात,
भई है नदानी बंस छत्तिस मैं कब की।
दच्छिन के नाथ ऐसी देखि धरे मूछों हाथ,
सिवाजी न होतो तो सुनति होति सबकी ॥३२॥

सूरत-संबंधी

सतयुग द्वापर औ त्रेता कलियुग मधि,
आदि भयो नाहिं भूप तिन हुते ए घरी
बब्बर अकब्बर हिमायूँसाह सासन सों,
नेह तें सुधारी हेम-हीरन तें सगरी।
भूषन भनत सबै मुगलान चौथ दीन्हीं
दौरि दौरि पौरि पौरि लूट ली चहूँ फरी
धूरि तन लाइ बैठी सूरत है रैन-दिन,
सूरत कौं मारि बदसूरत सिवा करी ॥३३॥
पक्खर प्रबल दल भक्खर सों दौर करी,
आय साहिजू को नंद बाँधी तेग बाँकरी।
सहर मिलायो मारि गरद मिलायो गढ़,
अजहूँ न आगे पाछे भूप किन नाँ करी॥
हीरा-मनि-मानिक की लाख पोटि लादि गयो,
मंदिर ढहायो जो पै काढ़ी मूल काँकरी।

---

[1] दुकानाँ लगाइ बैठी।

आलम पुकार करै आलम-पनाहजू पै,
हौरी-सी जराय सिवा सूरत फनाँ करी ॥३४॥
दौरि चढ़ि ऊँट फरियाद चहूँ खूट कियो,
सूरत को कूटि सिवा लूटि धन लै गयो।
कहि ऐसैं आप[1] आम-खास मधि साहन को,
कौन ठौर जायँ दाग छाती बिच दै गयो॥
सुनि सोई साह कहै यारो उमरावो जाओ,
सो गुनाह राव एती वेर बीच कै गयो।
भूषन भनत मुगलान सबै चौथ दीन्हीं,
हिन्द मैं हुकुम साहिनंदजू को ह्वै गयो ॥३५॥

जावली की लड़ाई

बारह हजार असवार जोरि दलदार,
ऐसे अफजलखान आयो सुर-साल[2] है।
सरजा खुमान मरदान सिवराज बीर,
गंजन गनीम आयो गाढ़े गढ़पाल है॥
भूषन भनत दोऊ दल मिलि गए बीर[3],
भारत सो भारी भयो जुद्ध बिकराल है।
पार जावली के बीच गढ़ परताप तले,
स्रोन भए स्रोनित सों अजौं धरा लाल है ॥३६॥

बीजापुर-रक्षण

दिल्ली को हरौल भारी सुभट अडोल गोल,
चालिस हजार लै पठान धायो तुरकी।
भूषन भनत जाकी दौरि ही को सोर मच्यो,
एदिल की सीमा पर फौज आनि दुरकी॥
भयो है उचाट करनाट - नरनाह को,
डोलि उठी छाती गोलकुंडा ही के धुर की।

---

१ आय। २ जोर जुलमात। ३ मिरे दोऊ दल महीथल।

साहि के सपूत सिवराज वीर तैं नै तव,
बाहु-बल राखी पातसाही बीजापुर की ॥३७॥

दिल्ली से निकल आना

घिरे रहे घाट और बाट सब घिरे रहे,
बरस दिना की गैल छिन माँहि छ्वै गयो।
ठौर ठौर चौकी ठाढ़ी रही असवारन[1] की,
मीर उमरावन के बीच ह्वै चलै गयो ॥
देखे मैं न आयो ऐसे कौन जाने कैसे गयो,
दिल्ली कर मीड़ै कर झारत किते[2] गयो।
सारी पातसाही के सिपाह सेवा सेवा करैं,
परयो रह्यो पलँग परेवा सेवा ह्वै गयो ॥३८॥

पातशाही टूटने का कारण

आपस की फूट ही तें सारे हिंदुवान टूटे,
टूटयो कुल रावन अनीति-अति करतें।
पैठियो पताल बलि बज्रधर ईरषा तें,
टूटयो हिरनाच्छ अभिमान चित धरतें ॥
टूटयो सिसुपाल बासुदेवजू सों बैर करि,
टूटयो है महिष दैत्य अधम बिचरतें।
राम-कर छूवन तें टूटयो ज्यों महेस-चाप,
टूटी पातसाही सिवराज संग लरतें ॥३९॥

शिवाजी का न्याय

चोरी रही मन मैं ठगोरी रूप ही मैं रही,
नाहीं तो रही है एक मानिनी के मान मैं।
केस मैं कुटिलताई नैन मैं चपलताई,
भौंह मैं बँकाई हीनताई कटियान मैं ॥

---

१ सब स्वारन। २ भारत बितै।

भूषन भनत पातसाही पातसाहन मैं,
तेरे सिवराज राज अदल जहान मैं।
कुच मैं कठोरताई रति मैं निलजताई,
छाँड़ि सब ठौर रही आइ अबलान मैं ॥४०॥

स्फुट

तेरी असवारी महाराज सिवराज बली,
केते गढ़पतिन के पंजर मचकि गे।
केते वीर मारिकै बिडारे किरवानन तैं,
केते गिद्ध खाए केते अंबिका-अचकि गे॥
भूषन भनत रुंड मुंडन की माल करि,
चार पाँव नाँदिया के भार तैं भचकि गे।
टूटि गे पहार बिकरार भुव-मंडल के,
सेष के सहसफन कच्छप कचकि गे॥४०क॥
तेरे त्रास बैरि-वधू पीवत न पानी कोऊ,
पीवत अघाय धाय उठैं अकुलाइ हैं।
कोऊ रहीं बाल, कोऊ कामिनी रसाल ते तौ,
भइँ बेहवाल फिरैं भागी बनराइ हैं॥
साहि के सपूत तुम आलम-सुभानु सुनौ,
भूषन भनत तव कीरति बनाइ है।
दिल्ली को तखत तजि नींद-खान-पान-भोग,
सिवा-सिवा बकत सी सारी पातसाइ है॥४०ख॥
तेग-बरदार स्याह पंखा-बरदार स्याह,
निखिल नकीब स्याह बोलत बिराह को।
पान पीकदानी स्याह सेनापति मुख स्याह,
जहाँ तहाँ ठाढ़े गिनै भूषन सिपाह को॥
स्याह भए सारी पातसाही के अमीर खान,
काहू के न रह्यो जोम समर उमाह को।

सिंह सिवराज दल मुगल बिनास करि,
घास ज्यों पजाखो आमखास पातसाह को॥४०ग॥

जोर रूसियान को है तेग खुरासानहू की,
जीति इंगलैंड, चीन हुन्नर महादरी।
हिम्मत अमान मरदान हिंदुवानहू की,
रूम अभिमान, हबसान-हद कादरी॥
नेकी अरबान, सान-अदब ईरान त्यों ही,
क्रोध है तुरान, ज्यों फराँस फंद आदरी।
भूषन भनत इमि देखिए महीतल पै,
बीर सिरताज सिवराज की बहादरी॥४०घ॥

(छप्पय)

सैयद मुगल पठान, सेख चंदावत भच्छन।
सोम सूर द्वै बंस, राव राना रन-रच्छन॥
इमि भूषन अवरंग, और एदिल दल-जंगी।
कुल करनाटक कोट भोटकुल हबस फिरंगी॥
चहुँ ओर बैर महि मेरु लगि, साहितनै साहस झलक।
फिर एक ओर सिवराज नृप, एक ओर सारी खलक॥४०ङ॥

अन्य राजा-विषयक

महाराज छत्रसाल

(दोहा)

नाती को हाथी दियो, जापै दुरकत ढाल।
साहू के जस-कलस पै, धुज बाँधी छतसाल ॥४१॥

(सवैया)

बालपने मैं तहव्वरखान को सेन-समेत अँचै गयो भाई।
ज्वानी मैं रुंडी औ खुंडी हने, ए समुद्र अँचै कछु थाह न पाई ॥
बैस बुढ़ापे की भूख बढ़ी, गयो बंगस बंस-समेत चबाई।
खाए मलिच्छन के छोकरा पै तऊ डोकरा को डकार न आई ॥४२॥

साहूजी

(कवित्त)

बलख बुखारे मुलतान लौं हहर पारे,[1]
काबुल पुकारै कोऊ गहत न सार है।
रूम रूँदि डारै खुरासान खूँदि मारै,
खग्ग खादर लौं झारै ऐसी साहू की बहार है ॥
सक्खर[2] लौं भक्खर लौं मक्कर लौं चलो जात,
टक्कर लेवैया कोऊ वार है न पार है।
भूषन सिरोंज[3] लौं परावने परत फेर,
दिल्ली पर परति परिंदन की छार है ॥४३॥
साहूजी की साहिबी दिखात कछू होनहार,[4]
जाके रजपूत भरे जोम बमकत[5] हैं।

---

१ पेलि पारे अरु। २ कक्कर। ३ सिरोंह, सिरोही, शीराज। ४ बखानै उमराव कौन। ५ जैसे सेर भभकत।

भारे भारे नग्रवारे भागे घर[1] तारे दै दै,
फारे[2] घन-घोर ज्यों नगारे धमकत हैं॥
व्याकुल पठानी[3] मुगलानी अकुलानी[4] फिरैं,
भूषन भनत माँग[5] मोती दमकत हैं।
दिल्ली-दल दाहिबे को दच्छिन के केहरी के,[6]
चंचल के आर-पार नेजे चमकत[7] हैं॥४४॥

भेजे लिख लग्न सुभ गनिक निजाम बेग,
इतै गुजरात उतै गंग ज्यों पतारा की।
एक जस लेत अरि फेंग फिर गढ़हू को,
खंडि नवखंड दिए दान ज्यों ऽव तारा की॥
ऐसे व्याह करत बिकट साहू साहन सों,
हद हिंदुवान जैसे तुरक ततारा की।
आवत बरात सजे ज्वान देस-दच्छिन के,
दिल्ली भई दुलहिन सहजैं सतारा की॥४५॥

सारस से सूबा करवानक[8] से साहजादे,
मोर से मुगल मीर धीर मैं धचैं[9] नहीं।
बगुला से बंगस[10] बलूचियौ बतक ऐसे,
काबुली कुलंग याते रन मैं रचैं[11] नहीं॥
भूषन जू खेलत सितारे मैं[12] सिकार साहू,
संभा को सुवन जातैं दुवन सचैं[13] नहीं।
बाजी सब[14] बाज की चपेट चहूँ ओर फिरैं,
तीतर तुरक दिल्ली-भीतर बचैं नहीं॥४६॥

---

१ गढ़। २ बाजे। ३ जाके मद अनी। ४ बिललानी। ५ टूटि टूटि माँगन के। ६ दच्छिन के आमिल भो सामिलहि चहूँ ओर। ७ फरकत। ८ कीर बानिक। ९ ढंक से महीप कोऊ जुद्ध मैं रचैं नहीं। १० मोर से मुगल अरु। ११ इतै मामलैं मचैं। १२ भनत जहाँ खेलत। १३ तहाँ दुवन बचैं। १४ बाजीराव।

बाजीराव

बाजे-बाजे राजे ते निवाजे हैं नजर करि,
बाजे-बाजे राजे काढ़ि काटे असि मत्ता सों।
बाँके-बाँके सूबा नालबंदी दै सलाह करें,
बाँके-बाँके सूबा करै एक-एक लत्ता सों॥
गाढ़े-गाढ़े गढ़पति काटे रामद्वार दै-दै,
गाढ़े-गाढ़े गढ़पति आने तरे कत्ता सों।
बाजीराव गाजी तैं उबारयो आइ छत्रसाल,
आमिल बिठायो बल करिकै चकत्ता सों॥४७॥

साजि दल सहज सितारा-महाराज चलै,
बाजत नगारा पढ़ैं धाराधर साथ से।
राव उमराव राना देस देसपति भागे,
तजि तजि गढ़न गढ़ोई दसमाथ से॥
पैग पैग होत भारी डावाँडोल भूमि गोल,
पैग पैग होत दिग्ग-मैगल अनाथ से।
उलटत पलटत गिरत झुकत उझकत,
सेष-फन बेद-पाठिन के हाथ से॥४८॥

सुलंकी

बाजि बंब चढ़ो साजि बाजि जब कलाँ-भूप,
गाजी महाराज राजी भूषन बखानतें।
चंडी के सहाय महि मंडी तेजताई एंड,
छंडी राय राजा जिन दंडी औनि आन तें॥
मंदीभूत रबि-रज बंदीभूत हठधर,
नंदी-भूत-पति भो अनंदी अनुमान तें।
रंकीभूत दुवन करंकीभूत दिगदंती,
पंकीभूत समुद सुलंकी के पयान तें॥४९॥

अवधूतसिंह

जा दिन चढ़त दल साजि अवधूतसिंह,
ता दिन दिगंत लौं दुवन दाटियतु है।
प्रलै कैसे धाराधार धमकैं नगारा धूरि-
धारा तें समुद्रन की धारा पाटियतु है॥
भूषन भनत भुवगोल को कहर[1] तहाँ,
हहरत तगा जिमि गज्ज काटियतु है।
काँच से कचरि जात सेस के असेस फन,
कमठ की पीठि पै पिठी-सी बाँटियतु है॥५०॥

महाराज जयसिंह

भले भाय[2] भासमान भासमान भान जाको,
भानत भिखारिन के भूरि-भय-जाल है।
भोगन को भोगी भोगिराज कैसी भाँति भुजा,
भारी भूमि-भार के उभारन को ख्याल है॥
भावती[3] समान[4]-भूमि-भामिनी को भरतार,
भूषन भरतखंड भरत भुवाल है।
बिभौ को भँडार औ भलाई को भवन भासै,
भाग भरे भाल जयसिंह भुवपाल है॥५१॥

महाराज रामसिंह

अकबर पायो भगवंत के तने सों मान,
बहुरि जगतसिंह महा मरदाने सों।
भूषन त्यों पायो जहाँगीर महासिंहजू सों,
साहजहाँ पायो जयसिंह जग जाने सों॥

---

१ कहल। २ भाई। ३ भावतो। ४ सभानि, समानि।

अब अवरंगजेब पायो रामसिंहजू सों,
औरो दिन-दिन पैहै कूरम के माने सों।
केते राव-राजा मान पावैं पातसाहन सों
पावै पातसाह मान मान के घराने सों ॥५२॥

महाराज अनिरुद्ध

पौरच-नरेश अमरेसजू के अनिरुद्ध,
तेरे जस सुने तें सुहात स्रौन सीतलैं।
चंदन सी चाँदनी सी चादरैं सी चहूँ दिसि,
पथ पर फैलती हैं परम पुनीत लैं॥
भूषन बखानी कवि-मुखन प्रमानी सो तो,
बानीजू के बाहन हरख हंस ही-तलैं।
सरद के घन की घटान सी घमंडती हैं,
मेंड्ड तें उमंडती हैं मंडतीं महीतलैं ॥५३॥

रावबुद्ध

जुद्ध को चढ़त दल बुद्ध को सजत[1] तब,
लंक लौं अतंकन के पतरैं पतारे से।
भूषन भनत भारे घूमत गयंद कारे,
बाजत नगारे जात अरि-उर छारे से॥
धँसिकै धरा के गाढ़े कील की कड़ाके डाढ़े,
आवत तरारे दिगपालन तमारे से।
फेन से फनीस-फन फूटि बिष छूटि जात,
उछरि उछरि सिंधु पुरवै फुआरे[2] से ॥५४॥
रहत अछक पै मिटै न धक पीवन की,
निपट जू नाँगी डर काहू के डरै नहीं।
भोजन बनावै नित चोखे खानखानन के,[3]
स्रोनित पचावै तऊ उदर भरै नहीं॥

---

१ जसत। २ भुआरे। ३ नवीने नित चाहै चकतानन के।

उगिलत आसौ तऊ सुकल समर बीच,[1]
राजै राव बुद्ध-कर बिमुख परै नहीं।
तेग या तिहारी मतवारी है अछक तौ लौं,
जौ लौं गजराजन की गजक करै नहीं ॥५५॥

कुमाऊँ-नरेश

उलहत[2] मद उनमद[3] ज्यों जलधि-जल,
बद हद भीम कद काहू के न आह के।
प्रबल प्रचंड गंड-मंडित मधुप-वृंद,
बिंध्य से बिलंद सिंधु-सातहू के थाह के॥
भूषन भनत झूल झँपति झपान झुकि,
झूमत झुलत झहरात रथ डाह के।
मेघ से घमंडित मजेजदार तेज पुंज,
गुंजरत कुंजर कुमाऊँ नरनाह के ॥५६॥

गढ़वार-नरेश

लोक ध्रवलोकहू तें ऊपर रहैगो भारो
भानु तें प्रभानि की निधान आनि आवैगो।
सरिता सरिस-सुरसरि तैं करैगो साहि,
हरि तें अधिक अधिपति ताहि मानैगो॥
ऊरध-परारध तें गनती गनैगो गुनि,
बेद तें प्रमान सो प्रमान कछू जानैगो।
सुजस तें भल्यौ मुख भूषन भनैगो बाढ़ि,
गढ़वार राज पर राज जो बखानैगो ॥५७॥

औरंगजेब

किबले के ठौर बाप बादसाह साहजहाँ,
वाको कैद कियो मानो मक्के आगि लाई है।

---

१ आसव ज्यों समर मैं सत्रुन के। २ उलहत। ३ अनुमद।

बड़ो भाई दारा वाको पकरिकै मारि डार्यो[1],
मेहरहू नाहिं मा को जायो सगो भाई है[2] ॥
खाइकै कसम त्यों मुराद को मनाइ लियो,
फेरि ताहू साथ अति कीन्हीं तैं ठगाई है[3] ।
भूषन सुकवि कहै सुनो नवरंगजेब,
ऐसे ही अनीति करि[4] पातसाही पाई है ॥५८॥

हाथ तसबीह लिए प्रात करै बंदगी सी[5],
मन के कपट सबै संभारत जपके[6] ।
आगरे में जाय दारा चौक में चुनाय लीन्हों,
छत्रहू छिनाय लीन्हो मारि[7] बूढ़े बप के ॥
सूजा बिचलाइ कैद करिकै मुराद मारे,
ऐसे ही अनेक हने गोत्र निज चपके[8] ।
भूषन भनत अब साह भए साँचे जैसे[9],
सौ सौ चूहे खाइकै बिलाई[10] बैठी तप के ॥५९॥

दाराशाह

डंका के दिए तें दल-डंबर उमंड्यो उडमंड्यो,
उडमंडल लौं खुर की गरद्द है ।
जहाँ दारासाह बहादुर के चढ़त पैंड,
पैंड मैं मड़त मारू-राग बंबनद्द है ॥
भूषन भनत घने घुम्मत हरौलवारे,
किम्मत अमोल बहु हिम्मत दुरद्द है ।

---

१ कैद कियो । २ रंचक रहम आप उर मैं न आई है । ३ बंधु तो मुराद बक्स बादि चूक करिबे को बीच दै कुरान खुदा की कसम खाई है । ४ एते काम कीन्हें फेरि । ५ उठै बंदगी को । ६ आप ही कपट रूप कपट जु जप को । ७ छिनायो मानो मरे । ८ कीन्हों है सगोत घात सो मैं नाहिं कहौं फेरि पील पै तोरायो चार चुगुल के गपके । ९ छर छंदीमतिमंद कहा । १० बिलारी ।

हद्द न छपद्द महि मद्द फरनद्द होत,
कद्द नभनद्द से जलद्द दल दद्द है ॥६०॥

शृंगार-रस

मुग्धा-नायिका

(दुर्मिल सवैया)

अति सौंधे भरी सुखमा सु खरी मुख ऊपर आइ रहीं अलकैं।
कवि भूषन अंग नवीन विराजत मोतिन-माल हिये झलकैं॥
उन दोउन की मनसा मन सी नित होत नई, ललना ललकैं।
भरि भाजन बाहर जात मनौ मुसुकानि किधौं छबि की छलकैं॥६१॥

प्रौढ़ा

(कवित्त)

नैन जुग नैनन सों प्रथमै लड़े हैं धाय,
अधर कपोल तेऊ टरैं नहि टेरे हैं।
अड़ि अड़ि पिलि पिलि लड़े हैं उरोज बीर,
देखो लगे सीसन पै घाव ये घनेरे हैं॥
पिय को चखायो स्वाद कैसो रति-संगर को,
भए अंग-अंगनि तें केते मुठभेरे हैं।
पाछे परे बारन कौं बाँधि कहै आलिन सों,
भूषन सुभट येई पाछे परे मेरे हैं॥६२॥

कोकनद-नैनी केलि करी प्रानपति संग,
उठी परजंक तें अनंग-जोति-सोकी-सी।
भूषन सकल दलमलि हलचल भए,
बिंदु-लाल भाल फैल्यो काँति रबि रोकी सी॥
छूटि रही गोरे गोल गाल पै अलक आछी,
कुसुम गुलाब के ज्यों लीक अलि दो की सी।
मोती सीस फूल तें बिथुरि फैलि रह्यो मानो,
चंद्रमा तें छूटी है नछत्रन की चोकी सी॥६३॥

देखत ही जीवन बिडारौ तौ तिहारो जान्यो,
जीवन-दू नाम कहिबे ही को कहानी मैं।
कैधों घनस्याम जो कहावैं सो सतावैं मोहिं,
निहचैकै आजु यह बात उर आनी मैं॥
भूषन सुकबि कीजै कौन पर रोसु निज
भागि ही को दोसु आगि उठति ज्यों पानी मैं।
रावरेहू आए हाय हाय मेघराय सब
धरती जुड़ाती पै न बरती जुड़ानी मैं॥६४॥

मानिनी

मेचक-कवच साजि बाहन-बयारि-बाजि,
गाढ़े दल गाजि रहे दीरघ बदन के।
भूषन भनत समसेर सोई दामिनी है,
हेतु नर कामिनी के मान के कदन के।
पैदरि-बलाका धुरवान के पताका गहे,
घेरियत चहूँ ओर सूने ही सदन के।
ना करु निरादर पिया सों मिलु सादर,
ये आए बीर बादर बहादर मदन के॥६५॥

प्रोषितपतिका

मलय समीर परलै को जो करत अति,[२]
जम की दिसा तें आयो जम ही को गोतु है।
साँपन को साथी न्याय चंदन छुए तें डसै,
सदा सहबासी बिष-गुन को उदोतु है॥
सिंधु को सपूत कलपद्रुम को बंधु,
दीनबंधु को है लोचन सुधा को तनु सोतु है।
भूषन भनत भुव-भूषन द्विजेस तैं,
कलानिधि कहाय कै कसाई कत होतु है॥६६॥

---

१ आन चहुँओरन। २ पति।

निज किरनन मेरो अंग छुयो तिन ही सों,
पिय-अंग छुवै क्यों न मैन-दुख-दाहे को।
भूषन भनत तू तो जगत को भूषन है,
हौं कहा सराहौं ऐसे जगत-सराहे को॥
चंद ऐसी चाँदनी तू प्यारे पै बरसि,
उतै रहि न सकै मिलाप होय चित-चाहे को।
तू तो निसा करै सब ही की निसा करै मेरी
जो न निसा करै तो तू निसाकरै काहे को॥६७॥

बन उपवन फूले अंबनि के भौर भूले,
अवनि सोहात सोभा और सरसाई है।
अलि मदमत्त भए केतकी बसंती फूली,
भूषन बखानै सोभा सबै सुखदाई है॥
बिषम बिडारिबे को बहत समीर मंद,
कोकिला की कूक कान कानन सुनाई है।
इतनो सँदेसो है जू पथिक तिहारे हाथ,
कहो जाय कंत सों बसंत-रितु आई है॥६८॥

आगमिष्यत्पतिका

कारो जल जमुना को काल सो लगत आली,
छाइ रह्यो मानो यह बिष कालीनाग को[१]।
बैरिन[२] भई हैं कारी कोयल निगोड़ी यह,
तैसो ही भँवर कारो[३] बासी बन बाग को॥
भूषन भनत कारे कान्ह को बियोग हिये,
सबै दुखदाई जो करैया[४] अनुराग को।
कारो घन घेरि घेरि मारयौ अब चाहत है,
एते पर[५] करति भरोसो कारे काग को॥६९॥

१ मानो बिष भयो रोम रोम कारे नाग को। २ तैसियै। ३ सदा। ४ ऐसे ही सँयोग सब करि। ५ तापै तू।

परकीया

सुने हूजै वे-सुख सुने बिन रह्यो न जाय,
याही तें बिकल-सी बिताती दिन-राती हैं।
भूषन सुकबि देखि बावरी बिचार-काज
भूलिवे के मिस सास नंद अनखाती हैं॥
सोई गति जानै जाके भिदी होय कानै सखि
जेती कढ़ै तानै तेती छेदि छेदि जाती हैं।
हूक पाँसुरी में क्यों भरौं न आँसुरी मैं थोरे
छेद बाँसुरी मैं घने छेद किए छाती हैं॥७०॥

भेंटि सुरजन तोहिं मेटि गुरजन लाज,
पंथ परिजन को न त्रास जिय जानी है।
नेह ही को तात गुन जीवन सफल गात,
भादौं-तम-पुंजन निकुंजन सकानी है॥
सावन की रैनि कबि भूषन भयावनी मैं,
भावत सुरति तेरी संकहू न मानी है।
आज रावरे की यहाँ बातैं चलिबे की मीत,
मेरे जान कुलिस घटा सी घहरानी है॥७१॥

उत्तमा

देवता को पति नीको पतिनी सिवा को हर
श्रीपति न तीरथ बे रथ उर आनिए।
परम धरम को है सेइबो न ब्रत-नेम,
योग को सँजोग त्रिभुवन योग जानिए॥
भूषन कहा भगति न कनक मनि तातें,
बिपति कहा बियोग सोगन बखानिए।
संपति कहा सनेह न गथ गहिरो सुख,
मुख को निरखिबोई मुकुति न मानिए॥७२

अधमा

(सवैया)

मेरु को सोनो कुवेर की संपति ज्यों न घटै विधि राति अमा की।
नीरधि वीर कहै कवि भूषन छीरधि छीर छमा है छमा की॥
रीति महेस उमा की महा रस-रीति निरंतर राम रमा की।
ए न चलाए चलैं क्रम छोड़ि कठोर क्रिया औ तिया अधमा की॥७३॥

शांत-रस

निर्वेद

देह देह देह फिर पाइए न ऐसी देह,
जौन तौन जो न जानै कौन जौन आइबो।
जेते मनि-मानिक हैं ते ते मन मानि कहैं,
धराई मैं धरे ते तौ धराई धराइबो॥
एक भूख राखै भूख राखै मत भूषन की,
यही भूख राखै भूप भूषन बनाइबो।
नगन के गौन जम गिनन न दैहै नग,
नगन चलैगो साथ नग न चलाइबो॥७४॥

अन्योक्ति

और रूषनि छोड़ि अलि, 'भूषन' सेइ रसाल।
याके निकट बसंत ही, ह्वैहै निपट निहाल॥७५॥

संदेहात्मक-पद्य

शिवा-बावनी

(कवित्त)

डाढ़ी के रखैयन की डाढ़ी सी रहत छाती,
बाढ़ी मरजाद जैसी[1] हद्द हिंदुवाने की।
कढ़ि गई[2] रैयत के मन की कसक सब,
मिटि गई ठसक तमाम तुरकाने की॥
भूषन भनत[3] दिल्लीपति दिल धकधका,
सुनि सुनि धाक सिवराज[4] मरदाने की।
मोटी भई चंडी बिन चोटी के चबाय सीस[5],
खोटी भई संपति चकत्ता के घराने की॥१॥*

(सवैया)

केतिक देस दले दल के बल दच्छिन चंगुल चाँपिकै चाख्यो[6]।
रूप गुमान हरयो गुजरात को सूरत को रस चूसिकै राख्यो[7]॥
पंजन पेलि मलिच्छ मले सब सोई बच्यो जेहि दीन ह्वै भाख्यो[8]।
सो रँग है सिवराज बली जिन[9] नौरँग में रँग एक न राख्यो॥२॥†
श्रीसिवराज धरापति के यहि भाँति पराक्रम होत है भारी[10]।
दंड लिए भुवमंडल को नहिं कोऊ अदंड बच्यो छतधारी॥

---

* यही 'महाराज छत्रसाल' की प्रशंसा में 'नेवाज' कवि के नाम पर मिलता है।

† 'साहित्य-सिंधु' में 'दत्त' कवि के नाम पर ऐसा ही पद्य मिलता है। 'दत्त' के दो तीन छंद इसके चतुर्थ चरण की समस्या पर बने हुए कई संग्रह-ग्रंथों में मिलते हैं।

१ जग। २ निकसिकै। ३ कहत 'नेवाज'। ४ राजा छत्रसाल। ५ दलन खाय। ६ चाँपि धराधर चूरिकै नाख्यौ। ७ चाख्यो। ८ जट्ट की हद्द लिखी 'कवि दत्त' ने झूठ नहीं यह साँचकै भाख्यो। ९ है रँग तो सिवराज महाबलि। १० कांति निहारी।

वैठिकै दच्छिन भूषन दच्छ¹ खुमान सबै हिंदुवान उज्यारी।
दिल्ली तें गाजत आवत ताजिये पीटत आपको² पाँचहजारी ॥३॥

छत्रसाल-दशक

(दोहा)

इक हाड़ा बूँदी-धनी, मरद महेवावाल।
सालत नौरँगजेब-उर, ये दोनों छतसाल ॥४॥ *
वै देखौ छत्तापता, यै देखौ छतसाल।
वै दिल्ली की ढाल, यै दिल्ली-ढाहनवाल ॥५॥ *

(कवित्त)

निकसत म्यान तें मयूखैं प्रलै-भानु केसी,
फारैं तम तोम-से गयंदन के जाल को।
लागति लपकि कंठ बैरिन के नागिन-सी,
रुद्रहिं रिझावै दै दै मुंडन की माल को ॥
लाल छितिपाल छत्रसाल महाबाहु बली,
कहाँ लौं बखान करौं तेरी करवाल को।
प्रतिभट-कटक कटीले केते काटि काटि,
कालिका-सी किलकि कलेऊ देति काल को॥६॥ †

---

* इन दोनों दोहों के भूषण कृत होने में संदेह है। 'छत्रसाल-दशक' के दसों कवित्तों से ये अधिक भी थे। स्वर्गीय श्रीगोविंद गिल्ला-भाईजी ने इनके भूषण कृत होने में संदेह प्रकट किया है, पर ये दोहे 'शिवसिंह-सरोज' में भूषण के नाम पर संगृहीत हैं।

† इन दोनों कवित्तों को स्वर्गीय श्रीगोविंद गिल्लाभाईजी ने बूँदी-नरेश हाड़ा छत्रसाल की प्रशंसा में 'लाल' कवि कृत बताया है। दोनों में 'लाल' नाम आया भी है। कुछ लोग दूसरे कवित्त में 'लाल' के स्थान पर 'लाज' पाठ रखते हैं, पर उससे स्पष्ट पुनरुक्ति-दोष आता है। दूसरा पद्य 'लालमनि' (चिंतामणि त्रिपाठी) के नाम पर भी मिला है।

१ कहै कबिराज। २ गाजिकै गाजी ह्वै आए पै पाजी से पीटे हैं।

दारा और औरँग जुरे है दोऊ दिल्लीवाल,
एकै गए भाजि एकै गए रुँधि चाल मैं।
कोऊ दगाबाजी करि बाजी राखी निज कर,
कौनहू प्रकार प्रान बचत न काल मैं॥
हाथी तें उतरि हाड़ा जूझ्यो लोह-लंगर दै,
एती लाज का मैं जेती लाल छत्रसाल मैं॥
तन तरवारिन मैं मद परमेसुर मैं,
प्रान स्वामि-कारज मैं माथो हर-माल मैं॥७॥

कीबे को समान प्रभु ढूँढ़ि देख्यो आन पै,
निदान दान-जुद्ध मैं न कोऊ ठहरात हैं।
पंचम प्रचंड-भुज-दंड को बखान सुनि,
भागिबे को पच्छी लौं पठान थहरात हैं॥
संका मानि सूखत अमीर दिल्लीवारे सब,
चंपति के नंद के नगारे घहरात हैं।
चहूँ ओर चकित चकत्ता के दलन पर,
छत्ता के प्रताप के पताके फहरात हैं॥८॥*

चले चंदबान घनबान औ कुहूकबान,
चली हैं कमानैं धूम आसमान छ्वै रह्यो।
चलीं जमदाढ़ै, बाढ़वारैं तलवारैं जहाँ,
लोह-आँच जेठ को तरनि मानौ ज्वै रह्यो॥
ऐसे समै फौजैं बिचलाइ छत्रसाल सिंह
अरि के चलाए पायँ बीररस च्वै रह्यो।

---

* स्वर्गीय श्रीगोविंद गिल्लाभाईजी ने इस कवित्त के द्वितीय चरण में आए हुए 'पंचम' शब्द को कवि का नाम बताया है। कुछ लोग इसे महाराज छत्रसाल के एक पूर्व-पुरुष का नाम स्वीकार करते हैं।

हय चले हाथी चले संग छोड़ि साथी चले,
ऐसी चलाचली में अचल हाड़ा ह्वै रह्यो ॥९॥ ❀

फुटकर

उठि गयो आलम सों रुजुक सिपाहिन को,
उठि गो बँधैया सब वीरता के बाने को।
भूषन भनत उठि गयो है धरा सों धर्म,
उठि गो सिंगार सबै राजा राव राने को॥
उठि गो सुकविसील, उठि गो जसीलो डील,
फैलो मध्यदेस में समूह तुरकाने को।
फूटे भाल भिच्छुक के जूझे भगवंतराय,
अरराय टूट्यो कुल-खंभ हिंदूआने को ॥१०॥ †

सुंडन समेत काटि बिहद मतंगन को,
रुधिर सों रंग रन-मंडल में भरि गो।
भूषन भनत तहाँ भूप भगवंतराय,
पारथ समान महाभारत सो करि गो॥
मारे देखि मुगल तुराबखान ताही समै,
काहू अस न जानी काहू नट सो उचरि गो।
बाजीगर कैसी दगा-बाजी करि ताही समै,
हाथी हाथा हाथी तें सहादत उतरि गो॥११॥

❀ स्वर्गीय श्रीगोविंद गिल्लाभाईजी ने इसे बूँदी-नरेश हाड़ा के किसी दरबारी कवि का रचा बताया है।

† कुछ लोगों का कथन है कि द्वितीय चरण में 'भूषण' के स्थान पर 'भूधर' होना चाहिए। 'भूधर' कवि असोथर के राजा भगवंतराय खीची के यहाँ थे।

१ 'सारँग' सुकबि भनै भूपति भवानी सिंह।

टिप्पणियाँ

१. अकथ = (अकथ्य) जो कहा न जा सके। अपार = जिसका पार (अंत) न हो। भव-पंथ = संसार रूपी मार्ग। स्रम = (सं० श्रम) थकावट। हरन = हरनेवाले। करन बिजना-से = पंखे के सदृश कान। बरदाइए = (बलदायी) शक्ति देनेवाले (थके हुए व्यक्ति में पंखा झलने से शक्ति आती है, संसार से खिन्न व्यक्ति गणेश के कर्णों का ध्यान करके शांति पाता है)। इह लोक = संसार। परलोक = परत्र (स्वर्ग)। सुफल करन = सिद्ध करने वाले। कोकनद-से = लाल कमल के समान। हिये आनिकै = हृदय में लाकर (ध्यान करके)। जुड़ाइए = शीतल होना चाहिए (शांति पाना चाहिए)। अलि-कुल-कलित कपोल = भौंरों के झुंड से शोभित गाल (गजमुख होने से कनपटी के पास से 'मद' बहता है अतः भौंरे मड़राते हैं)। ललित = मनोहर। आनंद-रूप-सरित = आनंद रूप नदी। अन्हाइ = (सं० स्नान) स्नान करना चाहिए (आनंद लेना चाहिए)। पाप-तरु-भंजन = पाप रूपी वृक्ष ढहानेवाले (पाप दूर करनेवाले)। बिघन-गढ़-गंजन = विघ्न रूपी किला तोड़नेवाले (विघ्नों का वारण करनेवाले)। भगत-मन-रंजन = भक्तों का हृदय प्रसन्न करनेवाले। द्विरद-मुख = हाथी के सदृश मुखवाले। गाइए = गुण-गान करना चाहिए।

छंद—मनहरण कवित्त एक वर्णवृत्त है (देखिए 'पिंगल-प्रकरण')।

अलंकार—रूपक (भव-पंथ, अनंद-रूप-सरित, पाप-तरु और बिघन-गढ़ में), उपमा (करन बिजना-से और कोकनद-से चरन में वृत्त्यनुप्रास और लाटानुप्रासादि।

विशेष—(१) मंगल तीन प्रकार के होते हैं नमस्कारात्मक, आशीर्वादात्मक और वस्तु-निर्देशात्मक। इसे नमस्कारात्मक मंगल कह सकते हैं। (२) इस पद्य में गणेशजी के चार अंगों का वर्णन है— कान, चरण, कपोल और मुख। (३) इसके दूसरे और चौथे चरणों में विरति-भंग-दोष है।

२. जयंति = देवी का एक नाम। आदि सकति = आदि शक्ति। कालि=

कालिका। कपर्दिनि = (कपर्द = शिव की जटा, कपर्दिन् = शिव, कपर्दिनी= शिव की पत्नी) भवानी। मधुकैटभ-छलनि = मधुकैटभ को छल से मारनेवाली [मधुकैटभ नामक राक्षसों का संहार तो विष्णु ने किया था, पर उनकी मति फेरनेवाली योगमाया (देवी) थीं। इसीसे 'छलनि' कहा है]। महिप-विमर्दिनि = महिपासुर का नाश करनेवाली (इस राक्षस को दुर्गा ने मारा था)। चमुंड = (चामुंडा) दुर्गा। चंड-मुंड = दो राक्षस, इन्हें दुर्गा ने मारा था (ये शुंभ-निशुंभ के सेनापति थे। इन्हीं के मारने के कारण देवी का नाम चंड-मुंडा या चामुंडा पड़ा है)। भंडासुर = एक राक्षस जिसका उल्लेख उपपुराणों में मिलता है। सुरक्त = सुंदर हो रक्त जिसका (यह दुर्गा का विशेषण है, दुर्गा का वर्ण 'स्वर्णगैरिक' है)। रक्तबीज = यह राक्षस भी शुंभ-निशुंभ का सेनापति था (रक्तबीज नाम इसलिये पड़ा कि इसके रक्त की जितनी बूँदें युद्धक्षेत्र में गिरती थीं उतने ही राक्षस उत्पन्न हो जाते थे। इसका रक्त पीकर देवी ने इसका संहार किया)। बिड़ाल = विड़ालाक्ष दैत्य, इसे भी दुर्गा ने मारा था। बिहंडिनि = (सं० विखंडन) खंड-खंड कर देनेवाली। निसुंभ-सुंभ = दो राक्षस जिन्हें दुर्गा ने मारा था(इसकी कथा 'अन्तःकथाओं' में देखिए)। भननि = वाणी। सरजा = (फा० सरजाह = उच्च पदवाला) यह उपाधि शिवाजी के पुरुषा मालोजी को मिली थी।

अलं०—अनुप्रास और परिकर (चमुंड)।

छंद—छप्पय रोला और उल्लाला के मिलने से बनता है (देखिए 'पिंगल-प्रकरण')।

विशेष—'जै' के व्यवहार से यह आशीर्वादात्मक मंगल है।

२. तरनि = (सं० तरणि) सूर्य। जलनिधि = (जल + निधि = खजाना) समुद्र। तरनि = (सं० तरणि) नौका। ओक = (सं०) स्थान घर। कोक = चकवा-चकवी। कोकनद = कमल। सोकहर = (शोकहर) शोक हरनेवाले। आलोक = प्रकाश।

अलं०—परंपरित रूपक और यमक।

छंद—दोहा अर्द्धसम मात्रिक वृत्त है (देखिए 'पिंगल-प्रकरण')।

विशेष—यह आशीर्वादात्मक मंगल है। (विघ्न-वारण के लिये

गणेश की, इष्ट देवी होने से भवानी की और राजवंश के कुलदेव होने से सूर्य की वंदना की गई है)।

४. राजत = शोभित है। दिनराज = सूर्य। अवतंस = शिर का आभूषण (श्रेष्ठ)। कंस-मथन = कंस को मारनेवाले (श्रीकृष्ण)। प्रभु-अंश = ईश्वरावतार।

अलं०—उदात्त (महानों की उपलक्षणता का)।

५. ता = उस। अवनीस = (अवनी = पृथ्वी + ईश = स्वामी) राजा। बिरद = कीर्ति-सूचक पदवी। सीसौदिया = वस्तुतः 'सिसोद' स्थान में बसने के कारण यह उपाधि हुई थी। ईस = महादेव। दियो ईस को सीस = महादेव पर सिर चढ़ा दिया।

अलं०—निरुक्ति।

६. नृपबृंद = राजा-गण। बख्त-बलंद = (फारसी—बख्त = भाग्य + बलंद = ऊँचा) भाग्यवान। भूमिपाल = राजा। माल-मकरंद = मालोजी।

७. दान-क्रिरवान मैं = दान देने और तलवार चलाने में। आनन = मुख। अंभु = (सं० अंभस्) पानी (कांति)। शाहि निजाम = निजाम शाह (गोलकुंडा का बादशाह)। दुग्ग। (सं० दुर्ग) किला। खंभु = (सं० स्तंभ) खंभा।

८. तातें = इसलिये। सरजा = १. सरजाह उपाधि, ; २. (अरबी शरजः) सिंह। सिंह-प्रमान = सिंह के समान। रन-भू-सिला = रण-भूमि में पत्थर के समान अटल। भौंसिला = शिवाजी के कुल का नाम। खुमान (सं० आयुष्मान्) दीर्घजीवी (मराठे 'खुमान' ही बोलते हैं); राजाओं के संबोधन की पदवी।

अलं०—निरुक्ति।

९. साह = शाहजी (शिवाजी के पिता का नाम)। संकित रहैं = डरते रहते हैं। साहि = राजा।

अलं०—यमक।

१०. एते = इतने। नंद = पुत्र। बिरंचि = ब्रह्मा। तिया = स्त्री। बिरंचि की तिया = सरस्वती। (अन्वय—बिरंचिहू की तिया न गनि

सकति)। साहिबी = प्रताप। छितिपाल = राजा। छिति = पृथ्वी। छिया लागैं = मलीन जान पड़ते हैं। हिंदुवान = हिंदू-समाज। दिया = दीपक (श्रेष्ठ)। जाहिर = प्रगट; प्रसिद्ध। जहान = (फा०) संसार। तकिया = (फा०) आश्रय।

अलं०—संबंधातिशयोक्ति।

११. भे = हुए, उत्पन्न हुए। गोपाल = श्रीकृष्ण। प्रगटे = उत्पन्न हुए। भुवाल = (सं० भूपाल) राजा।

१२. मुदित = प्रसन्न। द्विज-देव = ब्राह्मण और देवता। हट्यो = हट गया। अहमेव = अहंकार।

१३. भुसिल = भोंसले। अरि = शत्रु। उछाह = (सं० उत्साह) उमंग। छठी = जन्म से छठा दिन। छत्रपति = राजा (छत्र धारण करने-वाला)। अनायास = (अन् + आयास) बिना श्रम। नामकरन = नाम रखने का संस्कार। करन = दानी राजा कर्ण। प्रवाह = (दान देने की) प्रवृत्ति। बाल-लीला = लड़कपन के खेल। गढ़ = किला। कोट = किले की चहार-दीवारी। साहि के = शाहजी के पुत्र। चक्क = (सं० चक्र) दिशा। चाह = इच्छा। लरिकाई = लड़कपन। ज्वानी = युवावस्था। पातसाह = (फा० पादशाह) बादशाह।

अलं०—सार (उत्कर्ष का)।

१४. दुग्ग = (सं० दुर्ग) किला। दुग्ग-सँहार-बिलास = किलों का संहार करना जिसके लिये विलास (खेलवाड़) है (शिवाजी का विशेषण)। शिव-सेवक = सिवजी के दास। शिव = शिवाजी। रायगढ़ = शिवाजी की राजधानी इसी किले में थी।

अलं०—यमक।

१५. तनै = (तनय) पुत्र। सुरेस = इंद्र। साजै = सजाता है। जंपत है = कहता है। संपत = ऐश्वर्य। अलकापति = कुबेर। लाजै = लज्जित होता है। मधि = में। बारि = जल (यहाँ खाई जिसमें जल भरा रहता है)। साची = मकान की कुर्सी। मही = पृथ्वी। अमरावति = इंद्रपुरी। छाजै = छजती है (शोभित है)।

अलं०—संबंधातिशयोक्ति।

छंद—मालती सवैया एक वर्णवृत्त है (देखिए 'पिंगल-प्रकरण')।

१६. इमि = इस प्रकार। राजहीं = शोभित होते हैं। जच्छ = यक्ष (कुबेर के सेवक)। किन्नर = देवताओं की एक जाति (इनका मुख घोड़े का सा होता है, ये वाद्यविद्या में बड़े निपुण होते हैं)। सुर = देवता। असुर = राक्षस। गंधर्व = देवलोक के गवैया। हौंस = (अरबी हवस) प्रबल इच्छा। हौंसनि साजहीं = अभिलाषा करते हैं। उत्तंग = ऊँचे। मरकत = नीलम। मृदंग = ढोलक के ऐसा एक बाजा। घन-समै = (बादलों का समय) बरसात में। घुमरि करि = चारों ओर से चक्कर लगाते हुए एकत्र होकर। घन = घना। घन-पटल = बादलों का परदा (समूह)। गलगाजहीं= जोर से गरजते हैं (गड़गड़ाते हैं)।

छंद—हरिगीतिका एक मात्रिक छंद है (देखिए 'पिंगल' प्रकरण)।

अलं०—उत्प्रेक्षा।

१७. मुकता = (सं० मुक्ता) मोती। मनि-माल = मणि का समूह (यहाँ लाल मणि से तात्पर्य है)। नखत = (सं० नक्षत्र) तारे। अंबर = आकाश। ऊरध = (सं० उद्‌र्ध्व) ऊपर। समुदाय = समूह। गगन = आकाश। तंबू = चँदोवा। सपेत = सफेद। तनाय = (फा० तनाब) रस्सी।

जहँ तहाँ......तनाय हैं—जहाँ तहाँ हीरा की किरणों का घना समूह ऊपर की ओर (आकाश में) प्रतिबिंबित होता है, मानों आकाश तंबू रूप से तना हुआ है और हीरा की किरणें उसको बाँधने की रस्सियाँ हैं।

अलं०—उक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा।

१८. परसिकै = छूकर। पुहुपराग = पुखराज (रंग पीला)। प्रभु-पीतपट = विष्णु भगवान् का पीतांबर। सिंधु = समुद्र। मेघन की सभा = बादलों का समूह। जहँ परसिकै......मेघन की सभा—(शिवाजी के राजमहल में पुखराज जड़े हैं उनका प्रतिबिंब बादलों में पड़ता है) पुखराज मणि का प्रकाश स्पर्श कर बादलों का समूह समुद्र में (सोए हुए) विष्णु भगवान् के पीतांबर की शोभा को प्रत्यक्ष प्राप्त करता है (विष्णु भगवान् का शरीर श्याम है बादल भी काले हैं। पीतांबर पीला है और

पुखराज का प्रकाश भी पीला है)। नागरी = चतुर स्त्रियाँ। फटिक = (स्फटिक) बिल्लौर । विकसंत हैं = खिलते हैं । तरंग = लहर ।

अलं०—उपमा और उत्प्रेक्षा ।

१९. बदन-इंदु = मुखचंद्र । उदोत = प्रकाशित । नभ सरित = आकाश-गंगा । कुमुद = कुमुदिनी । मुकुलित = संकुचित । कुल = समूह । नभ-सरित......होत हैं—आकाश-गंगा में कुमुद खिलते हैं और कमल संकुचित हो जाते हैं (क्योंकि महल आकाशचुंबी हैं)। बावरी = बावड़ी । सर = तालाब । कूप = कुआँ। बद्धमनि सोपान = मणियों की बनी सीढ़ी । चक्र-वाक = चकवा-चकवी । बिहार करत = आनंद मनाते हैं । सनान = स्नान ।

अलं०—रूपक (बदन-इंदु) और संबंधातिशयोक्ति ।

२०. कितहूँ = कहीं । बिसाल = बड़े । प्रबाल = मूँगा । जाल = समूह । जटित = जड़ी हुई । अंगन = आँगन । द्रुम = पेड़ । लतनि = लताओं से । जहँ......झूमि हैं—सुंदर बागों में पेड़ लताओं से मिलकर झूमते और झिल-मिलाते हैं । चारु = सुंदर । लवली = हरफारयोरी । यलानि = एला, इला-यची । केरे = केले । लगि = तक । लेखिए = समझना चाहिए ।

२१. केतकी = केवड़े की जाति का पुष्प । कदली = केला । करबीर = कनैर । दाख = मुनक्का । दाड़िम = अनार । तूत = सहतूत । जंभीर = जंबीरी नीबू । कदंब = कदम का वृक्ष । कदंब = समूह । हिंताल = (हीन-ताल) छोटा ताड़ । ताल = ताड़ । पीयूष = अमृत । रसाल = आम । रसाल= (रसयुक्त) मीठे ।

अलं०—यमक ।

विशेष-छंद २० में 'केरे' कह चुकने पर २१ में 'कदली' कहना पुनरुक्ति है ।

२२. पुन्नाग = सुलतानी चंपा । नागकेसरि = एक प्रकार का पुष्प । बकुल = मौलसिरी । असोक = वृक्ष विशेष । अगर = एक सुगंधित लकड़ी का वृक्ष । पाटल = पाड़र का पेड़ (ताम्रपुष्पी)। पटल = समूह । थोक = समूह । नेवारी = पुष्प विशेष । सिंगारहार = हरश्रृंगार, पारिजात । लसैं = शोभित हैं । रंग-रंग = रंग-बिरंगे । बिहंग = पक्षी । रसैं=प्रफुल्लित होते हैं ।

२३. बिहंगम = पक्षी । लवनित = सुंदर । कीर = सुग्गा । कपोत = कबू-

तर। केलि = खेल। कलकल = सुंदर शब्द। मंजुल = सुंदर। महरि = ग्वालिन नाम की चिड़िया। मयूर = मोर। चटुल = गौरैया। चातक = पपीहा। मकरंद = पुष्परस। झंकार = गुंजार। भृंग = भौंरा। घन = घना। सुवास = सुगंध। राजदुग्ग = रायगढ़। कहँ = के लिये।

२४. तुरकान = मुसलमानों को। जहान = (फा०) संसार।

२५. जाचन = (सं० याचना) माँगने के लिये। ताहि = उससे। कहियतु = कहा जाता है।

२६. दुज = (सं० द्विज) ब्राह्मण। कनौज-कुल = कान्यकुब्ज। कस्यपी = कश्यप-गोत्री। रतनाकर = रत्नाकर (पिता का नाम)। सुत = पुत्र। तिविक्रमपुर = वर्तमान तिकवाँपुर (कानपुर में है)। तरनि-तनूजा = यमुना। तीर = किनारे।

२७. वीरवर = वीरबल। देव-बिहारीस्वर = बिहारीश्वर महादेव। बिस्वेस्वर-तद्रूप = श्रीविश्वनाथजी के समान।

२८. कुल-सुलंक = सुलंकी राजपूत। चितकूट-पति = चित्रकूट के राजा। हृदयराम-सुत-रुद्र = हृदयराम के पुत्र रुद्रशाह।

अलं०—रूपक (साहस-सील-समुद्र)।

२९. सिव-चरित्र = शिवाजी का चरित्र। भूषननि सों = अलंकारों से। भूषित = सुशोभित। कबित्त = कविता।

३०. सिव-भूषन = शिवराज-भूषण ग्रंथ।

अलं०—यमक।

३१. चाहि = देखकर। आदि दै = प्रारंभ में रखकर। सकल निबाहि = काव्य के नियमों का पालन करते हुए।

अलं०—यमक।

३२. दुहुन = दोनों (उपमेय और उपमान)। सोभा बनत समान = उपमेय और उपमान में साधर्म्य हो।

३३. बरनन = वर्णन। प्रमान = (प्रमाण) निश्चय। सरवरि = समता।

विशेष—उपमालंकार में चार अंग होते हैं—उपमेय, उपमान, धर्म और वाचक।

२४. कुरुख कीन्हों = क्रुद्ध किया। चकत्ता = चगताई खाँ का वंशज (औरंगजेब)। सुरेस = इंद्र। दुचित = संशययुक्त। व्रजराज = श्रीकृष्ण। कुमिस = बेढंगा बहाना। गैरमिसिल = (फा०) अनुचित स्थान। गराज = गर्जन। अरे तें = अड़ने से (आ पड़ने से)। गुसुलखाना = वह स्थान जहाँ बादशाह का खास दरबार लगता है। उमराय = (फा०) बड़े सरदार। मनाय = राजी करके। दावदार = दबंग। रिसानो = (सं० रोप) क्रुद्ध। दीह = (सं० दीर्घ) बड़ा। दलराय = (दल + राज) मंडली का मुखिया। गड़दार = मस्त हाथी के साथ माला लेकर चलनेवाला। अड़दार = ऐंडदार (मस्त)। गजराज = बड़ा हाथी (जब हाथी मतवाला हो जाता है तो भाले-बरदार उसे पुचकारकर सावधानी से ले चलते हैं)।

विवेचन—'सरजा सुरेस ज्यों' और 'जैसे गड़दार अड़दार गज-राज को' में दो उपमाएँ हैं।

२५. सासता खाँ = शाइस्ता खाँ दिल्ली का एक बड़ा सरदार था। औरंगजेब ने इसे शिवाजी को दबाने के लिये भेजा था। दुसासन = दुःशासन (दुर्योधन का छोटा भाई)। जसवंत = ये मारवाड़ के राजा थे और शाइस्ता खाँ के साथ गए थे। भाऊ = बूँदी के राजा छत्रसाल हाड़ा के पुत्र। करन्न = बीकानेर के महाराज रायसिंह के पुत्र। करन्न = कर्ण। और सबै... भास्यो—और सब सेनाएँ भारी सेनाओं के समान हैं। दल = सेना। भास्यो = भारी, बड़ा। बिगोय = (सं० विगोपन) भ्रम में डालकर। अलिफतैं = फते अली को देखो ('ऐतिहासिक नाम') पछास्यो = पछाड़ दिया (हराया)। पारथ = (सं० पार्थ) अर्जुन। कै = करके। पुरुषारथ = (सं० पुरुषार्थ)। भारत = महाभारत का युद्ध। जगाय = सावधान करके। जयद्रथ = दुर्योधन का बहनोई और सिंध देश का राजा।

२६. जहाँ उपमा के चारों अंग—उपमेय, उपमान, धर्म और वाचक—हों वहाँ पूर्णोपमा होती है। इनमें से कोई एक, दो या तीन नहीं रहते तो उसे लुप्तोपमा कहते हैं।

२७. पावक = अग्नि। तुल्य = समान। अमीतन = (सं० अमित्र) प्रति-पक्षी। धाम = घर। सुधा = अमृत। धाम सुधा को = (अमृत का घर)

चंद्रमा। भो = हुआ। समुदै = समुद के लिये। कुमुदावली = (कुमुद + अवली) कुँई का समूह। बहुधा को = (बहु + धा = प्रकार) अनेक प्रकार का। अन्वय—गहिरो समुदै, कुमुदावलि तारन को बहुधा को आनँद भो—सुधा का धाम (चंद्रमा) होने के कारण वह (शिवाजी) अपने मित्रों के लिये वैसे ही अनेक प्रकार का आनंद देनेवाला हुआ जैसे समुद्र, कुमुदों और तारों के लिये चंद्रमा। मुधा = असत्य। सत्रु मुधा को = असत्य का शत्रु (सत्य को माननेवाला)। बंदन = सिंदूर। सोंधो = सुगंधित। बधू = स्त्री। वसुधा = पृथ्वी। बदन······वसुधा को—स्त्री-सदृश पृथ्वी के शृङ्गार के लिये शिवाजी का तेज सिंदूर, और यश चंदन एवं सुगंधित पदार्थों के समान हुआ।

विवे०—प्रथम चरण में दो लुप्तोपमाएँ हैं। द्वितीय चरण में वाचकलुप्ता मान सकते हैं। तृतीय चरण में 'शत्रु मुधा को' में धर्म-वाचकलुप्तोपमा मान सकते हैं, पर यह रूपक हो गया है। चौथे चरण में धर्म-वाचकलुप्तोमाएँ हैं।

३८. बिलखाने = दुःखित हुए। छरीदार = छड़ी-बरदार (द्वारपाल)। जापता करनहारे = राज-दरबार का कायदा बतानेवाले (जो लोग नये व्यक्ति को यह बतलाते हैं कि इस दरबार में कैसे उठना, बैठना एवं व्यवहारादि करना होगा)। नेक = थोड़ा। मनके = हिले-डुले। ठाढ़े = खड़े। बाजे = कोई। तुजुक = (अ०) प्रबंध। भौंसिला······करन के—कोई प्रबंध करनेवाले सरदार शिवाजी के सामने आकर खड़े हो गए। रह्यो जकि = चकपका गया। चाहि = देखकर। ब्योंत = अवसर। अनबन = खटपट। ग्रीषम = गर्मी का मौसिम। भानु = सूर्य। तारे = तारागण। तारे = आँख की पुतलियाँ।

विवे०—'ग्रीषम के भानु सो खुमान को प्रताप' में धर्मलुप्तोपमा है पर 'तारे सम तारे गए मूँदि तुरकन के' में पूर्णोपमा ही है, 'मूँद जाना' धर्म है।

३९. जहाँ उपमेय का उपमान स्वयं उपमेय ही होता है, वहाँ अनन्वयालंकार होता है। (अन + अन्वय = संबंध)। इसमें उपमेय का दूसरे (उपमान) से संबंध कथन नहीं होता इसीसे इसे अनन्वय कहते हैं।

४०. प्रतिच्छन = (सं० प्रतिक्षण) सदा। दुंदुभि = नगाड़ा। भिच्छुक-भीर = भिखारियों की भीड़। भोज = उज्जयिनी के प्रसिद्ध दानी महाराज

भोज । मौजनि = (मौज का बहुवचन) सुख । राजन को गन = राजाओं का समूह । राजन ! = हे राजन् । इती = इतनी । गरीबनेवाज = दीनदयालु । मही = पृथ्वी ।

विवे०—यहाँ 'तो सो तुही' में उपमेय का उपमान उपमेय ही कहा गया है। इस अलंकार में स्वयं उपमेय ही अपना उपमान इसीलिये कहा जाता है कि उसके योग्य उपमान का अभाव होता है।

४१. 'प्रतीप' शब्द का अर्थ 'उल्टा' है और इस अलंकार में उपमान का तिरस्कार करके प्रतीपता दिखाई जाती है। प्रथम प्रतीप का लक्षण है—जहाँ उपमेय तो उपमान हो जाय और उपमान उपमेय। प्रेय = प्रेमी।

४२. छाय रही = फैल रही है। जितही तितही = जहाँ तहाँ। छीरधि = क्षीर-सागर। रंग = वर्ण। छीरधि-रंग = उज्ज्वल। करारी = चोखी। सुद्ध सुधान के = चूने से पुते हुए। सौधनि = मकानों को। सोधति = साफ करती है। ओप = चमक। ओप करना = चमक चढ़ाना। उज्यारी = उज्ज्वलता। तम = अंधकार। तोम = समूह। चाबिकै = दबाकर (दूर करके)। चारु = सुंदर। पसारी = फैलाई।

विवे०—चाँदनी का वर्णन है। संसार में चाँदनी क्षीर-सागर के रंग फैल रही है तथा चूने से पुते मकानों को और अधिक उज्ज्वल कर रही है। जैसे शिवाजी ने अफजल को मारकर कीर्ति की। कीर्ति उज्ज्वल मानी गई है; यहाँ कीर्ति-उपमेय उपमान बना दिया गया है।

४३. वर्न्य—जिसका वर्णन हो (उपमेय)। जहाँ अपने सदृश गुण को दूसरे में सहन न कर सकनेवाले वर्ण्य (उपमेय) का उपमान द्वारा तिरस्कार कराया जाय; यह दूसरा प्रतीप है।

४४. पानिप = १. पानी, २. कांति। हरमूल = मूल (जड़) से हर लेता है, भली भाँति सोख लेता है। गरब = अभिमान। केहि हेतु = किस कारण। वड़वानल = समुद्र में रहनेवाली आग। तो = तव; तुम्हारे। तूल = (सं० तुल्य) समान। 'गरब करत केहि हेत है' का अन्वय पूर्वार्द्ध से है।

विवे०—यहाँ शिवाजी का प्रताप वर्ण्य है। पर 'गरब करत केहि हेत है'

से उसका अनादर किया गया है (इस प्रकार के कथनों का तात्पर्य भी उपमान का अनादर ही होता है)।

४५. घटत = कम होता है। अबर्न्य = उपमान। बर्न्य के जोर = उपमेय की प्रबलता से। बखानहीं = कहते हैं। कबि-कुल सिरमौर = श्रेष्ठ कविगण। जहाँ (अपने में अच्छे गुण मानकर दूसरे में अपनी समता सहन न कर सकनेवाले) उपमान का उपमेय से अनादर कराया जाय वहाँ तृतीय प्रतीप होता है।

४६. कत = क्यों। हीरक = हीरा। छीर = (सं० क्षीर) दूध। इती = इतनी। समाज-गत = समाज-भर में।

विवे०—यहाँ कीर्ति उपमेय का उपमान चाँदनी है। चाँदनी अपनी श्वेतता पर गर्व कर रही है; पर शिवाजी की कीर्ति (उपमेय) की उज्ज्वलता का उसी प्रकार समाज में फैलना दिखाकर उसका अपमान कराया गया है।

४७. जहाँ वर्ण्य (उपमेय) को पाकर और (अर्थात् उपमा) का आदर न किया जाय। चौथे प्रतीप में उपमेय को उपमान से दी जानेवाली उपमा ही असिद्ध ठहराई जाती है। बरन = (वर्ण्य) उपमेय।

४८. नाग = सर्प। मद = गज-मद, एक द्रव पदार्थ जो मस्त हाथियों की कनपटी से बहता है। इंद्रनाग = इंद्र का हाथी (ऐरावत) अबस = (अ०) व्यर्थ। कहै उपमा अबस को ? = व्यर्थ उपमा कौन कहे। प्रभात = भोर। वहरात = उड़ जाता है। मेघ-सरद = शरद ऋतु का बादल। उड़ात = उड़ जाता है। बात लागे = वायु लगने से। संभु = शिव। नीलग्रीव = काली गर्दनवाले; (विषपान से महादेव के कंठ में कालापन आ गया है इसीसे इनका नाम नीलकंठ है)। भौंर = भ्रमर। पुंडरीक = श्वेत कमल। सन = से। सरस को = बढ़कर कौन है। पंक = कीचड़। कलानिधि = चंद्रमा (षोडश कला युक्त)। कलंक = कालिमा। यातें = इससे। टंक = एक तौल जो चार माशे की होती है। एक टंक न लहैं = कुछ भी नहीं पाते। तव जस को रूप एक टंक न लहैं = आपके यश की ये कुछ भी उपमा नहीं पा सकते।

विवे०—यश का रंग उज्ज्वल माना गया है। अतः उज्ज्वल वर्णवाले चंदन, ऐरावत, शेष, प्रभात, कपूर, शरद मेघ, शिव, पुंडरीक, क्षीर-सागर और चंद्रमा उपमान कहे गए हैं। इनमें एक न एक त्रुटि निकाली गई है

और 'कहै उपमा अवस को' और 'यातें' रूप (उपमा) एक टंक ए लहैं न तव जस को' द्वारा उपमा असिद्ध ठहराई गई है।

४९. हीन = क्षीण, घटकर। सुजान = (सं० सज्ञान)। उपमेय से घटकर होने के कारण जहाँ उपमान नष्ट हो जाय वहाँ पंचम प्रतीप होता है। भूषण का यह लक्षण ठीक नहीं है। इसका लक्षण यों होता है—'उपमानस्य कैमर्थ्यमपि मन्वते' अर्थात् 'जब उपमेय उपमान का भी कार्य कर सकने में समर्थ हो, तब उपमान की क्या आवश्यकता है?' भूषण ने इसके तीन उदाहरण दिए हैं। पहला उनके लक्षण से मिलता है पर वास्तविक लक्षण से अशुद्ध है। शेष दो वास्तविक लक्षण से शुद्ध हैं, पर उनके लक्षण से पूरे-पूरे नहीं मिलते।

५०. तो = (तव) तुम्हारा। हो = था। सेस = शेषनाग। सो = वह। ऐरावत = इंद्र का हाथी। दुरे = छिपे। मानसर = मानसरोवर। ताहि मैं = उसीमें (मानसरोवर में)। कैलासधर = (कैलास धारण करता है जिसको) शिव। सुधा-सरबर = अमृत का सरोवर। सोऊ = वह भी। दुनियै = दुनिया को। सूर = युद्धवीर। सिरताज = शिरोमणि। रावरे = आपके। काहि = किसे। गुनिए = गुना जाय (विचारा जाय)। लौं = तक। गनौ = गिनता हूँ। भटकि हार्‌यौं = भटकते भटकते थक गया। लखिए = देखा जाता है। केती = कितनी ही (बहुत सी)। चुनिए = चुनी जाती हैं। यहाँ यश के शेष, ऐरावत, हंस, शिव और सुधा-सरोवर उपमान कहे गए हैं।

विवे०—शेष आदि उपमान शिवाजी के यश से हीन होने के कारण पातालादि में छिपकर नष्ट हो गए हैं। भूषण के लक्षण से यह ठीक घटता है।

५१. कुंद = एक सफेद फूल। कहा = क्या। पय-बृंद = दूध का समूह (क्षीर-सागर)। भानु = सूर्य। कृसानु = अग्नि। कहाऽब (कहा + अब) अब क्या हैं। महीतल = पृथ्वीतल पर। पागे = (सं० पाक) पग जाने पर, लिपट जाने पर (फैलने पर)। द्विजराम = परशुराम। रन मैं अनुरागे = शिवाजी के युद्ध करने में लगने पर। बाज = पक्षियों का शिकार करनेवाली एक चिड़िया। मृगराज = (मृग = पशु + राज) सिंह। इसमें यश, प्रताप, रण-वीरता और साहस का वर्णन है।

विवे०—इस उदाहरण में 'शिवाजी के यश के सामने कुंदादि क्या हैं' कहकर उपमानों का 'कैमर्थ्य' (व्यर्थत्व) दिखाया गया है।

५२. यों = इस प्रकार। अडोल = अचल (स्थिर) सिव = (शिव) महादेव। जोऽब = जो + अब। धुव = (सं० ध्रुव) स्थिर। ध्रू = (सं० ध्रुव) ध्रुव तारा। कामना = अभिलाषा। कामना-दानि = मनोवांछित कामना देनेवाला (पूर्ण करनेवाला)। लखे = देखने पर। कुछ न = कुछ नहीं है। सुर-रूख = कल्पद्रुम। देव-गऊ = कामधेनु। भूपन = भूषण कवि। भूषन में = (भू-खंड में) पृथ्वी-मंडल में। कुल-भूषण = वंश में श्रेष्ठ। धरे = धारण किए हुए। भू = पृथ्वी। भूषण ···भू है—भूषण कहता है कि भू-मंडल में कुलश्रेष्ठ महाराज शिवाजी भोंसले समस्त पृथ्वी को धारण किए हुए हैं। मेरु = सुमेरु पर्वत। दिगदंति = दिग्गज। कुंडलि = (सर्प) शेषनाग। कोल = (शूकर) वराह। कछू न कछू = कच्छप कुछ नहीं है।

विवे०—यहाँ भी 'कहा' और 'कछू न' शब्दों से उपमानों की व्यर्थता दिखाई गई है। भूषण के इन दो उदाहरणों में 'कैमर्थ्य' होते हुए भी सोलहो आने स्पष्टता नहीं है।

५३. उपमेय एवं उपमान जहाँ परस्पर एक दूसरे के उपमान एवं उपमेय कहे जायँ, वहाँ उपमेयोपमालंकार होता है। जान = जानो।

५४. समत्थ = (सं० समर्थ) सामर्थ्यवान्। दिनकर = (सं०) सूर्य। सो है = समान है। सोहै = शोभित होता है। निकर = समूह। सो = समान भुवाल = (सं० भूपाल) राजा। हिमकर = चंद्रमा। अकर = (सं० आकर) खानि। हियो = हृदय। रतनाकर सो = (रत्न + आकर) समुद्र सा (गंभीर) सुखकर = सुखदाई। सुरतरु = कल्पद्रुम।

विवे०—यहाँ तेज की उपमा दिनकर (सूर्य) से और दिनकर की उपमा तेज से दी गई है। इसी प्रकार औरों को भी समझ लेना चाहिए।

५५. जहाँ एक उपमेय के कई उपमान कहे जाते हैं वहाँ मालोपमालंकार होता है। मालोपमा = (माला + उपमा) उपमा की माला।

५६. जंभ = महिषासुर का पिता (इसको इंद्र ने मारा था)। सुभंभ =

(सु + अंभस्) जल । संदभ = दंभी । रघुकुल-राज = श्रीरामचंद्र । पौन = (पवन) हवा । बारिबाह = (वारि = जल + वाह = वहन करनेवाला, ढोनेवाला) बादल । रतिनाह = (रतिनाथ) कामदेव । सहसबाह = सहस्रबाहु राम-द्विजराज = परशुराम । दावा = दावाग्नि । द्रुम-दंड = पेड़ की लकड़ी । बितुंड= हाथी । मृगराज = सिंह । तेज = (सूर्य का) प्रकाश । तम अंस = अंधकार का समूह । कान्ह = श्रीकृष्ण । मलेच्छ = मुसलमान ।

विवे०—यहाँ 'म्लेच्छ वंश पर शिवाजी शेर हैं' के लिये 'इंद्र जिमि जंभ पर' आदि बहुत सी उपमाएँ दी गई हैं । मालोपमा के दो भेद होते हैं—अभिन्नधर्मा और भिन्नधर्मा । यह अभिन्नधर्मा का उदाहरण है । भिन्नधर्मा भूषण ने नहीं लिखी ।

५७–५८. जहाँ उपमेय और उपमान दोनों की समता के लिये 'लीलादिक पद' आते हैं, वहाँ ललितोपमा होती है । लीलादिक पद—बहस (विवाद) करना, निरादर करना, हँसना, शोभा को अनुहरना तथा शत्रु, मित्र होना आदि ।

५९. जा = जिसके । मधि = (सं० मध्य) में । मेरुवारी = सुमेरु पर्वतवाली (सुर-सभा का विशेषण) । सुरसभा = देवताओं की सभा । निदरति है = निरादर करती है । सिखर = (शिखर) चोटी । केते धौं = न जाने कितने । नद = बड़ी नदी । रेला = जोरों का बहाव । रेल उतरति है = (नदी-नद) जोरों से बह चलते हैं । जोन्ह = (सं० ज्योत्स्ना) चाँदनी । जोन्ह……मनिमंदिर—महलों में लगे हुए हीरा और मणियों की ज्योति चाँदनी पर हँसती है (उससे बढ़कर है) । कंदरा = गुफा । कुहू की छबि = अमावास्या की अँधियाली । उछरति है = उछलकर भाग जाती है (कंदराओं से अँधेरा दूर हो जाता है) । दुरग = (दुर्ग) किला । नखतावलि = (सं० नक्षत्रावलि) तारों का समूह । बहस = विवाद । नखतावलि……करति है—किले की उँचाई के कारण महलों पर जलाए जानेवाले दीपक तारों से प्रकाशाधिक्य के बारे में झगड़ते हैं कि हम तुमसे अधिक प्रकाशित हैं ।

विवे०—यहाँ 'निदरति है', 'हँसति' और 'बहस करति है' से ललितोपमा है ।

विशेष—ललितोपमा में प्रसिद्ध वाचक शब्दों द्वारा उपमा न कहकर अन्य

प्रकार के शब्दों से उसका लक्ष्य कराया जाता है; इसीसे इसे 'लक्ष्योपमा' भी कहते हैं।

६०. जहाँ उपमेय और उपमान दोनों का भेद वर्णन न किया जाय वह रूपकालंकार होता है। 'रूपक' का अर्थ है रूप करने (बनाने) वाला। इस अलंकार में उपमेय उपमान का रूप बनाता है।

६१. कलियुग = (पाप का युग) चौथा युग। जलधि = समुद्र। उद्ध = (सं० ऊर्ध्व) ऊपर। अधरम्म = अधर्म। उम्मिमय = लहरयुक्त। लच्छनि लच्छ = लाखों। कच्छ = (सं० कच्छप) कछुआ। मच्छ = सं० मत्स्य) बड़ी मछली। चय = समूह। जाको मिलि = जिससे मिलकर। नीरस = (निः + रस) रसहीन। होत जाको मिलि नीरस = जिसके मिलने से नीरस (स्वाद हीन) हो जाता है। किन्निय = किया। सुअप्प बस = (सु० + आप = जल) सुंदर जल के वश में (सारे संसार में कलयुग-जलधि का जल फैल गया है)। गाहक = ग्राहक। पुन्य-गाहक = पुन्य रूप माल खरीदनेवाले (पुण्यात्मा)। बनिक = व्यापारी। निबाहक = (सं० निर्वाह) निर्वाह करनेवाला (कर्णधार)। सुव = (सं० सूनु) पुत्र। बर = श्रेष्ठ। बादबान = (फा०) पाल। किरवान = (सं० कृपाण) तलवार। तुव = तुम्हारा।

विवे०—यहाँ कलियुग उपमेय और समुद्र उपमान कहा गया है। यह सावयव रूपक है इसके अवयव समझ लेने चाहिएँ। अधर्म—उर्मि (लहर)। मलेच्छ—कच्छ, मच्छ, मगर। राजा—नदी-नद। हिंदुवान—पुण्य-ग्राहक व्यापारी। साहि-सुत (शिवाजी)—निबाहक (मल्लाह)। कृपाण—पाल। यश—जहाज।

६२. साहि-नमन = शाहों को नमित करने में समर्थ। नवरंग साहि = बादशाह औरंगजेब। सिरु = मस्तक। अब्बास साहि = फारस का बादशाह। बहु-बल = बहुत-सी सेना। बिलास = विलास की सामग्रियाँ। थिरु = स्थिर। एदिलसाहि = आदिलशाह (बीजापुर का बादशाह)। कुतुब्ब = कुतुबशाह (गोलकुंडा का बादशाह)। जुग-भुज = दोनों भुजाएँ। पाय = पैर। उमराय = बड़े सरदार। काय = शरीर। तुरकानि = तुर्क लोग। आनि = अन्य। गनि = गनो (समझो)। जालिम = अत्याचारी। जग दंडि-

यव = संसार को दंडित किया। सिव = महादेव। खग = (सं० खड्ग) तलवार। खल = दुष्ट। खंडियव = टुकड़े कर डाला।

विवे०—यहाँ भी सावयव रूपक है। इसमें कलियुग का खल से रूपक बाँधा गया है। इसके अवयव इस प्रकार हैं—औरंगजेब—सिर। अब्बास-शाह—हृदय। पैर—म्लेच्छ उमराव। अन्य मुसलमान—शेष अंग। शिवाजी—महादेव। तलवार—साहस।

६३. सिंह-थरि=(सिंह-स्थली) सिंह की माँद। जावली = यहीं अफ़-जल खाँ मारा गया था। भठी = चुर। एद्दिल = आदिलशाह (बीजापुर का बादशाह)। पठाना = भेजना। भटक्यो = धोखा खाया। सिंह थरि······ भटक्यो—सिंह की माँद का हाल न जानते हुए जावली रूपी जंगली चुर में हठी आदिलशाह ने हाथी को भेजकर धोखा खाया (शिवाजी के पराक्रम को न जानकर अफजल खाँ को उसके पास भेजा)। भभरि भगाने = घबड़ा कर भागे। काहुवै = किसी ने भी। न हटक्यो = मना नहीं किया। साहि के = शाहजी के सुपुत्र। गाजी = धर्मयुद्ध में लड़नेवाला योधा। मदगल = मद बहते हुए। अफजलै = अफजल खाँ को। ता बिगिरि = उसके बिना। निकाम = निकम्मा। आकुत = याकूत खाँ (देखो 'ऐतिहासिक नाम')। महा-उत = हाथीवान्। आँकुस = अंकुश और अंकुश खाँ। सटक्यो = चुपके से निकल भागा। ता बिगिरि······सटक्यो—उस (अफजल खाँ) से, हीन होकर याकूत खाँ रूपी महावत अपना आँकुस (अंकुश खाँ को) लेकर भाग गया (अफजल के मरते ही वह अपनी दुम दबाकर भागा)।

६४. रूपक में उपमेय को उपमान से घटकर वा बढ़कर वर्णन करने से न्यून और अधिक नामक दो भेद और होते हैं।

६५. बिगिरि कलंक = कालिमाहीन। उर आनियतु है = हृदय में विचारा जाता है। पंचानन = पाँच मुखवाले (शिव)। बदन = मुख। गजानन = (हाथी के से मुखवाले) गणेश। बखानियतु है = कहा जाता है। सहस-सीस = (हजार सिरवाले) शेषनाग। कला = कार्य। सहसदग = हजार आँखोंवाला (इंद्र)। सहसकर = सहस्र किरणोंवाला (सूर्य)। सहसबाहु = सहस्रबाहु।

विवे०—इस छंद में 'बिगिरि कलंक चंद' में तो 'अधिक रूपक' है, किंतु शेष में 'न्यून रूपक' है।

६६. जेते = जितने। पहार = पर्वत। भुव = पृथ्वी। पारावार = समुद्र। गहे सुख फैल हैं = अत्यंत सुख पाया है। हौंसनि = प्रबल इच्छा। ऐल = जोरों का प्रवाह। चढ़ी उर हौंसनि की ऐल है = हृदय में प्रबल इच्छा का भारी संचार होने लगा है। बिपच्छ = (सं० विपक्ष) बिना पंख का। डर आनिकै = डरकर। कितेक = कितने ही, बहुत से। गैल = गली, मार्ग। किरवान······गैल है—शिवाजी पृथ्वी के इंद्र हैं इसलिए वे अपने कृपाण-वज्र से हमारे पंख काट लेंगे यह विचारकर इंद्र के भय से समुद्र में छिपे हुए पर्वत शिवाजी की शरण में आ गए। मघवा = इंद्र। मही = पृथ्वी। कोट करि = किले बनवाकर। सकल = सब। सपच्छ = पक्षयुक्त। सैल = (सं० शैल) पहाड़। मघवा मही मैं······सैल है—पृथ्वी के इंद्र प्रतापी महाराज शिवाजी ने उन पर्वतों पर किले बनवाकर (मानो शरणागत आने के कारण ही) उन्हें पुनः सपक्ष कर दिया है।

विवे०—इंद्र ने तो पर्वतों के पक्ष काटे थे पर पृथ्वी के इंद्र शिवाजी ने उन्हें पंखयुक्त कर दिया, यही अधिकता है। यहाँ अधिक रूपक है। रूपक के दो भेद माने गए हैं—अभेद और ताद्रूप्य। पर भूषण ने केवल अभेद ही कहा है।

६७. और=अन्य (उपमान)। स्वै=स्वयं। जहाँ उपमान उपमेय के रूप होकर स्वयं कार्य करता है वहाँ परिणामालंकार होता है।

६८. भुजंगम = सर्प। सों = से। भरु = भार। अन्वय—भुज-भारी-भुजंगम सों भुव को भरु लीनो। तीखन = (सं० तीक्ष्ण) प्रबल। तरन्नि = (सं० तरणि) सूर्य। पानिप = पानी और कांति। दौ = (सं० दव) दावाग्नि। करि = हाथी। बारिद = बादल। दलि = नष्ट करके। दारिद-दौ······कीनो—दरिद्रता रूपी दावाग्नि को हाथी रूपी बादलों से शांत करके पृथ्वीतल को शीतल किया (हाथी का दान देकर लोगों की दरिद्रता दूर की)।

विवे०—यहाँ 'भारी भुजंगम' उपमान पृथ्वी का भार उठाने में समर्थ नहीं था पर भुज उपमेय के द्वारा उसमें यह सामर्थ्य आ गई है। भूषण का यह उदाहरण ठीक नहीं है। कुछ लोग 'भारी भुजंगम' का अर्थ 'शेषनाग'

लेते हैं। वैसी दशा में पहले चरण में भी परिणाम न रह जायगा। दूसरे और तीसरे चरणों में दो रूपक साथ में हो जाने से परिणाम न रहकर रूपक हो गया है। चौथे चरण में परिणाम मान तो सकते हैं पर उसमें विरोध का आभास हो जाने से परिणाम की प्रधानता नहीं रहती।

६९. बिजैपुर = बीजापुर। उजीर = (वजीर) मंत्री। निसिचर = (रात में चलनेवाले) निशाचर। घूघू =(सं० घूक) उल्लू। दुराए हैं = छिप गए हैं। जहान = संसार। मंद = मलिन। रुचि = कांति। द्विज-चक्र—(१) ब्राह्मणों का समूह, (२) चक्रवाक पक्षी। कुमुदिनी = कुईं। नलिनी = कमलिनी। विविध विधान सों = अनेक प्रकार से। चारु = (सं०) सुंदर। सिव = महादेव। सिव = शिवाजी। तापी = प्रतप्त कर दी। भासमान=सूर्य।

विवे०—यहाँ शिवाजी की तलवार को सूर्य बनाकर अन्य रूपक बाँधे गए हैं। यह उदाहरण ठीक नहीं है। यह तो सावयक रूपक हो गया है।

७०. बहुत से व्यक्ति अथवा एक ही व्यक्ति जहाँ एक वस्तु का बहुत प्रकार से वर्णन करें वहाँ उल्लेखालंकार होता है। उलेखि = उल्लेख किया जाता है।

७१. एक = कोई। कलपद्रुम = कल्पवृक्ष। पूरत है = पूर्ण करता है। चित-चाहै = मनोभिलाष। मनोज = कामदेव। यों = ऐसी। तन = शरीर। महि = पृथ्वी। इंदु = चंद्रमा। महि-इंदु = पृथ्वी का चंद्र। नरसिंह = पुरुषों में सिंह (सम) पराक्रमी। संगर = युद्ध-क्षेत्र। एक कहैं नरसिंह सिवा है = कोई कहता है कि शिवाजी नृसिंह (का अवतार) हैं।

विवे०—यहाँ बहुत से व्यक्ति शिवाजी (एक ही पदार्थ) का अनेक प्रकार से वर्णन करते हैं। यह प्रथम प्रकार है।

७२. करन = प्रसिद्ध दानी राजा कर्ण। करनजीत = कर्ण को जीतनेवाला (अर्जुन)। कमनैत = धनुर्धर। अरि = शत्रु। उर = हृदय। छेव = (सं० छिद्र) छेद, घाव। धरेस = (धरा+ईश) राजा। धराधर सेस = पृथ्वी को धारण करनेवाले शेषनाग। और धराधरन को = अन्य राजाओं का। अहमेव = (सं०) अहं भाव। मेट्यो अहमेव = अहंकार दूर कर दिया। भेव = (भेद) रहस्य। कहरी = (फा०) आफ़त ढहानेवाला। यदिल = आदिलशाह। मौजलहरी = आनंद की लहर लेनेवाला (आनंदी जीव)।

बहरी = (अ०) बाज के ढंग की एक शिकारी चिड़िया। जितैया = विजयी। कहरी यदिल······देव है—आपको आदिलशाह कहरी (आफत ढहानेवाला), कुतुबशाह मौज-लहरी (आनंदी जीव), निजाम के लोग बहरी और विजयी देवता मानते हैं।

७३. पैज = (सं० प्रतिज्ञा) प्रण। प्रतिपाल = पालन करनेवाला। भार = बोझ। हमाल = (अ० हम्माल) धारण करनेवाला। चहूँ चक्क = चारों दिशाएँ। सम्हाल = सम्हालनेवाला। दंडत भयो = दंडित किया। जहान = संसार। साल = (सं० शल्य) हृदय में गड़नेवाला। उज्जारि = जावली देश। जवाल = दुःखदायक। कर = हाथ। हार = माला (मुंड-माला)। बिधान = रीति। हार के बिधान को = मुंड-माल की विधि पूरी करने के लिये। कर को······बिधान को—(शिवाजी की तलवार) हाथों के लिये कृपालु हुई, क्योंकि उसने रण में ऐसे-ऐसे वीर शत्रुओं का संहार किया जिन्हें शिवजी अपनी मुंड-माल में स्थान देते हैं। इस प्रकार मुंड-माल की विधि पूरी करके उसने हाथों को बड़ाई दी (लोग कहने लगे कि शिवाजी के हाथों में ऐसा पराक्रम है)। वीर-रस-ख्याल = वीररस का ध्यान करनेवाला (भारी वीर)। हाथ को बिसाल भयो = हाथ के लिए (कृपाण) बड़प्पन (का कारण) हुआ। बखान को = कौन वर्णन करे। करवाल = तलवार। ढाल = (यहाँ) रक्षक। हिंदु को दिवाल भयो = हिंदुओं की मर्यादा बचानेवाला हुआ।

विवे०—यहाँ भूषण कवि एक ही व्यक्ति, शिवाजी एक ही व्यक्ति का बहुत प्रकार से वर्णन कर रहा है अतः उल्लेख का द्वितीय प्रकार है।

७४. जहाँ समान शोभा देखकर दूसरे (पूर्व देखे हुए पदार्थ) की सुध आ जाती है वहाँ स्मृति (स्मरण) अलंकार होता है।

७५. ब्रजराज = श्रीकृष्ण। जगत-काज = संसार के लिये। पोषत भरत हौ=भरण-पोषण करते हो। यातें = इससे। ढीले क्यों परत हौ = उदास क्यों होते हो। वहि कुल मैं = उस वंश (ब्राह्मण-कुल) में। गुनाह = (फा०) अपराध। नाहक=(फा०) व्यर्थ। और = दूसरे।

बाँभन = ब्राह्मण। सुदामा = श्रीकृष्ण के सहपाठी। भृगु मुनि = इन्होंने विष्णु भगवान् के वक्षस्थल पर लात मारी थी।

विवे०—और ब्राह्मणों को देखकर सुदामा का और 'भूषण' को देखकर भृगु का स्मरण हो आता है; यही 'स्मृति' है, क्योंकि शिवाजी विष्णु के अवतार हैं।

७६. जहाँ एक वस्तु (उपमेय) में दूसरी वस्तु (उपमान) का भ्रम हो जाय वहाँ भ्रमालंकार होता है। आन = (अन्य) दूसरी। तासों = उसे।

७७. पीय = (सं० प्रिय) पति। तीय = (सं० स्त्री) रानियाँ। बहादुर सों = बहादुरशाह से। सोपै = सोख होकर, तीखी पड़कर। तीय बहादुर सों कहै सोपै = रानियाँ बहादुरशाह से कड़ी होकर कहती हैं। रोषै = रोष से, क्रोध से। बंदि कियो = कैद कर लिया। सहस्तखहूँ = शाइस्ता खाँ को भी। जसवंत से......दोपै—यशवंतसिंह, भाऊसिंह तथा कर्णसिंह ऐसे वीर राजाओं को भी दूषित (कलंकित) करता है। जब उन्हें हरा देता है तो आप किस खेत की मूली हैं? गो अमीर न बाचि = अमीर बचकर नहीं जा सके। गुनीजन = मर्म को जाननेवाले। घोषै = घोषणा करते हैं (जोर देकर कहते हैं)।

विवे०—भूषण ने संभवतः शिवाजी के वीरों को सिंह कहलवा कर स्त्रियों को 'सिंह का भ्रम' होने से भ्रमालंकार माना है। पर उन्हें वस्तुतः भ्रम है नहीं, वे उन वीरों को केवल 'सिंह' कह रही हैं। इसलिये उदाहरण अशुद्ध है।

७८. "यह है या वह है" इस प्रकार जहाँ संदेह हो, वहाँ संदेहालंकार होता है। कै = अथवा।

७९. त्योर ठाने = त्यौरी चढ़ाई (भ्रूभंग किया)। जानो = मानो। अवरंग = औरंगजेब। प्रानन को लेवा = प्राणों का लेनेवाला। रस खोट भए तें = रस के खोटा हो जाने से, मजा किरकिरा हो जाने से (क्योंकि औरंगजेब ने जो प्रतिज्ञाएँ करके उसे बुलाया उन्हें पूरा न कर सका, शिवाजी को कैद कर लिया)। अगोट = (सं० अग्र+ओट) आड़। अगोट आगरा = पहरेदारों से घिरा हुआ आगरा। चौकी = पहरेदारों का थाना। डाँकि = पार करके (इनकी आँखों से बचकर)। हद = सीमा।

रेवा = नर्मदा नदी। कीन्हीं हद्द रेवा है = नर्मदा नदी को सीमा बनाया। (वहाँ तक राज्य विस्तृत किया)। चक्क = (सं० चक्र) दिशा। चाहि = इच्छा करके। चहूँ चक्क चाहि = चारों दिशाओं के जीतने की इच्छा करके। छेवा = छेद। सेवा = शिवाजी।

विवे०—यहाँ यह संदेह है कि वह गंधर्व है, देवता है, सिद्ध पुरुष है या शिवाजी है। भ्रम और संदेह में भेद यह है कि भ्रम में तो निश्चयात्मक भ्रम हो जाता है, पर संदेह में निश्चय नहीं होता।

८०. आरोपिए = स्थापन किया जाय। दुराय = छिपाकर।

जहाँ सत्य वस्तु को छिपाकर दूसरी वस्तु का आरोप किया जाता है वहाँ शुद्धापह्नुति होती है। अपह्नुति शब्द का अर्थ है 'छिपाना', अतः इसमें एक वस्तु का गोपन करके दूसरी का स्थापन किया जाता है। इसके छः भेद होते हैं। पाँच का वाचक 'न' और छठे भेद कैतवापह्नुति के वाचक मिस, व्याज एवं कैतवादि हैं।

८१. चपला = बिजली। फेरत = घुमाते हैं (चलाते हैं)। फिरंगैं = विलायती तलवार। भट = योधा। चाप = इंद्रधनुष। वैरष-समाज = झंडों का समूह। धुरवा = (सं० धुर + वाह) बादल। धूरि = सेना के चलने से उड़ी हुई धूल। पटल = समूह। गाजिबो = बादलों का गरजना। दुंदुभि = धौंसा। दराज = (फा०) भारी। डरन = डर से। भजौ = भागो। उदौ = (उदय) प्रकट होना। पावस = वर्षा। साज = सामान। पावस का साज = बरसात का बनाव (वर्षा की तैयारी)। गजघटनि सनाह साजे = हाथियों और कवचों से सजकर। सैन = सेना। सनाह = (सं० संनाह) कवच।

विवे०—यहाँ 'बिजली नहीं चमकती है' कहकर सत्य का निषेध किया गया है और 'फेरत फिरंगै भट' से असत्य का स्थापन हुआ है।

८२. जहाँ युक्तिपूर्वक वस्तु का गोपन किया जाय अर्थात् शुद्धापह्नुति में कारण दिखा दिया जाय वहाँ हेत्वपह्नुति होती है।

८३. किरवान = तलवार। भुज = बाहु। भुजगेस = श्रेष्ठ सर्प। भुजंगिनी = नागिन। भुज-भुजगेस-भुजंगिनी = बाहु रूपी सर्प की नागिन है। भखति = (भक्षति) खाती है। पौन = (पवन) वायु (नागिन वायु खाकर

रहती है। शिवाजी की तलवार रूपी नागिन शत्रुओं की प्राण-वायु खाती है।

विवे०—यहाँ भी 'न होय किरवान' से सत्य छिपाकर 'पौन-अरिप्राम' खाने रूप कारण से तलवार को नागिन सिद्ध किया है।

८४. करतार = ब्रह्मा। हरन = हरने (मारने) के लिये। उद्धरन भुव-भार को = भू-भार का उद्धार करने (पृथ्वी का बोझ उतारने) के लिये। खंडिकै = खंडित करके (काटकर)। घुमंडि = घुमड़कर। अरि-चंड-मुंड = शत्रु रूपी चंड-मुंड राक्षसों को। चाबि करि = चबाकर। रकत = खून। लावत न बार को = देर नहीं लगाती। खंडिकै...वार को—घुमड़ती (उछलती) हुई और वायु रूपी चंड-मुंड राक्षसों को काटकर चबाती हुई तत्काल उनके रक्त का पान करती है। निज भरतार=अपने पति (शिव)। भूषित करत = सजाती है। भूतनाथ = भूतों के स्वामी (शिव)। निज भरतार......भरतार को—रण में योधाओं को मार कर शिव के सेवकों का पेट भरती है और मुंडों की माला से शिवजी को सजाती है।

विवे०—यहाँ प्रथम चरण में निषेध है और फिर युक्तिपवंक तलवार को काली कहा गया है।

८५. जहाँ एक वस्तु का धर्म छिपाकर उसका दूसरी वस्तु में आरोप किया जाय। गोय = छिपाकर। मति ओपि = मति को चमकाकर (बुद्धिसत्ता से)। 'पर्यस्त' शब्द का अर्थ है 'फेंका हुआ'। यहाँ एक वस्तु का धर्म दूसरी वस्तु पर फेंका जाता है।

८६. काल करत = मारता है। कलिकाल = कलियुग। तुरक = मुसलमान। काल = मृत्यु।

विवे०—'कलियुग में मुसलमानों को मृत्यु नहीं मारती, शिवाजी की तलवार मारती है।' यहाँ कलियुग से 'काल करने' धर्म का निषेध करके वह शिवाजी के करवाल में स्थापित किया गया है।

८७. भुजा = बाहु। भूतल = पृथ्वी। दिगनाग = दिग्गज (नाग=हाथी)। हिमाचल = हिमालय (सुमेरु कहना चाहिए था)। पोषन-भरनहार = भरण-पोषण करनेवाला। ता मधि = उसमें। अमल = अधिकार, दखल। जीबो = जीना। काज = कारण।

८८. जहाँ किसी वस्तु में अन्य की शंका होने पर वह भ्रम दूर कर दिया जाय वहाँ भ्रांतापह्नुति होती है। संका = शंका। भूरि = बहुत।

८९. भगाने = भाग गए। मेरु मैं = सुमेरु पर्वत में। लुकाने तें = छिपने से। लहत = पाते हैं। ओत = (सं० अवधि) कष्ट की कमी (आराम) कल = चैन। कौतुक = तमाशा। उदोत है = उदय होते हैं (प्रकट होते हैं)। अति कौतुक उदोत है = बड़ा तमाशा होता है। परान ज्यों लगत = ज्यों ही भागने लगते हैं। गोत = (गोत्र) समूह। सिव आयो······गोत हैं— सुमेरु पर्वत में 'शिव आए शिव आए' शब्द सुनकर शत्रुगण (शिवाजी का आना समझकर) भागने लगते हैं तो। जच्छ = (सं० यक्ष) कुबेर के सेवक। सिव········होत हैं—यक्षगण यह कहकर कि 'यह सरजाह शिवाजी नहीं, महादेव शिव हैं' उनके रक्षक के समान होते हैं (अन्यथा वे डरकर मर जाते)।

विवे०—'सिव आयो सिव आयो' से शत्रुओं को जो भ्रम हुआ था वह 'सिव सरजा न, यह सिव है महेस' सत्य बात कहकर दूर किया गया है।

९०. एक समै (समय) = एक बार। आलमगीर = औरंगजेब। सिधाए। पधारे। सरजा = (अ० शरजः) सिंह। यक ओर तें लोगन बोल जनाए = एक ओर से लोगों ने सावधान किया। धाक धुकाए = आतंक से भयभीत (औरंगजेब का विशेषण)। धायकै = दौड़कर। करौला = (रौला = शोर) हँकवा करनेवाला। जो लोग माँद से शिकार को हाँक लाते हैं।

विवे०—औरंगजेब ने 'सरजा' का अर्थ शिवाजी समझा, इसलिये भय खाकर बेहोश हो गया। फिर हाँका देनेवालों ने सिंह कहकर उसे उठाया। यहाँ 'सरजा' में शिवाजी का जो भ्रम हुआ था उसे सिंह कहकर दूर किया गया है।

९१. जहाँ सच्ची बात कहकर किसी की शंका दूर कर दी जाय वहाँ छेकापह्नुति होती है।

९२. तिमिर = (१) तैमूरलंग, (२) अंधकार। बंस-हर = कुलनाशक। अरुन कर = (१) लाल हाथोंवाला (२) लाल किरणोंवाला। सजनी = सखी। भोर = प्रभात। सूरज-कुल सिरमौर = (१) वंश में श्रेष्ठ सूर्य, (२) सूर्यवंश में श्रेष्ठ।

विवे०—यहाँ कोई स्त्री सिवाजी की बात कहकर अपनी सखी से पूछती

है कि बता यह कौन है ? वह उत्तर देती है—'सरजाह शिवाजी।' तब वह कहती है—'नहीं मैं सूर्य की बात कह रही हूँ।' शब्दावली ऐसी है कि अर्थ दोनों पक्षों में लग जाता है। यहाँ सत्य 'सिव सरजा' का वृत्तांत छिपाकर सूर्य की झूठी बात कही गई है।

९३-९४. दुरगहि बल = (१) किले के बल से, (२) दुर्गा के बल से। पंजन प्रबल = (१) हाथों से, (२) प्रबल पंजों से। सरजा = (१) शिवाजी, (२) सिंह। जिति रन मोहिं = (स्वप्न में देखा कि) मुझे रण में जीत लिया। देवान = प्रधान। उजीर = (वजीर) मंत्री। चकता = औरंगजेब। सकुचि = संकोच से (लज्जा के कारण)। मृगराज = शेर।

विशेष—शुद्धापह्नुति में जो असत्य का आरोप किया जाता है वह किसी गुप्त बात को छिपाने के लिये नहीं होता पर यहाँ यह बात आवश्यक है। (छेकापह्नुति में 'मुकरी' कही जाती है)।

९५. जहाँ कैतव, छल, व्याज, मिस आदि शब्दों के द्वारा बात छिपाई जाती है वहाँ कैतवापह्नुति होती है। कैतव = बहाना। दुराव = छिपाव। सति-भाव = सत्यभाव से (वस्तुतः)।

९६. सलहेरि = इस किले को शिवाजी के प्रधान मंत्री मोरो पंत ने १६७१ ई० में जीता था। कीन्हो कुरुखेत = (सं० कुरुक्षेत्र) कुरुक्षेत्र के ऐसा घोर युद्ध किया। खीझि = क्रुद्ध होकर। मीर = छोटे सरदार। अचल = अटल। कूरम = कछवाहे राजा। रन-धरनी = रणक्षेत्र। करि कूरम.........बलन सों—सेना में प्राण देने के कारण कछवाहे घर जाने का बहाना करके युद्ध-भूमि से चले गए। अमर = अमरसिंह चंदावत (सलहेरि के युद्ध में मारा गया था)। अमरपुर = स्वर्ग। अमर के.........दलन सों—शिवाजी की सेनाओं से लड़कर अमरसिंह चंदावत अमर (देवता) नाम होने के बहाने से ही अमरपुर (स्वर्ग) चला गया। काजी = न्याय करनेवाले। राव = छोटे राजा। उमराव = बड़े सरदार। छल = बहाना। सरजा बचायो............ छलन सों—काजी के बहाने से भागनेवालों को शिवाजी ने बचा दिया। बाबू, राव और उमराव 'ब्रह्मचारी' (बनफ्फूर) के बहाने से भाग गए।

विवे०—'अमर के नाम के बहाने गो अमरपुर' में अमरसिंह नहीं,

वह अमर (देवता) था इसलिये अमरपुर (स्वर्ग) गया। यहाँ 'बहाने' शब्द द्वारा निषेध कहा गया है। इसी प्रकार और भी समझ लेना चाहिए।

९७. जहाँ किसी वस्तु में अन्य वस्तु की संभावना की जाय वहाँ उत्प्रेक्षालंकार होता है। इसके तीन भेद हैं—वस्तु, हेतु और फल।

९८. दानव = राक्षस। दगा करि = धोखा देकर। दीह = (सं० दीर्घ) बड़े डील-डौल का। भयारो = डरावना। महामद भार्‌यो = घोर अभिमान से भरा हुआ। बीछू = बिछुवा या बघनख। घाय = चोट। गिरे = गिरे हुए। नरिंद = (सं० नरेंद्र) राजा। अरिंद = प्रबल शत्रु। मयंद = (सं० मृगेंद्र) सिंह। गयंद = (सं० गजेंद्र) हाथी। पछार्‌यो = हरा दिया। दाबि······ पछार्‌यो—महाराज शिवाजी प्रबल शत्रु अफजल को यों दबा बैठे, मानों सिंह ने हाथी को पछाड़ दिया हो।

विवे०—'दाबि यों बैठो नरिंद अरिंदहि' वस्तु पर 'मानो मयंद गयंद पछार्‌यो' की संभावना की गई है, अतः वस्तूत्प्रेक्षा है।

९९. निसा मैं = रात्रि में। निसाँक = (सं० निःशंक) निडर। गढ़-सिंह = सिंहगढ़ नामक किला। सोहानो = सुहावना, सुंदर। राठिवरो = राठौर कुल के राजपूत। उदैभानो = उदयभानु सिंह राठौर। घमसान = घोर युद्ध। भूतल = पृथ्वीतल। लोथिन घेरत = लाशों से घिरा हुआ। मसानो = श्मशान, मरघट। छज्ज = छज्जा। छटा = शोभा। उचटी = प्रकाशित हुई। परभा = शोभा। परभात की परभा = उषा की सी शोभा। ऊँचे······की मानो—ऊँचाई पर ऐसी शोभा दिखाई देने लगी मानो प्रातःकाल की छटा छाई हो (देखो 'भूमिका')

१००. दुरजन = शत्रु। दार = (सं०) स्त्री। भजि भजि = भाग-भागकर। बेसम्हार = बिना संभाल के (अस्त-व्यस्त)। उत्तर पहार = उत्तर का पर्वत (हिमालय)। भूषन = कवि का नाम। भूषन = गहना। बसन = वस्त्र। साधे भूखन पियासन हैं = भूख और प्यास साधे हुए हैं। नाह = (सं० नाथ) पति। निंदतें = निंदा करते हुए। साधे·········निंदतें—पतियों की निंदा करते हुए और भूख-प्यास साधे हुए हैं। अयाने = (सं० अज्ञान) नासमझ बाट = मार्ग। बिलाने = खो गए। कुम्हिलाने = मुरझा गए। कोमळ अमल अरबिंद तें = स्वच्छ कमलों से भी कोमल। दृगजल = आँसू। कज्जल-कलित =

काजलयुक्त। कस्यो = निकला। दूजो सोत = (सं० द्वितीय स्रोत) दूसरी धारा। तरनि-तनूजा = (सूर्य की पुत्री) यमुना। कलिंद तें = जिस पर्वत से यमुना निकली हैं। दृगजल ········कलिंद तें—काजलयुक्त आँसू का बहना ऐसा ज्ञात होता है मानों कलिंद पर्वत से यमुना की दूसरी धारा निकली हो (यमुना काली हैं, दृगजल भी कज्जल-कलित होने से काला है)

१०१. सुघर = (सुघड़) सुंदर। धवल = उज्ज्वल। ध्रुव = (सं०-ध्रुव) निश्चल। कीत्ति = कीर्ति। छबिछटा = छवि रूपी छटा (कूची)। छुवति सी = सफेदी सी कर रही है। छिति = (सं० क्षिति) पृथ्वी। दिग = दिशा। भित्ति = (भीत) दीवाल। छबि············भित्ति—सौंदर्य रूपी कूची से पृथ्वी रूपी आँगन की दिशा रूपी दीवालों पर पर सफेदी सी कर रही है।

१०२. अमाल = (अ० अमल) शासक। मानहु अमाल है = शिवाजी मानो शासक हैं। गढ़ोइ=(सं० गढ़पति) किलेदार। जाल = समूह। हेरि हेरि = ढूँढ ढूँढकर। कूटि = पीटकर। कटक = सेना। कराल = भयंकर। हय—घोड़ा रिसाल = (अ० इरसाल) खिराज़, कर। मानों शिवाजी हाकिम हैं और औरंगजेब डरकर कर के रूप में इन्हें ये वस्तुएँ सौंप रहा है।

विवे०—जिसमें अहेतु को (जो किसी कार्य का कारण न हो उसे) हेतु मानकर संभावना की जाय उसे हेतूत्प्रेक्षा कहते हैं। "औरंगजेब का डरकर रिसाल भेजना" अहेतु को हेतु माना।

१०३. सुप्रीति नाधियतु है = प्रेम का ठान ठाना जाता है। काँधियतु है = स्वीकार किया जाता है। इंद्र कौ अनुज = इंद्र के छोटे भाई। उपेंद्र = विष्णु (वामन-रूप से)। सलाह = राय। साधियतु है = साधा जाता है। पायतर = पैरों के नीचे। पायतर आय = तेरी शरण में आ जाने पर। कोट बाँधियतु है = (उनके लिये) किले बनवा देते हैं। पाग = पगड़ी। पाग बाँधना = (संमान के लिये) सिर पर पगड़ी बाँधना। पायतर········पाग बाँधियतु है—निडर बसने के लिये शरण में आए हुए लोगों के सिर पर पगड़ी क्या बाँधते हैं मानों उनके लिये (निर्भय बसने को) किले ही बनवा देते हैं।

विवे०—जहाँ अफल को फल मानकर संभावना की जाय वहाँ फलोत्प्रेक्षा होती है। ऊपर का उदाहरण स्पष्ट नहीं है।

१०४. दुवन = (सं० दुर्मनस्) वैरी। सदन = घर। बदन = मुख। आठो याम = आठो पहर (रातोदिन)। बचिबे को = रक्षा के लिये। तुरकौ = मुसलमान भी। हर = महादेव।

विवे०—मुसलमानों का 'शंकर' को जपना अफल को फल माना गया।

१०५. मानो आदि वाचक जहाँ नहीं आते वहाँ गम्योत्प्रेक्षा या गुप्तोत्प्रेक्षा होती है। ठौर = (सं० स्थान) जगह। अमौर = अमोल (अमूल्य)।

१०६. उदरत = (सं० उद्दारण = उदारना) छिन्न भिन्न हो जाती है। सूधी = सीधी। राह = मार्ग। द्योस = (सं० दिवस) दिन। निकेत = घर। साहस-निकेत = साहसी। खेत = (सं० क्षेत्र) जोतने-बोने की जमीन। जीते जनु खेत हैं = खेत की भाँति उन्होंने जीत लिया है। कूहू = अमावास्या। मावली = शिवाजी के साथी पहाड़ी लोग। सचेत = सावधान। उज्यारी = उजाला तेरे ······ लेत हैं—जिन पर्वतों पर दिन में चढ़ना भी कठिन है उन्हें मावली लोग घोर अंधकार में भी खेत की भाँति जीत लेते हैं (मानों) आपके प्रताप-सूर्य के उजाले में वे ऐसा कर पाते हैं।

विवे०—यहाँ चौथे चरण में गम्योत्प्रेक्षा है। यद्यपि 'बात मैं विचारी' एक प्रकार का वाचक ही है पर 'मानो' आदि प्रसिद्ध वाचक न होने से गम्योत्प्रेक्षा ही है।

१०७. गढ़ोई = (सं० गढ़पति) किलेदार। दरयाव = (फा०) समुद्र।

१०८. जहाँ केवल उपमान कहकर उपमेय लक्षित कराया जाय वहाँ रूपकातिशयोक्ति अलंकार होता है।

१०९. वासव = इंद्र। बिसरत = ध्यान से उतर जाते हैं। बिक्रम = महाराज विक्रमादित्य। बिक्रम = पराक्रम। बखत-बलंद = भाग्यवान्। बासव से ······ बखत-बलंद के—भाग्यवान् शिवाजी के पराक्रम के सामने इंद्र तक को लोग भूल जाते हैं, तब विक्रमादित्य की बात ही क्या है। मसनंद = (फा०) गद्दी (राजगद्दी पर बैठनेवाले)। मकरंद = शिवाजी के पूर्वज मालोजी। कुलचंद = वंश में श्रेष्ठ। साहिनंद = शाहजी के पुत्र। दंद = (सं० द्वंद्व) उपद्रव। कनकलतानि = सोने की लता (स्त्रियाँ)। इंदु = चंद्रमा (मुख)। अरविंद = कमल (नेत्र)। मकरंद = पुष्प-रस (आँसू)। कनक

लतानि ········मकरंद के—सोने की लता में चंद्रमा लगा है और चंद्र में कमल खिले हैं और कमलों से मकरंद चू रहा है (सोने के समान रंगवाली स्त्रियों के चंद्र-मुख के कमल-नेत्रों से आँसू बह रहे हैं)।

विवे०—यहाँ 'कनकलता' आदि उपमानों से ही स्त्री आदि उपमेयों का ज्ञान कराया गया है।

११०. जहाँ उपमेय और ही प्रकार का कथन किया जाय वहाँ भेदकातिशयोक्ति होती है। थर = (सं० स्थल) स्थान। अचूक = विना भूल (निश्चय-पूर्वक)। (भेदक = भेद करनेवाला)।

१११. नयपाल = नैपाल। जुमिला के छितिपाल = समस्त राजा। चौंर = चमर। गढ़ = किला। कुही = (सं० कुधि) एक बाज सी छोटी शिकारी चिड़िया। श्रीनगर·········बाज की—श्रीनगर और नैपाल आदि देशों के सब राजा शिवाजी के पास चमर, किला, कुही और बाज भेंट-स्वरूप भेजते हैं। मेवाड़ = उदयपुर की रियासत। ढुँढार = जयपुर राज्य। मारवाड़ = जोधपुर का देश। झारखंड = वैद्यनाथ-धाम (विहार)। बाँधौ = बांधव (रीवाँ) का राज्य। धनी = स्वामी। चाकरी इलाज की = सेवा करना (अधीनता मान लेना) ही इलाज समझा। ताकत = देखते हैं। पनाह = आश्रय। जैतवार = जीतनेवाला।

विवे०—यहाँ "न्यारी रीति" कहकर और लोगों से भेद करते हुए दूसरे ही प्रकार का वर्णन किया गया है।

११२. जहाँ कारण और कार्य का एक साथ होना कहा जाय वहाँ अक्रमातिशयोक्ति होती है। अक्रम = क्रमहीन (कारण और कार्य में पूर्वापर क्रम न हो)

११३. उद्धत = प्रचंड। धुकार = गड़गड़ाहट। लंघैं = पार करते हैं। पारावार = समुद्र। बाल-बृंद = स्त्री-बच्चों का समूह। चतुरंग = चतुरंगिणी सेना (हाथी, घोड़ा, रथ और पैदल)। तुरंग = घोड़ा। अंग-रज = शरीर की धूल। रज = रजपूती। पुंज = समूह। पर = शत्रु। तेरे चतुरंग·····परन के—आप की सेना के घोड़ों के चलने से (पृथ्वी पर टापों के पड़ने पर) धूल उड़ने के साथ ही शत्रुओं की रजपूती उड़ जाती है (चढ़ाई की तैयारी करते ही राजाओं को राजच्युत समझना चाहिए)। हाथ चढ़ना = हाथ में आना, वश में होना।

दुरजन = शत्रु। असीसैं = आशीर्वाद देते हैं। कसीसैं = (कशिश) खिंचाव। करत कसीसैं = धनुष की डोरी खींचते ही।

विवे०—यहाँ दुंदुभी कारण और बाल-बच्चों का डरकर भागना कार्य दोनों का साथ ही होना कहा गया है। इसी प्रकार और भी समझना चाहिए।

११४. जहाँ कारण की चर्चा होते ही कार्य हो जाय वहाँ चंचलातिशयोक्ति होती है। रसाल = रसयुक्त, रसिक। चंचला = बिजली।

११५. नाँव = नाम। दृग-जल = आँसू। अरि-गाँव = शत्रुओं के ग्राम। (स्त्रियाँ बहुत रोती हैं)।

विवे०—'आना' सुनते ही शत्रुओं की स्त्रियाँ बहुत अधिक रोती हैं, जिससे डूबकर गाँव चौपट हो जाता है।

११६. गढ़नेर = नगरगढ़। भागनेर = भागनगर। हाथन मलति हैं = पछताती हैं। करनाट = करनाटक। हबस = हबसियों का देश। फिरंग = फिरंगियों का देश। बिलायत = विदेशी राज्य। बलख = तुर्किस्तान का एक नगर। छतियाँ दलति हैं = छातियाँ पीटती हैं। एते मान = इतने परिमाण में। उबलति हैं = खौलने लगती हैं (पीड़ित हो जाती हैं)। चमू = सेना। चक्रवर्ती = सम्राट। बिचलति हैं = सेनाएँ तितर-बितर हो जाती हैं।

११७. जहाँ कारण से पहले ही कार्य हो जाय।

११८. मंगन = माँगनेवाला। मनोरथ = मनोभिलाष। मंगन .... दाता—भिक्षुक में मनोरथ होने के पहले ही आप दान दे देते हैं। कामतरु = कल्पवृक्ष। गाइयतु है = कहा जाता है। बखत = भाग्य। निज बखत ...... ध्याइयतु है—आपका गुण गाने के पहले ही भाग्यवान् हो जाते हैं, तब आपका ध्यान करते हैं (जो आपका ध्यान करनेवाला होता है वह पहले भाग्यवान् हो जाता है, तब आपको ध्याता है)। डारि = त्यागकर। बिडारि = भगाकर। दीह = (सं० दीर्घ) भारी। दारिद = दरिद्रता।

विवे०—यहाँ 'मंगन मनोरथ के प्रथमहि दाता' आदि में कारण से प्रथम कार्य हो गया है।

११९. तरुवर = श्रेष्ठ वृक्ष। रस = जल। अचरज-मूल = आश्चर्य रूपी जड़। सुफल होना = फलीभूत होना और फल लगना। फूल = प्रसन्नता

और पुष्प। शिवाजी ने अपने यशरूपी जल से आश्चर्यमय जड़वाले कवि-वृक्षों को सींचा है। इनमें फल पहले लगता है और फूल पीछे (कवि लोग धन पाकर पहले सफल-मनोरथ होते हैं और तदनंतर प्रसन्न)।

१२०. जहाँ सामान्य बात के लिये विशेष बात कही जाय वहाँ सामान्य-विशेष अलंकार होता है। सामान्य = सबपर घटित होनेवाली बात। विशेष = किसी मुख्य वस्तु पर घटनेवाली बात।

१२१. सुगमौ = सरल भी। कठिनऊ = कठिन (कार्य) भी।

विवे०—यहाँ कहना यह था कि 'बड़े पुरुषों के यश से ही कठिन से कठिन कार्य हो जाते हैं' पर इस सामान्य बात के लिये शिवाजी की विशेष घटना कही गई है।

१२२. बसुधा = पृथ्वी। सिगरी = सब। घमसान घमंड कै = घोर युद्ध करके। जगती = पृथ्वी। उमराव = बड़े सरदार। अमीर = छोटे सरदार। धृति = (सं०) धैर्य। मीर = सरदार। सुधि = ध्यान। पीर = गुरु।

विवे०—यहाँ 'जब किसी की पृथ्वी छिन जाती है तो उसके हवास गुम हो जाते हैं' यह सामान्य बात कहने के लिये शिवाजी के कार्यों का कथन हुआ है।

विशेष—भूषण ने यह नया अलंकार रखा है (देखो 'भूमिका')।

१२३. जहाँ वर्ण्यों (उपमेयों) अथवा अवर्ण्यों (उपमानों) का एक धर्म कथन किया जाय वहाँ तुल्ययोगिता होती है। तुल्ययोगिता = (तुल्यता = धर्म-एकता) के कारण योग कथन किया जाय।

१२४. तुरंग = घोड़ा। जंग = युद्ध। चाव = उमंग। खग्ग = (खड्ग) तलवार। अंग = शरीर। जोट = जोड़ा। सृंग = शिखर। अरि-जोट...... सृंग मैं—शत्रु लोग दो-दो मिलकर भागकर पर्वतों की चोटियों पर चढ़ जाते हैं। ब्योमयान = विमान। तुरकान-गन ब्योमयान हैं चढ़त = लड़ाई में मरे हुए मुसलमान विमान में बैठकर स्वर्ग जाते हैं। बिनु मान = अप्रमाण (बहुत अधिक)। बदरंग = विवर्ण (उदासी)।

विवे०—यहाँ शिवाजी आदि कई वर्ण्यों (उपमेयों) का 'चढ़त' एक ही धर्म कहा गया है।

१२५. भुव-भरु = पृथ्वी का बोझ। सभाग = भाग्यवान्। निहचिंत = (निश्चिंत) बेफिक्र। दिगनाग = दिग्गज।

विवे०—यहाँ शेषनाग और दिग्गज शिवाजी की भारी भुजाओं के उपमान हैं और उन दोनों का 'निहचिंत हैं' एक ही धर्म कहा गया है; अतः यह अवर्ण्यों (उपमानों) की तुल्ययोगिता है।

१२६. जहाँ हित (मित्र) और अनहित (शत्रु) दोनों से एक-सा व्यवहार कथन किया जाय वहाँ दूसरी तुल्ययोगिता होती है।

१२७. गुननि सों = गुणों से। गुननि सों = रस्सी से। पाय गहे = पैर पकड़े हुए। रोज = नित्य। पाय गहे = पाकर और पकड़कर (कैद करके)। रस = आनंद (मौज)। रोस = क्रोध। दोहा = एक छंद। ज्याइयतु है = पालन किया जाता है। दोहा के कहे तें = दो बार 'हा' कहने से; 'हा हा' खाने से। ज्याइयतु है = प्राण बचा दिए जाते हैं।

विवे०—यहाँ (श्लेष से) कवियों (मित्रों) और शत्रुओं के साथ एक-सा व्यवहार करना कथन किया गया है।

१२८. जहाँ वर्ण्य और अवर्ण्य का एक ही धर्म कहा जाय वहाँ दीपकालंकार होता है।

१२९ कामिनि = स्त्री। कंत = पति। जामिनि = (यामिनि) रात। दामिनि = बिजली। पावस = वर्षा। मेघ-घटा = बादलों का घिराव। सूरति = (सूरत) शक्ल, स्वरूप। बड़ी प्रीति = गहरा प्रेम। सनमान = आदर। भूपन = कवि। भूपन = गहना। तरुनी = युवती। नलिनी = कमलिनी। नव = नये। पूपन = (सं० पूषण) सूर्य। नव-पूपनदेव-प्रभा सों = प्रातः-काल के सूर्य की किरणों से। जाहिर = प्रकट, प्रसिद्ध। जहान = संसार।

विवे०—यहाँ 'खुमान सिवा सों' वर्ण्य और 'कामिनि कंत सों' आदि अवर्ण्य हैं। इनका 'लसै' एक ही धर्म कथन किया गया है।

१३०. दीपकालंकार के पदों के अर्थ का जहाँ बारंबार कथन हो वहाँ आवृत्तिदीपक होता है।

विवे०—आवृत्तिदीपक के तीन भेद हैं—पदावृत्तिदीपक (एक ही पद कई बार आवे पर अर्थ भिन्न-भिन्न हों), अर्थावृत्तिदीपक (एक ही

अर्थवाले भिन्न-भिन्न पद कहे जायँ), और पदार्थावृत्तिदीपक (एक ही अर्थ-वाला पद कई बार आवे)।

१३१. वढ़त = उमड़ चलते हैं। दान-जल = दान में संकल्प करने के जल से। गज-दान = गजमद (मतवाले हाथी की कनपटी से बहनेवाले द्रव-पदार्थ का नाम 'दान' है)।

विवे०—यहाँ 'बढ़त' और 'उमड़त' एक ही अर्थवाले दो पदों की आवृत्ति से अर्थावृत्तिदीपक है।

१३२. चक्रवती = (सं० चक्रवर्तिन्) सम्राट्। चारियौ चतुरंगिनि = चारों (हाथी, घोड़ा, रथ, पैदल) सेना। चापि लई = दबा ली। चंका = (सं० चक्र) दिशा (ओर)। दिसि चंका = चारों ओर से। चक्रवती............ चंका—सम्राट् औरंगजेब की चतुरंगिणी सेना को चारों दिशाओं से दबा लिया। दरी = कंदरा, गुफा। दुरे = छिप गए। वारिधि = समुद्र। नंका = (सं० उल्लंघन) पार कर गए। साहि को नंद = शाहजी के पुत्र। चपेट = चोट, आघात। गजराज = श्रेष्ठ हाथी। धंका = धक्का।

विवे०—यहाँ चतुर्थ चरण में 'सहै' पद दो बार एक ही अर्थ में आया है। इससे पदार्थावृत्तिदीपक है।

१३३. अटल = निश्चल। दिगअंतन के = दिशाओं के अंत के (समस्त संसार के)। रैयति = प्रजा। पेस = (पेश) आगे। पेश करना = सामने रखना। देस पेस करिकै = देश देकर। राना = महाराणा (उदयपुर)। चाकरी = नौकरी। बाना = अंगीकृत धर्म, रीति। हाड़ा = बूँदी के हाड़ा राज-पूत। रायठौर = राठौर (जोधपुर)। कछवाहे = कुशवंशी राजपूत (जयपुर)। गौर = गौरवंशी राजपूत। चवाँरू = चमर। चवाँरू धरि डरिकै = डरकर चमर धारण कर लिया (शिवाजी पर मुर्छल करने लगे)। निदरि = निरा-दर करके। ऐंड = स्वाभिमान। तेग = तलवार।

विवे०—यहाँ "अटल रहना" पद एक ही अर्थ में कई बार प्रयुक्त हुआ है अतः पदार्थावृत्तिदीपक है।

१३४. जहाँ दो वाक्यों (एक उपमेय-वाक्य और दूसरा उपमान-वाक्य) का भिन्न-भिन्न शब्दों से एक ही धर्म कथन किया जाय।

१२५. मद-जल-धरन = मदरूप जल धारण करनेवाला । द्विरद = हाथी । बल = पराक्रम । राजत = सुशोभित होता है । जलद = बादल । छबि साजै है = शोभा पाता है । भूमि के धरन = पृथ्वी के धारण करने से । फन-पति = शेषनाग । लसत = शोभा पाता है । तेज = तीव्रता । ताप = गर्मी । रबि = सूर्य । छाजै है = शोभित होता है । भट भारे = बड़े योद्धा । लसत गुन-धरन समाजै है = गुण को धारण करने से समाज शोभा पाता है । दलन = नाश करनेवाले । थंभन = अवलंब । दिल्ली······बिराजै है—दिल्ली के दलने, दक्षिण का अवलंब होने और स्वाभिमान धारण करने से महाराज शिवाजी शोभित होते हैं ।

विवे०—यहाँ चतुर्थ चरण में उपमेय वाक्य है और शेष चरणों में उपमान वाक्य हैं । 'बिराजै है', 'राजत है' आदि एक अर्थवाची भिन्न-भिन्न शब्दों से इनका समान धर्म कथन किया गया है ।

१२६. जहाँ (उपमेय और उपमान) दो वाक्यों (और उनके साधारण-धर्मों का) बिंब-प्रतिबिंबवत् कथन हो वहाँ दृष्टांतालंकार होता है ।

१२७. सिव = शिवाजी । राव = छोटे राजा । हत्थिमत्थ = हाथी का मस्तक । आन = (अन्य) दूसरा । घालना = आघात करना ।

विवे०-यहाँ पूर्वार्द्ध में उपमेय-वाक्य और उत्तरार्द्ध में उपमान-वाक्य है ।

१२८. तुरीगन = घोड़ों का समूह । गीत = गान (कविता) । करी = हाथी । मंगन = भिक्षुक । घने = बहुत । निहाल करना = (प्रसन्न करके) संतुष्ट कर देना । रिझाए = प्रसन्न किए जाने पर । निहाल······रिझाए—शिवाजी को यदि कोई प्रसन्न कर ले तो वे (धन देकर) उसे संतुष्ट कर देते हैं । आन रितैं = और ऋतुएँ । बरसे = बरसने पर । सरसै = (कुछ) बढ़ जाती है । आन रितैं······पाए—अन्य ऋतुओं में पानी बरसने पर नदी कुछ ही बढ़ती है पर वर्षा-ऋतु के बरसने पर ही वह उमड़कर बहती है ।

विवे०—यहाँ धर्म 'आवश्यकता से अधिक पाना' है ।

१२९. जहाँ दो वाक्यों के अर्थ में (विभिन्नता रहते हुए भी) समता-भावसूचक ऐसा आरोप किया जाय कि दोनों एक से जान पड़ें वहाँ निदर्शना होती है । ओप = चमक । प्रथम निदर्शना में 'जो सो' आदि शब्दों के

बक से असम वाक्यों को सम किया जाता है।

१४०. मच्छ = मत्स्यावतार। कच्छ = कच्छपावतार। कोल = वाराहावतार। द्विजराम = परशुराम। रघुराज = रामचंद्र। जोऽब = जो अब। कलकी = कल्की अवतार। विक्रम हूवे को = पराक्रम होनेवाला है। भूमिआधार = पृथ्वी को सँभालनेवाला।

विवे०—भूषण का यह उदाहरण ठीक नहीं है क्योंकि इसमें दोनों वाक्य असम नहीं हैं। जैसा पराक्रम मत्स्यावतार आदि में है वैसा ही साहस शिवाजी में है; यहाँ उपमा की झलक है।

१४१. बर = श्रेष्ठ। मारतंड = (सं० मार्तंड) सूर्य। तेज चाँदनी = तेजयुक्त प्रकाश। जानी = समझा। सीलता = शिष्ट व्यवहार। कंचन = सोना। मृदुता = कोमलता। भाग फिरै = भाग्योदय हो। पिसानी = (पेशानी) मस्तक। सब हिंदुन······पिसानी मैं—औरंगजेब के दिमाग में कुबुद्धि होने से हिंदुओं का भाग्योदय होगा। सुबेस = सुंदर रूप। निरखी = देखी। अनूप = अनुपम। रुचि = शोभा। पानी = चमक।

विवे०—जो शिवाजी में कीर्तियुक्त प्रताप है वही सूर्य में तेजयुक्त प्रकाश है आदि असम वाक्य 'जो सो' से एक किए गए हैं। भूषण का यह उदाहरण स्पष्ट है।

१४२. जनम = सारा जीवन। एक रोज = एक दिन। मौज = आनंद।

१४३. रन माँडिबो = युद्ध करना। निहाल = संतुष्ट। ख्याल = खेल। जंजाल = झंझट (कठिन)।

विवे०—भूषण के ये दोनों उदाहरण भी स्पष्ट नहीं हैं।

१४४. जहाँ अपने अर्थ (स्वरूप-कार्य) और अन्य अर्थ (कारण) का ज्ञान (संबंध) क्रिया द्वारा कराया जाय वहाँ दूसरी निदर्शना होती है।

१४५. निर्गुन = गुणहीन। सगुन = गुणवान। ज्ञानवंत = ज्ञानी। बान = स्वभाव। निवाजै = कृपापूर्वक देता है। प्रकट करत······दान—शिवाजी गुणहीन और गुणज्ञों (दोनों) को दान देकर यह प्रगट करता है कि ज्ञानी का यह स्वभाव है कि वह निर्गुण-सगुण दोनों को चाहता है।

विवे०—यहाँ 'शिवाजी का सबको निवाजना' अपने स्वरूप-कार्य का

और पूर्वार्द्धगत कथन कारण का एक ही क्रिया में अन्वय है।

१४६. जहाँ समान शोभावाले उपमेय और उपमान में उपमेय को बढ़कर वर्णन किया जाय वहाँ व्यतिरेकालंकार होता है। व्यतिरेक = (वि + अतिरेक) विशेष बढ़कर।

१४७. त्रिभुवन = त्रिलोक। परसिद्ध = प्रसिद्ध। एक अरि = वृत्रासुर। खंडिय = खंडन किया। बिहंडि = (सं० विघटन) नष्ट करके। रन-मंडल = युद्ध-क्षेत्र। मंडिय = भूषित किया। एक ऋतु = वर्षा। पुहुमि = पृथ्वी। पानिप = जल। पानिप = शोभा। सरसावत = रसपूर्ण करता है, फैलाता है (बढ़ाता है)। सत्थ = साथ। हय = घोड़ा। गय = हाथी। संचरइ = संचार करते हैं (चलते हैं)। यकइ = एक ही। गयंद = (गजेंद्र) बड़ा हाथी (ऐरावत)। तुरंग = घोड़ा (उच्चैश्रवा)। सुरपति = इंद्र। सरबरि = बराबरी।

विवे०—यहाँ शिवाजी उपमेय को इंद्र उपमान से बढ़कर कहा गया है।

१४८. दारुन (सं० दारुण) कठिन। दुगुन = (सं० द्विगुण) दूना। मढ़िकै = फैलाकर। धरम = युधिष्ठिर। पैज = (प्रतिज्ञा) प्रण। अकिल = (फा० अक्ल) बुद्धि। चढ़िकै = बढ़कर। गाजी = धर्म-युद्ध-वीर। चंड = तीव्र, कठोर। लाखभौन = लाक्षागृह, लाख का बना हुआ घर (दुर्योधन ने पांडवों को जला देने के लिये लाख का घर बनवाया था, किंतु पांडव इसका समाचार पाकर पहले ही निकल भागे) द्यौस = (सं० दिवस) दिन। लाख = लक्ष। चौकी = पहरा। कढ़िकै = निकलकर।

१४९. जहाँ सह-अर्थ-बोधक शब्दों के बल से कई वस्तुओं का एक साथ मनोरंजकतापूर्वक वर्णन हो। (सह + उक्ति = सहोक्ति)।

१५०. हुलास = (उल्लास) प्रसन्नता। आम-खास = (अ०) महलों का भीतरी भाग। हरम = बेगम। सरम = (शर्म) लज्जा। बिनु ढंग ही = बेढंगे तौर पर। सुख-रुचि = सुख की अभिलाषा। मुख-रुचि = मुख की कांति। त्यों ही = उसी प्रकार। बिनु रंग ही = वर्णहीन (उदास, मलिन)। मरदाने = वीर। बिललाना = मारा मारा फिरना। अंग = शरीर। सूबा = प्रांत। अमीर = छोटे सरदार। जीव-आस = जीने की आशा। दक्खिन.... एक संग ही—दिल्ली के अमीर दक्षिण के प्रांतों की सूबेदारी पाकर उत्तर

दिशा को लौट आने और प्राणों के बचने की आशा एक साथ त्याग देते हैं।

विवे०—यहाँ 'संग' शब्द के बल से 'हुलास' और 'आम-खास' का छूटना मनोरंजकतापूर्वक कथन किया गया है। इसी प्रकार और समझ लेना चाहिए।

१५१. जहाँ किसी वस्तु के विना कोई वस्तु हीन या उत्तम वर्णन की जाय वहाँ विनोक्ति होती है। नीक = अच्छा (उत्तम)। (विना + उक्ति = विनोक्ति)।

१५२. सोभमान = अत्यंत शोभित। अगड़ = (अकड़) दर्प। गुमान = घमंड।

विवे०—यह शोभन की विनोक्ति है।

१५३. कविराज = श्रेष्ठ कवि। बिभूषन होत = शोभित होता। सभाजित = सभा जीतनेवाला। भुवाल = (सं० भूपाल) राजा। भावत = अच्छा लगता। बाजि = घोड़ा। मौज = प्रसन्नता। मही = पृथ्वी। मौज पाए बिन = प्रसन्न किए विना।

विवे०—यहाँ अशोभन की विनोक्ति है।

१५४. बिबेक = विचार। टेक = प्रण। कलेस = दुःख। अनीति = अन्याय। रीति = व्यवहार। लाज के जहाज = अत्यंत लज्जावान। सुकबि......काज—सुकवि अपयश के कार्यों से रहित हैं। गरिबनेवाज = दीनदयालु। ओज = तेज। घनी = बहुत। मौज = प्रसन्नता। राज = राज्य।

विवे०—यहाँ शोभन की विनोक्ति है।

१५५. कीरति को ताजी करी = कीर्ति फिर से फैलाई। बाजी = घोड़ा। बिनु बाजी होना = हार जाना। धरबी = धरेगी (बुँदेलखंडी)। धुर = प्रधान स्थान (किला)। अमर = अमरसिंह। मान बिन = विना मानसिंह के। दिलीसुर = औरंगजेब। सुव = पुत्र। महाबाहु = पराक्रमी। सलाह = संमति मुरकी = टेढ़ी हो गई (चौपट हो गई)।

विवे०—यह अशोभन की विनोक्ति है।

१५६. जहाँ किसी वस्तु (प्रस्तुत) का वर्णन करने से किसी दूसरी वस्तु (अप्रस्तुत) का भी ज्ञान हो वहाँ समासोक्ति होती है।

विशेष—समासोक्ति में समान विशेषणों के द्वारा प्रस्तुत से अप्रस्तुत सूचित किया जाता है। यह श्लिष्ट और अश्लिष्ट दो प्रकार की होती है।

१५७. डील = कद। पील = हाथी। बन-थान = वनस्थान (जंगल)। धनि = धन्य। सरजा = सिंह और शिवाजी की उपाधि।

विवे०—यहाँ सिंह के वर्णन में समान विशेषणों से शिवाजी और औरंगजेब-विषयक अर्थ भी निकलता है।

१५८. द्विजराज = चंद्रमा और श्रेष्ठ ब्राह्मण। कला = चंद्रमा की कलाएँ और हुनर (विद्या)। प्रमान = प्रामाणिक। सिव = शिव और शिवाजी।

विवे०—यहाँ श्लिष्ट समान विशेषणों से चंद्रमा के वर्णन में शिवाजी और भूषण-विषयक अर्थ भी निकलता है।

१५९. विधनोल = बिदनूर। खंडहर = मध्यदेश का एक देश। झारखंड = वैद्यनाथ-धाम (उड़ीसा)। चारु = सुंदर। केली = खेल। बिरद = यश। चारु केली है बिरद की = यश छाया है। गोर = अफगानिस्तान का एक नगर। ठौर = स्थान। वसति = बस्ती। मारि रद की = मार कर चौपट कर दिया। मदगल = (मदगलित) मद बहता हुआ (मतवाला)। सरजा = सिंह और शिवाजी।

विवे०—यहाँ हाथी और सिंह का वर्णन किया गया है इसीसे शिवाजी का वृत्तांत भी प्रस्फुटित होता है।

विशेष—भूषण के ये उदाहरण समासोक्ति में ठीक नहीं घटते।

१६०. साभिप्राय विशेषण हो तो परिकर और साभिप्राय विशेष्य हो तो परिकरांकुर होता है।

१६१. समुहाने = सामने आने पर। अयाने = (सं० अज्ञान) मूर्ख। दिल आनि मेरा बरजा = मेरे मना करने को चित्त में ले आ (स्वीकार कर)। सवाई = तुझसे सवा गुना (बढ़कर)। चाकर = नौकर। ललन = पुत्र। दल = सेना। दलन = नाशकर्ता। मलन = मल डालनेवाला।

विवे०—यहाँ 'सरजा' शब्द साभिप्राय है क्योंकि इसका अर्थ सिंह भी होता है। 'दलना, मलना' क्रियाएँ इस साभिप्राय विशेषण से घटित की गई हैं।

१६२. जाहिर = प्रकट । पासवान = पार्श्ववर्ती । चाय = उमंग। विलाना = नष्ट होना । खीझे तें = क्रुद्ध होने पर। खलक = संसार। खलभल = खलबली (हलचल)। रीझे तें = (सं० रंजन) प्रसन्न होने से। रंक = निर्धन। पलक = क्षणभर। राय = राजा। जंग जुरि = युद्ध करके। अनंग कीबो = विना शरीर का कर देना। दीबो = दान देना। सिव = शिवजी और शिव।

विवे०—यहाँ 'शिव' विशेष्य शब्द साभिप्राय है, क्योंकि शिव ने कामदेव को अनंग कर दिया था।

१६३. सूर-सिरोमनि = वीरों में श्रेष्ठ। सूर-कुल = सूर्य-वंश। मकरंद = माल-मकरंद के वंशज। कुल-मलिच्छ-कुल-चंद = समस्त मुसलमान वंश में चंद्रवत्।

विवे०—यहाँ 'सूर-सिरोमनि सूर-कुल' शब्द साभिप्राय हैं।

१६४. हो = था। जुरि-जंग = युद्ध करके। अंधक = एक दैत्य (यह मद से अंधों की भाँति चलता था। इसे स्वर्ग से पारिजात लाते समय शिव ने मारा था)।

विवे०—शिवराज विशेष्य सार्थक है क्योंकि औरंगजेब को अंधक बनाया है।

१६५. जहाँ कथित शब्दों के कई अर्थ हों वहाँ श्लेषालंकार होता है।

१६६. इस छंद का अर्थ श्रीरामचंद्र और शिवाजी दोनों पर घटित होगा।

रामचंद्र पक्ष—सीता संग सोभित = जिनके साथ में सीता शोभित हैं। सुलच्छन सहाय जाके = जिनके सहायक सुंदर लक्ष्मण हैं। भू पर भरत नाम भाई नीति-चारु है = पृथ्वी पर सुंदर नीतिवाले भरत जिनके भाई हैं। कुल-सूर कुल-भूषन है = सूर्यवंश में वंशश्रेष्ठ हैं। दासरथी = जो दशरथ के पुत्र हैं। सब जाके भुज भुव भारु = जिनकी भुजाओं पर पृथ्वी का सारा भार है। अरि-लंक तोर जोर = शत्रु की लंका तोड़ने का जिनमें बल है। जाके संग बानर हैं = जिनके साथ बंदर रहते हैं। सिंधु रहैं बाँधे = समुद्र बाँधे हैं। जाके दल को न पारु है = जिनकी सेना अग-

णित है। ते गहिके भेंटै = उन्हें (दल के लोगों को) पकड़ कर भेंटता है (गले लगाते हैं)। जौन राकस मरद जानै = जो राक्षसों को मर्दना (मारना) जानते हैं।

शिवाजी-पक्ष—सी ता संग सोभित = उसके साथ सी (श्री = लक्ष्मी) शोभित है। सुलच्छन सहाय जाके = सुंदर लक्षणोंवाले (व्यक्ति) जिसके सहायक हैं। भू पर भरत नाम = पृथ्वी पर भरने में (भरण-पोषण करने में) जिसका नाम है। भाई नीति चारु है = जिसकी सुंदर नीति (संसार को) भाती है। कुल सूर = समस्त वीर। कुल-भूषन = वंश में श्रेष्ठ। हैं दास रथी सब जाके = सब रथी जिसके दास हैं। भुज भुव भारु है = भुजाओं पर पृथ्वी का भार है। अरि-लंक तोर जोर = शत्रु की लंक (कमर) तोड़ने का जिसमें बल है। जाके संग बान रहैं = जिसके साथ बाण रहते हैं। सिंधुर हैं बाँधे = सिंधुर (हाथी) बँधे रहते हैं। जाके दल को न पारु है = जिसकी सेना अगणित है। तेगहि कै भेंटै जो = जो तेग (तलवार) से ही भेंटता है। नराकस मरद जानै = [नर = मनुष्य (प्रजा) + अकस = शत्रु] प्रजा के शत्रु को मर्दना (मारना) जानता है।

विवे०—यहाँ शब्दों के दो अर्थ हुए हैं।

१६७. यह छंद वेश्या और सूबेदारी दोनों पर लगेगा।

सिहाना = अभिलाषा करना। मिलन-काज = आलिंगन के लिये और पाने के लिये। निधन करति = निर्धन कर देती है, और मार डालती है। वेगि = शीघ्र। जाकी संगति न फल की = जिसका साथ फलदायक नहीं है। कीरति'.....सकल की—कीर्तिरूपी स्त्री में अनुरक्त एक शिवाजी को ही यह सबको वश में करनेवाली होकर भी वश में नहीं कर सकती (शिवाजी वेश्या में अनुरक्त नहीं हैं और सूबेदारी के लोभ में नहीं आते हैं)। सरस = रस को जाननेवाली, और बढ़कर। दारी गनिका = वेश्या स्त्री।

१६८. जहाँ अप्रस्तुत का कथन प्रस्तुतयुक्त हो वहाँ अप्रस्तुत-प्रशंसालंकार होता है। (प्रशंसा = वर्णन) अवतंस = श्रेष्ठ।

१६९. हिंदुनि = हिंदुओं की स्त्रियाँ। तुरकिनि = मुसलमान स्त्रियाँ। रोष = क्रोध।

१७०. भिल्लिनि = भील की स्त्री । घन वन=घोर जंगल । इकंत = एकांत कंत = पति ।

१७१. गढ़पाल = किलों का रक्षक (शिवाजी) मौज = प्रसन्नता । निहाल = संतुष्ट । गुनी जन = गुणी लोग । गुन-गीत लहै हैं = गुणों का गीत गाते हैं, गुणों की प्रशंसा करते हैं । राजन = राजा-गण । राव = छोटे राजा । धाक = आतंक । धाक-धुके = आतंक से आच्छादित (भयभीत) । संक = संदेह । दुनी = दुनिया (संसार) । निरभै = (निर्भय) निडर ।

विवे०—उक्त तीनों उदाहरण बिलकुल स्पष्ट नहीं हैं । 'भूषण' का तात्पर्य यह जान पड़ता है कि और लोगों को सुखी अथवा निर्भय दिखाकर अपने दुःख और भय को लक्षित कराना ही इनमें अप्रस्तुत वर्णन में प्रस्तुत है पर यह अलंकार का विषय न होकर व्यंग्य का विषय है ।

१७२. जहाँ वर्णनीय का कथन वचन की रचना (घुमाव-फिराव) से किया जाय, वहाँ पर्यायोक्ति होती है ।

१७३. घन बन = घोर जंगल । हरम = (अ०) जनानखाना (संज्ञा पुँलिंग) । हबसी = अफ्रिका के निवासी । घन बन·········हबसीन के—हबसियों के जनानखाने जंगलों में मारे-मारे फिरते हैं । परवाह=(सं० प्रवाह) धारा । बहे = बह निकले । रुधिर = खून । बैयर = (सं० वधूवर) स्त्री । बैरी·········के—वैरियों की स्त्रियों के हाथ में चूड़ियों का चिह्न नहीं है (उनके पति मर गए हैं, वे विधवा हो गई हैं) । रोस = (सं० रोष) क्रोध जमनी = मुसलमानों की स्त्रियाँ । सिंदूर के·····जमनीन के—मुसलमान स्त्रियों के मुखचंद्र पर सिंदूर का टीका लगा हुआ देखा जाता है (मुसलमान स्त्रियाँ सिंदूर का टीका इसलिये लगा लेती हैं कि लोग हमें हिंदू समझ लें और मुसलमान समझकर वे लोग जो कष्ट देते हैं उससे हम बच जायँ) ।

विवे०—यहाँ बीजापुर की स्त्रियों का विधवा होने और यवनियों का अपने को छिपाने का वर्णन घुमा-फिराकर किया गया है । यह पहली पर्यायोक्ति है ।

१७४. साहिन के सिच्छक = राजाओं को शिक्षा देनेवाले । पातसाह = बादशाह । संगर = युद्ध । सिंह के से = सिंह के समान (पराक्रमपूर्ण) ।

काँपत रहत = डर से काँपते रहते हैं। चाव = उमंग। चित गहत न चाव हैं= चित्त से उत्साहित नहीं होते (पस्तहिम्मत हो गए हैं)। अगति = दुर्गति, दुर्दशा। अपति = अप्रतिष्ठा। बिपति = आपत्ति। पक्का=दृढ़। मतो=निश्चय। पक्का मतो करिकै = दृढ़ निश्चय करके। मलेच्छ = मुसलमान। मनसब = पद। मक्का = मुसलमानों का पवित्र धार्मिक स्थान जो अरब में है। मिस = बहाना। दरियाव = समुद्र। मक्का......दरियाव है-मक्का जाने का बहाना करके समुद्र पार हो जाते हैं (क्योंकि धार्मिक स्थानों को जानेवाले यात्रियों को शिवाजी दंड नहीं देते थे)।

विवे०—यहाँ मक्का जाने के बहाने से प्राण बचाना दूसरी पर्यायोक्ति है।

विशेष—कई प्रतियों में यह छंद कैतवापह्नुति में दिया हुआ है, पर इसमें अपह्नुति है ही नहीं।

१७५. जहाँ स्तुति में निंदा और निंदा में स्तुति का कथन किया जाय वहाँ व्याजस्तुति होती है। (अस्तुति = स्तुति)।

१७६. हुन्नै = अशर्फी। सुबरन = सोना और सुंदर अक्षर। परखि = जाँचकर। लाख = लाख रुपया और लाख (चपड़ा)। रुख = रूक्ष (रूखे व्यक्ति) और वृक्ष। लाख दीबे को सचेत हौ = लाख रुपये देने के लिये समर्थ हो। दुनी = (दुनिया) संसार। रीझि = प्रसन्न होकर। हाथी देना = गज देना और हाथ मिलाना। हाथी हमैं सब कोऊ देत = सब लोग हमसे हाथ मिलाते हैं। कहा = क्या। हाथी = गज। तुमहियै = तुम्हीं।

विवे०—यहाँ पर दोहरे अर्थवाले शब्दों के बल से शिवाजी के दान को साधारण बताकर निंदा की गई है; पर वास्तविक अर्थ का ग्रहण करने से स्तुति स्पष्ट हो जाती है।

१७७. जागत रहत = सावधान रहता है। वेऊ = शत्रु भी। जागत रहत = डर के कारण (रातोदिन) जागरण करते हैं। बन-रत = जंगल में अनुरक्त हुए (वन में मारे मारे फिरते हुए)। रज = (रजस्) राजत्व, रजपूती। रज-भरो = क्षत्रियत्व-युक्त। रज-भरे = धूल से मलिन। देह = शरीर। दरी = गुफा। बिचरत हैं = घूमते हैं। सूर-गन = वीर लोग।

विदारि = मारकर। विहरत = विहार करता है (आनंदित होता है)। सूर-मंडल = वीरों का समूह और सूर्य-मंडल। विदारि = वेधकर। सुर-लोक-रत हैं = स्वर्ग को जाते हैं। सूर-मंडलै ·······सुर-लोक-रत हैं—शत्रु सूर्य-मंडल को वेधकर स्वर्ग जाते हैं (युद्ध-क्षेत्र में मरनेवाले वीरों के लिये लिखा है कि वे सूर्य के मंडल को वेधते हुए स्वर्ग पहुँचते हैं)। काहे तें = क्यों। गाजी = धर्म-युद्ध-वीर। अरिवर = श्रेष्ठ शत्रु। सरिबर = बराबरी। सरिबर-सी करत हैं = मानो बराबरी करते हैं।

विवे०—यहाँ शत्रुओं की स्तुति में उनकी निंदा से तात्पर्य है।

१७८. जहाँ कथितार्थ की विशेषता के लिये निषेध-सा हो वहाँ आक्षेप होता है। इसे उक्ताक्षेप कहते हैं।

प्रतिषेध = निषेध। सुमेध = अच्छी बुद्धिवाले। (आक्षेप = चारों ओर से फेंकना)।

१७९. भिरौ = भिड़ो (लड़ो)। भिरे = युद्ध करने से। दरीन दुरौ = गुफाओं में छिपो। दरिऔ = गुफा को भी। दरियाव = समुद्र। लंघौ = पार करो। लघुता = शीघ्रता, फुर्ती। सीछन = (सं० शिक्षण) शिक्षा। सीछन-काज = शिक्षा देने के लिये। वजीर = प्रधान मंत्री। कढ़े बोल = वचन कहे जाते हैं। छूटि ·····परनालो—यदि परनाले का किला चला गया तो चला जाने दो। सलाह की राह गहौ = संधि कर लो।

विवे०—यहाँ 'जाय भिरौ' कहकर 'न भिरे बचिहौ' से निषेध किया गया है; क्योंकि शिवाजी की प्रबलता की, जो कथितार्थ है, विशेषता दिखानी है।

१८०. जहाँ निषेध का आभास-मात्र वर्णन किया जाय वहाँ दूसरा आक्षेप होता है। इसे निषेधाक्षेप कहते हैं।

१८१. पछाँह = पश्चिम। हरते = हरण कर लेते (जीत लेते) अवरंग = औरंगजेब। जीति लीबे को = जीतने के लिये। पुरतगाल = पुर्तगाल (योरप के दक्षिण-पश्चिम का एक देश)। सागर उतरते = समुद्र पार कर जाते। मुहीम = (अ०) आक्रमण। मुहीम-काज = चढ़ाई करने के लिये। हजरत = श्रीमान्। चाकर = नौकर। उजुर = नकार। नेक = कुछ भी। उबरते = बच जाते। घने = बहुत से।

विवे०—यहाँ 'हम मरिबे तें नाहिं डरते' में मरण-भय का निषेध तो केया गया है पर वस्तुतः वह आभास-मात्र है। शिवाजी के डर से ही वे उनपर चढ़ाई करने नहीं जाते।

१८२. जहाँ द्रव्य, क्रिया और गुण में कार्य-विरोध होता है वहाँ वेरोध होता है।

१८३. तो = (सं० तव) तुम्हारे। सेत = (सं० श्वेत) सफेद। जस-ाल सों······कारे—अर्थात् शिवाजी का यश होता है और इनका अप-ाश। अरुन्न = (सं० अरुण) लाल। कुनबा = कुटुंब। सपेत······सारे—शिवाजी के प्रताप से भयभीत होने से चेहरा सफेद पड़ गया है। तनै = न। कृसानु = अग्नि। गरे = गल गए। पानिप = पानीदार और कांति-ान्। अचंभव = अचंभा। तिन = (सं० तृण) तिनका। तिन ओंठ गहे = ोंठ में तिनका लिए हुए, दीनता धारण किए हुए (ओंठ में तृण लेने का ाव यह होता है कि हम तृन-भक्षी अबोध पशुवत् हैं)। शिवाजी की क्रोधाग्नि ं पानीदार शत्रु तो जल गए पर तृणधारी नहीं जले (शिवाजी घमंडियों को ार डालते हैं और दीन बनकर शरणागत होनेवालों की रक्षा करते हैं)।

विवे०—यहाँ 'उज्ज्वल यश से वैरियों का मुख काला होना' कारण के ण से कार्य के गुण का विरोध है; और कोपाग्नि से पानीदारों का जलना एवं णधारियों का न जलना क्रिया की विरुद्धता है।

१८४. जहाँ विरोध न होकर उसका आभास-मात्र हो वहाँ विरोधाभास लंकार होता है। (विरोध + आभास = विरोधाभास)।

१८५. दच्छिन नायक = दक्षिण देश का राजा और कई स्त्रियों से मान प्रेम रखनेवाला पति। भुव-भामिनि = पृथ्वी रूपी स्त्री। अनुकूल = आफ़िक, और एक-स्त्री-व्रत (पति)। दीन = धर्म। म्लेच्छ के दीनहिं = सलमान धर्म को, इस्लाम का। सूर-सुवंस = सुंदर सूर्य-कुल। सूर-सिरो-णि = वीर श्रेष्ठ। कुलचंद = कुल-श्रेष्ठ।

विवे०—यहाँ दक्षिण नायक का अनुकूल होना, दीनदयाल का दीन को ारना तथा सूर्यवंश में होकर कुलचंद कहाना विरोध का आभास

विशेष—यह विरोधाभास जाति, गुण, क्रिया और द्रव्य में होता है, अतः इसके दस प्रकार होते हैं।

१८६. (वि + भावना = विशेष कल्पना) यह कल्पना कारण और कार्य के संबंध में होती है। जहाँ विना कारण के ही कार्य का होना वर्णन किया जाय वहाँ (प्रथम) विभावना होती है।

१८७. मीर = सरदार। गन = समूह। भारो = भारी। हरि लयो = हरण कर लिया। गारो = (सं० गर्व) घमंड। दीन्हों कुज्वाब = बुरा जवाब दिया (मुँहतोड़ उत्तर दिया)। दक्खिननाथ = (दक्षिण के स्वामी) शिवाजी। मुँह काला करना = कलंकित कर देना। नायो न माथहि = मस्तक नहीं नवाया (अधीनता नहीं स्वीकार की)। फौज = सेना। हथ्यारो = हथियार।

विवे०—यहाँ फौज कारण के विना निर्भय रहना कार्य कथन हुआ है।

१८८. सहज = साथ ही उत्पन्न, प्राकृतिक। ऐन = ठीक। अनरीझे = विना प्रसन्न हुए। हरै = हरण करता है। अनखीझे = विना क्रुद्ध हुए।

१८९. कारण अपूर्ण होते हुए भी कार्य हो जाय अथवा कार्य का जो वास्तविक कारण नहीं है उससे भी उस कार्य की उत्पत्ति कही जाय, इस प्रकार दो (द्वितीय एवं चतुर्थ) विभावनाएँ और होती हैं।

१९०. जोर = बल। करवार = (सं० करवाल) तलवार। हिंदुवान-खंभ = हिंदुओं के स्तंभ। गढ़पति = किलों के स्वामी। दलथंभ = सेना के अवलंब (ये शिवाजी के विशेषण हैं)। भरैया······अपार को—अपार यश का भरण किया (खूब यश फैलाया)। मनसबदार = पदाधिकारी। गँजाय = गंजन करके, मारकर। मचाय महाभारत के भार को = महाभारत के समान युद्ध ठानकर। तो सो को = तेरे समान कौन है। जंग = युद्ध। असवार = अश्वारोही, घुड़सवार।

विवे०—'दो सौ पैदल सेना' सौ हजार घुड़सवारों के जीतने के लिये अपूर्ण है।

१९१. ता दिन = उस दिन। अखिल = समस्त। खलभलैं = घबड़ा जाते हैं। खल = दुष्ट। खलक = संसार। गाजी = धर्म-युद्ध-वीर। नेक = थोड़ा भी। करखत है = क्रुद्ध होते हैं। नगारा = धौंसा। अगार = (सं० आगार)

महल । तजि = छोड़कर । दारगन = स्त्रियों का समूह । भाजत = भागती हैं । बार = दिन । न बार परखत = दिन को नहीं परखतीं (कि आज महल से बाहर निकलना चाहिए या नहीं)। बार = (सं० द्वार) घर । छूटे बार = घर छूट गए। बार छूटे = बाल खुले हुए हैं । बारन तें = केशों से । लाल = मणि (छूटे) । हरखत = प्रसन्न होता है । उतपात = उपद्रव । कारे घन = काले बादल (जल से भरे हुए) । क्यों न उतपात......बरखत है—शत्रुओं के यहाँ उत्पात क्यों न हों (होना ही चाहिए) क्योंकि काले (पानी से भरे) बादलों से अंगारे (आग की चिनगारियाँ) बरसते हैं (बालों का समूह बादल है और लालमणियाँ अंगारों की भाँति टपकती है—यदि बादलों से आग बरसे तो कोई दुर्घट-घटना होनी ही चाहिए क्योंकि ऐसी अनहोनी बात उत्पात का ही प्रदर्शन करती है) ।

विवे०—यहाँ बादल अग्नि के उत्पन्न करने का कारण नहीं है पर उससे आग उत्पन्न हो रही है ।

१९२. जहाँ कार्य से कारण प्रकट हो वहाँ एक और (षष्ठ) विभावना होती है ।

सयाने = (सं० सज्ञान) बुद्धिमान् । लोय = लोग ।

१९३. अचरज = आश्चर्य । कृपान = तलवार । धुव (सं० ध्रुव) अटल । धूम = धूआँ । प्रताप-कृसान = प्रताप रूपी अग्नि । तव कृपान......कृसान —आपके तलवार रूपी अटल धूएँ से प्रताप रूपी अग्नि उत्पन्न हुई (आपने तलवार के बल से प्रताप फैलाया है) । तलवार का रंग काव्य में काला माना गया है, अतः उसको धुआँ कहा गया ।

विवे०—अग्नि से धुएँ की उत्पत्ति होती है, पर यहाँ धुएँ से अग्नि की उत्पत्ति कही गई है ।

१९४. पुनीत = पवित्र । धाम = घर । पातक = पाप । कटत है = दूर हो जाता है । जस-काज = यश के कार्य । उचटत है = हट जाता है । तेरो जस......उचटत है—आपके यश-कार्य देखकर प्रसिद्ध दानी राजा भोज और पराक्रमी विक्रमादित्य का यश-वर्णन करने से कवियों का मन हट जाता है (क्योंकि आपके कार्य उनसे बढ़कर हैं) । दान-संकलप-जल = दान देते

समय संकल्प करने में जो जल हाथ में लिया जाता है। मही = पृथ्वी। लपटत = लिपटता है। अचरज लिपटत है = आश्चर्य होता है। नद = बड़ी नदी। कोकनद = कमल। और नदी..... प्रगटत है—और नदियों में कमल उत्पन्न होते हैं पर आपके कर-कमल से नदियाँ निकलती हैं (इतना संकल्प करते हैं कि संकल्प-जल से नदियाँ बह चलती हैं)।

१९५. जहाँ समर्थ कारण होने पर भी कार्योत्पत्ति न हो, वहाँ विशेषोक्ति होती है।

१९६. नरेस = राजा। उदार = दानी। कोटिन दान = करोड़ों रुपये का दान। बिचलायो = विचलित कर दिया। कोटिन...बिचलायो—शिवाजी ने अपने सिपाहियों को करोड़ों का दान देकर राजाओं को भी विचलित कर दिया (वे भी शिवाजी के सिपाही बनने को उद्यत हो गए)। गरीबन = दीन-हीन (निर्बल)। भिरि = भिड़कर, लड़कर। बलवंत = बलवान। गनायो = गिना गया (समझा गया)। दौलति = संपत्ति। नेक = थोड़ा भी। गुमान = घमंड।

विवे०—इंद्र के समान संपत्ति होना घमंड होने का पूर्ण कारण है, फिर भी कार्य नहीं हुआ।

१९७. जहाँ कोई अनहोनी बात कही जाय वहाँ असंभवालंकार होता है। अनहूबे की बात = अनहोनी बात।

१९८. पछिताात = पश्चात्ताप करता है। जतन = (यत्न) उपाय। लेइ गो = (क्या जाने) ले जाय। को जानै = कौन जानता है।

विवे०—यहाँ 'कौन जानता है शिवाजी एक ही रात में सब किले ले ले' यह असंभव कथन है।

१९९. जसन = (जशन) जलसा, धार्मिक उत्सव। जलूस = उत्सव में संमिलित होनेवाले लोगों का समूह। जोऽब = जो अब। सोऊ = (सं० सोपि) वह भी। तुजुक = प्रबंध। लरजा = (फा० लर्जीदन) काँपना। नेकहू न लरजा = जरा भी नहीं काँपा। ठान्यो न सलाम = सलाम न की। भान्यो = तोड़ा। इलाम = (अ० ऐलान) आज्ञा। धूम-धामकै = जोर-शोर से। रामसिंह = जयपुर महाराज जयसिंह के पुत्र। बरजा = मना किया हुआ। दिगंत = (दिक्+अंत) दिशा के अंत के, संसार भर के। दंत तोरि = दाँत तोड़कर

(अभिमान तोड़ करके)। तखत = राजसिंहासन। तखत तरे तें = तख्त के नीचे (पास) से।

विवे०—'सबको जीतनेवाले औरंगजेब के दाँत खट्टे करके निकल आना' असंभव कथन है।

२००. जहाँ कारण अन्यत्र और कार्य अन्यत्र वर्णन किया जाय वहाँ असंगति होती है। अनत = अन्यत्र, और कहीं। समोय = संयुक्त।

२०१. तुरंग = घोड़ा। ग्रीवा = (सं०) गर्दन। जात नै करि = झुक जाती है। गनीम = शत्रु। अतिबल = अत्यंत बलशाली (शिवाजी चढ़ाई करने के लिये चलते हैं तो शत्रु अधीनता स्वीकार कर सिर झुका देते हैं)। दरकति = फट जाती है। खरी = अत्यधिक। अखिल खल की = सब दुष्टों की। दौरि = आक्रमण करके। घाव = आघात। गई कटि नाक = नाक कट गई (इज्जत जाती रही)। सिगरेई = समस्त। सूरत जराई कियो = सूरत को जलाया। स्याही = कालिख। पातसाही = बादशाही। झलकी = चमकने लगी। सूरत जराई......झलकी—सूरत के जलने से बादशाह डरा इससे उसके हृदय में जलन हुई और पातशाही के मुख में कालिख इसलिये लगा कि वह सूरत को बचा न सकी।

विवे०—यहाँ शिवाजी का घोड़े पर चढ़ना कारण अन्यत्र और शत्रुओं की गर्दनें झुकना कार्य अन्यत्र वर्णन किया गया है।

२०२. जो कार्य जिस स्थान पर करना चाहिए वह वहाँ न करके किसी दूसरे स्थान पर किया जाय, यह दूसरी असंगति है। सगौर = विचारपूर्वक।

२०३. भूपति = राजा। अहं गली = (अहंकार गल गया) अभिमान दूर हो गया। अभंग = जो भंग न हो, जिसका कोई कुछ बिगाड़ न सके। जंग = युद्ध। फते = (फ़तह) जीत। संग ली = (जीत को) साथ में रखा है। पुहुमी = पृथ्वी। पुरहूत = इंद्र। खरगऊ = तलवार भी। दंगली = दंगल में लड़नेवाली (प्रबल)। सुंदरी = स्त्रियाँ। सुकुमारी = कोमल अंगवाली। थहरानी = काँप उठीं। अगार = महल। जंतु = जीव। जंगली = वन के। सत्रु के......जंगली--शत्रुओं को बरबाद कर दिया, अतः उनके महल खंडहर हो गए हैं और अब उनमें जंगली जानवर (लोमड़ी, सियार आदि) रहते हैं।

विवे०--राजमहलों में जंगली जानवर रखना योग्य नहीं था, पर शिवाजी ने ऐसा किया।

२०४. जहाँ कोई कार्य करते-करते दूसरा ही (विरुद्ध) कार्य कर डाले वहाँ तीसरी असंगति होती है।

२०५. नेकहु = थोड़ा भी। भापि सक्यो न = न कह सके। प्रवीन = चतुर, निपुण। उद्यत = तैयार। भीनो = सना हुआ, पगा हुआ। उद्यत होत......महारस भीनो—(क्योंकि) शिवाजी करने तो कुछ चलते हैं पर वीर-रस में पगे होने के कारण कुछ और ही कार्य कर डालते हैं। चकतै = औरंगजेब को। ह्याँ तें गयो......दुख दीनो—यहाँ से औरंगजेब को सुख देने (मित्र बनने) गए थे पर गुसलखाने में पहुँचते ही औरंगजेब को दुःख दिया (शिवाजी का व्यवहार देखकर बादशाह डर गया)। दरगाह = तीर्थ-स्थान। दिली-दरगाह = दिल्ली रूपी तीर्थस्थान (दिल्ली दरबार)।

विवे०—'गए थे मित्र बनने बना लिया शत्रु' यह विरुद्ध कार्य किया गया।

२०६. 'कहाँ यह बात कहाँ वह !' इस प्रकार जहाँ वर्णन किया जाय वहाँ विषमालंकार होता है।

२०७. जावली वार = जावली और पार। सिंगारपुर = कोंकन देश का एक नगर। राम के नैरि = रामनगर (एक छोटा कस्बा)। तैं = तूने। खवास खाँ = बीजापुर के प्रधान मंत्री खान मुहम्मद का पुत्र। डौंड़ियै = नगाड़ा ही। सैन = सेना। बापुरो = बेचारा। दामनगीर = पल्ला पकड़नेवाला (भिड़नेवाला)।

विवे०—यहाँ चौथे चरण में 'कहाँ कहाँ' कहकर दोनों में महदंतर दिखाया गया है।

२०८. बिगूँचे = (सं० विकुंचन) घर दबाया, दबोच लिया। नाँघत-नाँघत = पार करते-करते। हारि परे = थककर गिर पड़े। कूँचे = (अ० गुंचा= कली) महुवे के गुच्छे (वैशाख में जब महुवे फूले रहते हैं उस समय यदि संयोग से बादल गरज जाय तो सब गुच्छे गिर जाते हैं, इसे कूँचे कटना कहते हैं)। हारि परे यों कटे मनो कूँचे = वे लोग थककर इस प्रकार गिर जाते हैं मानों कूँचे कट गए हों। बिकरार = भयावह, विकट।

२०९. जहाँ दो अनुरूप (योग्य) वस्तुओं का संबंध उचित वर्णन किया जाय वहाँ समालंकार होता है।

२१०. पंजहजारिन = पाँच हजार सेना का मनसबदार। भेद = रहस्य। उजीर = (फा० वजीर) प्रधान मंत्री। बेहिसाब = अत्यधिक। रिसाया = क्रुद्ध हुआ। कम्मर = कमर। कटारी = छोटी तलवार। कम्मर की न कटाई दई = कमर की कटारी (शिवाजी को) नहीं दी गई (शाही कायदे के अनुसार वह रखवा ली गई थी)। इसलाम = मुसलमान-धर्म। इसलाम...... बचाया—गुसुलखाने में रहने के कारण इस्लाम की रक्षा हुई (अन्यथा सब चौपट हो गया था)। जोर = बल। जोर करता = बल दिखाता। अनरत्थ = अनर्थ। हथ्यार = हथियार।

२११. केतो गयो = कितना ही चला गया, कितना ही हाथ से निकल गया। सलाह = संमति (सुलह = संधि)। सलाह करै = मेल कर ले।

विवे०—भूषण के दोनों उदाहरण अस्पष्ट है। इनमें 'सम' की झलक मात्र है। यदि यहाँ यह कहा जाता है कि 'जैसा शिवाजी था वैसी उसकी सेना थी अथवा जैसा औरंगजेब था वैसे उसके सिपाही थे' तो सम होता।

२१२. जहाँ विपरीत फल की इच्छा करके कोई कार्य किया जाता है वहाँ विचित्रालंकार होता है।

२१३. जयसिंह = जयपुर के राजा मिर्जा जयसिंह (शिवाजी ने विवश होकर जयसिंह को किले दिए थे)। हेत = (हेतु) कारण, वास्ते। कैयो = कई। बार = देर।

विवे०—यहाँ शत्रु को किले देने से अपयश होना चाहिए था, पर शिवाजी ने यश की इच्छा करके उन्हें किले दिए; क्योंकि पीछे लड़कर उन्हें ले लिया, जिससे यश हुआ।

२१४. गिरीस = बड़ा पहाड़।

विवे०—यहाँ भी 'सौगुनी' बड़ाई लेने के लिये शत्रु को किले दिए गए हैं।

२१५. जहाँ इच्छित अर्थ से अधिक की प्राप्ति होती है वहाँ प्रहर्षण होता है। (प्र + हर्षण = आनंद)।

२१६. वितान = चँदोवा। चाँदनी वितान = प्रकाश का चँदवा। छिति =

पृथ्वी । छोर = किनारा, अंत । साहि ...... छाइयतु है—शाहजी के पुत्र शरजाह शिवाजी की कीर्ति से चारों तरफ चाँदनी का चँदोवा पृथ्वी के अंत तक छा जाता है (शिवाजी की कीर्ति चाँदनी की भाँति दिगंत तक फैली है)। चाहियतु है = चाहा जाता है। प्रमान = प्रमाण, परिमाण, अंदाज। रजत = चाँदी। हौंस = इच्छा। हयन = घोड़ों की। हेम = सोना। सदाई = (सदा ही) सदैव। भाइयतु हैं = शोभा पाते हैं।

विवे०—यहाँ 'चाँदी की इच्छा करने पर सोना मिलना' और 'घोड़ा चाहने पर हाथी पाना' प्रहर्षण है।

२१७. जहाँ इच्छित अर्थ के विरुद्ध कार्य-लाभ हो वहाँ विषादन होता है। (विषादन = विषाद = दुःख)।

२१८. दारा = औरंगजेब का बड़ा भाई। दारि = कुचलकर, पीसकर। मुराद = औरंगजेब का छोटा भाई। संगर = युद्ध। साहसुजै = शाहशुजा, औरंगजेब का बड़ा भाई। विचलायो = विचलित कर दिया, पैर उखाड़ दिए (हरा दिया)। कै कर मैं = हस्तगत करके (अधीन करके)। दौलति = संपत्ति। नौरंग = औरंगजेब। न भयो मन भायो = मन चाहा नहीं हुआ। पठाई हुती = भेजी थी। गाँठहु के = अपनी गाँठ के भी (अपने भी)। गँवायो = खो दिया।

विवे०—यहाँ फौज तो गढ़ लेने के लिये भेजी गई थी पर घर के किले भी चले गए, यही विषादन हुआ।

२१९. रस रुद्र = रौद्र-रस (वीरता)। तिरे = पार करने लगे। बूड़े = डूब गए। (सागर के पार जाने पर भी शिवाजी की धाक से निर्भय नहीं हो पाते)।

विवे०—यहाँ समुद्र पार करते हुए उसमें डूब जाना 'इच्छितार्थ' से विपरीत फल की प्राप्ति कथन हुई है।

२२०. जहाँ बड़े से बड़े आधार से आधेय को बढ़कर वर्णन किया जाय वहाँ अधिकालंकार होता है।

२२१. बासी = बसनेवाला, रहनेवाला। न समात = नहीं अँटता।

विवे०—त्रिभुवन बड़े से बड़ा आधार है; यश आधेय उससे बढ़कर वर्णन किया गया है।

२२२. सलीलसील = (सं० सलिलशील) जल बहते हुए (मदगलित)। जलद = बादल। नील = काले। डील = शरीर। पव्वय = पर्वत। पील = हाथी। सहज.........अकुलात है—सहज सलिलशील (जलमय) बादलों की भाँति (मदगलित और) काले शरीरवाले एवं पर्वत के समान (भारी) हाथो देने में वह अकुलाता नहीं (निःसंकोच दे डालता है)। कंचन = सोना। ढेर = राशि (समूह)। सुमेरु = सोने का पहाड़। लखात है = दिखाता है। सवाई = (सवा गुना); जयपुर के राजाओं की उपाधि (भूषण ने शिवाजी की विशेपता दिखाने के लिये इनके लिये भी इस उपाधि का प्रयोग कर दिया है)। कासों = किससे। कविताई = कविता। हाथ की बड़ाई = हाथों का बड़प्पन (दान के कारण उत्पन्न)। जस-टंक = थोड़ा-सा यश। साती दीप = जंबू, प्लक्ष, शाल्मली, कुश, क्रौंच, शाक और पुष्कर द्वीप। नवखंड = पृथ्वी के नौ भाग (भरत, इलावृत्त, किंपुरुष, भद्र, केतु-माल, हरि, हिरण्य, रम्य और कुश)। महिमंडल = भू-मंडल। ब्रह्मांड = चौदहो भुवनों का मंडल, सपूर्ण विश्व। समाना = अँटना।

२२३. जहाँ परस्पर में एक दूसरे का उपकार वर्णन किया जाय वहाँ अन्योन्य होता है।

२२४. तो = (सं० तव) तुम्हारा। कर = हाथ। छिति = पृथ्वी। छाजत = शोभित होता है। तैं ही = तू ही। गुनी की बड़ाई सजै = गुणियों की बड़ाई करता है। अरु = और। गजैं = गरजते हैं। गाजै = गरजता है।

विवे०—यहाँ हाथ से दान की बड़ाई और दान द्वारा हाथ का बड़प्पन होने से परस्पर में उपकारता है।

२२५. जहाँ किसी आधार के विना आधेय का वर्णन किया जाय वहाँ विशेषालंकार होता है।

२२६. सिव = शिवाजी। जंगि जुरि = युद्ध करके। चंदावत = राज-पूतों का एक कुल। रजवंत = राजपूत। राव = छोटा राजा। अमर = अमर सिंह। गो = गया। अमरपुर = स्वर्ग। समर = युद्ध-क्षेत्र। रजतंत = (सं० राजतत्त्व) वीरता।

विवे०—यहाँ अमरसिंह आधार के चले जाने पर भी वीरता आधेय का रहना कथन किया गया है।

२२७. कतलाम = (अ० कत्लेआम) सबका वध, सर्व-संहार। करवाल = तलवार। गहि = लेकर। सुभट = शूर-वीर। सराहे = प्रशंसित। ढाहे = मारकर गिरा दिए। फर = बिछावन (यहाँ रणक्षेत्र)। भट = योधा। उदभट= पराक्रमी। धाक = आतंक। मारु = मार। अमरपुरै गे = स्वर्ग चले गए। अजौं = आज भी। मारु मारु = मारो मारो। शोर = आवाज।

विवे०—'मार के करैया' आधार के स्वर्ग चले जाने पर भी 'मारु मारु' आधेय का वर्णन किया गया है।

२२८. (जहाँ एक वस्तु का एक ही समय में एक ही प्रकार से अनेक स्थानों में स्थित होना कहा जाय वहाँ द्वितीय विशेष होता है)। कोट-गढ़ = किले। माल = द्रव्य। मुलुक = देश। सरकतु है = खिसकता है। पीछे ही को सरकतु है = पीछे ही को हटता जाता है। रेवा = नर्मदा नदी। हरकतु है = रुक जाता है। पेसकसैं = (फा० पेशकश) नज़र, भेंट। याकी = इसकी। धरकतु है = धड़कती (खटकती) रहती है। धाक धरकतु है = धाक जमी है (धाक से डरते रहते हैं)। या = इस। जहान = संसार। हिए = हृदय में। खरकतु है = खटकता है (डर से सबके चित्त में चढ़े रहते हैं)। कौन......खरकतु है—सबको खटकते हैं।

विवे०—यहाँ एक शिवाजी का एक ही समय में एक ही प्रकार से सबके चित्त में चढ़ा रहना कहा गया है।

२२९. जहाँ पर एक पदार्थ जिस कार्य का करनेवाला हो वह उससे विरुद्ध कार्य भी करे वहाँ व्याघातालंकार होता है।

२३०. ब्रह्म =ब्रह्मा। रचै = सृष्टि करते हैं। पुरुषोत्तम = विष्णु। पोसत = पालन करते हैं। सँहारनहारे = नाश करनेवाले। हरि = विष्णु। सँवारे = किए। हरिवारे = विष्णुवाले। अवनी = पृथ्वी। जवनी = मुसलमान स्त्रियाँ। हहा = हाय हाय। भतार = (सं० भर्त्तार) पति। बिचारे = दीन-हीन। मारु = मारो।

विवे०—प्रतिपालन करनेवाले शिवाजी का लोगों को मारना विरुद्ध कार्य हुआ।

२३१. कसत मैं = (कमर में) कसने से । बलंद = ऊँचा । सरस = बढ़कर । रूप = आकार । भरत है = भर देता है । सघन = कठोर । सदाई = सदैव । जस-फूलन = यश से होनेवाली प्रसन्नता । कृपान = कटार (छोटी तलवार) । केते मान = क्या हैं । जोरावर = प्रबल । निदरत है = निरादर करता है । ढाल = रक्षक । हाल = अब । म्लेच्छन के काल को करत है = मुसलमानों को मारता है ।

विवे०—यहाँ भी संसार का रक्षक मारता है ।

२३२. जहाँ पूर्वकथित वस्तु उत्तरकथित का अथवा उत्तरकथित वस्तु पूर्वकथित का कारण, धारा (माला) के रूप में कथन हो वहाँ गुंफ (कारण-माला) होता है ।

(गुंफ = गुत्थमगुत्था, गुच्छा । नेतु = निश्चय) ।

२३३. जोर = अत्यंत । गाई = गाता है (कहता है) । सवाई=सवाया ।

विवे०—यहाँ प्रथम प्रकार का गुंफ है ।

२३४. किरवान = (कृपाण) तलवार । जाहिर = प्रकट ।

विवे०—यह भी प्रथम प्रकार है, द्वितीय प्रकार का उदाहरण नहीं दिया।

२३५. जहाँ अर्थों की पंक्ति प्रथम वर्णन करके छोड़ दी जाय और फिर उसको ग्रहण किया जाय वहाँ एकावली होती है । एकावली भी माला रूप में गुँथी रहती है । इसमें पूर्वकथित वस्तु में उत्तरकथित वस्तु विशेषण-भाव-द्योतक होती है ।

कारण-माला में कारणों की माला होती है और यहाँ विशेष्य-विशेषण-भाव होता है ।

२३६. तिहुँ भुवन = त्रिलोक । नरलोक = मनुष्य-लोक (मर्त्य-लोक) । पुन्य-सुसाज-मै = पुण्य और सुंदर सामग्री से युक्त । लसै = शोभित होता है । महि = पृथ्वी (यहाँ महाराष्ट्र-भूमि) । समाज = समूह । महिमै = महिमा में । महारज-लाजमै = लज्जामय रजपूती । रज-लाज = रजपूती की लज्जा । राजत = शोभित ।

विवे०—यहाँ त्रिभुवन आदि प्रथम कथित वस्तुओं में नरलोक आदि उत्तरकथित वस्तुओं का विशेषण-भाव से कथन है ।

२३७. दीपक और एकावली मिलने से माला-दीपक होता है। अर्थों का उत्तरोत्तर उत्कर्ष कथन करने से सार बनता है।

२३८. सिव = शंकर। साधु-जन-सेवा = महात्माओं की सेवा। महिमे-वाने = महिमावान ने। पातसाह-लेवा = बादशाही को लेनेवाले। बावन = ५२। सेवा = शिवाजी।

विवे०—यहाँ 'जीतना' धर्म तो दीपक का द्योतक है और श्रृंखला एकावली से आई है।

२३९. आदि = सबसे पहले। विरंचि = ब्रह्मा। जीव जड़ो = जीव और जड़, जड़-चेतन। जीव = चेतन। काहे तें = क्योंकि। ता उर ज्ञान गड़ो है = उसके हृदय में ज्ञान भरा है। जीवन = चेतनों में। पैज = (सं० प्रतिज्ञा, प्रा० पइज्जा) प्रण। पैज अड़ी है = प्रतिज्ञा पर अड़ते हैं, प्रण पूर्ण करते हैं (इसलिये)।

विवे०—यहाँ सृष्टि से लेकर शिवराज तक सब बातें उत्तरोतर उत्कर्ष सूचक हैं। 'सार' अपकर्ष का भी होता है। (सार = तत्त्व)।

२४०. जहाँ कुछ वस्तुओं का वर्णन करके उनके अर्थ क्रम से कहकर मिलाए जायँ वहाँ यथासंख्य होता है।

२४१. चहौ = चाहते हो। गहौ = ले लेते हो (छीन लेते हो)। संके = डरे। दल = सेना। दुवन = शत्रु। बड़े उर के = बड़े हृदयवाले (हिम्मती)। धीर धरैया = धैर्य धारण करनेवाला। धुर = धुरा। धरैया धीर-धुर के = धैर्य की धुरा धारण करनेवाले, बड़े धैर्यवान। कूटे = मारा, जूटे = मिला लिया। खाँड़े = तलवार को धार पर उतार दिए (काट डाले)। छाँड़े = छोड़ दिए। डाँड़े = डित किए। उमराव = बड़े सरदार। दिलीसुर = (दिल्लीश्वर) औरंगजेब।

विवे०—यहाँ अफजल खाँ, रुस्तमे जमाँ और फतेह खाँ से संबंधित कूटना, लूटना और जूटना क्रियाएँ उसी क्रम से हैं जिस क्रम से इनका नाम है। इसी प्रकार चतुर्थ चरण में भी 'खाँड़े' का संबंध अमरसिंह से, 'छाँड़े' का मोहकमसिंह से और 'डाँड़े' का बहलोल खाँ से है।

२४२. जहाँ एक (वस्तु) अनेक में (क्रमशः) रहे अथवा एक (वस्तु) में अनेक रहें वहाँ पर्यायालंकार होता है।

२४३. जीत = विजय। छत्रपति = छत्र धारण करनेवाले (राजा)। तजि = त्यागकर। ताहू को = औरंगजेब को। माँड़ना = (सं० मंडन) शोभित करना। रही·········माँड़ि—शिवाजी के हाथ को शोभित कर रही है।

विवे०—यहाँ प्रथम प्रकार (एक के अनेक में रहने का) है।

२४४. अगर = (सं० अगुरु) एक सुगंधित पेड़ की लकड़ी। धूर = सुगंधित द्रव्य। धूम = धुआँ। बगूरे = (बगूले) बवंडर। अमाप = बिना माप के, भारी। अगर······अमाप हैं = जहाँ अगर के धूप का धुआँ होता था (सुगंधित द्रव्य जलाए जाते थे) वहाँ (धूल के) भारी बवंडर उठते हैं (शत्रु के सुंदर राज-प्रासाद खंडहर हो गए हैं)। कलावँत = (कलावंत) गवैये। अलापैं = गाते थे। मधुर स्वर = मीठी ध्वनि से। डेरा = वासस्थान। सराप = (श्राप) शाप। डेरन में······सराप हैं—मानों किसी के शाप से नष्ट हो गए हैं। बाजत हे = बजते थे। मृदंग = एक बाजा। गाजत = गरजते हैं। मतंग = हाथी। दीह = (सं० दीर्घ) बड़ा। दाप = (सं० दर्प) घमंड। गाजत······दाप हैं—हाथी और सिंह जोरों से गरजते हैं (वहाँ जंगल हो गया है)।

विवे०—यहाँ 'एक' महल में 'अनेक' के रहने का वर्णन होने से दूसरे प्रकार का पर्याय है।

२४५. जहाँ एक बात (वस्तु) देकर दूसरी बात बदले में ली जाय वहाँ परिवृत्ति अलंकार होता है। (परिवृत्ति = विनिमय, लेन-देन)।

२४६. दच्छिन-धरन = दक्षिण को धारण करनेवाला (शिवाजी)। धीर धरन = धैर्य धारण करनेवाला। गढ़धर = क़िलेदार। धरम = धर्मराज, यमराज। धरम-दुवारु दै = धर्मराज का दरवाजा देकर (यमलोक भेजकर)। नरनाह = (सं० नरनाथ) राजा। महाबाहु = पराक्रमी। मारु दै = मार देकर (चोट करके)। संगर = युद्ध। सार = तेज। सार हरि लेत = तेज हर लेते हैं। सारु = (सार = लोहा) हथियार। सारु दै = हथियार चलाकर। जय = जीत। हर = महादेव। हारु = माला (मुंडमाला)। हर-गन = शिवके गण (भूत प्रेतादि)। अहारु = भोजन। हरजू······अहारु दै—शिवजी को मुंडों की माला और शिवजी के गणों (भूत प्रेतादिक) को आहार देकर।

विवे०—यहाँ धर्मराज का द्वार देकर गढ़ लेना आदि परिवृत्ति है। इसे 'विनिमय' भी कहते हैं।

२४७. जहाँ अन्यत्र से किसी वस्तु का वर्जन करके उसका एक ही स्थान पर वर्णन किया जाय वहाँ परिसंख्या-अलंकार होता है। अनत = अन्यत्र। दिलदौर = रसिक। (परिसंख्या = गिनती)।

२४८. दुरदै = (सं० द्विरद) हाथी ही। तुरग = घोड़ा। परकीति = (सं० प्रकृति) बान, स्वभाव। पर = शत्रु और पंख। पर लगैं बानन मैं = कोई किसी का पर (शत्रु) नहीं है, बाणों में ही पंख लगते हैं। कोक = चक्रवाक। पच्छिनहिं माहि = पक्षियों में ही। बिछुरन = बिछुड़ने की रीति। लोक = लोग। कदली = केला। बारि-बुंद = आँसू, और जलबिंदु। बारि-बुंद बदली मैं = कोई रोता नहीं केवल बादलों से जल गिरता है। अदली = (फा० अदल) न्याय करनेवाला।

विवे०—'शिवाजी के राज में कोई मतवाला नहीं है केवल हाथी ही मतवाले हैं' में मतवालेपन का अन्यत्र से वर्जन करके हाथी में उसका वर्णन किया गया है। इसी प्रकार और भी समझ लेना चाहिए।

२४९. जहाँ 'या तो वह अथवा यह करो' ऐसा कथन हो वहाँ विकल्पालंकार होता है।

२५०. दिलीस = औरंगजेब। पै = पास। चितचाह = मनोभिलाष। रिझाए = प्रसन्न करने पर।

२५१. नारि = स्त्री। नरेसन = राजाओं को। सिख = शिक्षा। मंगन = भिक्षुक। दंत गहौ तिन = दीनता दिखाओ। कंत = पति। अनंत = असंख्य। सौं = (सौंह) सौगंध। अनंत महा सौं = असंख्य और भारी कसमें हैं। कोट गहौ = किले का आश्रय लो। बन-ओट गहौ = वन में छिपकर रहो। जोट = झुंड। राह = उपाय।

विवे०—भूषण के उपर्युक्त दोनों उदाहरण अशुद्ध है। क्योंकि उन्होंने शिवाजी के संबंध की बात निश्चयात्मक कह दी है।

२५२. जहाँ अन्य कारण के मिलने से कार्य बहुत सरल हो जाय वहाँ समाधि अलंकार होता है।

२५३. चाहत हो = चाहता था। अरि = शत्रु (अफजल खाँ)। बाह्यो = चलाया। कटार = छोटी तलवार। कठैठो = कठोर। रोस = (सं० रोष) क्रोध। अठपाव = (सं० अष्टपाद) उपद्रव। उमैठो = मरोड़ा। घाय = घाव। धुक्योई = डरा ही था। धरक्क = धड़क। तौ लगि = तब तक। धरा धरि = पृथ्वी पकड़कर।

विवे०—यहाँ चारों चरणों में समाधि है। 'शिवाजी वैर करना चाहते थे' यह कार्य अफजल खाँ के तलवार चलाने पर सुगम हो गया। इसी प्रकार और भी समझना चाहिए।

२५४. जहाँ एक बार (समय) में ही बहुत कार्यों का बंधान कथन किया जाय वहाँ समुच्चय होता है। मतिबंध = बुद्धिमान्। (समुच्चय = समूह)।

२५५. माँगि पठायो = मँगा भेजा। अजानन = (सं० अज्ञान) मूर्ख और (अजा + आनन) बकरे के मुँहवाले (बकरे की सी डाढ़ीवाले मुसलमान)। बोल गहे ना = ध्यान नहीं दिया और बोले नहीं (अजानन होने से)। दौरि = चढ़ाई करके। दोय = दो। खाक = धूल। मुख आयगो खान खवास के फेना = खवास खाँ के मुख में फेना आ गया (वह बेहोश होकर गिर गया और मुख से फेना निकलने लगा)। भै भरकी = भय से भड़क गई। करकी = टूट गई (छिन्न भिन्न हो गई)। धरकी = धुकधुकाने लगी। दरकीदिल = फटे हुए दिलवाली।

विवे०—यहाँ एक समय में ही एक साथ भरकी, करकी, दरकी आदि क्रियाएँ हुईं।

२५६. जहाँ अनेक वस्तुओं का वर्णन एक ही स्थान पर हो वहाँ द्वितीय समुच्चय होता है। कबि-मौर = (कवि-मुकुट) कविश्रेष्ठ।

२५७. गुरुता = महानता। होत है आदर जामैं = जिसमें आदर प्राप्त होता है। दीनता = विनम्रता। परजा = प्रजा। दान कृपानहु को करिबो = दान देना और तलवार चलाना। अभै = (अभय) निर्भय। बर = बल। दान..........जामैं—दान देने, तलवार चलाने और दीनों को निडर करने का जिसमें बल है। टेक = प्रण। बिबेक = विचार।

विवे०—यहाँ सुंदरता आदि गुण और दान देना आदि क्रियाओं का एक शिवाजी में रहना कथन।

२५८. जहाँ बलवान शत्रु के पक्षवाले (संबंधी) पर बल दिखलाया जाय वहाँ प्रत्यनीकालंकार होता है। जोरावर = बलशाली। अमोर = अमोल (अमूल्य)।

२५९. लाज धरो = लज्जा करो। ह्याँ = यहाँ। हिंदुन के पति = शिवाजी। न बसाति = बस नहीं चलता। बालम = (सं० बल्लभ) प्यारे। आलम = औरंगजेब का नाम। आलमगीर = संसार का रक्षक।

विवे०—यहाँ शिवाजी से बस न चलने पर गरीब हिंदुओं को सताना प्रत्यनीक है।

२६०. गौर = गौड़ राजपूत। गरबीले = अभिमानी। अरबीले = अड़नेवाले। राठवर = राठौर। गह्यो······हरष तें—सिंहगढ़ और लोहगढ़ ले लिए। कँगुरा = चोटी। गोलंदाज = गोला चलानेवाले। तीरंदाज = बाण चलानेवाले। बरषतें = बरसते हुए। अमान = बे प्रमाण, बहुत। करषतें = (सं० कर्षण) बटोरते हुए। राति के सहारे = रात (के अंधकार) का सहारा पाकर। अराति = शत्रु। अमरष = (सं० अमर्ष) क्रोध।

विवे०—चढ़ाई करना चाहिए था दिल्ली पर परंतु चढ़ाई की गई औरंगजेब के पक्षपाती हिंदू राजाओं पर।

२६१. 'वह कार्य कर डाला तो इसके करने में क्या है?' इस प्रकार के कथन में अर्थापत्ति (काव्यार्थापत्ति) अलंकार होता है।

२६२. सयन = (शयन) सोना। पेसकसैं = भेंट, नजर। बिलायति = विदेशी राज्य। सहमना = डर जाना। करनाट-थली = करनाटक देश। माल = धन। मुलुक = देश। सलाह = मेल। अखंड = जिसके खंड न हो सकें (अत्यंत)। डरिकै अखंड = अत्यंत डरकर। सोई = उसी। दलमली = मसल डाला। कहा चली है = क्या चल सकती है? (कुछ नहीं)।

विवे०—यहाँ 'दिल्ली दलमली तो तिहारी कहा चली है' में अर्थापत्ति है।

२६३. जहाँ समर्थनीय अर्थ का समर्थन किया जाय वहाँ काव्यलिंग अलंकार होता है। दिढ़ाइबे जोग = दृढ़ करने योग्य, समर्थनीय।

२६४. साइति लेना = मुहूर्त विचरवाना। सर करना = जीतना। अरि =

शत्रु । डावरा = (सं० डिंब या मारवाड़ी 'टावर') लड़का । बंदी कीजै = कैद कर लो । रसाळ = सुंदर । गज = हाथी । (छावरे = सं० शावक) बच्चे । सानु = संमान । बावरे = (सं० वातुल) पागल । गाढ़े = मज़बूत । रावरे = आपके । कैसे.....रावरे—शिवाजी औरंगजेब को संमान और गढ़ कैसे दे सकता है क्योंकि उसने आपके गढ़पतियों के और भी मजबूत किले ले लिए हैं ।

विवे०—शत्रु के बालकों एवं हाथी के बच्चों को जाकर अधीन कीजिए, दक्षिण के स्वामी को न छेड़िए; वह तो आपके किलों को छीन लेनेवाला है । यहाँ शिवाजी से न बोलने का समर्थन 'गाढ़े गढ़ लीन्हे' से हुआ है ।

विशेष—छंद का अर्थ स्पष्ट है काव्यलिंग इसमें ठीक ठीक घटता नहीं ।

२६५. जहाँ कथितार्थ के समर्थन के लिये अन्य अर्थ का उल्लेख किया जाय वहाँ अर्थांतरन्यास होता है । इसमें विशेष बात का समर्थन सामान्य से अथवा सामान्य का विशेष से किया जाता है ।

२६६. बानर = बंदर । लैके = लेकर । बारिध = समुद्र । लंक = लंका । पारथ = (सं० पार्थ) अर्जुन । भट = योधा । नगरी बिराट = बिराट-नगर । हथ्याय = हस्तगत करके । हरि लाई है = छीन ली है । अचंभा = आश्चर्य । हथ्यार = हथियार (अस्त्र-शस्त्र) ।

विवे०—यहाँ पूर्वकथित विशेषार्थ का चतुर्थ चरण के उत्तरार्द्ध गत सामान्यार्थ से समर्थन किया गया है ।

२६७. तनै = (तनय) पुत्र । करनी = कार्य । धरनी = पृथ्वी । नीकी = भली, अच्छी । भोज = प्रसिद्ध दानी धारा नगरी के भोज । बिक्रम = पराक्रमी राजा विक्रमादित्य । बेन = राजा पृथु के पिता । भिच्छुक = भिखमंगे । भलि= अच्छी । नैसुक = थोड़ा-सा । रीझि = प्रसन्न होकर । धनेस = कुबेर ।

विवे०—यह उदाहरण ठीक नहीं है । इसमें सामान्य का विशेष से समर्थन नहीं है ।

२६८. जो उत्कर्ष का कारण न हो उसे कारण मानकर वर्णन किया जाय उसे प्रौढ़ोक्ति कहते हैं । बिरदैत = यशस्वी ।

२६९. मानसर = मानसरोवर । हंस-बंस = हंसों का समूह । सों = (स्यों) सहित । घनसार = कपूर । घरीक है = एक घड़ी रहता है, थोड़ी

देर टिकता है। सारद = सरस्वती। सुरसरी = गंगा। आभ = प्रकाश। सरद = शरद ऋतु। पुंडरीक = श्वेत कमल। छयो = भवा गया। छीरधि = दूध का समुद्र, क्षीर-सागर। ऐरावत = इंद्र का हाथी। करी = (सं० करिन्)। कैलास-ईश = कैलास के स्वामी। ईस = महादेव। रजनीस = चंद्रमा। अवनीस = राजा। सरीक = हिस्सेदार, पट्टीदार (उपमान होने योग्य)।

विवे०—हंस मानसरोवरवासी होने से कुछ अधिक सफेद नहीं हो जाते पर मानसरोवर को उत्कर्ष का कारण माना गना है। इसी प्रकार और भी।

२७०. यदि ऐसा हो तो ऐसा होगा इस प्रकार के तर्क में संभावनालंकार होता है।

२७१. लोमस = एक ऋषि जो दीर्घायु माने जाते हैं। करनवारो = राजा कर्ण का। सहसबाहु = सहस्रबाहु। नाहक = व्यर्थ। इलाज = यत्न। साज = सामग्री।

विवे०—यहाँ 'लोमश समान आयु' आदि सामग्री यदि हो तो शिवाजी से युद्ध किया जा सकेगा में संभावना है।

२७२. जहाँ मिथ्यार्थ की सिद्धि के लिये अन्य मिथ्यार्थ की कल्पना की जाय वहाँ मिथ्याध्यवसिति अलंकार होता है।

२७३. पग = (सं० पद) पैर। ऐन = ठीक। ध्रुव = ध्रुव तारा। ध्रुव = पृथ्वी। मेरु = सुमेरु पर्वत। शिवाजी के पैर युद्ध में ठीक उसी प्रकार चलायमान हैं जिस प्रकार अंगद के पैर। शिवाजी के वचन, ध्रुव, पृथ्वी और सुमेरु पर्वत की भाँति चल हैं।

२७४. पन = (सं० प्रण) प्रतिज्ञा। धनद = कुबेर। सूरज = सूर्य। सीरो = ठंढा। कित्ति = कीर्ति। कटु = कड़वा। कुलिस = वज्र। भंजिबे को = मारने के लिये। ध्रुव = ध्रुव तारा। चपल = चंचल। ध्रुव-बल = स्थिर पराक्रम (भारी बल)।

विवे०—उपमा-मूलक बनाकर भूषण ने उदाहरणों को मिथ्याध्यवसिति का अभास-मात्र कर दिया है।

२७५. जहाँ एक के गुण-दोष से दूसरे को गुण-दोष प्राप्त हों वहाँ उल्लासालंकार होता है। मति-पोस = बुद्धिमान्।

२७६. गुणेन दोष = गुण से दोष होना। हिंदुवान = हिंदू समाज। ऊटै = उमंग में आता है। निरम्लेच्छ = मुसलमानहीन। जूटै = भिड़ता है। रन जूटै = युद्ध करता है। हिंदु बचाय······टूटै—हिंदुओं को बचाते-बचाते चंदावत अमरसिंह सा कोई हिंदू भी बीच में आकर टूट जाता है (मारा जाता है)। अलोक = आलोक (चाँदनी)। कोक = चक्रवाक।

विवे०—यहाँ शिवाजी के हिंदुओं को बचाने गुण में अमरसिंह का मारा जाना दोष है और इसी प्रकार चंद्र के प्रकाश से संसार के सुखी होने गुण से चक्रवाक को शोक होना दोष है।

२७७. दहपट्ट कीने = चौपट कर दिया। गढोई = (गढ़पति) किलेदार। गढ़-सिरताज = गढ़-श्रेष्ठ, उत्तम किला। तोरि डारे = मारकर निर्बल कर दिया। मनसबदार = पदाधिकारी। डाँड़े = दंडित किया। सुभाय = प्रकृति। जय्यद-मिजाज = शाही मिजाजवाले (यहाँ 'सुभाय' के बाद 'मिजाज' को पुनरुक्ति न समझना चाहिए। 'जय्यद-मिजाज' विशेषण है)। डाँड़े······मिजाज के—शाही ख्यालवालों को दंडित किया। इलाज = यत्न। डावरा = बच्चा।

विवे०—यहाँ 'बैर दोष से काज सधना गुण' कथन है।

२७८. होन बढ़ाई काज = बढ़ाई होने के लिये। कबित = कविता। कविराज = श्रेष्ठ कवि।

विवे०—यहाँ शिवाजी की कविता करने गुण से कवियों को बड़ाई मिलना गुण कथन किया गया है।

२७९. आलमगीर = औरंगजेब। कूटे गए = पीटे गए।

विवे०—यहाँ शिवाजी से बैर होना दोष से गढ़ ले लिया जाना और वजीरों का मार खाना दोष कथन है।

२८०. आलमगीर = (आलमगीर) औरंगजेब। बब्बर = बाबर। बिरद = ख्याति, नेकनामी। बिसारना = भूल जाना। तैं = तू। निपट = सरासर, एकदम। अभंग = दृढ़। साज = कार्य। बेही काज = बिना मतलब। बे इलाज = बिवस होकर। मेर करु = मेल करो। गैर = अनुचित बरताव, अंधेर। नैर = (नगर)। नाहक = व्यर्थ।

२८१. जहाँ अन्य के गुण-दोष से अन्य को गुण-दोष नहीं होते वहाँ अवज्ञा अलंकार होता है।

२८२. अनबाढ़े = उन्नत न होने से। कहा = क्या। चहा = चाहा हुआ, मनोवांछित। अनरीझे = प्रसन्न न होने से। हा = (हाय) कष्ट।

विवे०—यहाँ और राजाओं के बढ़ने और न बढ़ने का कवियों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

२८३. जहाँ अच्छा गुण देखकर दोष की इच्छा की जाय वहाँ अनुज्ञालंकार होता है। सरस = बढ़िया। हौस = इच्छा। रौस = चाल-ढाल। (अनुज्ञा = जो अंगीकार करने योग्य न हो उसे अंगीकार करना)।

२८४. जाहिर = प्रकट, विख्यात। गरिबनेवाज = दीनदयालु। जलूस = (अ०) यहाँ तड़क-भड़क। जरबाफ = (फा०) ज़रदोज (सोने का काम किया हुआ रेशमी कपड़ा)। सरजा के सुकवि-समाज के = शिवाजी के राजकवियों के। कमलापति = विष्णु। मनोरथ = इच्छा। बैपारी = व्यापारी।

विवे०—यहाँ शिवाजी में दान देने का उत्कृष्ट गुण देखकर उनका भिखारी होने की इच्छा की गई है।

२८५. जहाँ गुण को दोष रूप और दोष को गुण रूप वर्णन किया जाय वहाँ लेशालंकार होता है।

२८६. ऐंड = आत्माभिमान। सुरपुर = स्वर्ग। पैंड = (पाद-दंड) मार्ग। परिगो सुरपुर-पैंड = स्वर्ग के मार्ग में जा पड़ा (मारा गया)।

विवे०—यहाँ धैर्य, गढ़ और ऐंड गुणों को उदयभानु के मारे जाने से दोष रूप वर्णन किया गया है।

२८७. सामुहें = संमुख। रन साजि = युद्ध करके। समर = युद्ध-क्षेत्र। भाजि आए = भाग आए।

विवे०—यहाँ भागना दोष गुण-रूप से कथन किया गया है।

२८८. जहाँ कोई वस्तु अपना रंग छोड़कर दूसरी वस्तु का रंग ग्रहण कर ले वहाँ तद्गुणालंकार होता है। बुद्धि-उतंग = श्रेष्ठ बुद्धिवाले।

२८९. पंपा = दक्षिण का रामायण-प्रसिद्ध पंपासर। मानसर = मानसरोवर। अगन = असंख्य। तलाब = सरोवर। पारन मैं = इस ओर उस ओर,

पार्खों में। अकथ = जो कहे न जा सकें। युत गथ = गाथायुक्त। अकथ युत गथ के = अकथ्य गाथा (कथा) से युक्त। पंपा.........गथ के—रायगढ़ के पार्खों में पंपासर और मानसरोवर (पुराण-प्रसिद्ध) अवर्णनीय कथामय अनेक सरोवर लगे हैं (एक ओर दक्षिण में पंपासर तक दूसरी ओर उत्तर में मानसरोवर तक इसका विस्तार है)। चक = चकित। चाहि = देखकर। राजपथ = राजमार्ग, आमसड़क। रहे देव.........राजपथ के—देवगण एक राजमार्ग बना देखकर चकित हो गए (क्योंकि रायगढ़ इतना ऊँचा था कि स्वर्ग में रहनेवाले देवता उसे आमसड़क की भाँति बरतने लगे)। अवलंब = सहारा कलकानि = (अ० कलक = रंज) हैरानी, दिक्कत, दुःख। आसमान = आकाश। होत विसराम = ठहर जाते हैं। इंदु = चंद्र। उदथ = सूर्य। बिन अवलंब... के—आकाश में बिना सहारे के कारण होनेवाली हैरानी के कारण चंद्र और सूर्य थककर (रायगढ़ की सी आमसड़क—राजमार्ग में) विश्राम ले लेते हैं। महत = अत्यंत। उतंग = ऊँचे। जोति = प्रकाश। संग आनि = के साथ में आकर (उनके मेल में पड़कर)। कैयो = कई। चकहा = चक्र (पहिया)। रबि-रथ = सूर्य का (सात घोड़ोंवाला) रथ। महत......रबि रथ के—(रायगढ़ के महलों के ऊर्ध्वभाग में लगी हुई अनेक रंग की) मणियों के प्रकाश के मेल में आकर सूर्य-रथ के पहिये कई रंग के हो जाते हैं (उन मणियों की चमक सूर्य-रथ में पड़ती है और वह रंग-बिरंगा हो जाता है)।

विवे०—यहाँ 'रबि-रथ का पहिया' अपना रंग त्याग कर मणियों का रंग ग्रहण करता है।

२९०. जहाँ प्रथम मिट गए हुए रूप की पुनः प्राप्ति हो वहाँ पूर्व-रूपालंकार होता है।

२९१. ब्रह्म = ब्रह्मा। आनन = मुख। पुनीत = पवित्र। तिहूँ पुर = त्रिलोक (स्वर्ग, मर्त्य, पाताल)। मानी = मान लिया। सोहानी = शोभायमान हुई। कलि = कलियुग। नसानी = नष्ट हो गई। पुन्यचरित = सुकृत। सर = तालाब। बानी = सरस्वती।

विवे०—यहाँ कलियुगी कवियों द्वारा कलियुगी राजाओं का गुण गाने से नष्ट हो जानेवाली सरस्वती का शिवाजी के पुण्य चरित्र रूपी सरोवर में

स्नान करने से पुनः पवित्र होना कहा गया है।

२९२. छहराना = डालना, फेंकना। छार = धूल। धगूरे = ववंडर। भूधर = पहाड़। धरकैं = डोल जाते हैं। रूरे = (सं० = प्रशस्त) श्रेष्ठ। बल रूरे = बलशाली। गरूरे = (अ० गुरूर) मदमस्त। सुंड = सूँड़। मद = मस्त हाथियों की कनपटी से बहनेवाला एक द्रव पदार्थ। नद = बड़ी नदी। पूरे = भर दिए।

२९३. घालना = बिगाड़ना, नाश करना। कवंध = सिर-रहित धड़। कभी-कभी युद्ध में सिर कट जाने पर भी वीरों का धड़ दौड़-दौड़ लड़ता है इसे कवंध उठना कहते हैं। हाले = हिल गए। अरुने = (सं० अरुण) लाल। लोहै = तलवार के वार से। कटे = कटने पर। लोहु = खून। लाले = लाल।

विवे०—यहाँ लाल रंगवालों के पीले हो जाने से जो ललाई चली गई थी वह लोहू-लोहान होने से पुनः प्राप्त हो गई।

२९४. सैली = (शैली) ढंग। कलिकाल की सैली = अधर्म का फैलना, प्राचीन धर्म का उठ जाना। गही = पकड़ी। बारिधि = समुद्र। पैली = (परले पार) उस पार। तुरकौ............पैली—मुसलमानों ने उस पार का रास्ता पकड़ी। चरचा = वार्ता। अरचा = (सं० अर्चा) पूजा।

विवे०—पहले उदाहरण की भाँति शेष उदाहरण समझ लेने चाहिए।

२९५. जहाँ अन्य की संगति में रहने पर भी कोई उसका गुण ग्रहण न करे वहाँ अतद्गुण होता है।

२९६. दुनी = पृथ्वी। करता = करनेवाले। निरम्लेच्छ = मुसलमानों से रहित। भूधर = पहाड़। उद्धरिबो = पहाड़ का उद्धार, गोवर्धन का उठना (शिवाजी ने भी पर्वतों का उद्धार किया है, देखिए छंद नं० ६६)। हरि = विष्णु। सिगरे = सब।

विवे०— नर-रूप धारण करने पर भी नर-गुणों का प्रभाव नहीं पड़ा।

२९७. खग्ग = तलवार। मान = संमान। मानस = मन। कुरुख = क्रोध। उछाह = आनंद। सिवाजी........उछाह तें—हे शिवाजी आपकी तलवार और उसका संमान बढ़े, वह तलवार बढ़े हुए मन की भाँति क्रोध और उत्साह से बदलती रहती है (क्रोध करके किसी को मारती है

और उत्साहपूर्वक किसी की रक्षा करती है। क्यों न·········नरनाह तें—तुम्हारे ऐसे देदीप्यमान नरेश का प्यार पाकर यह तलवार संसार में प्रसिद्ध क्यों न हो? (अवश्य, होना ही चाहिए)। बरतन = पात्र। पानिप = कांति। परताप······अथाह तें—प्रताप उस खड्ग की फेंट में है, सुयश से वह खड्ग लपेटा है और मनुष्यों के अथाह पानिप (जल और कांति) का वह खरा (बढ़िया) बरतन है। रंग-रंग = रंग-बिरंगे। रकत = (रक्त) खून। रातोदिन = दिन-रात। रातो = लीन। रातो = लाल। स्याह = काला। रंग रंग······स्याह तें—रातोदिन रंग-बिरंगे शत्रुओं के रक्त से रँगा रहता है और इसी कार्य में संलग्न है पर काले से लाल नहीं होता (तलवार का रंग काला माना गया है)।

विवे०—यहाँ भी खड्ग लाल खून में डूबे रहने पर भी काले से लाल नहीं होता।

२९८. नौल = (सं० नवल) नई। तिय = स्त्री। दृग = आँख। धौल = (सं० धवल) उज्ज्वल। अरि······धौल—शत्रुओं की स्त्रियों के नेत्रों का (काला) अंजन हर लेती है (पति की मृत्यु सुनने पर स्त्रियों के रोने से अंजन धुल जाता है) तो भी उज्ज्वल की उज्ज्वल है।

विवे०—काला अंजन हरण करती है पर स्वयं काली न होकर उज्ज्वल ही रहती है (कीर्ति का रंग उज्ज्वल माना गया है)।

२९९. जहाँ अन्य की संगति से किसी वस्तु का रंग बढ़ जाय वहाँ अनुगुण अलंकार होता है।

३००. गनीम = शत्रु। भुज-बलमै = (भुजबलमय) भुजाओं के बल से युक्त, पराक्रमी (गनीम का विशेषण)। दिल-दौर = दिल की दौड़, मन की मौज। दल = सेना। धाक ही मरत = आतंक से ही मर जाते हैं। यवनी = यवनों (मुसलमानों) की स्त्रियाँ। सोक परोई रहत = शोक पड़ा ही रहता है (दुःखी रहते हैं)। सकल = सब। कलित = युक्त। उमंग = उभाड़। अँसुवान के उमंग संग = आँसुओं की झड़ी के साथ।

विवे०—यहाँ आँसुओं के साथ कज्जल के बह जाने और उन आँसुओं के यमुना में मिलने से जल का रंग नित्य दूना काला होना अनुगुण है।

२०१. जहाँ समान रंगवाली वस्तु में मिल जाने से कोई वस्तु स्पष्ट लक्षित न हो वहाँ मीलितालंकार होता है।

२०२. हेरत = ढूँढ़ता है। गज-इंद्र = ऐरावत। इंद्र को अनुज = उपेंद्र, विष्णु। दुगध-नदीस = क्षीरसागर। सुर-सरिता = गंगा। रजनीस = चंद्रमा। देव कोटियो तैंतीस को = तैंतीस करोड़ देवताओं को। हिराने = खो गए। निज गिरि = कैलास। गिरीस = महादेव।

विवे०—यहाँ शिवाजी के श्वेत यश में मिल जाने से ऐरावतादि श्वेत वस्तुओं का लक्षित न होना कहा गया है।

२०३. जहाँ कोई वस्तु सदृश वस्तु में मिल जाने पर भी किसी कारण द्वारा लक्षित हो जाय, वहाँ उन्मीलितालंकार होता है।

२०४. धौल = (सं० धवल) उज्ज्वल। छबि-तूल = समान छविवाले। बास = गंध।

विवे०—यहाँ शिवाजी के यश में उज्ज्वल हंस और चमेली फूल मिल गए थे, पर वे बोलने और सुगंध से लक्षित हो गए।

२०५. जहाँ दो भिन्न-भिन्न वस्तुओं में सादृश्य के कारण भेद न जान पड़े, वहाँ सामान्यालंकार होता है।

२०६. गमकना = गरजना। झमकना = अकड़ दिखलाना। कबंध = धड़। धमकना = धम्म धम्म शब्द करना। अवसान = सुध-बुध, चेत। अवसान गए मिटि = सुध-बुध भूल गई, होश-हवास जाता रहा। धोप = (सं० धूर्वा) तलवार। मीरन............चमके तें—तलवारों के चमकने से और बिजली के दमकने से मीरों का होश-हवास जाता रहा।

विवे०—यहाँ तलवारों के चमकने और बिजली के दमकने में मीरों को भेद न जान पड़ना कहा गया है।

२०७. जहाँ सादृश्य के कारण दो वस्तुओं का भेद न ज्ञात होने पर भी किसी विशेषता से भिन्नता लक्षित हो जाय, वहाँ विशेषक अलंकार होता है।

२०८. किरवान = (कृपाण) तलवार। भिर्यो = लड़ा। बल तें = बलपूर्वक। प्यादा = पैदल सिपाही। पाखर = (सं० प्रक्षर) वह लोहे की झूल जो घोड़ों वा हाथियों पर रक्खी जाती है। पखरैत = वह घोड़ा वा हाथी

जिसपर लोहे की पाखर पड़ी हो। बखतर = (अ० बफ़तर) एक प्रकार का जिरह वा कवच। बखतरवारे = कवच धारण किए हुए सिपाही। हलतें = घुस जाते हैं (भिड़ जाते हैं)। एते मान = इतना अधिक। घमसान = गहरी लड़ाई। ताके = दिखाई पड़े। बाँके = श्रेष्ठ। हाँके देना = हुंकारना, गरजना।

विवे०—यहाँ दो सेनाएँ सम-वेश थीं पर हुंकार से शिवाजी के वीरों का पता चल जाता था और भागने से मीर लोग जाने जाते थे।

२०९. जहाँ किसी के मन की बात जानकर कुछ ऐसी क्रिया करे, जिससे यह लक्षित कराया जाय कि (क्रिया करनेवाले ने) बात जान ली है तो वहाँ पिहितालंकार होता है।

२१०. गैर मिसिल ठाढ़ो कियो = अनुचित स्थान पर खड़ा किया। अंतरजामी = चित्त की बात जाननेवाला। रिस = क्रोध।

विवे०—यहाँ शिवाजी ने औरंगजेब को सलाम न करके यह बतला दिया कि मैं अनुचित स्थान पर खड़ा कराने का भाव समझ गया।

२११. चख = (सं० चक्षु) आँख। चाव = प्रसन्नता।

विवे०—यहाँ औरंगजेब की आँखों में इस भाव से प्रसन्नता झलकने लगी थी कि शत्रु आकर मिल गया; किंतु शिवाजी ने मूछों पर ताव देकर बता दिया कि मैं तुम्हारी प्रसन्नता की बात समझ गया मैं तुम्हारे वश में नहीं आ सकता।

२१२. कोई प्रश्न करे और दूसरा उसका (साभिप्राय) उत्तर दे, इसे प्रश्नोत्तर कहते हैं।

२१३. सिख दैहो = क्या शिक्षा दोगे। भिरिहौ = लड़ोगे।

विवे०—यहाँ भी खवास खाँ की सभा के लोगों ने (भययुक्त) उत्तर दिया है अर्थात् लड़ने से जो वस्तु अफजल खाँ को मिली, वही हमें भी मिलेगी (मृत्यु)।

२१४. दाता कौन है ?—शिव। कौन युद्ध करता है ?—नृप। संसार का पालन कौन करता है ?—विष्णु का अवतार। (चतुर्थ चरण का अर्थ होता है—'महाराज शिवाजी विष्णु के अवतार हैं')।

२१५. (प्रत्येक प्रश्न को अंतिम चरण के शब्दों से मिलाइए)—१. वस्तुओं

को कौन वश में करता है?—दक्षिण (चतुर)। २. इस संसार में कौन बड़ा है?—नरेश। ३. साहस का समुद्र (अत्यंत साहसी) कौन है?—सरजा (सिंह)। ४. रज (रजपूती) की लज्जा को कौन मस्तिष्क में धारण करता है?—सुभट। ५. चक्रवर्ती (चकवा) को सुख देनेवाला कौन है?—साहिनंद (ज्येष्ठ पुत्र)। ६. सब सुमन (फूलों) में कौन बसता है?—मकरंद (पुष्प-रस)। ७. अष्टसिद्धि और नवनिधि का देनेवाला कौन है?—शिव।

२१६. जहाँ अन्य हेतु द्वारा (बहाने से) अपनी गुप्त बात प्रकट हो जाने पर छिपाई जाय, वहाँ व्याजोक्ति-अलंकार होता है।

२१७. जितेक = जितने। दच्छिन-जेय सिसौदिया = दक्षिण जीतनेवाला सीसौदिया-वंशज शिवाजी। रावरे = आपके। ठए हैं = किया है। उदास = विरक्त।

विवे०—यहाँ शिवाजी द्वारा पराजित होने को 'हमहीं दुनियाँ तें उदास भए हैं' कहकर छिपाया गया है।

२१८. आहि लगी रहै = 'आह' निकलती रहती है। बूझे = पूछने पर। साहि = शाही, राज्य।

विवे०—वस्तुत: औरंगजेब शिवाजी के बैर से 'आह आह' किया करता है; पर 'राज्य का झंझट दुःख देता है' कहकर उसने वह प्रकट रहस्य छिपाया है।

२१९. लोक में प्रचलित कहावत का नाम 'लोकोक्ति' है। जहाँ पर यह लोकोक्ति प्रयुक्त होती है, वहाँ 'लोकोक्ति-अलंकार' होता है और जहाँ यही लोकोक्ति उपमानयुक्त (अर्थांतरगर्भित) होती है, वहाँ 'छेकोक्ति' होती है।

२२०. पीव = प्रिय, प्यारे। सूबा = सूबेदार। धरे जात कित जीव = प्राण कहाँ रखे जाते हो? (दक्षिण के सूबेदारों को शिवाजी मार डालता है, क्या तुम्हारे प्राण बच जायँगे?)

विवे०—'धरे जात कित जीव?' के प्रयोग से लोकोक्ति-अलंकार है। उदाहरण अच्छा नहीं है।

३२१- सोहात = अच्छे लगते हैं। रस-मूल = रसीले। आछे = अच्छे।

विवे०—'जे परमेस्वर पै चढ़ैं तेई आछे फूल' यह वाक्य 'लोकोक्ति' है; और यह पूर्वार्द्ध के उपमानवत् प्रयुक्त हुआ है। अतः छेकोक्ति है। अर्थांतर यह है कि जिस वस्तु को बड़े लोग ग्रहण करें, वही उत्तम है।

३२२. सिधावै = लौटे। कप्पर = कपड़ा। मुहीम = युद्ध, चढ़ाई। बहादुर = बहादुर खाँ को। छाग = बकरा। गयंद = श्रेष्ठ हाथी। झप्पर = झापड़ (मार, चोट)। वै = वे। हठि हारे = हठ करके हार गए। जे साहस······भुवप्पर—जो लोग ठीक सातवें आसमान पर थे (बड़े अभिमानी थे)। सूबहु = सूबेदार भी। काल्हि के जोगी कलींदे को खप्पर = कल ही योगी हुए और तरबूज का खप्पर लेकर भीख माँगने लगे (इनसे योग तो सधेगा नहीं; योग करने का केवल स्वाँग कर लिया है)।

विवे०—यहाँ चौथे चरण के उत्तरार्द्ध में लोकोक्ति है, जो पूर्वकथित वाक्यों के उपमान-रूप में आई है और जिसका अर्थांतर यह है कि अयोग्य लोग भी बड़ा-बड़ा काम करने का हौसला करने लगे हैं, उनसे काम पूरा नहीं हो सकता है।

३२३. जहाँ श्लेष से अथवा काकु से अन्यार्थ की कल्पना की जाय वहाँ वक्रोक्ति होती है।

३२४. कौतुक = खेल। तचना = तपना (संतप्त होना)। सरजा = सरजाह (शिवाजी) और सिंह। इतै = यहाँ पर। भाजि = भागकर। उकचना= स्थान त्याग करना। सिव = शिवाजी और महादेव। बात रचि = बात बनाकर। रूठैं = अप्रसन्न हों। त्रिपुरारि = त्रिपुर नामक दैत्य के शत्रु, महादेव।

विवे०—यहाँ शत्रु लोग तो कहते हैं कि हम 'सरजा' (शिवाजी) से डरते हैं, पर सुननेवाला 'सरजा' का श्लेष से अन्यार्थ 'सिंह' कल्पित करके उत्तर देता है। इसी प्रकार 'शिव' (शिवाजी) कहने पर 'महादेव' अन्यार्थ की कल्पना की गई है।

३२५. पठाना = भेजना। गवाँना = खोना। औरै = दूसरे को। वे ही काज = व्यर्थ ही। बरजोर = प्रबल। कटक = सेना। कटायो है = कटवा डाला है (मरवा डाला है)। मनभायो = चितचाहा।

विवे०—चतुर्थ चरण में औरंगजेब कहता है—'मुलुक लुटायो तौ लुटायौ कहा भयो, तन आपनो बचायो महा-काज करि आयो है' पर इसका तात्पर्य ठीक इससे विपरीत है—'तुम्हें लज्जा नहीं आती कि प्राण बचाने के लिए देश लुटवा दिया और भाग आए'। (काकु = विपरीत कंठ-ध्वनि)।

३२६. मुहीम = युद्ध, चढ़ाई। हजरत = श्रीमान्। मनसब = पदवी।

विवे०—औरंगजेब के इस कथन पर कि 'युद्ध से लौटने पर मनसब मिलेगा' उत्तर में योद्धा कहते हैं—'हाँ, शिवाजी से युद्ध करके हम लौट न आवेंगे! (नहीं लौटेंगे)'। यही काकु है।

३२७. जहाँ किसी के जातीय स्वभाव का ठीक-ठीक वर्णन किया जाय, वहाँ स्वाभावेक्ति होती है।

३२८. मेरु = सुमेरु (सोने का पहाड़)। कुबेर = कुबेर धन के स्वामी माने गए हैं। ललकना = उमंग से भर जाना। जहान = संसार। उबारना = उद्धार करना। बलकना = आवेश में आकर अंड-बंड बकना। आनि = आकर। उछाह = उत्साह (उमंग)। छलकना = उमड़ना।

विवे०—यहाँ शिवाजी के दान, भक्ति-भाव और वीरत्व का यथावत् वर्णन है।

३२९. जाही ओर = जिसी ओर। घरी चारिक = चार घड़ी। चहत हैं = देखते रहते हैं। जहत = छोड़ देते हैं। खरे-खरे = खड़े हैं तो खड़े ही हैं। ज्ञान न गहत हैं = समझ में नहीं आता है (सुध-बुध मारी गई है)।

विवे०—शिवाजी के आतंक से सत्रुओं का किंकर्तव्य-विमूढ़ हो जाना वर्णन किया गया है।

३३०. पूरे मन के = पूरी उमंग के साथ। मरदाने बाजे = बीरतापूर्ण बाजे मूछ तरराने = मूछें खड़ी किए हुए। एकै = कोई। मार = लड़ाई। बेसम्हार तन के = जिनका शरीर बेसम्हार था (जो अपने शरीर को चोटों के कारण सम्हाल नहीं सकते थे)। कुंडन = लोहे का टोप। कड़ाके उठना = जोर से आवाज़ होना। जीर = (जिरह) कवच। खड़ाका = तलवार के बजने की आवाज। खड़ग = तलवार।

३३१. तरुन = तरुण (युवा)। तरायले = (सं० त्वरा) शीघ्रता

से। अमोद = (सं० आमोद) सुगंधि। मंद-मंद = धीरे-धीरे। मोद = आह्लाद। सकसै = फैलता है। अड़दार = अड़ीले। गड़दार = साँटेमार। हाँके = हाँका, ललकार। गैर = (गैल) मार्ग। रोस रस भकसै = क्रोध और ईर्ष्या से (मार्ग में अड़ जाते हैं)। तुंडनाय = (सं० तुंडनाद) सूँड़ से निकला हुआ शब्द। तुंडनाय सुनि गरजत = उनके गरजने की आवाज सुनकर। छकसै = छके हुए (मतवाले)। बकसै = देता है।

विवे०—यहाँ मदमत्त हाथियों के स्वभाव का वर्णन है।

३३२. जहाँ भूत और भविष्य की घटनाएँ प्रत्यक्ष (वर्तमान की भाँति) वर्णन की जायँ, वहाँ 'भाविक' होता है।

३३३. भूतनाथ = (भूतों के स्वामी) शिव। अहार = भोजन। कारे = = काले। कुंजर = हाथी। कराह = दुःख से तड़फड़ाना। कतलाम = (कत्ले-आम)। सिपाह = (यहाँ) सेना। रुहेला = रुहेलखंड के रहनेवाले। रवि-मंडल = युद्ध में मरे वीर सूर्य-मंडल बेधकर स्वर्ग जाते हैं।

विवे०—यहाँ भूतकालीन घटना का वर्तमानवत् वर्णन किया गया है।

३३४. गजघटा = हाथियों का समूह। घनघटा = बादलों का घिराव। पटत है = भर जाता है। बेला = समुद्र का किनारा। वेळा छाँड़ि = सीमा छोड़कर, मर्यादा त्यागकर। कदना = निकलना। तरनि = (सं० तरणि) सूर्य। बारहौ तरनि = बारहो सूर्य, प्रलय-काल में बारहो सूर्य एक साथ उदित होते हैं। दौरना = चढ़ाई करना।

विवे०—यहाँ भविष्यत्कालीन प्रलय का वर्णन वर्तमानवत् किया गया है

३३५. जहाँ दूरस्थित वस्तु का आँख के सामने देखने की भांति वर्णन किया जाय, वहाँ 'भाविक छवि' अलंकार होता है।

३३६. सूबा = सूबेदार। केरी = की। बिलोकत तेरियै फौज दरेरी = तेरी सेना से दरेरी हुई (नष्ट की गई) देखता है। द्योस = (सं० दिवस) दिन। सैनिक-सूरति = सैनिकों की शक्ल। सूरति = सूरत शहर। तुव......घेरी—औरंगजेब सूरत को घेरे हुए तेरे सैनिकों की शक्ल देखा करता है।

विवे०—यहाँ आगरे में बैठे-बैठे सूरत को घिरा देखना 'भाविक-छवि' है।

३३७. जहाँ ऐश्वर्य का अतिपूर्ण-वर्णन किया जाय अथवा महानों की

उपलक्षणता कथन हो (महानों के संबंध से किसी वस्तु को महान् कहा जाय) वहाँ उदात्तालंकार होता है।

२३८. मतंग = हाथी । दीसैं = दिखाई पड़ते हैं । तुरंग = घोड़ा । हीसैं = हिनहिनाते हैं । बारन = दरवाजों पर । जसरत हैं = यश-वर्णन में लगे हैं। जरबाफ = सोने का काम किया हुआ रेशमी कपड़ा । सम्याने = (शामियाना) चँदोवा । ताने = खड़े हैं । झलरना = झूलना । नेवाजे = अनुगृहीत । बिहरत हैं = विचरते हैं, मौज करते हैं । लाल = लालमणि । नीलमनि = नीलम । लाल······करत हैं—लालमणि के प्रकाश से प्रातःकाल होता है और नील-मणि की चमक से रात्रि हो जाती है । लालमणि की ललाई से उषाकाल उप-स्थित हो जाता है और नीलम की श्यामता से रात की भाँति अंधकार छा जाता है । इस प्रकार का साजोसामान पाकर वे शिवाजी की चर्चा किया करते हैं ।

विवे०—यहाँ शिवाजी के दान से कविराजाओं का राजाओं की भाँति आनंद करना, ऐश्वर्य की अत्युक्ति है ।

२३९. जनि = मत । खता खाना = धोखा खाना । मति = नहीं । गढ़-नाह = (सं० गढ़नाथ) शिवाजी । खान = खाँजहाँ बहादुर । डार्‌यो बिन मान कै = बेइज्जत कर डाला । द्रुपदी = द्रौपदी । ईजति = इज्जत, मान । विरा-टपुर = महाराज विराट का नगर । प्रमान कै = प्रण करके । कीचक = विराट का साला । कीच घमसान कै = भारी लड़ाई लड़कर ।

विवे०—उदाहरण कहते नहीं बना । इसमें अफजल खाँ की उपलक्ष-णता से शिवाजी को बड़प्पन मिल रहा है ।

२४०. टिकौ = ठहरो । खान बहादुर = खाँजहाँ बहादुर । ह्याँई = यहीं पर । सजाय = दंड ।

विवे०—यहाँ पूना को शिवाजी के द्वारा शाइस्ता खाँ के मारे जाने से उपलक्षणता प्राप्त है ।

२४१. जहाँ वीरता आदि का अतिपूर्ण वर्णन हो, वहाँ अत्युक्ति होती है।

२४२. बेफिकिरि = निश्चित । झूलत = हिलती हैं । झलमलात = चमच-माती हैं । झूलैं = घोड़ों और हाथियों की पीठ पर ओढ़ाया जानेवाला कीमती कपड़ा । जरबाफ = सोने का काम किया हुआ रेशमी कपड़ा । जकरे = बँधे

हुए। जोर करत = जोर मारते हैं, छुड़ाने के लिये बल लगाते हैं। किरिरि = किटकिटाकर (बड़े जोर से)। भननात = गुंजारते हैं। घननात = घंटों का शब्द। पग झननात = पैरों में पड़ी हुई जंजीरें खनखनाती हैं। बेआब = कांतिहीन। गड़काब = (ग़र्क आब) पानी में डूबना। मद......गिरि हैं—मद के जल में पहाड़ भी डूब जाते हैं।

विवे०—'दान' की अत्युक्ति है।

३४३. जगदेव = प्रसिद्ध और प्रतापी परमार। जजाति = ययाति। अंबरीक = अंबरीष। सो = समान। खरीक = तिनका। चंदकर = चंद्र की किरणें। किंजलक = (सं० किंजल्क) कमल के फूल के भीतर की पीली-पीली केसर। पराग = पुष्परज। सरीक सो = शामिल का सा (सदृश)। कंद = जड़। कयलास = कैलास पर्वत। नाक-गंग = आकाशगंगा। नाल = (मृणाल) कमल की डंडी। पुंडरीक = श्वेत कमल। चंचरीक = भौंरा। चंदकर......चंचरीक सो—यश रूपी कमल के लिये चंद्रमा की किरणें केसर, चाँदनी पुष्परज, तारागण पुष्प-रस, कैलास पर्वत जड़ और आकाश भ्रमर है। अर्थात् यश का इतना विस्तीर्ण है कि आकाश उसी के फैलाव में आ जाता है (शिवाजी ब्रह्मांड भर में प्रसिद्ध हैं)।

३४४. शिवाजी के स्वाभाविक कृत्य भी औरों के लिये अत्युक्तिमय हैं (विशेषतापूर्ण कामों का तो कहना ही क्या !)।

३४५. जहाँ अपनी बुद्धि से नामों का और ही अर्थ कल्पित किया जाय वहाँ निरुक्ति होती है।

३४६. दारिद-द्विरद = दरिद्रता-रूपी हाथी। दल्यो = नष्ट किया। अमान = बे परिमाण, अत्यधिक।

विवे०—वस्तुतः सरजा का अर्थ 'शरजाह' (ऊँची पदवीवाला) है, पर 'सरजा' शब्द का यहाँ 'सिंह' अर्थ कल्पित किया गया है।

३४७. मदन = कामदेव। सिव = शिवाजी, और शंकर। बिरद = बाना। सरजा = शरजाह (पदवी) और सिंह।

३४८. दिवैया = देनेवाला। निपट = अत्यंत। गँभीर = गहरा। रन देना = युद्ध में लड़कर मार डालना। भाऊ खान = भाऊ सिंह। दरियाव =

समुद्र। दिल दरियाव = दरियादिल, उदार। ठहरात = जमा होता है। आनि = आकार। पानिप = जल और मान-मर्यादा।

३४९. 'इसी कारण से यह कार्य हुआ' इस प्रकार के वर्णन में हेतु-अलंकार होता है।

३५०. दारुन = (सं० दारुण) भीषण, घोर। दइत = (सं० दैत्य) राक्षस। हरनाकुस = हिरण्यकशिपु। विदारिवे को = चीर डालने के लिये (मारने के लिये)। बिकरार = (बिकराल) भयंकर। बंसन = वंश को। विधुंसिवे को = नष्ट करने के लिये। जदुराय = (यदुराज) यदुकुल-श्रेष्ठ। वसुदेव-कुमार = श्रीकृष्ण। पृथी = पृथ्वी। पुरहूत = इंद्र।

विवे०—यहाँ 'म्लेच्छों के मारने ही के लिये आपका अवतार हुआ है' में हेतु-अलंकार है।

३५१. जहाँ कार्य से कारण और कारण से कार्य ज्ञात हो, वहाँ अनुमानालंकार होता है।

३५२. अनचैन = बेचैन, व्याकुल। उमगना = उमड़ना (बहना) काहिनै = क्यों नहीं। बीबी······काहिनै—मुसलमानों की स्त्रियाँ अपने पतियों से पूछती हैं कि आप बात क्यों नहीं बतलाते (क्यों इतने बेचैन हैं)। नाहिनै = नहीं है। सम्हार तन नाहिनै = शरीर की सुध-बुध नहीं है। सीना = छाती। धकधकत = काँपता है। हीनो = मलिन, उदास। रूप = शक्ल, सूरत। न चितौत बाएँ-दाहिने = दाहिने-बाएँ नहीं देखते। संक = भय। सूख जाना = भयभीत होकर मलिन पड़ जाना। जानियत······साहि नै—जान पड़ता है कि बादशाह ने आपको दक्खिन का सूबेदार बनाया है।

विवे०—यहाँ शारीरिक चिह्न (कार्य) से दक्षिण का सूबेदार होना (कारण) जाना गया।

३५३. अंझा = (सं० अनध्याय) नागा। दिन की अंझा-सी भई = दिन छिप गया। संझा = (सं० संध्या) सायंकाल। लगन = (सं० लग्न) संधि। गगन·········छवाय है—आकाश में लगकर धूल छा गई है (आकाश धूल से ढक गया है)। बायस = (सं०) कौआ। रोर = (सं० रव) शब्द। तम मड़राय है = अंधकार छा रहा है। अँदेश = शंका। बड़वा

= वाड़वाग्नि। बड़ो बड़वा को = वाड़वाग्नि से अधिक तेजस्वी। जितवार = जीतनेवाला। इत आयहै = इस ओर आवेगा।

विवे०—यहाँ धूल आदि से शिवाजी की सेना का अनुमान किया गया है। धूल उड़ना आदि कार्य और आना कारण है।

२५४. उदार = श्रेष्ठ। सुमति = (स्वमति) निज-बुद्धि।

२५५. जहाँ भिन्न-भिन्न पदों में स्वरयुक्त अक्षरों के सादृश्य का प्रकाश हो वहाँ छेकानुप्रास और जहाँ अभिन्न पदों में पदों का सादृश्य-प्रकाश हो, वहाँ लाटानुप्रास होता है।

२५६. दिल्लिय-दलन = दिल्ली की सेनाओं को। दबाय करि = दबा करके, हराकर। निरसंक = निर्भय। बंकक्करि अति डंक = अत्यंत टेढ़ा डंका करके (जोरों से डंका बजाकर)। अस = ऐसा। संकक्कुलि खल = सब दुष्ट ससंक हो गए। सोचच्चकित = चकपकाकर सोचते हैं। भरोच्चलिय = भरोंच (नगर) की ओर चले। विमोचच्चखजल = (चख-जल-विमोचत) आँसू गिराते हुए। तट्ठट्ठइ मन = वह (बात) मन में ठानकर। कट्ठट्ठिक सोइ = उसे कठिनता से ठीक करके। रट्ठट्ठिल्लिय = रटकर ठट्ट को ठेला। सद्दिसि दिसि = (सद्यः दिशि दिशि) तुरत सब दिशाओं में। भद्दविभइ = भद्द हुई और दबकर (रद्द) हो गई। रद्दिल्लिय (भइ) = दिल्ली रद्द (बरबाद) हो गई। भद्दवि······द्दिल्लिय—भद्द हुई और दिल्ली दबकर चौपट हो गई।

विवे०—उक्त छंद में अनेक स्थानों पर 'बंकक्करि डंकक्करि संकक्करि' आदि में स्वर-समेत अक्षरों का 'सादृश्य' है जो भूषण के मत से छेकानुप्रास है। और लोग इसे वृत्त्यनुप्रास की 'परुषा वृत्ति' मानेंगे।

विशेष—भूषण के लक्षण में 'स्वर-समेत' पद चिंत्य है, क्योंकि छेकानुप्रास विना स्वर मिले भी होता है। 'दिल्लिय-दलन' में 'द' का छेकानुप्रास है। दिल्लिय का 'द', 'इ' स्वरयुक्त है, पर 'दलन' का 'द' 'अ' स्वरयुक्त। इस प्रकार स्वर-साम्य तो नहीं है, पर छेकानुप्रास अवश्य है भूषण ने जितने उदाहरण दिए हैं सभी 'वृत्त्यनुप्रास' के ही हैं। संभवतः उन्होंने वृत्त्यनुप्रास को 'छेक' के ही अंतर्गत समझा है।

३५७. गतबल = बलहीन। खान दलेल = दिलेर खाँ। हुव = हुआ। खान बहादुर = बहादुर खाँ। मुद्ध = (सं० मुग्ध) मूढ़, मूर्ख। ढिग = पास। क्रुद्धद्धरि = क्रोध (धारण) करके। किय जुद्ध = युद्ध किया। किय जुद्धद्-ध्रुव = ध्रुव युद्ध किया (घोर लड़ाई की)। अरि अद्धद्धरि करि = शत्रुओं को धर (पकड़) कर आधा कर दिया (काट डाला)। मुंडड्डरि = मुंड डाल (फेंक) कर। रुंडड्डकरत = रुंड (धड़) डकरते हैं (शब्द कर रहे हैं)। डुंड = लुंज, टूँड़ा। डुंडड्डग भरि = डुंड डग भरते हैं (चलते हैं)। खेदिद्दर = दल को खेदकर। बर छेदिद्दय = बल को छेद दिया। करि मेदद्दधि दल = सेना की मेद को दही करके (इतने लोगों को मारा कि रण में चर्बी दही की भाँति फैल गई)। जंगग्गति = युद्ध का हाल (समाचार)। रंगग्गलि = रंगगलित होकर (उदास होकर)। अवरंगग्गतबल = औरंगजेब बलहीन हो गया (उसकी हिम्मत छूट गई)।

३५८. किशोर-नृप कुम्म = नृप-कुमार किशोरसिंह। ये कोटा के राजा माधवसिंह के पुत्र थे। संग्राम = युद्ध। भुम्मिम्मधि करि धुम्म = पृथ्वी पर धूम मचाकर। धुम्मम्मड़ि = धूम मढ़कर (धूमधाम के साथ)। नृप जुम्मम्मलि करि = राजाओं का जोम (घमंड) मलकर (नष्ट करके)। जंगग्गरजि = युद्ध में हुंकार करके। उतंगग्गरब = अत्यंत गर्ववाले (भारी अभिमानी)। मतंगग्गन = हाथियों का समूह। हरि = हरण करके। लक्खक्खन = लाखों को क्षण भर में। दक्खक्खलनि = दक्ष दुष्टों को। अलक्खक्खिति भरि = क्षिति को भरकर अलक्ष्य कर दिया। लक्खक्खन······भरि—क्षण भर में लाखों दक्ष दुष्टों से रणक्षेत्र की भूमि को भरकर उसे अलक्ष्य कर दिया (इतने योधाओं को मार गिराया कि सारी रण-भूमि पट गई)। मोलल्लहि = मोल में लेकर। जस नोलल्लरि = लड़कर नया यश प्राप्त किया। बहलोलल्लिय धरि = बहलोल को पकड़ लिया।

३५९. भजे = भागे। भंगग्गरब = जिनका घमंड भंग (चूरचूर) हो गया हो। तिलंग = तैलंग देश। गयउ कलिंगग्गलि अति = कलिंग (उड़ीसा) देश अत्यंत गल गया (चौपट हो गया)। दुंदद्दबि दुहु दंदद्द-लनि = दोनों दलों (तिलंग और कलिंग की सेनाओं) को दुंद (युद्ध) में

दबने से दंद (दुःख) हुआ। बिलंददहसति = भारी भय, अत्यंत डर (हुआ)। लच्छच्छिन = क्षण भर में लाखों। करि म्लेच्छच्छय = मुसल॰ मानों को क्षय करके। किय रच्छच्छबिछिति = पृथ्वी की छवि की रक्षा की (पृथ्वी की मान-मर्यादा बचाई)। हल्लल्लगि = हल्ला लगाकर (धावा बोलकर)। नरपल्लल्लरि = नरपालों (राजाओं) से लड़कर। परनल्लल्लिय जिति = परनाले को जीत लिया।

३६०. मुंड = सिर। रुंड = धड़। नटत = नाचते हैं। सुंड = सूँड़। पटत = (सूँड़ें) पट रही हैं (गिरकर पृथ्वी को पाटे दे रही हैं)। घन = घना (अधिक)। गिद्ध लसत = (मृत शरीर पर बैठे हुए) गिद्ध शोभा पाते हैं। सिद्ध = जो लोग मुर्दों पर बैठकर अपना मंत्र सिद्ध करते हैं। सुखवृद्धि रसत मन = उन सिद्धों का मन सुखवृद्धि (क्योंकि मुर्दे बहुत से हैं) से रसता (आनंदित होता) है। बूत = बल, जोर। भिरत = भिड़ जाते हैं। सुर-दूत घिरत तहँ = देवदूत (वीरों को स्वर्ग ले जाने के लिये) घिरते (एकत्र होते) हैं। चंडि = काली। गन मंडि = गणों से मंडित होकर (भूत-प्रेतादि से घिरकर)। रचत धुनि = शोर करते हैं। डंडि = (द्वंद्व) झगड़ा। डंडि मचत = झगड़ा होता है। इमि = इस प्रकार। ठानि घोर घमसान = भारी युद्ध ठानकर। अटल = अचल। खग्ग = (खड्ग) तलवार। खग्गबल = तलवार के जोर से। दलि = मार-कर। अडोल = जो हिल न सके (अटल)।

३६१. जुद्ध जुरत = युद्ध करते हैं। रुद्ध = छेंके हुए। मुरत = लौटते हैं। नहिं रुद्ध मुरत भट = लड़ने में लगे हुए वीर घिर जाने पर भी नहीं मुड़ते। खग्ग बजत = तलवार बजती है (चलती है)। बग्ग = (बाग, सं॰ वल्गा) घोड़े की लगाम। पग्ग = पगड़ी। चट = तुरत। ढुक्कि फिरत = छिपे फिरते हैं। मद झुक्कि = मदमत्त होकर। कुक्कि = (कूक) शब्द। हर = महादेव। रंग······छकत—महादेव के साथवाले भूत-प्रेतादि रक्त-पान करके अघा जाते हैं। चतुरंग = चतुरंगिणी सेना। संगर = युद्ध। विषम = घोर।

३६२. बानर = बंदर। बरार = (सं॰ बल + आलय) बरियार, बली।

बाघ = व्याघ्र। बेहर = (सं० बैर = भयानक) क्रोधालु। बिलार = (सं० विडाल) बिलौटा। बिग = (सं० वृक) भेड़िया। बगरे = फैले हुए। बराह = शूकर। जानवर = पशु। जोम = झुंड। भारे = भारी। भालुक = भालू। लीलगऊ = नीलगाय। लोम = लोमड़ी। ऐंडायल = मदमस्त। गैंड़ा = (सं० गंडक) एक जंगली पशु। गररात = भीषण ध्वनि करते हैं, गरजते हैं। गेह = घर। गोई = (सं० गोधा) छिपकिली की जाति का एक जीव, बिसखोपरा। गरूर गहे = घमंड धारण किए हुए। गोम = (सं० गोमायु) सियार। खल-कुल = दुष्टों का समूह। मिले खाक = मिट्टी में मिल गए। खेरा = (सं० खेट) छोटा गाँव। खबीस = (अ०) दुष्ट और भयंकर जीव। खोम = (अ० क़ौम) समूह, झुंड।

२६३. तुरमती = (तु० तुरमता) बाज की तरह की एक शिकारी चिड़िया। तहखाना = (फा०) जमीन के नीचे बनी कोठरी, भुइँहरा, तलगृह। गीदर = सियार। गुसुलखाना = स्नानागार। सूकर = सुअर। सिलहखाना = हथियार रखने का स्थान, शस्त्रालय। कूकत = कू कू करते हैं। करीस = (करि + ईश) श्रेष्ठ हाथी। कूकत करीस हैं = हाथियों की भाँति शब्द करते हैं। हिरन = मृग। हरमखाना = हरमसरा, अंतःपुर (बेगमों के रहने का महल)। स्याही = एक पशु जिसके शरीर में काँटे होते हैं। सुतुरखाना = ऊँटों के रहने का बाड़ा। पाढ़ा = एक प्रकार का हरिण, चित्रमृग। पीलखाना = हाथीखाना। करंज = (सं० कलिंग, फा० कुलंग) मुर्गा। करंजखाना = पालतू मुर्गों के रहने का स्थान। कीस = बंदर। खपाए = मार डाले। खाने-खाने = स्थान स्थान (प्रत्येक स्थान)। खेरा = छोटा गाँव। खीस भए हैं = चौपट हो गए हैं। खड़गी = (सं० खड्ग) गैंडा। खिलवतखाना = (फा०) एकांत स्थान। खीसैं खोले = दाँत निकाले हुए। खसखाना = खस की टट्टी से घिरा हुआ स्थान। खबीस = दुष्ट जीव।

२६४. यदि शिवाजी से याचना नहीं की तो औरों की याचना करने से कुछ न होगा (पर्याप्त धन न मिलेगा)। यदि शिवाजी से याचना की तो फिर औरों से याचना करने की आवश्यकता ही नहीं (क्योंकि पर्याप्त धन मिल जायगा, किसी से माँगने की आवश्यकता ही न रहेगी)।

३६५. जहाँ बारंबार एक ही प्रकार के अक्षर-समूह का प्रयोग हो, पर अर्थ भिन्न-भिन्न हो, वहाँ यमकालंकार होता है। (यमक = दो)।

३६६. पूनावारी = पूनावाली। अमीर = (अ०) कार्याधिकारी। मीर = (फा०) प्रधान, नेता। गति = चाल। पूनावारी......गति है—अमीरों की पूनावाली दुर्दशा सुनकर मीरों ने वायु की चाल ग्रहण की (अमीरों की जो दुर्दशा पूना में हुई उसे सुनकर मीर लोग वायु की तरह—अत्यंत तेजी से—भागे)। जुरि जंग = युद्ध में लड़कर। जसवंत = राजा यशवंतसिंह। जसवंत = यशवाले, यशस्वी। रजपूत = (राजपूत) क्षत्रिय। रज-पूत-पति = (रज = रजपूती, पूत = पवित्र, पति = स्वामी) पवित्र रजपूती के स्वामी। मार्यो..... पति है—युद्ध में भिड़कर उन यशस्वी यशवंत को भी मार भगाया जिनके साथ कितने ही पवित्र रजपूती की आन निबाहनेवाले राजपूत थे। भूपन = कवि का नाम। कुल-भूषन = कुल में श्रेष्ठ। सिवराज = महाराज शिवाजी। सिवराज = महादेवजी। बरकति = (अ०) बढ़ती। भूतल के दीप = पृथ्वीमंडल के दीपक (पृथ्वी में प्रकाशमान अथवा श्रेष्ठ)। समै = वर्तमान समय के राजा दिलीप। दिल्ली-पति=औरंगजेब। सिदति = कष्ट।

विवे०—यहाँ 'अमीरन की गति—समीरन की गति', जसवंत—जसवंत', 'रजपूत—रजपूत', 'भूषन—भूषन', 'सिवराज—सिवराज' 'दीप—दीप' और 'दीलीप—दिलीपति' में यमक है।

३६७. जहाँ पुनरुक्ति का आभास मात्र हो वस्तुतः पुनरुक्ति न हो वहाँ पुनरुक्तिवदाभास होता है। निदान=अंत में। (पुनः + उक्तिवत् + आभास)।

३६८. अरिन के दल = शत्रुओं की सेना। सैन संग रमै = साथ ही शयन में रमते हैं (साथ-साथ मरते हैं)। समुहाने = संमुख होने पर। घमसान = युद्ध। बार-बार=(द्वार-द्वार) दरवाजे-दरवाजे। रूरो=सुंदर। परवाह = (प्रवाह) धारा। मद=मदमत्त हाथी की कनपटी से बहनेवाला एक द्रव पदार्थ। जल-दान = दान करने में संकल्प का जल। सूर = (शूर) वीर। रवि = सूर्य। तीखन = तीक्ष्ण। जगत = जागता है (प्रकाशित है)। जहान = संसार।

विवे०—यहाँ 'दल—सैन' 'संगर—घमसान' 'मद—दान' (हाथी के मद का नाम भी 'दान' है), 'सूर—रवि' 'जगत—जहान' में पुनरुक्तिवदाभास है।

३६९. जिस वाक्य-रचना के लिखने अथवा सुनने में विचित्रता और आश्चर्य हो, उसे 'चित्र' कहते हैं। इसके कामधेनु आदि कितने ही प्रकार हैं।

३७०. ध्रुव = (सं० ध्रव) अटल। गुरता = (गुरुता) बड़प्पन। गुरु भूपन = भारी भूपन, अत्यंत श्रेष्ठ। विरजा = पार्वती। पिव = (प्रिय) पति। हुव = हुआ। हरता = हरण करनेवाला। रिन = (ऋण) कर्ज। तरु-भूपण = वृक्षों में श्रेष्ठ, कल्पवृक्ष। सिरजा = बनाया गया है। छित्र = अत्यंत तुच्छ। भुव = (भू) पृथ्वी। भरता = भरण-पोषण करनेवाला। दिन को = प्रतिदिन। नरु-भूपन = मनुष्यों में श्रेष्ठ। सरजा = शरजाह, शिवाजी की उपाधि। सिव = शिवाजी। तुव······भूपण—और हे भूपण ! तू जो इन अलंकारों का कर्त्ता (रचयिता) है। वर जानि वहै = उसे (सभी बड़े दानियों में) श्रेष्ठ समझ।

सूचना—इस छंद से २८ सवैया बन सकते हैं।

३७१. जहाँ एक ही पद्य में कई अलंकार होते हैं वहाँ संकर नामक उभयालंकार होता है।

विशेष—वस्तुतः उभयालंकार के दो भेद हैं—संसृष्टि और संकर। 'भूपण' का लक्षण 'संकर' का लक्षण न होकर 'उभयालंकार' का लक्षण है जहाँ पर अलंकार तिल-तंदुलवत् मिले रहते हैं वहाँ 'संसृष्टि' और जहाँ क्षीर नीरवत् मिले रहते हैं वहाँ 'संकर' होता है।

३७२. बाजिराज = श्रेष्ठ घोड़ा। बाज = एक तेज उड़नेवाला शिकारी पक्षी। समाजैं = मंडली को। पौन = (पवन) वायु। पायहीन = पदरहित दृग = आँख। मीन = मछली। चलाक = चपल। चित = मन। कुलि = समस्त आलम = संसार। उर-अंतर = हृदय के भीतर। तीर = बाण। एक तीर भरि = जितनी दूर पर जाकर तीर गिरे।

३७३–३८१. इनमें पिछले अलंकारों के नाम गिनाए हैं। कुल १०५ अलंकार भूषण ने कहे हैं।

३८२. संवत् १७३० आषाढ़ बदी त्रयोदशी रविवार के दिन 'शिवराज भूषण' समाप्त हुआ।

३८३. एक···धाम—सिवाजी एक तो प्रभुता के धाम रहें, संसार में

शासन करें। दूजे'''काम—दूसरे वेदों के अनुसार कार्य करें। पंचआनन = शिव (शिव-से दानी रहें)। षड़ानन = कीर्तिकेय (की भाँति सेनापति हों) सरबदा = सर्वदा, सदा। सातौ वार = सप्ताह के सातो दिन। याम = तीन घंटे या साढ़े सात घड़ी का एक 'याम' होता है। जाचक'''नव—नये-नये याचकों को दान दें। कृपन = (कृपाण) तलवार। अवतार''''''गदा—गदाधारी हरि (विष्णु) की भाँति इस कृपाणधारी शिवाजी का अवतार भी स्थिर रहे। शिव-राज = शिवाजी का राज्य। त्रिदस = देवता।

अलं०—इस छंद में 'भूषण' ने बड़ी कारीगरी से 'रत्नावली' अलंकार दिखाया है। एक से लेकर चौदह तक की गिनती क्रमपूर्वक कही है। एक, दूजे (दो), तीनौ (तीन), बेद (चार), पंच (पाँच), षड़ानन (छः), सातौ (सात), आठौ (आठ), नव (नौ), अवतार (दस), सिव (ग्यारह), भूपन (बारह), त्रिदस (तेरह), भुवन (चौदह)।

३८४. पुहुमि = पृथ्वी। पानि = जल (समुद्र)। रवि = सूर्य। ससि = चंद्र। पवन = वायु। लौं = तक। जिया = जीवित रहो। सुजस-प्रकास= सुयश का प्रकाश होवे।

शिवा-बावनी

१. सक्र = इंद्र। सैल = पर्वत। अर्क = सूर्य। तम-फैल = अंधकार का फैलाव (अंधकार-समूह) रैल = रेला (समूह)। लंबोदर = गणेश। कुंभज = अगस्त्य। बिसेखिए = विशेषता रखते हैं। हर = महादेव। अनंग = कामदेव। भुजंग = सर्प। अंग = पक्ष। कौरव के अंग पर = कौरव के पक्ष पर (कौरवों की मंडली पर)। पारथ = (पार्थ) अर्जुन। पेखिए = देखे जाते हैं। बिहंग = पक्षी। मतंग = हाथी।

अलं०—अभिन्नधर्मा मालोपमा।

२. दावा = आधिपत्य। नाग = सर्प। नाग-जूह = [नाग = हाथी + जूह (यूथ) समूह] हाथियों का झुंड। सिरताज = श्रेष्ठ। पुरहूत = इंद्र। गोल = समूह। अखंड = संपूर्ण। नवखंड-महि-मंडल = पृथ्वी के

नवों खंड (भरत, इलावृत्त, किंपुरुष, भद्र, केतुमाल, हरि, हरिण्य, रम्य, और कुश)। रवि-किरन-समाज = सूर्य की किरणों का समूह। तें = से। लौं = तक। पातसाही = बादशाही।

अलं०—मालोपमा।

३. बारिधि = समुद्र। कुंभभव = (घड़े से उत्पन्न) अगस्त्य। दावानल = दावाग्नि। तिमिर = अंधकार। तरनि = (संस्कृत) सूर्य। कंठनील = (नीलकंठ) महादेव। कैटभ = एक राक्षस (इसे कालिका ने मारा था)। बिहंगम = पक्षी। आसुर = (असुर) राक्षस। पन्नग = सर्प। पच्छिराज = गरुड़। कार्तवीज = सहस्रबाहु।

अलं०—परंपरित रूपक (माला)।

४. चतुरंग = (चतुः = चार + अंग) जिस सेना में हाथी, घोड़ा, रथ और पैदल चारों अंग हों। उमंग = उत्साह। सरजा = (सरजाह) यह उपाधि शिवाजी के पुरुषा मालोजी को मिली थी। जंग = युद्ध। नाद = शब्द। बिहद = (बेहद) अत्यधिक। नद = बड़ी नदी को 'नद' कहते हैं, जैसे सिंधुनद। मद = मस्त हाथी की कनपटी से बहनेवाला एक द्रव पदार्थ। गैबर = (सं० गजवर) श्रेष्ठ हाथी। रलत है = वह चलते हैं। ऐल = समूह (यहाँ सेना)। फैल = फैलने से। खैल-भैल = (खलभल) खलबली। खलक = संसार। गैल = मार्ग। ठैल-पैल = (ठेल-पेल) धक्कमधक्का। सैल = (शैल) पहाड़। उसलत हैं = स्थान-भ्रष्ट हो जाते हैं। धूरिधारा = (उड़ी हुई) धूल का समूह। थारा = थाल। पारावार = समुद्र।

अलं०—अत्युक्ति (वीरता की)।

५. बाने = भाले के आकार का एक हथियार, इसमें कभी कभी झंडा भी बाँध देते हैं। फहराने = हवा में हिलने लगे। घहराने = आवाज करने लगे। घंटा गजन के = हाथियों के गले में बँधे हुए घंटे। न ठहराने = नहीं ठहर सके (रण में स्थिर न रह सके)। राव = छोटे राजा। राना = बड़े राजा। नग = पर्वत। भहराने = गिर पड़े। पराने = भाग गए। निसाने = धौंसे, नगाड़े। नरेस = राजा। हौदा = हाथी की पीठ पर रखा जानेवाला आसन, जिसमें लोग बैठते हैं। उकसाने = हिल-डुल गए,

स्थान-भ्रष्ट हो गए । कुंभ = हाथी का मस्तक । कुंजर = हाथी । भौन = (भवन) घर । भजाने = भागे । अलि = भौंरा । लट = बालों की लटें । केस = (केश) बाल । अन्वय—कुंजर-कुंभ के अलि भौन को भजाने, केस के लट छूटे । दल = सेना । दरार = रगड़ । कमठ = कच्छप की पीठ । करारे = कठोर । केरा = केला । पात = पत्ता । विहराने = फट गए । फन सेस के = शेषनाग के फण (सिर) ।

अलं०—अत्युक्ति (वीरता की) ।

६. पिचास = (पिश् = कच्चा मांस + अच् = खाना) कच्चा माँस खानेवाले । निशाचर = (निशा = रात्रि + चर् = चलनेवाले) राक्षस । बधाई = आनंदसूचक गान । भैरो = भैरव । भूरि = अधिक । भूधर = पहाड़ । भूधर-भयंकर-से = पहाड़ के समान भयंकर । जुत्थ = (सं० यूथ) झुंड । जमाति = समूह । जोरि = एकत्र करके । किलकि = किलकारी मारकर । डिम-डिम = डमरू का नाद । दिगंबर = (दिक् = दिशा + अंबर = वस्त्र) दिशा ही हैं अंबर जिसके (बहुव्रीहि समास) महादेव । सिवा = पार्वती । काहू पै = किसी पर । भृकुटि चढ़ाना = क्रुद्ध होना ।

अलं०—अप्रस्तुत-प्रशंसा ।

७. दावा = बराबरी का हौसला । जेर कीन्हों = पराजित किया । तामैं = उसमें । मवास = किला । बनजारे = जंगली व्यापारी । आमिष = (सं०) मांस । माँसहारी = मांस खानेवाले । खाँड़े = चौड़ी तलवारें । तोड़े = (तोड़ेदार) बंदूकें । किरचैं = पतले फल की तलवारें । तारे-से = तारों की तरह । पील = (फा०) हाथी । मतवारे = नशे में चूर ।

८. कमान = तोप । कोकबान = (कुहूकबाण) एक प्रकार का बाण विशेष । मुरचा = लड़ाई । ओट = आड़ । दावा बाँधि = हौसला करके । द्वेषी = शत्रु । जोट = जोड़ । किस्मति = बहादुरी । झोट = समूह । कँगूरा = बुर्ज

९. हतै = उधर । इतै = इधर । विदारे = चीर डाले । कुंभ = हाथी का मस्तक । करिन के = हाथियों के । चिक्करत = चिग्घाड़ मारते हैं । राखि = रखकर (रक्षा करके) । झारि डारे हैं = दूर कर दिया है ।

१०. काह = क्या । सुरन के = देवताओं के । धरकत हैं = धड़कते हैं ।

खरकत हैं = खटखट आवाज करते हैं। चंद्रावत = चंद्रावत राजपूत। लोथ = लाश। लरकत हैं = हिल रही हैं। अधफारे = अर्धखंडित। अजौं = आज भी। रुधिर = खून। पठनेटे = पठान युवक। फरकत हैं = फड़फड़ा रहे हैं।

अलं०—भाविक, काव्यार्थापत्ति।

११. जुरत = भिड़ते हैं। सजोर = बलसहित। जोम-भरे = उत्साह युक्त। लौं = तरह। परकटे = पंख कटे हुए (यहाँ पर हाथ-पैर कटे)।

१२. धौंसा = नगाड़ा। धुकार = गड़गड़ाहट। दरकत हैं = फट जाते हैं। कुंभि = हाथी। सोनित = खून। छितिनाल = एक प्रकार की बंदूक। करकत हैं = कड़ाकड़ शब्द करते हैं। जोम = पराक्रम।

१३. तमासे = तमाशा देखने के लिये। दमकत हैं = चमकते हैं। किलकति = किलकारी मारती हैं (हर्ष से)। कलल = अभिलाषा। अलल = भूतों का शब्द। तमकत हैं = उत्साहित होते हैं। रुंड = धड़। बखतर = कवच। करी = हाथी। झमकत हैं = झमझम शब्द करते हैं। ताल = गान-विद्या में अवसर विशेष पर बाजों का एक साथ बजना। गति = चाल (गत)। ताल-गति-बंध पर = (यहाँ पर) पैंतरे के साथ। कबंध = धड़। धमकत हैं = धम्म-धम्म शब्द करते हैं।

१४. चकता = औरंगजेब। सुंड = सूँड़। दुवन = शत्रु। चैन = आराम (आनंद)। चौंसठ = चौंसठ योगिनियाँ। आँत = अँतड़ियाँ। ताँत = (यहाँ) सारंगी। मृदंग = ढोलक। ताल = मँजीरा। पसुपाल = महादेव। अखारा = समाज, मंडली।

१५. दरबार = (दलबल) सेना के जोर से। दौरि = आक्रमण। कटक = सेना। दुजन = (दुर्जन) शत्रु। दरब = (सं० द्रव्य) धन। जहान = (फा०) संसार। जालिम = जुल्म करनेवाला। जंग-जालिम = युद्धवीर। जब्बर = जबरदस्त। जरब = चोट। बिलायत = विदेशी भूमि (विदेशी राज्य) दहलि जात = डर जाते हैं। समसेर = (फा० शमशेर) तलवार।

अलं०—अत्युक्ति (वीरता की) और चंचलातिशयोक्ति (चतुर्थ चरण में)।

१६. फुतकार = फुफकार। कूरम = कछुआ। बिदलि गो = कुचल गया। ज्वालामुखी = अग्नि। झार = भभक। चिकारि = चिग्घाड़ मारकर। पयपान

= दुग्धपान । कोल = शूकर । खगराज = गरुड़ । अखिल = समस्त । भुजंग = साँप ।

अलं०—उत्प्रेक्षा और उपमागर्भित परंपरित रूपक ।

१७. रसना = जीभ । सुघर = सुंदर । रोटी = जीविका । गर = गला । मीड़ना = मसलना । कर = हाथ । तेग = (अरबी) तलवार ।

१८. राख्यो = रक्षा की। हिंदुवानी = हिंदुत्व । अस्मृत=(स्मृति) धर्म-शास्त्र । बेद-बिधि = वेद की रीति । रजपूती = क्षत्रियत्व । धरा = पृथ्वी । दिवाल = (यहाँ) मर्यादा । दुनी = दुनिया ।

१९. दाहियतु है = जलाया जाता है । बाहियतु है = चलाया जाता है । बाल = स्त्री । निबाहियतु=निबाहा जा सकता है । नैनवारे = आँखों से उत्पन्न (आँसू से बने हुए) । नदन = बड़ी नदियाँ । निवारे = बड़ी नाव ।

अलं०—कार्य-निबंधना (अप्रस्तुत-प्रशंसा)

२०. दहसति = भय । बिलात = नष्ट होता है । चाह = खबर । खरकति है = खटकती है । बिलखात = दुःखी होता है । नारी = नाड़ी । हहरि = भय-भीत होकर । भरकति है = भड़क जाती है ।

अलं०—अत्युक्ति (वीरता की) ।

२१. दुग्ग = (सं० दुर्ग) किला । गाजी = धर्म के लिये लड़नेवाला वीर । उग्ग = (सं० उग्र) महादेव । उग्ग=(उग्र) आकाश । जीति = विजय । सरके = खिसक गए (भागे) । सुभट = अच्छे योद्धा । पनारेवारे = पर-नाले के । उदभट = (सं० उद्भट) प्रचंड । तारे लागे फिरन = आँखों में तारे घूमने लगे (क्रुद्ध हो गए) । सितारे-गढ़धर = शिवाजी । मीर = राजवंश के लोग । दाड़िम = अनार ।

२२. कत्ता = छोटी टेढ़ी तलवार । कराकनि = कड़ाके से । चकत्ता = चगताई खाँ का वंशज (औरंगजेब) । अकह = (अकथ्य) जो कही न जा सके । बिलाइत = विदेशी राज्य । बिललानियाँ = बिलख रही हैं । अगार = (आगार) महल । पगार = चहारदीवारी । बदन = मुख । कहा कीबी = क्या करेंगी । सुनीबी = सुंदर फुफुँदी ।

२३. बाजि = घोड़ा । दल = सेना । गही = (सं० ग्रहण) ग्रहण की ।

दीरघ-दुख = बहुत बड़ा दुःख। तनियाँ = चोली। तिलक = (तुर्की तिरलीक) ढीलाढाला लंबा कुर्ता। सुथनियाँ = पायजामा। पगनियाँ = जूतियाँ। घामैं = (सं० घर्म) धूप में। पति-बाँह-बहियान = जो अपने पति की बाँहों पर वहन की जाती थीं (जिन्हें प्रियतम प्यार से रखते थे)। तेऊ = (सं० तेऽपि) वे भी। छहियाँ = छाया। ताकि रहियाँ = ढूँढ़ रही हैं। रूख = वृक्ष। आलियाँ भ्रमरियाँ। नलिन = कमल। लालियाँ = ललाई (सौंदर्य)।

२४. इभ = हाथी। हँकारि = अहंकारी। दामिनी = बिजली। दमंक = चमक। खग्ग = (सं० खड्ग) तलवार। निसान = झंडा। हरमैं = (अरबी) रानियाँ। भवन = महल। उझकि उठैं = घबड़ा जाती हैं। बयारी = हवा। भूल मति = गलती न कर। गाजत न = नहीं गरजते हैं। घोर-घन = भारी बादल। सितारे-गढ़धारी = (सतारा गढ़ के स्वामी) शिवाजी।

अलं०—अपह्नुति।

२४. धरा = पृथ्वी। पग = पैर। सगबग = भयभीत। गात = शरीर। अनखाना = बिगड़ उठना। जोन्ह = (सं० ज्योत्स्ना) चाँदनी। धूपै = धूप में।

२५. घोर = भारी। मंदर = (मंदिर) महल। अंदर = भीतर। रहन-वारी = रहनेवाली। घोर = भयंकर। मंदर = पर्वत। रहाती हैं = रहती हैं। कंद = (फारसी) मिश्री। मूल = तत्त्व। कंद-मूल = बढ़िया मीठा। भोग करैं = खाती थीं। कंद-मूल = कंदा और जड़। तीन बेर = तीन दफे, तीन बार। तीन बेर = तीन बेर (बदरीफल), जंगली बेर। भूषन = गहना। सिथिल = (शिथिल) सुस्त। भूषन सिथिल अंग = गहनों के बोझ से जिनका शरीर सुस्त रहता था। भूषन = भूखों से। बिजन = पंखा। डुलातीं = झलती थीं। बिजन = निर्जन, जहाँ कोई मनुष्य न हो (ऐसे जंगलों में)। डुलाती हैं = डोलती (घूमती) हैं। त्रास = डर। नगन = रत्नों को। जड़ातीं = जड़वाती थीं। नगन = नग्न, नंगी। जड़ातीं = जाड़ा खाती हैं।

अलं०—यमक।

सूचना—यही कवित्त कुछ हेर-फेर के साथ 'शिवसिंह-सरोज' में 'इंदु' कवि के नाम पर मिलता है। पर पाठांतर देखने से यह साफ जान पड़ता है कि 'इंदु' ने 'भूषण की नकल की है।

२६. मंदिर = मकान (महल)। पथ = रास्ता। बिहाल = (विह्वल) व्याकुल। हार = माला। चीर = वस्त्र। झुँझलाती हैं = खीझती हैं। बनासपाती = (सं० वनस्पति) घास-पात।

अलं०—वृत्यनुप्रास और यमक (नासपाती और बनासपाती में)।

२७. चोवा = एक सुगंधित द्रव पदार्थ जो कई गंध-द्रव्यों को मिलाकर गर्मी की सहायता से उनका रस टपकाकर तैयार होता है। सहज = स्वाभाविक। सुवास = सुगंध। बिकसाती हैं = फैलाती हैं।

अलं०—यमक।

२९. सोंधा = सुगंधित वस्तुएँ। आहार = भोजन। चार-अंक-लंक = जिनकी कमर चार के अंक (के मध्य भाग) की भाँति पतली है। काय = शरीर। तपती = तपन (गर्मी)। छरा = इजारबंद। अच्छरा = (सं० अप्सरा)। कहे ते = कहा था। कंत = पति। पानी = आब (चमक) और जल।

३०. भेलास = भेलसा (ग्वालियर राज्य में)। ऐन = (अरबी) ठीक। सिरौंज = बुँदेलखंड में एक स्थान। लौं = तक। परावने परत हैं = भगदड़ पड़ जाती है। गोड़वानो = नागपुर के आस-पास का प्रदेश। तिलगानो = तैलंगों का देश। फिरंगानो = फिरंगियों का देश, हिंदुस्तान में जहाँ-जहाँ यूरोपवाले रहते थे। रुहिलानो = रुहेलखंड। रुहिलन = रुहेला (मुसलमानों की एक जाति)। हहरत है = भयभीत होते हैं। बाजे-बाजे रोज = कभी कभी। उघरत हैं = खुलते हैं।

३१. हदसनि = हदस (भय)। घरी = घड़ी भर। बिडरि = विशेष डरकर। भाजे = भागे। दरगाह = धार्मिक मेला का स्थान (तीर्थ)। पातसाही चित धरी है = बादशाहत पर दृष्टि डाली है (उसे लेना चाहते हैं)।

३१. नित = नित्य, हमेशा। बिलंदे = बिलंद हुए, नष्ट हुए। बारिधि = समुद्र। बिहरनो = भ्रमण करना। उमराव = अमीर (सरदार)। बरनो = वर्णन करूँ।

३३. बिजपूर = बीजापुर। बिदनूर = गुजरात का एक देश। सूर = वीर। सर = बाण। न संधहिं = नहीं संधानते, नहीं सजाते। मल्लारि =

मालावार। धम्मिल = जूड़ा। कोटिन = करोड़ों। चिंजी = दक्षिण का एक देश, जिंजी। चिंजाउर = चंदावर, तंजौर। चालकुंड = दक्षिण का एक बंदर-गाह। दलकुंड = दक्षिण का एक देश, संभवतः दभोल। मदुरा = दक्षिण का प्रसिद्ध तीर्थ मदुरा। संचरहि = फैलता है। धरेस = (धरा = पृथ्वी + ईश) राजा। धक-धकधकत = धकधकाता है। निबिड़ = बहुत। अबि-रल = बराबर।

अलं०—कार्य-निबंधना (अप्रस्तुत-प्रशंसा), तुल्ययोगिता।

३४. अफजलखान = बीजापुर के बादशाह का सेनापति। मयदान = रणक्षेत्र। दराज = अधिक। रुस्तम = रुस्तमे जमाँ (इसे शिवाजी ने पन्हाले पर हराया था)।

३५. तरि = पार करके। मनसब = पद। हजरत = श्रीमान्।

३६. दारा = औरंगजेब का भाई (इससे औरंगजेब कोड़ा जहानाबाद में लड़ा था)। खजुए की रारि = खजुआ (फतेहपुर जिले के एक कस्बे) में शाहशुजा से लड़ाई हुई थी। मुरादसाह-बाल = बालक (छोटा) मुराद-शाह (यह भी औरंगजेब का भाई था, इसे भी धोखा देकर औरंगजेब ने कैद कर लिया था)। देहरा = मंदिर। कतलान कीन्हे = मार डाले। साल = (शल्य) घातक।

३७. चंदराव = जावली का राजा। रिसालैं = खिराज, कर। करनालैं = तोपें।

अलं०—यमक (एदिल-बेदिल और करनालैं-परनालैं में), लोकोक्ति।

३८—केतकी = केवड़े का फूल। राना = राणा (उदयपुर)। सिगरे = सब। मकरंद = पुष्परस। बटोरि = एकत्र करके। मलिंद = भौंरा।

अलं०—उपमा-मिश्रित रूपक।

३९. कूरम = कछवाहे राजपूत (जयपुर)। कमधुज = कबंधज (जोध-पुर)। गौर = गौड़वंशी। पाँडरि = पुष्प विशेष। पवाँर = परमार। बकुल = मौलसिरी। हंसराज = पुष्प विशेष। मुचकुंद = एक फूल। बड़गूजर = राजपूतों का एक कुल। बघेले = बघेलखंड के राजपूत।

अलं०—उपमा-मिश्रित रूपक।

४०. गुर्ज = गदा। गुसुलखाना = स्नानागार। नौरँग = औरंगजेब। भेंट = नजर (उपहार)।

४१. नियरें = निकट। गैरमिसिल = अयोग्य, अनुचित। गुसीले = गुस्सावर (क्रोधी)। सियरे = शीतल। उड़ाय गए जियरे = जी उड़ गए (डर गए)। तमक = क्रोध।

अलं०—विषम।

४२. सूबा = सूबेदार। रसीले = रसयुक्त, सरस। गरब = गर्व (अभिमान)। गरब-गसीले = गर्व की गाँस से युक्त (गर्वयुक्त)। कर = हाथ।

अलं०—विषम।

४३. भान = (भानु) सूर्य। आन = (अन्य) और। खुमान = आयुष्मान। त्रिपुर = एक असुर। हनी = मारी (जीती)।

अलं०—व्यतिरेक।

४४. गँजाय = (सं० गंजन) तोड़ताड़कर। सजाय करि = दंड देकर। केते = कितने ही। धरम-दुवार दै = धर्म के दरवाजे से होकर (धर्म के नाम पर)। बनचारी = जंगलों में घूमनेवाला। बंदीखाना = कारागार। हजारी = 'हजारी' पद पानेवाले (पंचहजारी, छ हजारी आदि)। रैयत = प्रजा। बजारी= बाजारू (साधारण)। महतो = गाँव का मुखिया। डाँड़ि लेना = दंडित करना। महाजन = रुपये-पैसे का लेन-देन करनेवाला। पटवारी = गाँव के खेत-पात का लेखा-जोखा रखनेवाला।

अलं०—पूर्णोपमा और अनुप्रास।

४५. बागवान = माली। ताते ह्वै = गर्म होकर (तेहा करके)। बाग = बगीचा। रहँट = कुएँ से बैलों द्वारा पानी निकालने की कल, पुरवट। घरी = घड़े।

अलं०—उपमा।

४६. लघुताई = हीनता। गरो परिबे को = गला बैठ जाने के लिये (अधिक जोर से या अधिक बोलने से गला पड़ जाता है)। गरजा = चिल्लाया। अरजा = प्रार्थना की। रन छोरो = युद्ध-क्षेत्र छोड़कर भाग जाते हो। करि परजा = प्रजा बनाकर। निबेरो = निपटारा। कायर = (कादर) डरपोक। सरजा = सिंह और शिवाजी की एक उपाधि।

अलं०—विधि (कायर सो कायर औ सरजा सो सरजा)।

४७. मोरँग = नैपाल की तराई के पूर्व का देश। बाँधव = रीवाँ। पलाऊँ = देश-विशेष। बावनी बवंजा = ये युक्तप्रांत के दो नगर थे। नव-

कोटि = नवकोटी (मारवाड़)। धुंध जोत हैं = आँख की ज्योति मंद पड़ गई है।

अलं०—काव्यलिंग।

४८. देवल = देवालय। (मंदिर)। गिरावते = गिराते। निसान = झंडा। अली = मुहम्मद साहब के दामाद, मुसलमानों के चौथे खलीफा। राव = छोटे राजा। राने = महाराणा (बड़े राजा)। गए लवकी = भाग गए। गौरा = पार्वती। गनपति = गणेश। मारि गए दबकी = दबक गए। पीरा = पीर (मुसलमान सिद्ध)। पयगंबरा = पैगंबर (ईश्वर के दूत)। दिगंबर = औलिया (मुसलमानों में नंगे रहनेवाले साधु)। रब = खुदा। कला = ज्योति (प्रभाव)। मसीत = मसजिद। सुनति = (सुन्नत) खतना।

अलं०—संभावना और अनुप्रास।

४९. आदि = आदि-पुरुष, परमात्मा। पिछानो = पहचानो। बब्बर = बाबर। ढब = ढंग। चाह = प्रेम, ख्वाहिश। हुती = थी। साख = (सं० साक्ष्य) गवाही। पूरैं = पूर्ण करते हैं।

अलं०—संभावना।

५०. औनि = (सं० अवनि) पृथ्वी। दोहाई फेरी रब की = मुसलमानी धर्म का बलपूर्वक प्रचार करवाया। सोई = वही। पेखि = (सं० प्रेक्षण) देखकर। पानि = (सं० पाणि) हाथ। बर्न = (सं० वर्ण) जाति।

अलं०—संभावना, काव्यार्थापत्ति।

५१. खाकसाही = भस्मीभूत। खिसि गई = निकल गई। सेखी = तेहा। फिसि गई = दूर हो गई। हिसि गई = छूट गई। दमामा = नगाड़ा।

५२. सुमन = फूल। मकरंद = पुष्परस। और मकरंदशाह (मालोजी) शिवाजी के पुरुषा। सुमन = सुंदर मनवाले (शिवाजी)। मानस = मान-सरोवर। जस-हंस = यशरूपी हंस। मानस = मन। करि बिरोध = विरोध करके। करतूति = कर्तृत्व, कार्य। अद्‌भुत-रस ओध है = अद्भुत रस से परिपूर्ण है। पानिप = आब (चेहरे की चमक)। पयोध = समुद्र।

अलं०—रूपक से पुष्ट विरोधाभास।

छत्रसाल-दशक

१. रैयाराव = राजा चंपतराय का खिताब। चंपति को = चंपतराय के पुत्र। चढ़ो = चढ़ाई की। गजराज = बड़े हाथी। जोम = (अरबी) घमंड। जमके = एकत्र होने पर। सेलैं = भाले। समसेरैं = तलवारें। घन = हथौड़ा। कैसे = सदृश, समान। धमके = चोट। बैयर = (सं० वधूवर) स्त्री। बगार = (फा० बलगार) दुर्गम घाटी। अगार = घर। पगार = चहारदिवारी। धमके = नगाड़े की गड़गड़ाहट होने पर।

अलं०—उपमा, उत्प्रेक्षा और अनुप्रास।

२. चाकचक = चारों ओर से चाकी हुई (सुरक्षित)। चमू = सेना। कै = या। अचाक-चक = अरक्षित। चाक = चक्र। लाल = पुत्र। जेर कीन्हीं = नीचा दिखाया, हराया। करवाल करेरी की = तलवार लेकर सामना किया। बिरुदैत = यशस्वी। थप्पन उथप्पन = उजड़े को बसाना और बसे को उजाड़ना। बानि = स्वभाव। जंग-जीतिलेवा = युद्ध जीतनेवाले। दामदेवा = कर देनेवाले। महेवा = इस गाँव में छत्रसाल रहा करते थे।

अलं०—अनुप्रास, उपमा और विशेषोक्ति।

३. साँग = (सं० शक्ति) भाला। पेलि = ढकेलकर। खेलि = लड़कर। समद = अमीर अब्दुस्समद। समद = (समुद्र) सागर। उदंगल = उद्दंड। महम्मद अमी खाँ = मुहम्मद हाशिम खाँ, यह सिरोंज का थानेदार था। चकत्ता = औरंगजेब। कत्ता = तलवार। छत्ता = छत्रसाल।

अलं०—उपमा, यमक और अनुप्रास।

४. दहपट्टि = उजाड़कर, चौपट करके। मेंड = सीमा। बरगी = बारगीर, वे सिपाही जो सरकारी घोड़े पर राज-कार्य करते थे। मानौ दल = मनुष्यों की सेना। देवा = (फा०) राक्षस। बिहाल = विह्वल। सोर = शुहरत, प्रसिद्धि। मंडित = छाया हुआ, फैला हुआ। दच्छिन के नाह = देखो 'ऐतिहासिक नाम'। ज्यों सहसबाहु नै प्रबाहु रोक्यो रेवा को = देखो 'अंतःकथाएँ'।

अलं०—उत्प्रेक्षा, उपमा, उदाहरण और अनुप्रास।

५. अत्र = (अस्त्र) फेंककर चलाया जानेवाला हथियार। खिझ्यो = क्रुद्ध हुआ। खेत = रण-क्षेत्र। बेतवा = एक बड़ी नदी। झुकि = क्रुद्ध होकर।

झपटैं = चढ़ाई । कबड़ी = कबड्डी का खेल । सै = (शत) सौ । चपटैं = चोट । हुलसी = प्रसन्न हुई । ईस = महादेव । जमाति = मंडली । जपटैं = झपटती हैं । समद लौं = समुद्र सम । समद = अब्दुस्समद ।

अलं०—उपमा, यमक और अत्युक्ति (वीरता की) ।

६. औंढ़ी = (सं० कुंड) गहरी । उमड़ी = बढ़ी हुई । छेकी = रोका । मेड़ बेंड़ी = सीमा रोक ली । चक्कवै = (सं० चक्रवर्तिन्) सम्राट् । घमासान = घोर युद्ध । सौंहैं = संमुख । भकरुंड = भकभक शब्द करके खून फेकनेवाले । रुंड = धड़ । भवके = भकभक करके रक्त उगलने लगे । भुसुंड = (सं० भुशुंड) हाथी । तुंड = मुख (सूँड़) । हर = महादेव । पठनेटे = पठान युवक । टाट-पर = ठाट-परायण, बनाव-सिंगार के व्यसनी । डरे रहे = पड़े रहे ।

अलं०—उपमा, रूपक और अनुप्रास ।

७. भुजगेस = शेषनाग । बैसंगिनी = (वयस् + संगिनी) आयुभर साथ देनेवाली । खेदि = खदेड़कर । खाना = डँसना । दीह = (सं० दीर्घ) बड़े । पाखर = लोहे की झूल । मीन = मछली । परवाह = (प्रवाह) धारा । परछीने = (पक्षछिन्न) परकटे । ऐसे = सदृश । पर = शत्रु । छीने = निर्बल । बर=बल ।

अलं०—रूपक, उपमा, उदाहरण, काकुवक्रोक्ति, यमक और अनुप्रास ।

८. हैबर = (हयवर) श्रेष्ठ घोड़े । हरट्ट = (हृष्ट) मोटे ताजे । गैबर = (गजवर) श्रेष्ठ हाथी । गरट्ट = (गरिष्ठ) भारी और पुष्ट । ठट्ट = झुंड । रोको रन ख्याल = लड़ाई ली । ढाल = रक्षक । कैयक = कई एक । रंजक = वह बारूद जो तोपों की पियाली में रखी जाती है और जिसमें पलीता लगाया जाता है । दगनि = जलाना । अगनि रिसाने की = क्रोधाग्नि । सैद अफगन = दिल्ली से भेजा गया एक सरदार । सगर-सुत = राजा सगर के ६०००० पुत्र । सराप = शाप । लौं = सम । तराप = (तोप की) बाढ़ ।

अलं०—रूपक, उपमा और अनुप्रास ।

९. ऐंड़ = घमंड । हरि = हरण करके । मुरि गए = हारकर भाग गए । मुहमद = मुहम्मद खाँ बंगश । जेर किय = हराया । रंग = मुख की कांति । झुक्के = झुक गए, गिर गए । निसान = झंडे । सक्के = संकित हुए । समर =

युद्ध । मक्का = मुसलमानों का प्रसिद्ध तीर्थस्थान । तुरक = मुसलमान ।

अलं०—काकुवक्रोक्ति और अनुप्रास ।

१०. छाजत = शोभा पाता है । गाजत = गरजते हैं । गयंद = (गजेंद्र)

फुटकर

१. बाही = चलाई । शमशेर = तलवार । कढ़िकै = निकलकर । कटकिन के = सेनावालों के । सेस = शेषनाग । पढ़िकै = वर्णन करके । पारावार = समुद्र । स्रोनित = खून । नाँदिया = महादेवजी का बैल । पैरिकै = तैरकर । कपाली = महादेव ।

अलं०—उपमा, रूपक और अत्युक्ति ।

२. सम्हार करि = सम्हलकर । वार = चोट । म्यान-बाँमी = म्यान रूपी बाँबी । निकासती = निकालते समय । तेरे कर वार लागे = तेरे हाथ से वार होने पर । स्रोन = खून । बिनासती = नष्ट करती है । स्याह = काली । नासती = अधिक, बढ़कर । तरासती = काट डालती है ।

अलं०—उपमा, रूपक और व्यतिरेक ।

३. सिंहल = एक द्वीप । हाक = दहाड़ । पाटसादा के = (पाट = राज-सिंहासन + शाद = भरे पूरे) भरेपूरे राज के लोग भी । दुरे = छिपे । द्राविड़ = द्राविड़ों का देश । ऐल फैल = सेना के फैलने से । गैल गैल = गली गली । भूले उनमादा के = पागल होकर शरीर की सुध भूल गए हैं । उछलि····· लंक माहि—शिवाजी की हाक सुनकर कितने ही सिंह उछल उछलकर लंका में जा गिरे । बूड़ि······दादा के—विभीषण के बापदादों के महल (पृथ्वी के हिलने से और समुद्र के बढ़ आने से) डूब गए । मेरु = सुमेरु पर्वत । अलका = कुबेर की नगरी । साहजादा = राजकुमार ।

अलं०—उपमा, अनुप्रास और अतिशयोक्ति ।

४. ताही = उसी । चरजैं = चिल्लाते हैं । जंग बरजैं = युद्ध के लिये मना करते हैं । अरजैं = विनय ।

५. चमू = सेना । एदिल = आदिलशाह । मति = नहीं ।

अलं०—लोकोक्ति और निदर्शना ।

६. कत्ता = छोटी टेढ़ी तलवार। कसैया = बाँधनेवाला। रूम के चकत्ता = रूम के बादशाह। सरसात = छाई हुई है। कलिंग = उड़ीसा। हेरात है = खो जाती है। बिराट = भारी। बंग = बंगाल। बलख = अफगानिस्तान का एक नगर। बिललात है = व्याकुल है। धुंधरि = गर्द-गुबार। हहरात = चलती है।

अलं०—अनुप्रास, उपमा।

७. बारक = एक बार। उवाहने = नंगे। बिषधर = सर्प। कर = हाथ। समसेर = तलवार।

८. चौकरी = चौकड़ी, छलाँग। जूथ = समूह। पच्छ = पंख, डैना। सटपटात = भयभीत होते हैं। तिन-पुंज = तिनके का ढेर। दौ = (दव) दावाग्नि। दराज = भारी, भीषण।

९. ऐंडदार = ठसकवाले। धोप = (धूर्वा) तलवार। धुकाइ = आतंकित करके। न सकत समुहाइकै = सामने नहीं आ सकते। बीची = तरंग। बेला = समुद्र-तट। बिलाइ जातीं = नष्ट हो जातीं।

अलं०—उदाहरण।

१०. घाट को न घर को = किसी काम का नहीं। सूबा = सूबेदार। दर = स्थान। बिगोई = विनाश। गढ़ोई = गढ़पति।

११. इसका पाठ बहुत भ्रष्ट है। भीमर = भारी।

१२. इसका भी पाठ स्खलित है। परिब्रढ़ = (परिवृत्त ?) घेर लिये। अढअढ़ = नष्ट। ढिंढ़ = भ्रष्ट (?)। गति = चेतना, शक्ति।

१३. पनारिका = पनाला, धारा। सुक = सुग्गा। सारिका = मैना।

१४. चुगल = बादशाह से शिकायत करनेवाले। महताब = चंद्रमा। निकाई = सुंदरता। सुलफाई = कोमलता। गुल = फूल। पीन = मोटे। जुगल = दोनों। मैगल = (मदगलित) हाथी।

१५. हैवत = भय। फीलखाना = हाथीखाना। पिलुआ = कीड़ा। हुँगवा = सुअर (?)। खबीस = भयंकर जीव। फसली = मौसमी बीमारी। घुर्रा = (घुग्घू ?) उल्लू।

इस छंद से 'शिवराज-भूषण' छंद २६२ मिलाइए।

१६. इस छंद का पाठ भ्रष्ट है। पौरि = द्वार। राकस = राक्षस।

१७. रेवा = नर्मदा। इत = इस ओर (दक्षिण की ओर)। निवास नहिं देत = डेरा नहीं डालते। सरजा = शरजाह उपाधि और सिंह। त्रास = डर।

अलं०—श्लेष।

१८. अडग = अटल। डोलिया = हिल गया। बेदर = दक्षिण की एक मुसलमानी रियासत। सदाई = सदा ही। बेस = रूप। बहलोलिया = बहलोल खाँ। कौल = करार, प्रतिज्ञा। भोलिया = भोला-भाला। दिल दाहि = चित्त दुखी करके। दाग = चिह्न, घाव। आहि = हाय। ओलिया = फकीर।

अलं०—पर्याय।

१९. तखत = राजसिंहासन। तपत प्रताप = आतंक छाया है। अवाज करना = धाक जमाना। अदंड = अदंडित, जिन्हें दंड नहीं मिला था। छावनी = फौज का डेरा। उदधि = समुद्र। दावनी = दमन। कबिराज = श्रेष्ठ कवि। नग = पर्वत। निसान = झंडे। झारि = झाराझार, एकदम (झंडे ही झंडे)। जगमगे = फहराने लगे। दुहाई = प्रताप का डंका पिटना, जय-जयकार।

२०. उमराव = बड़े सरदार। जेर किए = पराजित किया। जसवंत = राजा यशवंत सिंह। अजूबा = विचित्र। डूबा = डूब गया (चौपट हो गया) ऊबा = व्याकुल हो गया। सूखना = गर्मी से शुष्क होना और डर से मलिन होना। जानि = जानकर। पान = तांबूल। फेरना = नीचे ऊपर करना तथा बदलना। सूबा = सूबेदार।

अलं०—उपमा।

२१. मेड़े = सीमाएँ। खाँडनि खाँचे = जो सीमा की रेखाएँ तलवार की नोक से खींची गई थीं, तलवार के बल से जहाँ तक राज्य-विस्तार किया गया था। कंचन = सोना। हेम = सोना। काँचे = काँच।

२२. अठाना = बिगड़ गया, शरारत करने लगा। आनि = (सं० आणि = मर्यादा) लिहाज, दबाव। जोरावर = प्रबल। जोराना = बली हो गया। जमाना = समय। ढिगाने = हिल गए (तोड़ डाले गए) राव-राने = छोटे-

बड़े राजा। मुरझाने = बलहीन हो गए। ढहाना = गिर गया। पन = प्रण (रीति-रिवाज)। पुराना = पुराणों का। घमसाना = घोर युद्ध। मसाना = (श्मशान)। जहाना = संसार। बिरद बखाना = प्रशंसित। किरवाना = तलवार। बर बाना = उत्तम चाल-ढाल।

२३. कूरम = कछवाहे। कबंध = (कबंधज) राठौर। दलमनी = (दल-मणि) सेना में श्रेष्ठ। नेकहू = थोड़ा-सा। जागे = सचेत हुए, उठे। रज-धनी सों = राजधानी में। बिस्वधनी = संसार के स्वामी, ईश्वर। रसातल को डूबत = चौपट होता हुआ। उबार्‌यो = उद्धार किया। बल्लम = भाला। अनी = नोक।

अलं०—एकावली (तृतीय चरण में)।

२४. बंध कीने = बाँध लिया। पल ही = क्षण भर में। छिनाय लीने = छीन लिए। उपखान = कथा। नमाए हैं = पराजित किए हैं। कूटो = पीटो। मलही = मलते हैं।

२५. आनि = दबाव। दौरि = आक्रमण करके। मोदी = बनिया। शेर खाँ लोदी = बीजापुर का पंचहजारी सरदार। अचानको = यकायक। बिहाल = (विह्वल) व्याकुल। सुवन = पुत्र। राचे अकथ कहान को = अकथ्य कहानियों की रचना कर डाली (जो बात असंभव थी उसे भी संभव कर दिखाया)। बारगीर = सिपाही। बाज = एक शिकारी पक्षी। सकुन = पक्षी। ग्राही = ग्रहण करनेवाला। बारगीर······किरवान को—हे शिवराज! कृपाण धारण करनेवाले आपके सैनिक रूपी बाज, बादशाहों की सेना रूपी पक्षियों का शिकार खेलते हैं।

२६. सपत = (सप्त) सात। नगेश = पर्वत। कुकुभ-गजेस = दिग्गज कोल = शूकर। दिनेस = सूर्य। घालै = मार डालता है। मारतंड = सूर्य। करतार = ब्रह्मा। चंड = बल। जग काजवारे = संसार का कार्य चलानेवाले (सूर्यादि)। निहचिंत = (निश्चिंत) बेफिक्र। भोर = प्रातःकाल। आसिष = आशीर्वाद। भुजदंड = बाहु, भुजा।

अलं०—तुल्ययोगिता (उपमानों की)।

२७. बाम = उलटे। दाप = प्रताप। खासो = पूर्ण। रोसनी = चमक। तेजता = तेजस्विता।

२८. मंडन = शोभा। खंडन = विरोध, चढ़ाई। आन = मर्यादा।

२९. सूबा = सूबेदार। निरा नद = एक नदी। बादर खान = बहादुरखाँ (गुजरात का सूबेदार)। गे = गए हुए। बूझत = पूछता है। ब्यौंत = यत्न। बखानो = कहो। चारु = सुंदर। थानो = (स्थान) डेरा। जाहिर = प्रसिद्ध। बानो = बाना, अंगीकृत रीति।

अलं०--यमक ('चारु बिचारु' में) और गूढ़ोत्तर।

३०. औरँग = औरंगजेब बादशाह। इक ओर = एक पक्ष में। खेलन-वारे = खेलनेवाले। ठिकान = स्थान। मिनारे = मीनार (यहाँ पर गोल)। दच्छिन...मिनारे--दक्षिण और दिल्ली इन दोनों देशों को गोल का स्थान निश्चित किया। साह सिपाह = बादशाह के सिपाही। खुमानहिं के खग = शिवाजी की तलवार। लोग = दर्शक लोग। घटा = बादल का घिराव। निहारे = देखे। साह.....निहारे--लोगों ने बादशाह की सेना और शिवाजी की तलवार को बादलों की घटा के समान देखा (सिपाहियों को काले बादल और तलवार को बिजली के स्थान में समझना चाहिए। लोगों का जमाव ऐसा था जैसे बादलों की घटा हो)। आलमगीर = औरंगजेब। मीर = सर-दार। चउगान = (फा०) चौगान, इसमें लकड़ी के डंडे से गेंद को मारते हैं और कभी कभी घोड़े पर भी चढ़कर खेलते हैं। इस प्रकार यह खेल वर्त-मान अँगरेजी खेल हॉकी और पोलो दोनों से मिलता-जुलता है। बटा = गेंद।

अलं०—उपमा।

३१. छंद का पाठ च्युत है।

३२. लैकै = लगाकर। रजवारन की = रजवाड़ों की। लुगाई = स्त्री। राहन के मार = बटपार, डकैत। दावादार = आधिपत्य या बराबरी की घोषणा करनेवाले। दबकी गए = (डर से) दुबक गए। कोऊवै = किसी ने भी। घात करना = चोट करना। नदानी = मूर्खता। स छत्तिस = राजपूतों के छत्तीस कुल। कब की = कभी से। धरे मूँछों हाथ = (हम औरंगजेब से भिड़ेंगे इस अभिप्राय से) मूँछों पर ताव दिया। सुनति = सुन्नत, खतना।

३३. तिन हुते ए घरी = उनसे लेकर इस समय तक। हेम = सोना। हीरन तें = जवाहिरातों से। सगरी = सब। चौथ = मराठों का लगाया हुआ 'कर', जिसमें आय का चतुर्थांश लिया जाता था। दौरि दौरि = आक्रमण करके। पौरि = (सं० प्रतोली) ड्यौढ़ी (यहाँ स्थान)। पौरि पौरि = प्रत्येक स्थान में। चहूँ = चारों ओर। फरी = (फिरी) घूमकर अथवा फर = (दल = सेना) मुकाबला। धूरि तन लाइ = शरीर में मिट्टी पोतकर। रैन-दिन = रातो-दिन। सूरत = शक्ल, चेहरा। सूरत कौं मोरि = चेहरा फेरकर, मुख मोड़कर। वदसूरत = कुरूप। धूरि······करी—शिवाजी ने सूरत का मुख मोड़कर इसे कुरूप बना दिया, इससे वह अपने शरीर में राख पोते रातो-दिन बैठी रहती है (अपना मुख छिपाती फिरती है)।

३४. पक्खर = (सं० प्रक्षर) लोहे की झूल जो लड़ाई में हाथी-घोड़ों पर डाली जाती है। भक्खर = सिंध का एक नगर। नंद = पुत्र। बाँधी = (कमर में) कसी। बाँकरी = (बंक) टेढ़ी। भिलार्यो = सूरत का एक शहर। गरद मिलायो = चौपट कर दिया। आगे = पहले। पीछे = पश्चात्। न भूप किन नाँ करी = किस राजा ने (पहले अथवा पीछे) नहीं नहीं की (सब राजा शिवाजी से दबते हैं)। हीरा-मनि-मानिक = जवाहिरात। पोटि = गठरी। लादि गयो = उठा ले गया। मंदिर = महल। ढहायो = गिरा दिया। काढ़ी मूल काँकरी = मूल (नींव) से कंकड़ कढ़वाया (जड़ से खुदवा डाले)। आलम = संसार (लोग)। आलम-पनाह = संसार-रक्षक (औरंगजेब बादशाह)। होरी = होलिका। फना करी = नष्ट कर दी।

३५. फरियाद = पुकार, प्रार्थना। खूँट = (सं० खंड) ओर, तरफ। चहूँ खूँट = चारों ओर। कूटि = पीटकर। मधि = मध्य। कहि······को—साड़िनी-सवार बादशाह के महल में आकर कहते हैं। दाग = चिह्न (घाव)। कौन······दै गयो—कहाँ जायँ, वह (शिवाजी) तो हमारी छाती में घाव कर गया है। गुनाह = अपराध। राव = राजा (शिवाजी)। एती बेर = इतने ही समय में। हुकुम = हुकूमत।

३६. असवार = घुड़सवार। जोरि = एकत्र करके। दलदार = सेनापति।

सुर-साल = देवताओं को शालनेवाला, राक्षस। मरदान = पराक्रमी। गंजन = नाशक। गनीम = शत्रु। गाढ़ा गढ़पाल = भारी दुर्गरक्षक। भारत = महाभारत। विकराल = भयानक। पार = एक ग्राम। जावली = एक ग्राम। तले = नीचे। स्रोन भए स्रोनित सों = रक्त बहने के कारण ललाई छा जाने से।

२७. हरौल = (तु०) हरावल, सेना का अगला भाग। अडोल = अटल। गोल = समूह। सोर = हल्ला। आनि ढुरकी = आकर लुढ़क गई। (पहुँच गई)। उचाट भयो = व्याकुलता छा गई। डोलि उठी = काँप गई। धुर = शीर्षस्थान (यहाँ किला)। राखी = बचाई।

२८. घाट = नदियों से पार होने का नाका। बाट = रास्ता। बरस दिना = एक वर्ष। गैल = गली, मार्ग। छिन = (क्षण) पल भर। चौकी = पहरा। कर मीड़े = हाथ मलती है। कर झारत = हाथ फटकारता हुआ। सेवा = शिवाजी। पलंग = शय्या। परेवा = पक्षी। परेवा ह्वै गयो = पक्षी की तरह उड़ गया।

२९. आपस = परस्पर। सारे हिंदुवान = सब हिंदू। टूटे = चौपट हुए। करतें = करते हुए। पैठना = प्रविष्ट होना। बलि = राजा बलि। वज्रधर = इंद्र। हिरनाक्ष = प्रह्लाद का चाचा। बासुदेव = श्रीकृष्ण। महिप = महिषासुर। अध्रम बिचरतें = अधर्म का आचरण करने से। चाप = धनुष।

४० असवारी = (सवारी) सेना। पंजर = पसुली। मचकि गे = टूट गए। बिडारे = नष्ट किए। किरवान = (कृपाण) तलवार। अंबिका = काली। अचकि गे = खा गई। रुंड = धड़। नँदिया = (नंदी) महादेव का बैल। भचकि गे = मोच आ गई (लँगड़े हो गए)। बिकरार = (विकराल) भयंकर। कचकि गे = कुचल गए।

४० क. अघाय = पेट भरकर। बाल = अविवाहिता स्त्री। कामिनी = स्त्री। रसाल = रसीली। बेहवाल = विह्वल। बनराइ = घोर जंगल। आलमसुभानु = संसार के सूर्य।

४० ख. तेग-बरदार = तलवार धारण करनेवाले। निखिल = समस्त। नकीब = दूत। बिराह = (बेराह) अंडबंड। खान = छोटे सरदार। उमाह =

उत्साह । आम-खास = (अ०) महलों के भीतर का वह भाग जहाँ बाद-शाह बैठते हैं ।

४० ग. सोम-सूर = चंद्रमा और सूर्य । कुलभोट = एक नगर (भटकुल)

अलं०—अत्युक्ति ।

४० घ. रूसियान = रूस के निवासी । हुन्नर = (हुनर) कला । महा-दरी = (महा + आदरी) बहुत संमान । अमान = अपरिमाण । मरदान = वीर । अरबान = अरब के रहनेवाले । अदब = (अरबी) आदर । फराँस = फ्रांस देश ।

अलं०—मालोपमा ।

४० ङ. चोरी रही मन में = कहीं चोरी नहीं है केवल मन की चोरी होती है । ठगोरी = ठग-विद्या, मोहिनी । रूप = सौंदर्य । नाहीं ...... मान में—कोई दान देने में 'नहीं' नहीं करता, मानिनी नायिकाएँ 'नहीं नहीं' करती हैं । केस = बाल । बँकाई = टेढ़ापन । हीनताई = पतलापन । कटियान में = कमर में । पात साही = शाही का पतन, राज्य का नाश । पात साही पात-साहन में = किसी का पतन नहीं होता, बादशाहों की बादशाही का ही पतन होता है । अदल = न्याय । जहान = संसार । कुच = स्तन । निलजताई = निर्लज्जता ।

अलं०—परिसंख्या ।

विशेष—उक्त पद्य में सब बातें स्त्रियों की कही गई हैं और 'अबला' शब्द का प्रयोग किया गया है । इसका तात्पर्य यह है कि शिवाजी के राज्य में अबलाओं की ओर कोई आँख उठाकर देखता भी नहीं । इसीसे सभी दुर्गुण वहीं आकर एकत्र हो गए हैं ।

४१. नाती = शिवाजी के पौत्र ।

४२. अँचै गयो = पी गया, मार डाला । रुंडी औ खुंडी = (?) । बैस = वयस, उम्र । डोकरा = बूढ़े छत्रसाल ।

४३. हहर = भय । हहर पारै = हलचल मचा देता है । गहत न = पक-ड़ता नहीं । सार = (लोहा) हथियार । रूँदि डारै = कुचल डालता है । खूँदि मारै = (घोड़े के पैरों से) दबाकर मार डालता है । खग्ग झारै =

तलवार चलाता है। खादर = वह नीची जमीन जहाँ बरसात का पानी बहुत दिनों तक जमा रहता है, कछार। खादर लौं = कछार की (धूल की) भाँति। सखर और भक्खर = सिंध के गाँव। मक्कर = मकुरान, एक गाँव (सिंध के निकट)। टक्कर लेवैया = सामना करनेवाला। वार = इस ओर। पार = उस ओर। परावने = भगदड़। परिंद = पक्षी। छार = धूल। दिल्ली······ छार है—लोगों के भागने से इतनी धूल उड़ती है कि वह पक्षियों के पंखों में भर जाती है और जब वे आकाश में उड़ते हैं तो वही धूल दिल्ली पर पड़ती है।

अलं०—पर्यायोक्ति।

४४. साहिबी = स्वामित्व (हुकूमत)। होनहार = भविष्य में उत्तम सिद्ध होनेवाली। रजपूत = सैनिक। जोम = उमंग, उत्साह। बमकत हैं = गरजते हैं। भारे = भारी। नग्रवारे = नगरवाले। तारे दै दै = ताले लगा॰ लगाकर (घर त्यागकर)। कारे घन-घोर = भारी काले बादल। धमकत हैं = धम्मधम्म शब्द करते हैं (बजते हैं)। दमकत हैं = चमकते हैं। दाहिबे को = जलाने के लिये। दच्छिन के केहरी = साहूजी। चंबल = एक नदी। आर-पार = इधर और उधर। नेजे = भाले।

४५. गनिक = (गणक) ज्योतिषी। निजामबेग = अहमदनगर का बाद॰ शाह। पतारा = जंगल, घोर वन। गंग ज्यों पतारा की = घोर जंगल (हिमालय) की गंगा। इतै······पतारा की—इधर गुजरात देश और उधर गंगा-प्रदेश (उत्तरापथ) है। एक·········गढ़हू को—एक फेरी में यश ले लेता है दूसरी फेरी में किला भी छीन लेता है। तारा (?) = चाँदी। ततारा = तातार देश। हद······ततारा की—हिंदुओं की मर्यादा का रक्षक वैसे ही है जैसे तुर्क तातार के। सहजैं = स्वभावतः।

४६. सारस = एक पक्षी। सूबा = सूबेदार। करवानक = एक पक्षी, गौरवा। मीर = छोटे सरदार। धीर मैं धचैं नहीं = धैर्य में शोभा नहीं पाते (धैर्य नहीं धारण कर सकते)। बंगस = पठानों की एक उपजाति। बलूची = बिलोचिस्तान के लोग। बतक = एक पक्षी। कुलंग = मुर्गा। रचैं नहीं = शोभा नहीं पाते। सुवन = पुत्र। दुवन = शत्रु। सचैं नहीं = संचरण

नहीं करते (सामने नहीं आते)। बाजी = घोड़ा। बाज = एक शिकारी पक्षी। चपेट = झपट। तीतर = एक पक्षी।

४७. नालबंदी = कर। राम-द्वार = स्वर्ग देकर मारकर। आमिल = शासक।

४८. धाराधर = बादल। बाजत........साथ से—नगाड़े बजते हैं मानो साथ में बादल (यश का वर्णन) पढ़ते हुए चलते हैं। गढ़ोइ = (गढ़पति) क़िलेदार। दसमाथ = रावण। मैगल = (मदगलित) हाथी। दिग्गमैगल = दिग्गज। होत अनाथ से = दिग्गज पग-पग पर अनाथ हो जाते हैं (सेना के चलने से दबकर पृथ्वी को छोड़कर हट जाते हैं, उनको बचानेवाला कोई नहीं मिलता)। उझकत = उछलते हैं। वेदपाठी = वेद पढ़नेवाले।

४९. बंब = रणनाद (यहाँ रणवाद्य)। बाजि बंब = युद्ध के बाजे बजे। बाजि = घोड़ा। कलां = (फा०) बड़ा। गाजी = धर्मवीर। राजी = पंक्ति, समूह। महाराज-राजी = महाराज का दल (सेना)। चंडी = देवी। मंढी = मंडित की। तेजताई = प्रताप। ऐंड = घमंड। छंडी = छोड़कर। दंढी = दंडित की। औनि = पृथ्वी। आन = और। चंडी........आन तें—देवी की सहायता (कृपा) से पृथ्वी में प्रताप फैलाया और उन राजाओं ने भी घमंड त्याग दिया जिन्होंने औरों से पृथ्वी दंड में ली थी। मंदीभूत = मलिन हो गया (धूल उड़ने से)। रज = धूल। बंदीभूत = पकड़ लिए गए। हठधर = हठी। नंदी-भूत-पति = महादेव। अनंदी = आनंदित। रंकीभूत = दरिद्र हो गए। करंकीभूत = (कलंकीभूत) कलंकी हो गए (क्योंकि पृथ्वी को सँभाल नहीं सके)। पंकीभूत = कीचड़मय (सेना के चलने से समुद्र में इतनी धूल गिरी कि कीचड़ हो गया)।

५०. दिगंत लौं = दिशाओं के अंत तक। दाटियतु है = काटे जाते हैं प्रलै कैसे = प्रयल काल के समान। धाराधर = बादल। धूरि-धारा = धूल के स्तंभ जो आकाश में उठते हैं (धूल का समूह)। धारा = प्रवाह। पाटियतु है = भर दी जाती है। भुवगोल = पृथ्वी-मंडल। कहर = आफत, संकट। हहरत = हिलते हुए। तगा = तागा, डोरा। काँच = कच्चा शीशा। असेष =

समस्त । कमठ = कच्छप । पिठी = पीठी (पिसी हुई दाल) । काँच······ बाँटियतु है—शेषनाग के सब फन काँच की भाँति पिसकर चूर-चूर हो जाते हैं और कच्छप की पीठ (दबकर ऐसी कुचल जाती है मानो उस) पर पीठी पीसी गई हो ।

अलं०—अत्युक्ति ।

५१. भले भाय = भली भाँति, अच्छे भाव से । भासमान = प्रकाशित । भासमान = सूर्य । भान = आभा, छाया । भानत = दूर करते हैं, तोड़ते हैं । भूरि = अत्यंत । भोगी = भोगनेवाला । भोगिराज = सर्पराज, शेष । कैसी भाँति = की तरह । उभारन को = उठाने के लिये । ख्याल = ध्यान । भावती = भानेवाली । समान = मानवती। भामिनी = स्त्री । भरतार = पति। भरतखंड·········भरत भुवाल है—भारतवर्ष में भरत के ऐसा (योग्य) राजा है । बिभौ = ऐश्वर्य । भँडार = खजाना । भासै = जान पड़ता है । भाग भरे भाल = भाग्यशाली ।

५२. भगवंत = बीकानेर के राजा भगवानदास । तनै = पुत्र । भगवंत-तनै = राजा मानसिंह । जग-जाने = जगत्प्रसिद्ध । कूरम = कछवाहा वंश । माने सों = मानने से । केते·········घराने—कितने ही राव राजा बादशाहों से संमान पाते हैं (और अपने को कृतकृत्य समझते हैं) किंतु बादशाह राजा मानसिंह के वंश से संमान पाकर अपने को धन्य समझता है ।

५३. सुहात = भले लगते हैं । सुहात स्त्रौन सीतलैं = कानों को शीतलता प्रदान करते हैं । चादरैं = चाँदी के पत्तर । पुनीत = पवित्र । लैं = भाँति । बानी = सरस्वती । बाहन = सवारी । हीतलैं = हृत्तल में । घमंडती हैं = घिरती हैं । मेंडू = राजधानी का नाम । मंडती = छा जाती हैं । मही-तलैं = पृथ्वी-मंडल को ।

५४. बुद्ध = बूँदी-नरेश हाड़ा बुद्धराव । लंक = लंका । अतंक = धाक । पतरैं = फैलते हैं । पतारे से = घोर वन की भाँति । लंक······ पतारे से—लंका तक घोर आतंक का वन-सा छा जाता है । गयंद = हाथी । जात······छारे से—शत्रु के हृदय में छाले से पड़ जाते हैं । कोल = बराह । डाढ़ = दाँत । धँसिकै·····डाढ़े—नगाड़े की आवाज पृथ्वी के भीतर धँस-

कर वराह के मजबूत दाँतों को कड़ाकड़ तोड़ डालती है। तरारे = (फा० तर्रार) चंचल अर्थात् शक्तिशाली। तमार = ग़श, बेहोशी। आवत······तमारे से—बली दिग्पालों को भी मूर्छा आ जाती है। फनीस = शेपनाग। पुरवै = पूर्ण करता है, गिरता है। फेन········फुआरे से—शेपनाग के फन (सेना के बोझ से) फट जाते हैं और उनसे विप निकल आता है वह उछल-उछलकर पृथ्वी को फोड़कर ऊपर आ जाता है और फुहारे की भाँति गिर-गिराकर समुद्र में छा जाता है।

अलं०—संबंधातिशयोक्ति, अत्युक्ति।

५५. अछक = अघाई हुई। धक = उमंग, चोप। पीवन की = (खून) पीने की। नाँगी = नंगी (खुली हुई)। भोजन बनावै = भोजन बनाती है (खा जाती है)। चोखे = अच्छे-अच्छे। खानखानन के = मुसलमानों के। स्रोनित = खून। उदर = पेट। उगिलत = मुख से बाहर फेंकती है। आसौ = मदिरा। उगिलत आसौ = शराब उगलती है (लाल-लाल शराब की भाँति खून बहाती है)। सुकल = चैतन्य। उगिलत······बीच—मुख से शराब उगलती है पर रण में चैतन्य है (शत्रु-मित्र का ठीक ज्ञान है)। राजै = शोभित होती है। तेग = तलवार। गजक = (फा० ग़ज़क) शराब पीने के बाद मुँह का जायका ठीक करने के लिये जो चटपटी चीज चखी जाती है, नाश्ता।

अलं०—विरोधाभास।

५६. उलहत = उमड़ता है। मद अनुमद = मद के बाद मद। जलधि = समुद्र। बल हद = अत्यंत बलशाली। भीम कद = भारी डील-डौलवाले। आह = (सं० साहस = स + आहस्) हियाव। गंड = कनपटी। मंडित = शोभित। बिंध्य = विंध्याचल। बिलंद = ऊँचे। थाह के = थहा लिए जानेवाले। झूल = वह कपड़ा जो शोभा के लिये जानवरों पर डाला जाता है। झंपति = छिपाए है, ढँके है। झपान = ढक्कन। झूल······झपान—झूल के ढक्कन से ढके हैं (झूलें पड़ी हैं)। झहरात = गिर पड़ते हैं। सहरात······डाह के—ईर्ष्या करनेवाले रथ गिर पड़ते हैं (रथों को आगे बढ़ने नहीं देते)। मेघ = बादल। मजेजदार = अभिमानी। गुंजरत = गरजते हैं।

५७. ऊरध-ररारध = परार्ध से भी ऊपर, परार्ध गिनती की चरम संख्या है।

५८. किबला = पूज्य पुरुष। किबले के ठौर = संमाननीय। मक्का = मुसलमानों का प्रसिद्ध तीर्थस्थान। आगि लाई है = आग लगा दी है। मेहर = कृपा। मा = माता। जायो = उत्पन्न। ठगाई = धोखा। ऐसे ही = इसी प्रकार।

५९. तसबीह = माला। बंदगी = वंदना। बंदगी सी करै = जप करता सा है। चुनाय लीन्हों = दीवाल में चुनवा दिया। छत्र = राजछत्र। छिनाय लीन्हों = छिनवा लिया। मारि बूढ़े बप के = बूढ़े बाप को मारकर। बिचलाइ = विचलित करके। हने = मारे। गोत्र = संबंधी। चपके = चुपचाप (गुप्त रीति से)। तप के = तप करने के लिये।

अल०—दृष्टांत, छेकोक्ति।

६०. डंका के दिए = नगाड़ा बजने से। डंबर = विस्तार। दल-डंबर = सेना का समूह (दल-बादल)। उमंड्यो = उमड़ा। उडमंड्यो = छा गया। उड़मंडल = तारामंडल (आकाश)। खुर = घोड़े का सुम। गरद = धूल। पैंड पैंड = कदम-कदम पर। मड़त = मढ़ जाता है, छा जाता है। मारू राग = वह राग जो युद्ध में बजाया और गाया जाता है। बंबनद = बंबनाद, सिपाहियों का 'बं बं' शब्द। घुम्मत = घूमते हैं। हरौल = सेना का अग्र-भाग। अमोल किम्मत = बहुमूल्य। दुरद = हाथी। हद न = बेहद छपद = (षट्पद) भौंरा। महि = पृथ्वी। मद = (मद) कनपटी से बहनेवाला मद। फर = रणक्षेत्र। फर नद होत = (मद) पृथ्वी पर झरने से नदी हो जाता है। कद नभनद से = इनका कद नभनदी (आकाशगंगा) तक है, बड़े ऊँचे हैं। जलद = बादल। दल = समूह। दद = (दर्द) पीड़ा। हद न... दद है—हाथियों की कनपटियों के पास बहुत से भौंरे मँडराते हैं, उनके मद से नदियाँ बह चलती हैं, उनकी ऊँचाई आकाश तक है (बड़े ऊँचे हैं) और उनका रंग देख बादलों के समूह को भी पीड़ा होती है अर्थात् वे बादलों से अधिक काले हैं।

६१. सौंधे = सुगंध से। सुखमा = (सुषमा) शोभा। खरी = तेज

(अत्यधिक)। अलकैं = लटें (बालों का गुच्छा)। झलकैं = चमकती हैं। मनसा = अभिलाषा। मन सी = मन के समान (उनके मन के अनुकूल)। ललना = स्त्रियाँ। ललकैं = लालायित होती हैं (कि हमें भी ऐसा पति-प्रेम प्राप्त हो)। भाजन = पात्र। भरि······छलकैं—उसका हँसना ऐसा जान पड़ता है मानो (हर्ष का) पात्र भर जाने से वह बाहर निकला पड़ता है किंवा शोभा ही छलकी पड़ रही है।

अलं०—उत्प्रेक्षा और संदेह।

६२. जुग = जोड़ा। प्रथमै = पहले ही। नैन लड़े = आँखों से आँखें लगीं। धाय = दौड़कर। टरे नहिं टेरे हैं = पुकारने से भी नहीं टलते (हटाने से भी नहीं हटते)। उरोज = स्तन। घनेरे = बहुत। संगर = युद्ध। मुठ-भेरे = भिड़ंत। पाछे परे = (सिर के) पीछे लटकते हुए। आलि = सखी। पाछे परे मेरे हैं = मेरे पीछे पड़ गए हैं। (मुझे तंग किया करते हैं)।

६३. कोकनद-नैनी = कमल के समान नेत्रवाली (नायिका)। केलि = क्रीड़ा। परजंक = (पर्यंक) शय्या। अनंग जोति सोकी सी = मानो काम-देव ने उसके मुख की ज्योति (तेज) सोख ली है (मुख उतरा हुआ है)। भूषन = आभूषण। दलमलि = पिसकर। हलचल भए = इधर के उधर हो गए हैं। काँति = चमक। बिंदु······रोकी सी—भाल पर लाल बिंदु फैल गया है, मानो सूर्य की चमक रोक ली गई है (फैला हुआ बिंदु सूर्य-प्रभा-सा जान पड़ता है)। लीक = रेखा। अलि = भौंरा। छूटि······दो की सी—गोरे और गोल गाल पर लट पड़ी हुई है। वह ऐसी जान पड़ती है मानो गुलाब के फूल में भौंरों की दो रेखाएँ पड़ गई हैं (दो पंक्तियों में भ्रमर बैठे हैं)। सीसफूल = एक गहना जो सिर के अग्रभाग में पहना जाता है। बिथुरि = टूट-टाटकर। चोकी = चार का एक गुट (समूह)। चंद्रमा······चोकी सी—मानो चंद्रमा से नक्षत्रों का चौका टूट पड़ा है (चंद्रमा से नक्षत्र गिर रहे हैं)।

अलं०—उक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा।

६४. जीवन = जिंदगी (प्राण)। बिडारौ = नष्ट करो। जान्यो = समझ गई। जीवन-द = जल देनेवाला, और जिंदगी (प्राण) देनेवाला। कहिबे

ही को कहानी = केवल कहने के लिये कहानी मात्र है। कैधौं = या तो, अथवा। घनश्याम = काला बादल और श्रीकृष्ण। सतावैं = तंग करते हैं। निहचै कै = निश्चयपूर्वक। उर आनी मैं = चित्त में निश्चित कर ली है। रोसु = क्रोध। भागि = भाग्य। आगि उठति ज्यों पानी मैं = जैसे (भाग्य-दोष से) पानी में भी आग की-सी ज्वाला उठने लगती है। रावरेहू = आपके भी। मेवराय = (मेघराज) श्रेष्ठ बादल। धरती = पृथ्वी। जुड़ानी = ठंढी हो गई, शांत हो गई। बरती = जलती हुई।

अलं०—श्लेष, संदेह, अन्योक्ति आदि।

विशेष—नायिका धीरा है। बादल के प्रति कथन करके वह पति को फटकार रही है।

६५. मेचक = अँधेरा। कवच = शरीर की रक्षा करनेवाला लोहे का वस्त्र। वाहन बयारि-बाजि = वायु रूपी घोड़ा ही सवारी है। गाढ़े दल = भारी सेना। दीरघ = भारी। बदन = मुख। गाढ़े······बदन के—भारी मुख-वालों की भारी सेना गरज रही है। दीरघ बदन के = दीर्घमुख (हाथियों) के और भारी आकारवाले बादल के टुकड़ों के। समसेर = तलवार। दामिनी = = बिजली। कामिनी = स्त्री। कदन = नाश। हेतु······कदन के—स्त्री-पुरुषों का मान दूर करने के लिये। पैदरि = पैदल सेना। बलाका = बगुले। धुरवा = (सं० धुर + वाह) बादलों के खंड जो घिराव के समय इधर से उधर दौड़ते हैं। पताका = झंडा। गहे = लिए। घेरि······सदन के—सूने घर के चारो ओर ये फिर रहे हैं (चढ़ाई करके घेर रहे हैं)। निरादर = अप-मान। बादर = बादल। बहादर = सिपाही। मदन = कामदेव। न करु······ मदन के—प्यारे का अनादर मत कर, उससे तुरत जाकर मिल जा। देख कामदेव ने तेरे ऊपर चढ़ाई बोल दी है। ये बादल कामदेव के सैनिक बनकर आए हैं (इस वर्षा के अवसर पर प्रियतम से रूठना बहुत बुरा है)।

अलं०—रूपक।

विशेष—कोई सखी मानिनी नायिका को बादलों का घिराव दिखाकर मान छुड़ा रही है।

६६. मलय-समीर = मलयानिल (चंदन के वन से आनेवाली वायु)।

परलै = प्रलय। जम की दिसा = यमराज की दिशा (दक्षिण)। जम ही को गोतु है = यम के ही कुल का है (यमराज की ही भाँति दुःखदायक है)। न्याय = उचित ही है। छुए तें डसै = स्पर्श करने से काट लेता है (चंदन लगाने से जलन होती है)। सहवासी = एक साथ रहनेवाला। विष-गुन को उदोतु है = अपना विष-गुण फैलाता है। दीनबंधु = ईश्वर, भगवान्। लोचन = नेत्र (सूर्य और चंद्र ईश्वर के नेत्र माने गए हैं)। सुधा को तनु सोतु है = तेरा शरीर अमृत का स्रोत है, तेरे शरीर से अमृत निकलता है। भुव-भूषन = पृथ्वी का आभूषण (श्रेष्ठ)। द्विजेस = द्विजराज (ब्राह्मणों में श्रेष्ठ चंद्रमा)। कलानिधि = कलाओं का खजाना (सोलह कलाओं से युक्त)। कसाई = वध करनेवाला, व्याधा।

अलं०—अनुमान प्रमाण, सम, विरोधाभास।

विशेष—विरहिणी नायिका वायु और चंदन की दाहकता को तो ठीक सिद्ध करती है पर चंद्र से कहती है कि तू इतने गुणों से युक्त होकर मुझे क्यों जलाता है।

६७. किरनन = किरणों से। अंग = शरीर। मैन-दुख-दाहे को = काम के दुःख से जले हुए (प्रियतम के अंग)। भूषन = श्रेष्ठ। सराहौं = प्रशंसा करूँ। जगत-सराहे = संसार से प्रशंसित। मिलाप = भेंट। चित-चाहा = मन को प्रिय लगनेवाला (प्यारा)। निसा = (निशा) रात्रि। निसा = (निसाखातिर) संतोष, तृप्ति। निसा करै = तृप्ति करता है। जो न मेरी निसा करै = यदि मेरी तृप्ति न करे। निसाकर = (निशाकर) चंद्रमा। काहे को = किस बात का।

अलं०—यमक और लाटानुप्रास।

६८. बन = जंगल। उपवन = वाटिका। अंब = आम। झौर = घौर, गुच्छा। और = अन्य प्रकार की। सरसाई है = फैल रही है। अलि = भौंरा। मदमत्त = मतवाला। केतकी = केवड़े का फूल। बसंती = एक फूल। बिषम = विषमता, टेढ़ापन। बिडारिबे को = नष्ट करने के लिये। बिषम बिडारिबे को = अशुद्ध वायुमंडल शुद्ध करने के लिये। बहत = चलता है। समीर = वायु। कूक = 'कुहू कुहू' शब्द। कानन = वन। कंत = पति।

अलं०—अप्रस्तुतप्रशंसा (कारण-निबंधना)।

६९. कारो = काला। काल = मृत्यु। लगत = जान पड़ता है। आली = सखी। कालीनाग = जिसे श्रीकृष्ण ने नाथा था। निगोड़ी = दुष्ट। बासी = बसनेवाला। भूषन......अनुराग को—भूषण कहता है कि श्रीकृष्ण का वियोग हृदय में होने से प्रेम करनेवाले सभी लोगों को वह दुःखदायी होता है। घन = बादल। एते पर = इतने पर भी। भरोसो = आसरा, विश्वास। काग = कौआ।

अलं०—उत्प्रेक्षा।

विशेष—नायिका का पति आनेवाला है। इसलिये वह घर पर आकर बैठनेवाले कौए को उड़ाकर पति के आने का सगुन विचारती है। यद्यपि सभी काली रंगवाली वस्तुओं ने उसे धोखा दिया है पर वह काले कौए का भरोसा कर रही है।

७०. बे-सुख = सुखहीन, दुःखी। बिकल-सी = व्याकुल की भाँति। बिताती = व्यतीत करती हैं। बावरी = पागल। मिस = बहाने से। नंद = (ननद) पति की बहिन। अनखाती हैं = अप्रसन्न होती हैं। गति = दशा, अवस्था। भिदी होय = प्रविष्ट हुई हो। कानै = कान में। कढ़े = निकालती है। तानै = तान, आलाप। हूक = पीड़ा। पाँसुरी = पँसुली। भरौं आँसु = रोती हूँ। छेद = छिद्र। घने = बहुत।

७१. सुरजन = स्वजन, प्रिय। गुरजन = गुरुजन, घर के बड़े बूढ़े। परिजन = सेवक। सकाती = भयभीत।

७२. सिवा = पार्वती। बेरथ = (व्यर्थ ?)। कनक = सोना। गथ = धन।

७३. अमा = अमावास्या।

७४. देह देह देह = (सं० देहि) दो दो दो। पाइए न = नहीं पाई जा सकती। देह = शरीर। जौन......आइबो—जो 'जो तो' नहीं जानता है वह आवेगा (यमराज के गण 'जो तो' नहीं सुनते, तुरत पकड़कर ले चलते हैं)। मनि-मानिक = जवाहिरात। मन मानि = मन में मान लो। कहैं = लोग कहते हैं। धराई......धराइबो—जो कुछ पृथ्वी में रखा है वह

पृथ्वी पर ही रखा रह जायगा। भूख = क्षुधा। भूख = इच्छा। भूषन = गहना, जेवर। यही भूख राखै = यही इच्छा रखे। भूप = राजा। भूषन = कवि का नाम। बनाइवो = बनूँगा। यही......बनाइवो—भूषण कहता है कि यही इच्छा रख कि मैं राजा-सा बन जाऊँगा (वैसा प्रतापी होऊँगा)। गगन = आकाश। गौन = (गमन) जाना। गगन के गौन = आकाश से जाने में (परलोक जाते समय)। जम = यमराज। गिनन न दैहै नग = रत्नों को गिनने नहीं देगा। नगन = नग्न। नग = जवाहिरात।

अलं०—यमक और वीप्सा।

७५. रूख = वृक्ष, आम। निहाल = खुश।

अलं०—अन्योक्ति।

संदेहात्मक पद्य

१. ढाढ़ी के रखैयन की = दाढ़ी रखनेवाले मुसलमानों की। डाढ़ी सी रहत छाती = छाती जलती रहती है (डर से भयभीत रहते हैं)। बाढ़ी = बढ़ गई। मरजाद = (मर्यादा) संमान। हद्द = सीमा। हिंदुवाना = हिंदुओं का देश। कढ़ि गई = निकल गई। रैयत = प्रजा। कसक = पीड़ा। कढ़ि...सब—प्रजा के हृदय की सब पीड़ा दूर हो गई। ठसक = शान। तमाम = समस्त। तुरकाना = मुसलमानी देश। दिल्लीपति-दिल = औरंगजेब का चित्त। धकधका = धकधक, धड़कन (डर से)। चंडी = कालिका। बिन चोटी के सीस = मुसलमानों के कपाल। चबाय = खाकर। खोटी भई = खराब हो गई। संपत्ति = ऐश्वर्य। चकत्ता = औरंगजेब। घराना = कुल, वंश।

अलं०—यमक और अनुप्रास।

२. केतिक = कितने ही। दले = नष्ट कर दिए। बल = जोर से। चंगुल चाँपिकै = पंजे में दबाकर (हाथों में करके)। चाख्यो = चखा, रस लिया (अपने वश में करके राजाओं को करद बनाया)। रूप = सौंदर्य। गुमान = घमंड। हर्यो = हरण किया। रस चूसिकै राख्यो = उसका रस चूस के छोड़ा (सूरत को लूट लिया)। पंजन पेलि = पंजों से पीसकर। मलिच्छ = मुसलमान। मले = मसल डाले। दीन ह्वै भाख्यो = दीन बनकर विनय

की। सो = वह (ऐसा)। रँग = रंग (प्रताप)। नौरँग = औरंगजेब। रँग = कांति। सो रँग···न राख्यो—शिवाजी में वह रंग है जिसने नौरंग (औरंगजेब) में एक भी रंग न रहने दिया (उसे चौपट कर डाला)।

२. धरापति = राजा। पराक्रम = विक्रम, बल। दंड = जुरमाना। अदंड = जुरमाना के बिना। छतधारी = (छत्रधारी) राजा। दच्छ = चतुर। उजारी = प्रकाश। हिंदुवान-उजारी = हिंदुओं का प्रकाश (हिंदुओं में यशस्वी)। पाँचहजारी = पाँच हजार के मनसबदार। दिल्ली···पाँचहजारी—दिल्ली से पंचहजारी गरजते हुए आते हैं पर दक्षिण से ताजिया पीटते जाते हैं (क्योंकि शिवाजी उन्हें पराजित कर देते हैं)।

अलं०—विषादन।

४. इक=एक। हाड़ा = राजपूतों का एक वंश जिसका राज्य बूँदी में है। बूँदी-धनी = बूँदी-नरेश। मरद = वीर। महेवा = एक गाँव जहाँ महाराज छत्रसाल रहते थे। महेवावाल = महेवा के रहनेवाले। सालत = छेद करते हैं, पीड़ा देते हैं। नौरँगजेब-उर = औरंगजेब के हृदय में। छतसाल = (शत्रुशल्य) छत्रसाल, (इसका अर्थ "राज-छत्र को छेदनेवाला" श्लेप से होगा)।

अलं०—छेकानुप्रास और श्लेप से पुष्ट परिकरांकुर।

५. वे = बूँदी नरेश छत्रसाल जो दारा के पक्ष से लड़े थे। छत्तापता = पत्तों का बना हुआ छाता (पत्तों का छाता वर्षा और धूप से बचाते हुए भी बहुत समय तक नहीं ठहर सकता, उसी प्रकार ये भी कुछ दिनों तक दारा को बचाते रहे और अंत में मारे गए) छतसाल = छत्र सालनेवाले, राज-छत्र को छेद देनेवाले (महेवावाले छत्रसाल)। दिल्ली की ढाल = दिल्ली के रक्षक (क्योंकि उस समय दारा की ओर से लड़कर दिल्ली के बचाने का प्रयत्न किया था)। ढाहनवाल = ढहानेवाले, चौपट करनेवाले (मुगलों के अधिकार से बुँदेलखंड को अलग करके स्वतंत्र राज्य स्थापित किया था)।

अलं०—क्रम।

६. निकसत = निकलते ही। म्यान = (फा० नियाम) तलवार रखने

की खोल। मयूखैं = किरणें। प्रलै-भानु = प्रलय-काल के सूर्य। कैसी = समान। तम-तोम = अंधकार का समूह। गयंद = (गजेंद्र) बड़े बड़े हाथी। जाल = समूह। लागति = लगती है, लिपटती है। नागिन-सी = सर्पिन के समान। रुद्र = महादेव। रिझावै = प्रसन्न करती है। मुंडन की माल = कपालों की माला (पुराणानुसार महादेव रण-भूमि में मरे हुए श्रेष्ठ वीरों के कपालों की माला गले में पहनते हैं)। लाल = कवि का नाम। छितिपाल = राजा। महाबाहु = लंबी भुजावाले। करवार = तलवार। प्रतिभट = प्रतिपक्षी वीर, युद्ध में सामने आनेवाला वीर। कटीले = अच्छी काट करनेवाले, तलवार चलाने में सिद्धहस्त। किलकि = हर्ष से किलकारी मारकर। कलेऊ = (सं० कल्यवर्त) जलपान।

७. जुरे हैं = युद्ध करने के लिये एकत्र हुए हैं। एकै गए रुँधि चाल मैं = कोई कोई चाल चलकर घेर लिए गए। बाजी = दाँव। बाजी राखी निज कर = दाँव अपने हाथ में रखा, युद्ध विजय करने का ढंग निकाल लिया (धोखा देकर विजय पाई)। कौनहू......काल मैं—जिस समय किसी प्रकार प्राणों की रक्षा नहीं हो सकती थी। उतरि = नीचे आकर। जूझयो = युद्ध में भिड़ गए। लोहलंगर = लोहे के मोटे मोटे सिक्कड़ जो हाथी के पैरों में इसलिये डाल दिए जाते हैं जिससे वह भाग न सके। एती लाज = इतनी (आत्माभिमान) की लज्जा। लाल = कवि का नाम। तरवारिन मैं = तलवारों में (चोट सहता है)। मन परमेसुर मैं = मन से ईश्वर का ध्यान करते हैं। स्वामि-कारज = स्वामी का काम। माथो = सिर। हर-माल = महादेव की मुंड-माला।

८. कीबे को समान = उपमा देने के लिये। प्रभु = स्वामी, राजा। निदान = अंत में। दान = दान देना। युद्ध = लड़ाई करना। कीबे ..... ठहरात है—महाराज छत्रसाल की समता देने के लिये राजाओं को खोजकर देख लिया, अंत में कोई भी दान और युद्ध में इनकी बराबरी नहीं कर सका। पंचम = कवि का नाम। भुजदंड = बाहु, भुजा। भाजिबे को = भागने के लिये। पच्छी लौं = पक्षी की भाँति। थहरात हैं = काँपते हैं। संका मानि = चिंतित होकर। सूखत = सूख जाते हैं, डर से मलिन पड़ जाते हैं।

अमीर = सरदार । चकित = भौचक्का । चकत्ता = मुगल-कुल के आदिपुरुष चगताई खाँ का वंशज (औरंगजेब) । छत्ता = छत्रसाल । पताके = ध्वजा, झंडा । फहरात हैं = उड़ते हैं, फहराते हैं । प्रताप···फहरात हैं—शत्रु आतंक से भयभीत रहते हैं ।

९. चंद-बान = जिन बाणों में अर्धचंद्राकार गाँसी लगी रहती है । घन-बान = ये बाण युद्ध-भूमि में अपने धुएँ से अँधेरा कर देते हैं । कूहूक-बान = इन बाणों से उजाला होता है और घोर ध्वनि भी होती है । कमानैं = तोपें । धूम = धुआँ । छ्वै रह्यो = छू रहा है । जमदाढ़ैं = एक प्रकार की टेढ़ी तलवार जिसे 'जमधर' कहते हैं । बाढ़वारैं = तेज धारवाली । लोह-आँच = लोहे के हथियारों की रगड़ से उत्पन्न गर्मी । जेठ को तरनि = जेठ महीने के सूर्य । च्वै रह्यो = उदय हो रहे हैं । समै = (समय) काल । फौजैं बिचलाइ = सेनाओं को विचलित करके । चलाए पायँ = पैर उखाड़ दिए (शत्रु जमे न रह सके) । बीर-रस च्वै रह्यो = वीरता टपकी पड़ती थी (चेहरा वीरता से दमदमा रहा था) । हय = घोड़े (घुड़सवार) । चले = विचलित हो गए । हाथी = हाथीसवार । संग = साथ । चलाचली = भगदड़ ।

१०. उठि गयो = (संसार से) चला गया (स्वर्गवासी हो गया) । आलम = संसार । रुजुक = चाहनेवाला । बँधैया = बाँधनेवाला । बाना = अंगीकृत रीति । सिंगार = (शृङ्गार) शोभा । सुकबि-सील = अच्छे-अच्छे कवि जिसके राज-दरबार में हों । जसील = यशस्वी । डील = शरीर । तुरकाना = मुसलमान । भाल फूटे = भाग्य फूट गया । जूझे = युद्ध में लड़कर मर जाने पर । अरराय = भहराकर ।

११. पारथ = अर्जुन ।

परिशिष्ट

अन्तःकथाएँ

अंगद—अंगद ऋष्यमूक पर्वत के अधिनायक वानरराज वालि के पुत्र थे। ये प्रसिद्ध राम-रावण-युद्ध आरंभ होने के पूर्व महाराज रामचंद्र के दूत बनकर रावण के पास गए थे। दरबार में बात बढ़ जाने पर इन्होंने अपना पैर रोपकर यह प्रतिज्ञा की थी कि यदि मेरे पैर को कोई जमीन से छुड़ा देगा तो मैं सीताजी को हार जाऊँगा। अनंतर लाख चेष्टा करने पर भी इनका पैर पृथ्वी से न छूटा।

अंधक—यह एक प्रसिद्ध दैत्य हो गया है। इसे एक हजार सिर थे। इसे शिवजी ने मारा था।

अंबरीष—ये बड़े भगवद्भक्त और दानी राजा हो गए हैं। एक समय इनका आतिथ्य दुर्वासा ऋषि ने स्वीकार किया और सत्कार में कुछ त्रुटि पड़ जाने के कारण वे राजा को व्यर्थ ही मारने पर उद्यत हुए। उस समय भगवान् ने इनकी रक्षा की और दुर्वासा ऋषि को इनसे क्षमा माँगनी पड़ी।

अगस्त्य—ये एक ऋषि थे। एक समय ये समुद्र-तट पर पूजन कर रहे थे कि समुद्र इनकी पूजन-सामग्री बहा ले गया। इसपर इन्होंने क्रोधाविष्ट होकर समुद्र को पान कर लिया था।

अर्जुन (पार्थ)—प्रसिद्ध महाभारत-युद्ध के अप्रतिम धनुर्धारी योद्धा, जिनका सारथ्य भगवान् श्रीकृष्णचंद्र ने स्वीकार किया था। ये महाराज पांडु के तृतीय पुत्र देवराज इंद्र के अंश से उत्पन्न हुए थे। इन्होंने प्रतिपक्षी कौरव-दल के दो प्रमुख योद्धा कर्ण और जयद्रथ को बड़े कौशल से मारा था।

असुर—कश्यप प्रजापति की दिति नामक पत्नी से दैत्य उत्पन्न हुए थे, उन्हीं का दूसरा नाम 'असुर' भी है। इनसे और देवताओं से पुरानी शत्रुता होने के कारण देवराज इंद्र ने इन्हें हराया था।

इंद्र—ये देवताओं के राजा हैं। प्रसिद्ध ऐरावत हाथी और उच्चैश्रवा घोड़ा इन्हीं के पास है। ये मेघों के स्वामी हैं। इन्होंने एक समय प्रजाजन की पुकार पर पर्वतों के पर काट डाले थे, तब से वे अचल हो गए। इनकी

असुरों के साथ बड़ी शत्रुता रहती है। इन्होंने महिषासुर के पिता जंभासुर को तथा वृत्रासुर को एक समय मारा था। दैत्यराज बलि अपने यज्ञों के बल से इनका पद छीनना चाहता था, उस समय इंद्र की प्रार्थना पर भगवान् ने उपेंद्र नाम से वामन रूप धारणकर बलि को छला था।

कंस—मथुरा का राजा और श्रीकृष्णचंद्र का मामा था। इसने अपने पिता उग्रसेन तथा श्रीकृष्णचंद्र के माता-पिता देवकी और वसुदेव को कैद कर रखा था। अंत में यह श्रीकृष्णचंद्र के हाथों मारा गया।

कपिल-शाप—कपिल एक मुनि थे। एक समय महाराज सगर ने अश्वमेध-यज्ञ किया था। जब यज्ञ का घोड़ा पृथ्वी प्रदक्षिणा के लिये छोड़ा गया तब इंद्र ने उसे पकड़कर इनके आश्रम में बाँध दिया। अंत में महाराज सगर के साठ सहस्र लड़के घोड़े को ढूँढ़ते हुए आश्रम में पहुँचे और बिना जाने मुनि को भला-बुरा कहने लगे। फल-स्वरूप मुनि के शाप से वे वहीं तुरंत भस्म हो गए।

कर्ण—ये कुंती के पुत्र थे। इन्हें दुर्योधन के सारथी की स्त्री राधा ने पाला-पोसा था। बड़े होने पर ये बड़े अप्रतिम योद्धा निकले, जिससे दुर्योधन के अत्यंत स्नेह-भाजन बनकर उसकी सभा में रहने लगे। ये सूर्य के अंश से उत्पन्न हुए थे और उनका दिया हुआ कवच कुंडल जन्म से ही इनके पास था। इस कवच-कुंडल में विशेषता यह थी कि उनके रहते हुए उनका धारण करनेवाला किसी से भी नहीं मारा जा सकता था। ये अपने समय के एक बहुत बड़े दानी हो गए हैं। महाभारत के युद्ध के समय ये सेनापति के रूप में कौरवों की सेना का संचालन करते थे।

कामदेव—जिस समय सती-दाह के उपरांत भगवान् शंकर समाधिस्थ हो रहे थे उस समय देवताओं की प्रेरणा से कामदेव उनकी समाधि को भंग करने के लिये गया था। शिव ने अपने तीसरे नेत्र को खोल, उसकी ज्वालमाला से इसे भस्म कर डाला था। पर अंत में इसकी स्त्री रति की प्रार्थना पर इसे अशरीर रहने पर भी मनुष्य-मात्र के हृदय में व्याप्त होने का वचन दिया। इसीसे इसका नाम अनंग हुआ।

कालीनाग—यह एक नाग था जो वृंदावन में यमुना के एक भयंकर

दह में रहा करता था। इसके विष के प्रभाव से उस 'कालीदह' का जल विषैला हो गया था। इसे श्रीकृष्णचंद्र ने नाथा था।

कीचक—विराट् नगर के राजा का साला, जो पांडवों के प्रच्छन्न वनवास के समय विराट-नगर में सैरंध्री के कार्य में संलग्न द्रौपदी पर आसक्त हुआ था और अंत में भीम के हाथों मारा गया था। भीम ने इसे अर्धरात्रि में मारकर कीचड़ की भाँति रौंद डाला था।

कृष्ण—ये द्वापर युग में विष्णु के पूर्णावतार होकर लीला-पुरुषोत्तम कहलाए। इनकी माता का नाम देवकी तथा पिता का नाम वसुदेव था, जिससे ये वासुदेव कहलाए। ये प्रसिद्ध चंद्र-वंश में यादव-कुल के प्रधान होने के कारण यदुराज कहलाए। एक समय व्रज में इंद्र की पूजा बंद हो जाने के कारण उसने कुपित होकर मूसल-धार पानी बरसाना आरंभ किया। उस समय इन्होंने गोवर्धन पर्वत को उठाकर उसके नीचे गो-गोपी-गोपालों की रक्षा की थी। जिस समय भृगु ऋषि ने देवताओं की परीक्षा करते हुए श्रीकृष्ण के रनिवास में जाकर इन्हें लेटा हुआ पाकर इनके वक्षस्थल में लात जमाई थी उस समय इन्होंने उनके उस अक्षंतव्य अपराध को ध्यान में भी न लाकर अपने अत्यंत सौजन्य का परिचय दिया। इन्होंने अपने मित्र दरिद्र सुदामा ब्राह्मण को बहुत धन दिया था। इन्होंने मथुरा में जाकर कंस को और महाराज युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में गाली बकते हुए शिशुपाल को मारा था।

कैटभ—देखो, 'मधु-कैटभ'।

गरुड़ और नाग—कश्यप मुनि के दो स्त्रियाँ थीं। कद्रू से नागकुल और विनता से पक्षिकुल उत्पन्न हुआ। एक समय कद्रू ने सर्पों की सहायता से धोखा देकर विनता को अपनी आजीवन-दासी बना लिया था, तभी से पक्षिराज गरुड़ और नागों से वैर चला आ रहा है।

चंड—देखो 'चंड-मुंड'।

चंद्रोत्पत्ति—जिस समय देव और दानवों ने मिलकर समुद्र-मथन किया था उस समय चौदह रत्नों में से अमृत को लेकर चंद्रमा निकले थे।

चक्रव्यूह—युद्ध के समय सेना के यथाक्रम स्थापन द्वारा अनेक प्रकार के व्यूहों की रचना की जाती है, उनमें से एक चक्र की आकृति का 'चक्र-

व्यूह' होता है। इस चक्रव्यूह को भेदना बड़ा कठिन होता है, अतः अभिमन्यु-वध के अनंतर अर्जुन के हाथों जयद्रथ की रक्षा करने के लिये उसे चक्रव्यूह में छिपा रखा गया था।

जंभ—महिषासुर का पिता था, इसे इंद्र ने मारा था।

जनक—मिथिलाधिपति महाराज जनक जिनकी कन्या सीता देवी थीं। ये प्रसिद्ध जीवन्मुक्त हो गए हैं।

जरासंध—यह मगध का बड़ा पराक्रमी राजा हो गया है। इसने अनेक राजाओं को कैद कर रखा था। इसे भीम ने श्रीकृष्णचंद्र के इशारे पर युद्ध में चीरकर मार डाला था, क्योंकि इसका शरीर बीच से जुड़ा हुआ था।

त्रिदेव—गुणत्रय (सत्त्व, रज और तम) के अधिष्ठाता देवता ब्रह्मा, विष्णु और महेश, जिनका कार्य क्रमशः उत्पत्ति, रक्षा और संहार करना है।

त्रिपुर—यह एक बहुत बड़ा असुर हो गया है। इसने तीनों लोकों में अपना निवास-स्थान बना रखा था, इसलिये किसीको पता ही नहीं चलता था कि यह किस समय किस लोक में है। अतः शिवजी ने एक साथ तीन बाणों को छोड़कर इसे मारा था।

दशावतार—भगवान् के दश प्रसिद्ध अवतार, जिनके नाम हैं—मत्स्य, कच्छप, शूकर, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण, बुद्ध और कल्कि।

दिलीप—अयोध्या के राजा, जिनके वंश में भगवान् रामचंद्र ने जन्म लिया था। ये बड़े दानी और पराक्रमी हो गए हैं। इन्होंने सगल पृथ्वी दान की थी और पुरोहित को दक्षिणा में सहस्र हाथी दिए थे।

दुर्योधन—यह धृतराष्ट्र के शतपुत्रों में सबसे बड़ा और हस्तिनापुर का राजा था। यह अपने चचेरे भाई पांडवों से शत्रुता रखता था। फल-स्वरूप इसने उन्हें लाक्षागृह में धोखे से टिकाकर रात में आग लगवा दी थी, किंतु पांडव बड़े कौशल से एक सुरंग द्वारा बच गए।

ध्रुव—ये राजा उत्तानपाद के पुत्र थे और बाल्यावस्था में ही विरक्त होकर भगवद्भजन के लिये जंगल में चले गए। इनकी भक्ति से प्रसन्न होकर भगवान् ने इन्हें चंद्रलोक के समीप अचल आसन दिया।

निशुंभ—देखो 'शुंभ-निशुंभ'।

पंपासर—किष्किंधा पर्वत का प्रसिद्ध तालाब, जहाँ श्रीरामचंद्र ने निवास किया था।

पर्वत—देखो 'इंद्र'।

पार्थ—देखो 'अर्जुन'।

पिनाक—यह शिवजी का प्रसिद्ध धनुष था, इसे श्रीरामचंद्र ने जनकपुर में तोड़ा था।

बलि—ये दैत्यराज थे। इनका दान प्रसिद्ध था, जिससे इंद्र को राज-सिंहासन छिन जाने का भय हुआ। फल-स्वरूप इंद्र की प्रार्थना पर भगवान् ने वामन रूप से राजा बलि को छला था।

बिड़ाल (विडालाक्ष)—देखो 'महिषासुर'।

भंडासुर—एक राक्षस, इसे देवी ने मारा था। इसकी कथा उपपुराणों में मिलती है।

भरतराज—ये एक बहुत बड़े प्रतापी राजा हो गए हैं, इन्हीं के नाम से भारतवर्ष की पवित्र भूमि भरतखंड के नाम से अद्यापि प्रसिद्ध है। इन्होंने हजार अश्वमेध और राजसूय यज्ञ किए थे तथा दक्षिणा में असंख्य धन कण्व ऋषि को दिया था।

भीम—ये महाराज पांडु के द्वितीय पुत्र और वायु के अंश से उत्पन्न थे इन्हें एक हजार हाथी का बल था। गदायुद्ध में ये अद्वितीय थे। ये अपने साहस के बल पर कैसे भी दुष्कर कर्म को करने के लिये सदा प्रस्तुत रहा करते थे। इन्होंने जरासंध का वध किया था।

भृगु—ये ब्रह्मा के पुत्र थे। एक समय इन्हें यह कुतूहल हुआ कि त्रिदेवों में सबसे श्रेष्ठ कौन है। अतः थे उनकी परीक्षा लेने निकले और शंकर तथा ब्रह्मा की परीक्षा लेने के उपरांत विष्णु (कृष्ण) के रनिवास में जाकर इन्होंने उनके वक्षस्थल में लात जमाई। इस पर विष्णु ने यह कहकर अत्यंत सहिष्णुता का परिचय दिया कि मेरे कठोर वक्षस्थल पर लात मारने से आपके कोमल चरणों में चोट तो नहीं आ गई। वे इनका चरण सहलाने लगे। अतः विष्णु सर्वश्रेष्ठ सिद्ध हुए।

भोज—ये धारा नगरी के प्रसिद्ध गुणग्राही राजा थे। इनके दरबार में

कवियों का बड़ा आदर था। इन्होंने अनेक कवियों को बहुत बड़े पुरस्कारों द्वारा संमानित किया था। दानी राजाओं में इनका नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है।

मधु-कैटभ—एक बार कल्पांत में जब विष्णु भगवान् शेष-शय्या पर योग-निद्रा में सो रहे थे तब उनके कान की मैल से मधु-कैटभ नामक दो भयंकर असुर उत्पन्न हो नाभि-पद्मस्थ ब्रह्मा को मारने पर उद्यत हुए। उस समय संकटापन्न ब्रह्मा ने विष्णु को जगाने के लिये उनकी आँखों पर स्थित योग-निद्रा का स्तवन किया, जिससे योग-निद्रा के प्रकट होने पर भगवान् जाग उठे और दोनों असुरों से पाँच हजार वर्षों तक बाहु-युद्ध किया। अनंतर योग-निद्रा ने उन्हें मरता हुआ न देख, उन्हें विमोहित किया; जिससे वे विष्णु भगवान् को वर देने पर उद्यत हुए और भगवान् ने उनसे यह वर माँगा कि वे उनके हाथों से मारे जायँ। तदुपरांत भगवान् विष्णु ने अपनी जंघा पर उन दोनों के मस्तक सुदर्शन-चक्र से काट डाले।

महाभारत—प्रसिद्ध महाभारत का युद्ध, जो कौरव और पांडव-दलों में अट्ठारह दिनों तक हुआ था।

महिषासुर—पुराकाल में असुरों द्वारा परास्त किए जाने तथा महिषासुर द्वारा इंद्रादि देवों के समस्त अधिकार अपहृत किए जाने पर देवगण ब्रह्मा को अग्रसर कर विष्णु और शंकर के पास गए। वहाँ सबकी तेजोराशि से एक महाशक्ति उत्पन्न हुई, जिसे समस्त देवताओं ने अपने-अपने विभिन्न आयुध तथा आभूषण दिए। अनंतर देवी ने भयंकर अट्टहास किया, जिसे सुन महिषासुर एक विशाल सेना ले लड़ने को आया। उसके सेनानायकों में एक बिडालाक्ष नामक असुर भी था, जो पाँच सौ अयुत पदाति सेना तथा रथ लेकर लड़ने को आया था। उस समय रण में प्रवृत्त देवी के प्रतिश्वास से लाख-लाख गण उत्पन्न होकर लड़ने लगे। देवी ने विभिन्न अस्त्र-शस्त्रों से महिषासुर के विभिन्न सेनापतियों का बध किया और तलवार से बिडालाक्ष का सिर काटा। अनंतर महिषासुर भैंसे का उग्र रूप धारण कर लड़ने लगा, साथ ही उसने सिंह और हाथी के रूप यथासमय धारण किए थे। अंत में देवी ने उसे महिष रूप में खड्ग द्वारा मारा था।

मानसर—यह कैलास पर्वत पर प्रसिद्ध तालाब है। ऐसी प्रसिद्धि है कि यहाँ राजहंस रहा करते हैं और देवांगनाएँ स्नान करने आती हैं।

मुंड—देखो 'चंड-मुंड'।

ययाति—ये अयोध्या के राजा थे। इन्होंने सौ प्रधान यज्ञ तथा सौ वाजपेय यज्ञ कर दक्षिणा में सुवर्ण के तीन पर्वत दिए थे। शापवश वृद्ध हो जाने पर इन्हें छोटे लड़के ने अपनी जवानी दी थी। ये अपने तपोबल से सदेह इंद्र-लोक को गए थे, किंतु आत्मश्लाघा से तप क्षीण होने पर वहाँ से पृथ्वी पर गिरा दिए गए।

युधिष्ठिर—ये महाराज पांडु के ज्येष्ठ पुत्र धर्मराज के अंश से उत्पन्न थे। ये बड़े सत्यवक्ता एवं दीन-प्रतिपालक थे। इन्होंने अपनी राजधानी इंद्रप्रस्थ बनाई थी, जो अब दिल्ली के नाम से प्रसिद्ध है।

राम—ये महारानी कौसल्या के गर्भ से अयोध्यापति महाराज दशरथ के ज्येष्ठ पुत्र और विष्णु के कलावतार थे। महाराज रामचंद्र बड़े मर्यादा-वादी थे, जिसके कारण ये मर्यादा-पुरुषोत्तम कहलाते हैं।

रावण—यह पुलस्त्य मुनि का नाती और लंका का राजा था। इसने अपने धर्मविरोधी कृत्यों द्वारा देवता, ब्राह्मण, ऋषि-महर्षियों को बड़े संकट में डाल रखा था। फल-स्वरूप भूमि-भार बढ़ने पर विष्णु भगवान् ने रामावतार धारणकर इसका वध किया।

लाक्षागृह—देखो 'दुर्योधन'।

लोमश—ये एक ऋषि थे। ये दीर्घजीवी हो गए हैं—

अश्वत्थामा बलिर्व्यासो हनूमांश्च विभीषणः।
लोमशो मारकण्डेयः सप्तैते दीर्घजीविनः॥

वाल्मीकि—ये जन्म से व्याध थे, किंतु अंत में सत्संग के प्रभाव से पहुँचे हुए ऋषि हो गए। इन्होंने रामचरित वर्णन में संस्कृत का प्रसिद्ध रामायण ग्रंथ लिखा, जिससे ये आदि-कवि कहलाए।

विक्रम—ये उज्जयिनी के प्रसिद्ध राजा विक्रमादित्य के नाम से प्रसिद्ध हो गए हैं। इन्हीं के समय से विक्रम संवत् चला है।

वृत्रासुर—यह एक बड़ा प्रतापी असुर था। इसने देवताओं के अधि-

कार छीनकर उन्हें निकाल दिया था। अंत में दधीचि ऋषि की अस्थि से धनुष बनाकर इंद्र ने इसका वध किया था।

वेन—ये चक्रवर्ती राजा थे। पहले तो इन्होंने अपना राज्य बड़ी सुंदरता से आरंभ किया पर अंत में इनके विचार असनातनी हो गए। इसपर ऋषियों ने इनकी जंघाओं को मथकर बाईं से निषाद और दाहिनी से पृथु की उत्पत्ति की थी।

व्यास—ये पराशर और सत्यवती से उत्पन्न एक बड़े भारी ऋषि थे। ये उत्पन्न होते ही वन में तपश्चर्या करने चले गए थे। इनका नाम कृष्ण द्वैपायन था। वेदों का संग्रह और महाभारत की रचना करने के कारण इनका नाम 'व्यास' हो गया। इन्होंने १८ पुराणों की रचना की है।

शुंभ-निशुंभ—पूर्व काल में शुंभ-निशुंभ नामक दो दैत्यराज महा पराक्रमी हो गए हैं, जिन्होंने देवताओं के समस्त अधिकार छीनकर उन्हें निकाल दिया था। इस प्रकार अपमानित देवगणों ने अपने रक्षार्थ हिमालय पर जाकर विष्णुमाया की बड़ी स्तुति की। तब पार्वती के शरीर-कोष से 'कौशिकी' नामक बड़ी सुन्दरी शिवा उत्पन्न हुईं। उन्हें शुंभ-निशुंभ के नौकर चंड-मुंड ने देखा और अपने स्वामी से प्रार्थना की कि वे उस स्त्री-रत्न को अपने पास रखें। फल-स्वरूप शुंभ ने सुग्रीव नामक असुर को दूत बनाकर उन्हें समझा-बुझाकर ले आने को भेजा। इसपर देवी ने कहा कि जो मुझे युद्ध में परास्त करेगा वही मुझे वर सकेगा। इसे सुन शुंभ ने धूम्रलोचन को एक बहुत बड़ी सेना के साथ पकड़ लाने को भेजा, किंतु वह देवी के हुंकार से भस्म हो गया। उसकी समस्त सेना को देवी के वाहन सिंह ने मार गिराया। अनंतर चंड-मुंड लड़ने को आए और देवी को पकड़ने का प्रयत्न करने लगे। इसे देख देवी को बड़ा क्रोध आया, जिससे उनकी टेढ़ी भौहों तथा कपोलों की झलक से कराल-वदना काली उत्पन्न होकर लड़ने लगीं। उन्होंने उनकी विशाल सेना को नष्ट करना प्रारंभ किया और अंत में चंड-मुंड के शिर काटकर पर्वत-शिखर पर अवस्थित चंडिका को भेंट किए। जिससे प्रसन्न होकर चंडिका ने काली को 'चामुंडा' की उपाधि प्रदान की। अनंतर दैत्यराज शुंभ बहुत बड़ी सेना के साथ स्वयं युद्ध में

प्रवृत्त हुआ और उसने देवी, सिंह तथा काली को घेर लिया। इसे देखकर विभिन्न देवताओं के अंशों से ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, नारसिंही, ऐंद्री आदि शक्तियाँ देवी के सहायतार्थ उत्पन्न हुईं और घोर युद्ध होने लगा। विभिन्न शक्तियों के प्रहार से जब असुर-सेना भाग खड़ी हुई तो रक्तबीज नामक दैत्य लड़ने को आया और उसके प्रत्येक विंदु से उसी के समान हजारों पराक्रमी दैत्य उत्पन्न हो गए। इसे देख देवी ने चामुंडा को आज्ञा दी कि वह अपनी सुविशाल जिह्वा को फैलाकर युद्ध-स्थल में घूमे जिससे रक्तबीज का रुधिर पृथ्वी पर न गिरने पाए। इस प्रकार रक्तबीज क्षीण-रक्त होकर मर गया। अनंतर इसकी मृत्यु का समाचार पाकर शुंभ-निशुंभ महाक्रुद्ध हो स्वयं लड़ने को आए और देवी ने बाण मारकर निशुंभ को पृथ्वी पर गिरा दिया, जिसे देख शुंभ महाक्रुद्ध हो लड़ने लगा और देवी के शूल से घायल होकर वह भी पृथ्वी पर गिर गया। अनंतर निशुंभ चैतन्य होकर पुनः रण में प्रवृत्त हुआ और देवी के हाथों मारा गया। इसे देख दैत्यराज शुंभ ने देवी से कहा कि तुम दूसरी शक्तियों की सहायता से लड़ रही हो। तब देवी ने सब शक्तियों को अपने शरीर में अंतर्हित कर लिया और महाघोर युद्ध हुआ। देवी ने उसके सारथी और घोड़ों को मार उसका रथ और धनुष काट डाला। अनंतर वह पैदल लड़ने लगा और देवी के शूल-प्रहार द्वारा मारा गया।

सगर-सुत—महाराज सगर के साठ सहस्र पुत्र थे। इन्होंने यज्ञ के अश्व को पाताल लोक में ढूँढने के लिये पृथ्वी खोद डाली थी, जिससे सागर बना। ये पाताल में कपिल मुनि के शाप से भस्म हो गए थे।

सरस्वती (वाणी)—सब प्रकार की विद्याओं की अधिष्ठातृ देवी और ब्रह्मा की पुत्री।

सहस्रबाहु (कार्तवीर्य)—यह एक बड़ा पराक्रमी राजा था, इसे एक सहस्र भुजाएँ थीं। इसने जमदग्नि ऋषि (परशुराम के पिता) का सिर काट लिया था, जिससे परशुराम ने इक्कीस बार क्षत्रियों का सिर काट-काटकर उनका वध किया था। एक समय जल-क्रीड़ा के समय इसने रेवा नदी का प्रवाह रोक दिया था।

सुदामा—ये द्रविड़ देश के अधिवासी एक दरिद्र ब्राह्मण और श्रीकृष्णचंद्र के गुरुभाई थे। ये एक समय अपनी पत्नी के आग्रह करने पर द्वारकापुरी में श्रीकृष्णचंद्र से मिलने गए और वहाँ से घर लौटने पर भगवत्कृपा से अपनी झोपड़ी को राजमहल के रूप में परिणत पाया तथा अतुल संपत्ति के अधिकारी हुए।

सुमेरु—यह पर्वत सबसे ऊँचा सुवर्णमय कहा जाता है। इसपर देवता वास करते हैं।

हिरण्यकशिपु—यह हिरण्याक्ष का छोटा भाई और प्रसिद्ध विष्णुभक्तों में अग्रगण्य प्रह्लाद का पिता था। यह अपने भाई के वध के विरोध में भगवान् का आजीवन शत्रु रहा, अंत में भगवान् ने नृसिंहावतार धारण कर इसे मारा।

हिरण्याक्ष—यह दैत्यराज था। यह पृथ्वी को चुरा ले गया था। भगवान् ने शूकरावतार धारणकर इसका वध किया और पृथ्वी को अपने दाँत पर रख लाए।

पिंगल

'भूषण' ने कुल १० प्रकार के छंदों का प्रयोग किया है। 'शिवराजभूषण' के १३५वें छंद का पाठांतर (पृष्ठ २४) लीलावती छंद में है, यदि उसे भी मानें तो ११ प्रकार के छंद हो जाते हैं। यहाँ पर छंदों की तालिका दी जाती है—

(क) मात्रिक छंद

(१) गीतिका—यह मात्रिक-सम छंद है। इसके प्रत्येक चरण में चौदह और बारह के विश्राम से छब्बीस मात्राएँ होती हैं। अंत में गुरु-लघु होते हैं। इसकी तीसरी, दसवीं, सत्रहवीं और चौबीसवीं मात्राएँ लघु रहनी चाहिएँ। (देखो शिवराज-भूषण, छंद-संख्या ३७३)।

(२) हरिगीतिका—यह भी मात्रिक-सम छंद है। इसमें १६ और १२ के विराम से प्रत्येक चरण में २८ मात्राएँ होती हैं। अंत में गुरुलघु होता है। प्रवाह के लिये पाँचवीं, बारहवीं, उन्नीसवीं और छब्बीसवीं मात्राएँ

लघु रहती हैं। (उदाहरण के लिये देखिये शिवराज भूषण, संख्या १६)।

(३) लीलावती–(शि० भू० १३५ के पाठांतर में, पृष्ठ २४) यह बत्तीस मात्राओं का मात्रिक-सम छंद है। सोलह सोलह मात्राओं पर विराम होता है। भिखारीदास ने पद्धरि छंद (१६ मात्रा) के दूने को 'लीलावती' लिखा है। पर 'पद्धरि' के अंत में 'जगण' (।ऽ।) होता है। 'भूषण' के इस छंद के अंत में दो गुरु वर्ण हैं। इसे 'पादा कुलक' का दूना समझना चाहिए।

(४) दोहा—यह मात्रिक-अर्धसम वृत्त है। इसके विषम (पहले-तीसरे) चरणों में १३ और सम (दूसरे चौथे) चरणों में ११ मात्राएँ होती हैं। अंत में गुरुलघु होते हैं। (उदाहरण के लिये देखो शिवराज-भूषण, सं० २ और अन्यत्र भी)।

(५) छप्पय—यह मात्रिक विषम छंद है। यह रोला और उल्लाल दो छंदों के योग से बनता है। रोला के चार चरण चार पंक्तियों में और उल्लाल के चार चरण दो पंक्तियों में रखने से यह छंद बनता है। रोला के प्रत्येक चरण में ११ और १३ के विराम से २४ मात्राएँ होती हैं। यदि अंत में दो गुरुवर्ण हों तो पढ़ने में भला जान पड़ता है। अंत में गुरुलघु न रहे। उल्लाल के विषम चरणों में १५ और सम चरणों में तुकांत मिलता है। अंत में त्रिकल (तीन मात्रा) का व्यवहार अच्छा होता है। पर गुरुलघु न रहे। (उदाहरण के लिये देखिये शिवराज-भूषण, सं० २)।

(६) अमृतध्वनि—यह भी मात्रिक-विषम छंद है। यह छप्पय की तरह ६ पंक्तियों में लिखा जाता है प्रत्येक पंक्ति में २४ मात्राएँ होती हैं। पहली दो पंक्तियों में एक दोहा रहता है। शेष चार चरणों में से प्रत्येक में आठ-आठ मात्राओं पर विराम होता है और अंत में कम से कम दो लघुवर्ण अवश्य रहते हैं। दोहे के अंतिम चरण के अक्षर तीसरे चरण के आदि में रखे जाते हैं। छठे चरण के अंतिम अक्षर दोहे के आदि के कुछ अक्षरों से कुंडलित रहते हैं। (देखो शिवराज-भूषण, सं० ३५६)।

(ख) वर्णिक वृत्त

वर्णिक वृत्तों में २२ वर्णों से छब्बीस वर्णों तक के वृत्त सवैया कहे जाते

हैं। जब विभिन्न सवैयों के चरण मिलाकर छंद बनता है तो उसे 'उपजाति' कहते हैं। २६ वर्णों से अधिक वर्णोंवाले वृत्त 'दंडक' कहे जाते हैं।

(७) **मालती या मत्तगयंद**—इस वर्णवृत्त में ७ भगण (ऽ॥) और दो गुरु इस प्रकार प्रत्येक चरण में २३ अक्षर होते हैं। (शि० भू० १५)।

(८) **किरीट या किरीटी**—प्रत्येक चरण में आठ भगण (ऽ॥) (देखो शि० भू०, ३२२)।

(९) **दुर्मिल**—प्रत्येक चरण में आठ सगण (॥ऽ) होते हैं (देखो शि० भू०, ३७०)। शिवराज-भूषण के ३७० वें छंद का नाम 'माधवी सवैया' लिखा मिलता है। लोगों ने उसके लक्षण में 'दुर्मिल' का लक्षण लिखकर काम चलता कर दिया है। पर 'वाम' (सात जगण + एक भगण) का दूसरा नाम 'माधवी' है, दुर्मिल का नहीं।

(१०) **अलसा या अलसात**—प्रत्येक चरण में सात भगण और एक रगण होते हैं (शि. भू., छंद २५०)।

(११) **मनहरण कवित्त**—इस वर्णवृत्त के प्रत्येक चरण में १६ और १५ के विराम से ३१ अक्षर होते हैं। अंत में एक गुरुवर्ण अवश्य होता है। यदि ८, ८, ८, ७ अक्षरों का क्रम रहे तो धारा अच्छी रहती है। इसे कवित्त या घनाक्षरी भी कहते हैं।

ऐतिहासिक नाम

[**सूचना**—इस नामावली के साथ केवल 'शिवराज-भूषण' के पद्यों की संख्या का संकेत कर दिया गया है। 'देखो' के लिये 'दे', 'नकशा' के लिये 'न', और 'पृष्ठ' के लिये 'पृ' का प्रयोग किया गया है।]

अंकुश खाँ—दे. 'याकूत खाँ'। [९२]

अँगरेज—दे. 'इँगलैंड'

अकबर—तीसरे मुगल सम्राट् अकबर ने सन् १५४६ ई० से १६०५ तक शासन किया। इसके राज्य में प्रजा बहुत ही सुखी तथा संतुष्ट थी। हिंदुओं के साथ इसका बर्ताव सौजन्य एवं संमानपूर्ण था। [२८०]

अनवर खाँ—यह एक मुगल सेनापति था। जब छत्रसाल ने ग्वालियर के पास तहव्वर खाँ को जीत लिया तो औरंगजेब ने शेख अनवर खाँ को एक बहुत बड़ी सेना देकर छत्रसाल को पराजित करने के लिये भेजा। वह मऊ का मार्ग रोककर पड़ाव डाले पड़ा था। छत्रसाल ने इसके पड़ाव पर छापा मारा। कुछ देर तक युद्ध होता रहा। अंत में यह पकड़ लिया गया। इसने छत्रसाल को सवा लाख रुपये भेंट तथा भविष्य में चौथ देने का वचन दिया। तब छत्रसाल ने इसे छोड़ दिया।

अनिरुद्ध—अलीगढ़ में पौरच उपाधिकारी नरेश राज करते थे। 'मेंहू' उनकी राजधानी थी। उक्त गद्दी पर 'भूषण' के समय में अनिरुद्ध नाम के नरेश थे। इनके पिता का नाम कवि ने 'अमरेश' लिखा है। इनका विस्तृत विवरण नहीं मिल सका।

अफजल खाँ—१६५७ में जब औरंगजेब उत्तर भारत को रवाना हो गया तो बीजापुर की सरकार को शिवाजी की बढ़ती हुई शक्ति के दमन करने की सूझी। इस कार्य का भार अफजल खाँ को सौंपा गया, जो हाल ही में मुगलों से युद्ध में बड़ी बहादुरी के साथ लड़ चुका था। यह बीजापुर राज्य के मुख्य सरदारों तथा सेनापतियों में से था। यह १०००० फौज लेकर शिवाजी को परास्त करने के लिये रवाना हो गया। रास्ते में कई किले लेता हुआ तथा तुलजापुर की देवी का मंदिर भ्रष्ट करता हुआ यह प्रतापगढ़ के पास पहुँचा। शिवाजी ने इससे खुले मैदान में लड़ना उचित नहीं समझा। अंत में संधि की ठहरी। यह अपने पड़ाव 'पार' ग्राम से प्रतापगढ़ की ओर शिवाजी से एकांत में मिलने के लिये आया। यह बड़े ऊँचे डील-डौल का था और शिवाजी नाटे थे। इसने शिवाजी को छाती से लगाते समय उन्हें तलवार से मार डालना चाहा। शिवाजी ने अपना बघनखा निकालकर इसके कलेजे में भोंक दिया। वहीं इसका काम तमाम हो गया। इसके बाद शिवाजी की फौज जंगल से निकलकर बीजापुरी फौज पर टूट पड़ी और उसे मार भगाया। इस घटना से शिवाजी की धाक जम गई। अब सभी उनसे थरथर काँपने लगे। यह घटना सितंबर सन् १६५९ में हुई थी। [४२, ६३, ९८, १६१, १७४, २४१, २५२, ३१२, ३२९]

अब्दुस्समद—दे. 'समद'।

अब्बास शाह—शाह अब्बास द्वितीय फारस (ईरान) का तत्कालीन बादशाह था। जब दिल्ली का सिंहासन प्राप्त करने के लिये दारा औरंगजेब आदि में युद्ध चल रहा था, तब शाह अब्बास ने दक्षिण की दो रियासतों को जोड़ देने का परामर्श दिया था। औरंगजेब के सिंहासनारूढ़ होने पर इसने बुदक बेग (फौजी कप्तान) को दूत बनाकर भेजा और औरंगजेब को बधाई दी। यह राजदूत २१ मई १६६१ ई० में प्रथम बार दरबार में दाखिल हुआ था। इस बधाई के पत्र में यह भी इच्छा प्रकट की गई थी कि शाह औरंगजेब को हर तरह से सहायता देने को तैयार है। औरंगजेब ने इसके उत्तर में लिखा कि ईश्वर के अतिरिक्त और किसी से सहायता की आवश्यकता नहीं। इसपर शाह ने औरंगजेब को बहुत फटकारा और मुगल राजदूत तरबियत खाँ को पत्र देकर भेजा, जिसमें साफ शब्दों में लिखा था कि तुम आलमगीर नाम-मात्र के हो। जब शिवाजी जैसे छोटे जमींदार तक को नहीं दबा सकते तो आलमगीर क्यों बनते हो? इस पत्र में हुमायूँ की सहायता की चर्चा भी थी। यह उत्तर सितंबर सन् १६६६ ई० में औरंगजेब के पास आगरे में पहुँचा था। [११]

अमरसिंह—अमरसिंह चंदावत और बहुत से दूसरे राजपूत अफसर भी राजपूतों की सेना लेकर दक्षिण भेजे गए (१६७१)। अमरसिंह चंदावत, इखलास खाँ मियाना और दूसरे सरदारों ने सल्हेर के दुर्ग को घेर लिया। इसी बीच में प्रतापराव, आनंदराव और मोरोपंत पेशवा ने सल्हेर पर आक्रमण किया। घोर घमासान युद्ध के पश्चात् इखलास खाँ और मोहकमसिंह (राव अमरसिंह चंदावत के पुत्र) आहत हुए। राव अमरसिंह स्वयं सुरधाम सिधारे। इसके अतिरिक्त प्रायः ३० प्रधान सेनापति तथा कई हजार साधारण सैनिक स्वाहा हो गए यह घटना जनवरी, फरवरी सन् १६७२ ई० की है। [९६, १५५, २२६, २४१, २०६]

अमरेश—दे. 'अनिरुद्ध'।

अमी खाँ (महम्मद)—यह दिल्ली का एक सरदार तथा मीरजुमला का

का लड़का था। महाराजा छत्रसाल बुँदेला ने इसकी सेना पर छापा मार-कर सब खजाना लूट लिया था।

अमेरि—राजपूताने की प्रसिद्ध रियासत जयपुर में अमेरी या आमेर नाम का एक किला है। यहाँ अमेरि से जयपुर का ही अभिप्राय है। [२५०]

अरब या अरबान—फारस की खाड़ी के पश्चिम में एक मरुस्थल है जिसे 'अरब' कहते हैं। इसी अरव में मुसलमान धर्म के प्रचारक मुहम्मद साहब का जन्म हुआ था। उन दिनों अरब के व्यापारी बंबई के पश्चिमी किनारे के बंदरगाहों में बहुत आते थे। इन्हीं के द्वारा सारे अरब में शिवाजी का आतंक छा गया था।

अलका—कुबेर की पुरी। यहाँ हिमालय-प्रदेश से तात्पर्य है।

अलिलफते—यह 'अलिलफते' नहीं, अपितु 'अबुल फतह' जान पड़ता है। यह शाइस्ता खाँ का लड़का था। जिस समय शिवाजी ने रात्रि के समय पूने में शाइस्ता खाँ पर आक्रमण किया था उस समय यह सबसे पहले अपने पिता की सहायता करने को दौड़ा आया। दो-तीन मराठों को मारने के पश्चात् स्वयं मारा गया। यह घटना ५ अप्रैल १६६३ ई० की है। [२५]

अवधूतसिंह—अवधूतसिंह रीवाँ के राजा थे। कहा जाता है कि ये केवल ६ मास की अवस्था में गद्दी पर बैठे थे।

अहमदनगर—दक्षिण का एक प्रसिद्ध नगर। मुगल सूबेदार यहाँ बहुत दिनों तक रहते थे। यहाँ नौशेरी खाँ के साथ शिवाजी से १६५७ में युद्ध हुआ था। (दे. न. और 'नौशेरी खाँ')। [२०८]

आकुत—दे. 'याकूत खाँ'।

आगरा—मथुरा के दक्षिण-पूर्व यमुना नदी के दाहिने किनारे पर आगरा बसा हुआ है (दे. न.)। यहाँ मुगल-सम्राटों की राजधानी थी। यहीं शिवाजी को औरंगजेब ने नजरबंद कर रखा था। यहीं से १६६६ ई० में शिवाजी भाग गए थे। [७९, १७२, २००]।

आठ पातशाह—आठ बादशाह—१. हबसी, २. फिरंगी (पुर्तगाल), ३-५. बिलायती अर्थात् इतर योरप-निवासी—डच, फ्रांसीसी और इँगलैंड के व्यापारी, ६. बीजापुर, ७. भागनेर (गोलकुंडा) और ८. दिल्ली।

आदिलशाह—बीजापुर के आदिलशाही वंश की उपाधि आदिलशाह थी। ४ नवंबर सन् १६५६ ई० से २४ नवंबर सन् १६७२ ई० तक अली आदिलशाह दूसरा राज्य करता रहा। इसके पश्चात् सिकंदर आदिलशाह गद्दी पर बैठा और साथ ही खवास खाँ वजीर नियत किया गया। [६२, ६३, ७२, १७९, २०७, २१४, २५०, २५५]

आलमगीर—दे. 'औरंगजेब'।

आसाम—भारत के पूर्वोत्तर कोण का एक प्रदेश।

इँगलैंड—योरप के पश्चिम अंध महासागर में एक द्वीप। इसकी महिमा आज दिन सारे संसार में फैल गई है। इसे 'विलायत' भी कहते हैं। यहाँ के व्यापारियों की कोठियाँ उन दिनों बंबई प्रांत के कई नगरों में थीं। जैसे सूरत, भड़ोंच, चाल, कारवार इत्यादि।

इखलास खाँ—दिलेर खाँ को ताप्ती नदी के किनारे तक खदेड़कर औरंगाबाद लौट आने पर शाहजादा मुअज्जम को 'सूरत की दूसरी लूट' (१६७०) का पता लगा। उसने तुरंत बुरहानपुर से दाऊद खाँ को बुला० कर शिवाजी को परास्त करने के लिये सूरत की ओर भेजा। दाऊद खाँ के साथ इखलास खाँ मियाना (एक बीजापुरी पठान सरदार का लड़का) भी था। चंडोरा के पास प्रातःकाल पहाड़ी पर चढ़कर उसने देखा तो मैदान में मराठे लड़ने के लिये तैयार खड़े थे। जब तक उसके सिपाही हथियार बाँध रहे थे तब तक उसने कुछ चुने हुए सिपाहियों को लेकर मराठों पर आक्रमण किया। प्रतापराव गूजर ने उसे आहत करके घोड़े से गिरा दिया। इसके पश्चात् बहादुर खाँ ने स्वयं उस स्थान पर पहुँच कर आहत खाँ साहब की रक्षा की। इसके बाद दाऊद खाँ का एक और सेनापति मीर अब्दुल मबूद मराठों के हाथों से घायल हुआ और उसका एक लड़का भी मारा गया। मराठों ने उसका झंडा और घोड़ा छीन लिया। इसके बाद दाऊद खाँ लौट गया। यह युद्ध डिंडोरी के युद्ध के नाम से प्रसिद्ध है (१६७०)। (दे. 'अमरसिंह' भी)।

ईरान—भारत के उत्तर-पश्चिम अफगानिस्तान तथा अरब के बीच में 'फारस' नाम का एक देश है। इसे 'ईरान' भी कहते हैं। वहाँ के

व्यापारियों द्वारा ईरान तक शिवाजी का आतंक फैल गया था। (दे. 'अब्बासशाह' भी)। [२२८]

उज्जैन—मालवा प्रांत की राजधानी (दे. न.)।

उत्तर पहाड़—उत्तर पहाड़ अर्थात् हिमालय पर्वत। यह छंद औरंगजेब को लक्ष्य करके लिखा गया है। इसमें यह दिखलाया गया है कि 'हे मदमत्त मतंग! शिवाजी से बैर करके तूने अच्छा नहीं किया। इतने दिनों का तथा इतने देशों और प्रांतों का कमाया हुआ यश नष्ट हो जायगा और तेरा मद उतर जायगा।' [१५९]

उदैभान राठौर—यह राजपूत सेनापति सिंहगढ़ (कोंडाना) का किलेदार था यह बड़ा ही साहसी तथा पराक्रमी वीर था। ४ फरवरी सन् १६७० ई० को तानाजी मालसरे ने ३०० मावली सेना लेकर अँधेरी रात में, कुछ कोली पथ-प्रदर्शकों के द्वारा, जो भली-भाँति सब स्थानों को जानते थे, सिंहगढ़ पर आक्रमण किया। द्वार-रक्षकों को मारकर कमंद के सहारे मराठी सेना किले पर चढ़ गई। मावली सेना की 'हर-हर महादेव' की ध्वनि से किले की सारी सेना में आतंक छा गया। तानाजी तथा उदैभान राठौर ने एक दूसरे को युद्ध के लिये आह्वान किया। दोनों वीर लड़ते-लड़ते मारे गए। तानाजी की मृत्यु से मराठी सेना में आतंक छा गया। किंतु तानाजी के भाई सूर्यजी मालसरे ने उनको उत्साह दिया। सेना फिर लड़ने लगी और थोड़ी ही देर में संपूर्ण किले को अपने कब्जे में कर लिया। १२०० राजपूत मारे गए और बहुत से उस पहाड़ी किले पर से भागने में नष्ट हो गए। इसके पश्चात् मराठी सेना ने घुड़सवारों की झोपड़ियों में आग लगा दी। उसके उजाले से शिवाजी को किले पर विजय हो जाने की सूचना मिल गई। [९९, १५५, २६०, २८६]

एदिलशाह—दे. 'आदिलशाह'।

औरंगजेब—यह छठा मुगल बादशाह तथा शाहजहाँ का पुत्र था। इसका शासन-काल सन् १६५८ से १७०७ तक था। यह बड़ा ही कट्टर तथा मुसलमानों का पक्षपाती बादशाह था। हिंदुओं के साथ यह बड़ी ही क्रूरता का बर्ताव करता था। दक्षिण में शिवाजी ने इसके दाँत खट्टे कर दिए:

थे। मुगल-साम्राज्य के बड़े-से-बड़े सेनापति तथा सेनानायक दक्षिण में शिवाजी को परास्त करने के लिये भेजे जाते, पर बेचारे कुछ दिन तक रहकर अपना-सा मुँह लेकर चले आते। हिंदू-धर्म तथा हिंदू-प्रजा की जो दुर्दशा इसके शासन-काल में हुई, वैसी न तो पहले कभी हुई थी और न बाद ही में हुई। इसकी उपाधि 'आलमगीर' थी।

कंधार—अफगानिस्तान का एक शहर है (दे. न.)। इसको भी मुगलों ने जीत लिया था।

कक्कर—मुलतान के पास एक नगर था।

कछवाहे—कुशवंशी राजपूत (जयपुर)। [१२३, २२७]

कनेरगढ़—छंद २०७ में कनेरगढ़ का वर्णन जान पड़ता है। कनेरगढ़ के पास रामजी पांगेरा ने दिलेर खाँ (जिसके साथ १०००० घुड़सवार थे) के छक्के छुड़ा दिए थे। इस लड़ाई में दिलेर खाँ के १२०० पठान मार डाले गए। 'सभासद बखर' में लिखा है कि ऐसी बहादुरी को देखकर दिलेर खाँ ने दाँतों तले उँगली दबा ली थी।

कन्नौज—संयुक्तप्रांत में फर्रुखाबाद जिले का एक नगर है।

कबंध—दे. 'कमधुज'।

कमधुज—जोधपुर के कबंधज राजा।

कमाऊँ—गढ़वाल में एक रियासत है (दे. न.)। १६६५ ई० में कमाऊँ के राजा बहादुरचंद के इलाके पर अलीवर्दी खाँ के अधीन मुगल फौज ने आक्रमण किया। इस आक्रमण में श्रीनगर के राजा भी मुगलों के सहायक थे, यद्यपि उनके भतीजे का विवाह कमाऊँ-नरेश के यहाँ ही हुआ था। वस्तुतः श्रीनगर के ही राजा अधिक धन के लालच से मुगलों को चढ़ा लाए थे। हाल ही (१६६४ ई०) में राजा बहादुरचंद को राज्य-सेवा के लिये पुरस्कार भी मिल चुका था। उनका दोष केवल यही था कि वे बिना आज्ञा के श्रीनगर चले गए थे। कमाऊँ में 'भूषण' गए भी थे। [२५०]

करन या कर्णसिंह (राव)—बीकानेर के महाराजा रायसिंह के पुत्र महाराजा करनसिंह जो १६३२ ई० में गद्दी पर बैठे थे और लगभग १६७४ तक राज्य करते रहे। शाहजहाँ के राज्य-काल के अंतिम वर्षों में ये शाहजहाँ

के साथ दक्षिण-विजय करने गए थे। लेकिन उसके कैद हो जाने पर ये दारा के पक्ष में हो गए। बादशाही कर देना तथा बादशाह के यहाँ जाना भी बंद कर दिया। अगस्त १६६० ई० में ९००० सेना लेकर अमीर खाँ इनको परास्त करने को भेजा गया। राजा की हार हुई। इन्हें बादशाह के यहाँ आकर क्षमा माँगनी पड़ी। फिर ये दूसरे वर्ष जनवरी में तीन हजारी बनाकर २००० फौज देकर दक्षिण भेज दिए गए [३५, ७७]

कर्नाटक—भारत के दक्षिण-पूर्व का प्रांत (दे. न.)। दक्षिणी पश्चिमी कर्नाटक की सीमा तक उनकी सेना कई बार पहुँच कर लूट मार मचा चुकी थी। शि० भू० के तीन छंदों में इसका नाम आया है। किंतु उनमें से किसी से यह नहीं प्रतीत होता कि ये छंद कर्नाटक-विजय के द्योतक हैं। उनसे केवल यही विदित होता है कि कर्नाटक तक शिवाजी का आतंक छा गया था। फुटकर छंदों में जो कर्नाटक का वर्णन है, वह कर्नाटक-विजय का द्योतक है। शिवाजी ने सन् १६७७-७८ में कर्नाटक पर आक्रमण किया था। [११६, २०८, २६२]

कलकत्ता—बंगाल प्रांत की राजधानी (दे. न.)। यह सागर से कुछ मील ऊपर हुगली नदी पर बसा है।

कलिंग—उड़ीसा के आस-पास का देश (दे. न.) पहले 'कलिंग' कहा जाता था। [३५९]

कल्याण—कोंकण के उत्तरी भाग में कल्याण है (दे. न.)। बीजापुर का सरदार मुल्ला अहमद यहाँ का जागीरदार था। आदिलशाह की बीमारी के कारण यह बीजापुर में ही बहुत दिनों तक रह गया। इस सुअवसर से शिवाजी ने लाभ उठाया। २४ अक्टूबर १६५७ को आवाजी सोनदेव ने किलों समेत कल्याण अधिकृत कर लिया। शिवाजी ने सोनदेव को ही कल्याण का सूबेदार नियत कर दिया। [२१४]

कश्मीर—भारत के उत्तर-पश्चिम का एक देश (दे. न.)। यह पहाड़ी प्रांत है, किंतु यहाँ का जलवायु तथा प्राकृतिक दृश्य बहुत ही सुंदर है। इसकी राजधानी 'श्रीनगर' है।

काबुल—भारत की उत्तरी-पश्चिमी सीमा पर अफगानिस्तान नाम

का एक देश है (दे. न.)। उसीमें काबुल नाम का एक नगर है, जो काबुल नदी पर बसा हुआ है। इसको मुगलों ने जीत लिया था।

कारतलब खाँ—सन् १६६१ ई० के प्रारंभ में शाइस्ता खाँ का ध्यान उत्तर कोंकण की ओर गया। यद्यपि इसमाइल नामक एक मुगल सैनिक ने कुछ स्थानिक मराठे सरदारों और किलेदारों की सहायता से कोंकण प्रदेश के कुछ थोड़े से स्थानों को ले लिया था, तथापि कल्याण जैसे प्रसिद्ध स्थान ज्यों-के-त्यों शिवाजी के ही अधीन थे। शाइस्ता खाँ चाहता था कि शिवाजी की शक्ति का अस्तित्व कोंकण से मिटा दें। इसलिये उसने कारतलब खाँ उजबक के साथ, जो १६५७ से ही चार-हजारी मनसब प्राप्त कर चुका था और हाल ही में परेंदा किले में एक फौज का कमांडर था, बहुत से अपने अधीनस्थ राजपूत तथा मुसलमान सरदारों को शिवाजी को परास्त करने के लिये भेजा। पूना से चलकर लोहगढ़ होते हुए कारतलब खाँ भोरघाट के कुछ दक्षिण एक दर्रे की राह से कोंकण में उतरा। फौज के साथ तोपखाना तथा बहुत-सा सामान था। बेचारे सिपाही घने जंगल तथा ऊबड़-खाबड़ तंग पहाड़ी रास्ते में थके-माँदे परेशान होकर चले जा रहे थे। कुछ तो आगे चले गए थे, कुछ पीछे थे। इसी बीच में अचानक शिवाजी ने उनपर आक्रमण किया। कुछ देर तक युद्ध होता रहा। बेचारे सिपाही प्यास के मारे मर रहे थे। उनसे हिला तक नहीं जाता था। अंत में कारतलब खाँ को बहुत हानि उठाकर पराजय स्वीकार करनी पड़ी। जो कुछ सामान उसके पास था सब शिवाजी को देकर बहुत बड़ी रकम भी दी। तब कहीं जाकर बेचारे का पिंड छूटा। यह घटना ३ फरवरी १६६१ ई० की है। [१०२]

कालिंजर—मध्यभारत का प्रसिद्ध स्थान, यहाँ एक सुदृढ़ किला है।

काशी—यह गंगा नदी के बाएँ किनारे पर बसा हुआ हिंदुओं का प्रसिद्ध तीर्थस्थान है (दे. न.)। श्रीकाशी-विश्वनाथ का मंदिर औरंगजेब ने १६६९ में तोड़वा दिया था। जनश्रुति है कि विश्वनाथजी कुएँ में कूद पड़े थे।

किशोरसिंह—किशोरसिंह कोटा के राजा माधवसिंह के पुत्र थे।

थे दक्षिण में मुगलों की ओर से लड़ने गए थे। १६७१ वाले सल्हेर के युद्ध में अमरसिंह के मारे जाने पर मोहकमसिंह (अमरसिंह के लड़के) के साथ ये भी पकड़ लिए गए थे। [३५८]

कुडाल—सावंतवाडी से १२ मील उत्तर बंबई प्रांत में कुडाल नामक एक स्थान है (दे. न.)। जिस समय शिवाजी ने कुडाल पर चढ़ाई की उस समय खवास खाँ एक बड़ी सेना लेकर शिवाजी को परास्त करने आया उधर बीजापुर से मुधोल के जागीरदार बाजी घोरपड़े, जिसने सन् १६४८ में जिंजी में शिवाजी के पूज्य पिता शाहजी को कैद किया था, खवास खाँ की सहायता करने को आया। शिवाजी ने इन दोनों के मिलने से पहले ही मुधोल पर आक्रमण किया। घोरपड़े लड़ाई में मारा गया। उसके १२०० घोड़े तथा मुधोल शिवाजी के हाथ लगे। इसके बाद नवंबर १६६४ ई० में शिवाजी ने खवास खाँ को हराकर भगा दिया। इसके बाद बीजापुर के मददगार तथा कुडाल के जागीरदार लक्ष्मण सावंत देसाई से लड़ाई हुई। कुछ दिन लड़ने के पश्चात् लक्ष्मण सावंत जान लेकर जंगल में भाग गया। कुडाल शिवाजी के हाथ आ गया। [३१०]

कुतुबशाह—गोलकुंडा के तत्कालीन बादशाह से अभिप्राय है। [६२, ७२, १५५, २१४, २५०]

कूरम—कूर्म या कछवाहा क्षत्रियों की एक शाखा। [९६]

कौसिलापुरी—अर्थात् अयोध्या। सन् १६६९ ई० में शिवाजी की धाक उत्तर भारत भर में छाई हुई थी।

खँडहर—बरार देश में इस नाम का एक स्थान है। पर जान पड़ता है 'भूषण' ने दक्षिण 'कंधार' को 'खँडहर' लिखा है। [१५९]

खजुआ—फतेहपुर जिले में इस नाम का एक स्थान है (दे. न.)। इसी स्थान पर औरंगजेब ने अपने भाई शाहसुजा को ५ जनवरी सन् १६५९ ई० में परास्त किया था।

खवास खाँ—यह बीजापुर का सेनापति था। जिस समय जयसिंह ने शिवाजी पर चढ़ाई की थी उस समय यह भी मुगलों की मदद करने के

लिये बीजापुर से एक बड़ी सेना लेकर आया था। किंतु पुरंदर की संधि हो जाने पर जब जयसिंह ने बीजापुर पर आक्रमण किया तब शिवाजी की फौज भी बीजापुर के आस-पास उपद्रव मचाने लगी—'बैर कियो सिवाजी सो खवास खाँ' (अधिक के लिये दे. 'कुडाल')। [२०७, २५५, ३१३, ३३०]

खान–मुसलमानों की एक उपाधि। खाँ जहाँबहादुर (दे. बहादुर खाँ)।

खानखाना—मुसलमानों की एक उपाधि। इसका प्रयोग 'भूषण' ने मुसलमानों के अर्थ में किया है।

खानदौराँ—खानदौराँ उपाधि नौशेरी खाँ की थी। यह सन् १६३४ में दक्षिण का सूबेदार था। इससे सन् १६५७ ई० में अहमदनगर के पास शिवाजी से घोर युद्ध हुआ था। शिवाजी के बहुत से वीर मारे गए और बहुत से घायल हुए। किंतु मुगल-सेना इतनी थक गई थी कि उसने शिवाजी का पीछा नहीं किया। इसके लिये औरंगजेब ने नौशेरी खाँ तथा दूसरे कर्मचारियों को जो उस समय दक्षिण में थे बहुत डाँट-फटकार बतलाई थी और लिखा था कि जहाँ तक हो सके शिवाजी को तथा उसके देश को चौपट कर दो। किंतु बरसात प्रारंभ हो जाने के कारण मुगल-सेना उस समय कुछ न कर सकी। इसके बाद खाँ साहब दिल्ली चले गए। फिर भी औरंगजेब को चैन न पड़ा। उसने अपने अफसरों को लिख भेजा कि शिवाजी से बहुत खबरदार रहना। कहीं वह फिर न मुगल-सीमा पर आक्रमण करे। [१०२]

खुमान—'भूषण' ने शिवाजी के लिये सरजा, भौंसिला तथा खुमान इन तीन संमान-सूचक उपाधियों (नामों) का अधिक प्रयोग किया है। [८ आदि]

खुरासान—फारस देश के उत्तर में इस नाम का एक सूबा है। यहाँ के लोग बड़े लड़ाके होते हैं। यहाँ पर खुरासानी फौज से तात्पर्य है। एशिया महाद्वीप की प्रायः प्रत्येक मुसलमानी रियासत से छोटे-बड़े सरदार अथवा साधारण सैनिक मुगल-सेना में आकर भरती हो जाते थे। उन दिनों तातार, खुरासान तथा अन्य देशों से आए हुए सैनिकों का दिल्ली के सम्राट् के यहाँ खासा जमघट था।

गढ़नेर—जुनारे के तालुके में इस नाम का (गोढ़नेर) एक स्थान था (दे. न.)। संभव है इसीसे 'भूषण' का अभिप्राय हो। इसका तात्पर्य 'गढ़-नगर' भी हो सकता है। चाँदा प्रदेश में गढ़ नाम की कई बस्तियाँ हैं। 'नेर' को नगर का बिगड़ा रूप मानना होगा (नगर, नयर, नेर)। [११६]

गढ़वार (गढ़वाल)—संयुक्त प्रांत की पश्चिमोत्तर सीमा का एक प्रांत।

गाजी—मुसलमान धर्म-युद्ध में लड़नेवाले को 'गाजी' कहते हैं। 'भूषण' ने हिंदुओं के धर्म-युद्ध में लड़नेवाले शिवाजी के लिये बारंबार इस उपाधि का प्रयोग किया है।

गुजरात—१६ फरवरी सन् १६४५ से लेकर दो वर्ष तक औरंगजेब यहाँ का सूबेदार था। यहाँ पर उसने बड़ी ही योग्यता से शासन किया। बहुत से जागीरदारों को दबाया, जिसके बदले में सम्राट् शाहजहाँ ने औरंग-जेब की बड़ी प्रशंसा की और उसे पुरस्कार भी दिया। यहीं से सन् १६४७ ई० में वह काबुल होता हुआ बलख में लड़ाई करने के लिये भेजा गया था। [१५९]

गुसलखाना—वह स्थान जहाँ बादशाह विशेष-विशेष अवसर पर विशेष-विशेष व्यक्तियों से मिलते थे। गोविंद गिल्लाभाई ने अपने 'शिवराज-शतक' में 'गुसलखाना' को 'गोस्ल खाँ' माना है और उसे औरंगजेब का अंगरक्षक बतलाया है। पर इतिहास में इस व्यक्ति का पता नहीं चलता। इसके विपरीत गुसलखाना का वर्णन 'सभासद बखर' में स्पष्ट रूप से मिल जाता है। [३४, ७९, २०५, २१०, २६६, ३६३]

गोकुल—मथुरा के पास का प्रसिद्ध स्थान। यहाँ मथुरा से ही तात्पर्य है (दे. मथुरा)।

गोंडवाना—गोंडवाना (दे. न.) यानी गोंड लोगों का देश नागपुर, रायपुर तथा पालामऊ वगैरह जिले के आस-पास का देश।

गोलकुंडा—हैदराबाद शहर से ७ मील पश्चिम गोलकुंडा का प्राचीन किला है (दे. न.)। बहमनी राज्य का अंत हो जाने पर कुतुबशाही खानदान के बादशाहों की यहीं पर राजधानी थी। [१२, ६९, २२८]

गौर—(१) गौड़ क्षत्रिय [१२२, ३६०]। (२) गोर—

इस नाम का देश अफगानिस्तान में है और 'गौड़' बंगाल में भी है (दे. न.)। इन दोनों स्थानों में औरंगजेब नामवरी के साथ लड़ा था। काबुल, बलख पर चढ़ाई करते समय अफगानिस्तान के गोर देश पर विजय पा चुका था तथा शाहसुजा को हराने से बंगाल के गौड़ देश में उसकी कीर्ति चमक चुकी थी। [१५९]

ग्वालियर—मध्यभारत की प्रसिद्ध रियासत।

चंद्राव—दे. 'जावली'।

चंद्रावत—क्षत्रियों की एक शाखा (दे. अमरसिंह)।

चंद्रावल—दे. 'चंद्राव'।

चंपतराय—महाराज छत्रसाल बुँदेला के पिता।

चंबल—यमुना की एक सहायक नदी (दे. न.)। यह विंध्याचल से निकलकर यमुना में गिरती है।

चकत्ता—चंगीज खाँ या चकताई खाँ का वंशज औरंगजेब।

चाँदा—इस नाम का एक स्थान नागपुर से दक्षिण-पूर्व करीब १०० मील पर है। दूसरा चाँदगढ़ बेलगाँव से करीब २२ मील पर था (दे. न.)। यहाँ पर इस दूसरे ही चाँदगढ़ से अभिप्राय जान पड़ता है। [११६]

चालकुंड—बंबई में कोलाबा के पास 'चाल' नाम का एक प्रसिद्ध बंदरगाह था (दे. न.)। इसके आस-पास बहुत से जुलाहे रहते थे, जो कपड़ा बिनते थे। यहाँ पर बहुत से धनी रोजगारी भी रहते थे। इसके पास पुर्तगालियों की कोठी थी, शिवाजी ने इसके दक्षिणी भाग को जीतकर वहाँ पर अपना सूबेदार नियुक्त कर दिया था (१६६९ ई०)।

चिंजाउर—आधुनिक तंजौर को मराठी में 'चंडावर' और 'चिंजाउर' भी कहते हैं।

चिंजी—कर्नाटक का एक प्रसिद्ध किला। इसका नाम जिंजी या गर्वे-गढ़ भी है। इसको मराठी में 'चंदी' भी कहते हैं।

चिंतामणि (चिमणाजी)—शिवाजी का प्रधान सेनापति चिमणाजी बापूजी नाम का एक व्यक्ति था, जो बड़ा शूर-वीर था। जिस समय शिवाजी ने शाइस्ता खाँ पर चढ़ाई की थी यह भी उनके साथ था। बाजीराव के भाई

का नाम भी 'चिमणाजी आपा' था। गोविंद गिल्ला भाई 'चिंतामणि' का तात्पर्य इन्हीं से लेते हैं। चिंतामणि का पाठांतर 'शिवराज' भी है।

चितकूट—दे. 'हृदयराम-सुत-रुद्र'।

चित्तौर—राजपूताने की प्रसिद्ध चित्तौड़ रियासत (दे. न.)। [२५०

चीन—एशिया के पूर्व में एक देश।

चौथ—यह एक प्रकार का कर था। जब शिवाजी किसी राजा या जमींदार को जीत लेते थे तो उससे चौथ वसूल करते थे।

चौरागढ़—'शिवराज-भूषण' के १११ वें छंद में 'चौंर गढ़' शब्द प्रयुक्त हुआ है। कुछ लोग इसे गढ़-विशेष मानते हैं। मध्य-प्रदेश के नरसिंहपुर जिले में इस नाम का गढ़ था भी, जो गढ़ा-मांडले की राजधानी था। पर हम 'चौंर' और 'गढ़' अलग-अलग मानते हैं और दोनों का अन्वय 'की' के साथ करते हैं। (दे. उक्त छंद की टिप्पणी)।

छत्तीस-वंश—क्षत्रियों के छत्तीस वंश।

छत्रसाल—दे. 'महाराज छत्रसाल' (पुस्तक के आदि में)। बूँदी-नरेश छत्रसाल के लिये दे. 'हाड़ा'।

छ-हजारी—दे. 'हजारी'

जगतसिंह—अकबर के दरबारी महाराज मानसिंह के सबसे बड़े पुत्र।

जगदेव—इनका नाम राजपूताना, गुजरात, मालवा आदि देशों में वीरता तथा उदारता के लिये प्रसिद्ध है। ये परमार-वंशी कहे जाते हैं। [२४३]

जयसिंह—शाइस्ता खाँ के आहत होने और सूरत के लूटे जाने पर औरंगजेब का दिल दहल उठा। उसने अपने सबसे बड़े सेनापति मिर्जा राजा जयसिंह को शिवाजी का दमन करने के लिये दक्षिण भेजा। मिर्जा राजा ९ जनवरी, १६६५ ई० को हड़िया के पास नर्मदा नदी के पार पहुँचे। इनकी सहायता के लिये दिलेर खाँ, दाऊद खाँ कुरेशी, राजा रायसिंह सिसोदिया, इहतिशाम खाँ शेखजादा, कूबद खाँ, राजा सुजान सिंह बुँदेला, कीरतसिंह (जयसिंह के पुत्र), मुल्ला यहिया नवैयत (बीजापुर का सरदार जो मुगलों की ओर चला आया था) आदि बड़े

दरे तथा अन्य बहुत से सेनानायक भेजे गए। जयसिंह ने ३ मार्च को पूना पहुँचकर महाराजा जसवंतसिंह से कार्य-भार ले लिया। ये १६१७ ई० में मुगल-दरबार में दाखिल हुए थे। तब से लेकर साम्राज्य के प्रत्येक प्रांत में, जहाँ कहीं कठिन शत्रु का सामना करना होता, ये ही भेजे जाते। उस समय मध्य एशिया के बलख से लेकर बीजापुर तक और कंधार से लेकर मुँगेर तक इनकी तूती बोल रही थी। जब शिवाजी ने देखा कि पुरंदर का किला हाथ से जा रहा है तो उन्होंने जयसिंह से मेल कर लिया और उन्हें ३५ (२३ ?) किले देकर मुगल-सेना में दाखिल होने को तैयार हो गए। इसीके बाद शिवाजी आगरे लौट आए। यह घटना इतिहास-प्रसिद्ध है। जयसिंह १६६७ में दिल्ली-लौटते समय बुरहानपुर में स्वर्गवासी हुए। [२१३, २१४, २६६]

जवारि—सल्हेर लेने के बाद शिवाजी की धाक और भी जम गई। यहाँ तक कि बहादुर खाँ और दिलेर खाँ को पूना और बंगलाना छोड़कर भागना पड़ा। इसके पश्चात् महावत खाँ भी उत्तरी भारत को लौट आया (मई १६७२ ई०)। इसके बाद ही मोरो पिंगले ने जवारि या जौहर (दे. न.) के कोली राज्य पर आक्रमण किया। यहाँ के राजा विक्रमशाह भागकर मुगल-राज्य में (नासिक) चले गए। यहाँ पर करीब १७ लाख का खजाना भी मराठों के हाथ लगा। [७३, १७३, २०७]

जसवंतसिंह—ये मारवाड़ के राजा थे। ये कई लड़ाइयों में बड़ी बहादुरी के साथ लड़े थे। ये शाइस्ता खाँ के साथ दक्षिण भेजे गए थे। जिस समय शिवाजी ने पूना में शाइस्ता खाँ पर आक्रमण किया था उस समय ये सिंहगढ़ के पास ही थे। इन्होंने उस समय शिवाजी के विरुद्ध कोई काम नहीं किया। इससे कहा जाता है कि ये शिवाजी से मिल गए थे। अस्तु, शाइस्ता खाँ के दक्षिण से लौट जाने पर ये पुनः राजकुमार मुअज्जम के साथ दक्षिण आए। शाहजादा ने इन्हें पूना भेज दिया। पूना से चलकर इन्होंने नवंबर १६६३ ई० में सिंहगढ़ घेर लिया। ये छः महीने तक घेरा डाले पड़े रहे। इस युद्ध में इनके सैकड़ों सिपाही मारे गए परंतु किला हाथ नहीं आया। अंत में इस विफलता के कारण भाऊसिंह

हाड़ा से इनकी अनबन हो गई। २८ मई १६६४ ई० में घेरा उठा लिया गया। दोनों राजपूत सरदार औरंगाबाद लौट गए। [३५, ७७, ३६६]

जहाँगीर—जहाँगीर सम्राट् अकबर का पुत्र तथा चौथा मुगल सम्राट् था। इसका शासन-काल १६०५ से १६२७ ई० तक था। इसके शासन-काल में औरंगजेब की अपेक्षा हिंदुओं के साथ अधिक शिष्ट एवं दयापूर्ण बर्ताव होता था। हिंदू-धर्म का भी कुछ आदर था।

जहाँदारशाह—दे. 'दाराशाह'।

जहाँबहादुर—खाँ जहाँबहादुर, दे. 'बहादुर' खाँ'।

जारी (हजारी)—'ताहि खड़ो कियो जाय जारिन के नियरे' दे. 'हजारी'।

जावली—सतारा जिले के उत्तरी-पश्चिमी कोने में एक पहाड़ी तथा चारों ओर घने वनों से घिरा हुआ ग्राम है (दे. न.)। जावली परगने के आस-पास कम-से-कम ८ दर्रे पड़ते थे, जिनसे होकर कोंकण में जाने के मार्ग थे। शिवाजी ने रघुनाथ बल्लाल कोर्डे को १२५ चुने हुए जवानों के साथ जावली के किलेदार कृष्णजी चंद्रराव मोरे से, जिसकी अवस्था केवल १८ वर्ष की थी, बातचीत करने को भेजा। कोर्डे एकांत में बातचीत करते समय चंद्रराव मोरे को मारकर किले से बाहर चला आया। इसी समय शिवाजी ने अपनी फौज लेकर आक्रमण किया और १५ जनवरी, सन् १६१६ ई० में जावली को दखल कर लिया। इसी जावली के पास के जंगलों में शिवाजी ने अफजल खाँ को ११ नवंबर, सन् १६५९ ई० में मार डाला था। [६२, ९८, २०७]

जुमिला—जुमिला नाम का कोई स्थान नहीं मिलता। सभासद बखर में 'जुमिला' शब्द सेना के कुछ-एक समूह के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है मालूम होता है कवि ने भी इसी अर्थ में इसका प्रयोग किया है। 'जुमिला के छितिपाल' अर्थात् थोड़ी-थोड़ी फौजवाले छोटे-छोटे राजा, जमींदार और सरदार। [१११]

जोधपुर—राजपूताने की प्रसिद्ध रियासत (दे. न.)। [२५०]

जोरावर—यह वस्तुतः विशेषण जान पड़ता है। मराठी में इसका

प्रयोग देखा जाता है एक नाम 'अब्दुल जब्बार' भी 'सरकार' के 'औरंगजेब' में मिलता है। संभव है 'भूषण' ने 'जब्बार' को ही जोरावर लिखा हो। [१०२]

झारखंड—उड़ीसा में गोंड़वाने के पूर्व तथा जगन्नाथपुरी के आस-पास का देश झारखंड कहलाता है (दे. न.)। [१११, १५९]

ढुंढार—राजपूताने की एक रियासत। पहले इसकी राजधानी अंबर थी। पश्चात् मुगलों के समय में ढुँढार जयपुर के नाम से प्रसिद्ध हुआ (दे. न.)। [१११]

तलब खाँ—दे. 'कारतलब खाँ'।

तहव्वर खाँ—औरंगजेब की ओर से तहव्वर खाँ के सेनापतित्व में एक बहुत बड़ी सेना महाराज छत्रसाल को परास्त करने के लिये भेजी गई थी। उधर तो सँड़वा में भाँवरे पड़ रही थीं इधर तहव्वर खाँ ने आकर घर घेर लिया। छत्रसाल यहाँ से किसी प्रकार भाग गए। किंतु थोड़े दिनों के बाद तहव्वर खाँ ने राजगढ़ के पास फिर छत्रसाल पर चढ़ाई की। घोर युद्ध होने के पश्चात् खाँ साहब मैदान छोड़कर भाग गए।

तातार—तातार देश मध्य-एशिया में है। यहाँ पर 'तातार' से अभि-प्राय तातारी फौज से जान पड़ता है।

तिमिर या तैमूर—इसने १३९१ में भारत पर चढ़ाई की थी। औरं-गजेब इसका वंशज था। [९२]

तिलंग और तिलगाना—(दे. न. में 'तिलंगाना') शिवाजी ने १६७२-७३ में बरार तथा तिलंगाना लूटने के लिये घुड़सवार-सेना भेजी थी। [२५९]

तीन पातशाही—बीजापुर का आदिलशाही, गोलकुंडा का कुतुब-शाही और दिल्ली का मुगल राज्य।

तुरकाना—मुसलमानी राज्य।

तुरान—तुरान या तुर्की। तुरान के व्यापारी उन दिनों हिंदुस्तान में व्यापार करने के लिये आते थे।

तूँवर—तोमर क्षत्रिय।

त्रिविक्रमपुर (तिकवाँपुर)—त्रिविक्रमपुर (वर्तमान तिकवाँपुर)

जिला कानपुर तहसील घाटमपुर में "अकबर बीरबलपुर" गाँव से दो मील की दूरी पर यमुना नदी के बाएँ किनारे बसा है (दे. न.)। कविवर भूषण का जन्म यहीं हुआ था। [२६]

दच्छिण—दक्षिण या दक्कन।

दच्छिण को नाह—संवत् १७५० वि० में बीजापुर के एक पठान ने पन्ना पर आक्रमण किया था। किंतु वहाँ पहुँचते ही मारा गया। उसकी सेना आगे न बढ़ सकी, अपितु हारकर लौट गई।

दलकुंड—दलकुंड का अभिप्राय दभोल से जान पड़ता है (दे. न.)। फरवरी सन् १६६१ ई० में कारतलब खाँ को परास्त करने के बाद शिवाजी एक फौज मुगलों से लड़ने के लिये छोड़कर, स्वयं एक बड़ी सेना लेकर पन्हाले का बदला लेने (इस समय पन्हाला मराठों के हाथ से निकल गया था) के लिये कोंकण जीतने चले गए। पहले जंजीरा से २२ मील पूर्व निजामपुर पर आक्रमण हुआ। इसके बाद दभोल (दलकुंड) का बंदरगाह ले लिया गया। यहाँ का सरदार दलवे था।

दलेल खाँ (दिलेर खाँ)—दे. 'सलहेरि'। [३५७]

दाऊद खाँ—दे. 'इखलास खाँ'।

दारा—शाहजहाँ का सबसे बड़ा पुत्र तथा औरंगजेब का जेठा भाई। शाहजहाँ के पश्चात् इसीको दिल्ली का सिंहासन मिलनेवाला था। औरंगजेब ने इससे लड़ाई ठान दी। आगरे के पास सामूगढ़ में सन् १६५८ ई० में घोर युद्ध हुआ। बेचारा दारा बेतरह हार गया। अंत में उसे जान लेकर जगह-जगह सिंध, मुलतान, गुजरात आदि स्थानों में भागना पड़ा। इसी भागने में वह सिंध के पास पकड़ा गया और दिल्ली लाया गया। यहाँ पर औरंगजेब ने घोर अपमान के साथ उसका सिर कटवाकर सारे शहर में घुमवाया। इस प्रकार दारा का अंत हुआ। [२१८]

दाराशाह—यह औरंगजेब का भाई दारा जान पड़ता है (दे. 'दारा')। इस छंद में 'जहाँ दाराशाह' शब्द प्रयुक्त हुआ है। इससे कुछ लोग इसे औरंगजेब के वंशज 'जहाँदारशाह' की प्रशंसा मानते हैं। पर यह भ्रम जान पड़ता है।

दिलेर खाँ—दलेल खाँ का ही नाम दिलेल, दिलेर, दलेर आदि सभासद बखर में मिलता है (दे. 'दलेल खाँ')।

दिल्ली—इसका प्राचीन नाम इंद्रप्रस्थ था। मुगलों के शासनकाल में यह मुगल-साम्राज्य की राजधानी थी। पर सम्राट् आगरे में रहा करते थे (दे. न.)।

दिल्ली-दरबार—दे. 'छत्रपति शिवाजी' (पुस्तक के आरंभ में)।

दिल्लीपति—दे. 'औरंगजेब'।

देवगिरि—यादव वंशीय क्षत्रियों की रियासत। आजकल यह दौलताबाद के नाम से प्रसिद्ध है (दे. न.)। [७]

देव विहारीश्वर—दे. 'विहारीश्वर देव'।

द्रविड़—द्रविड़ या द्राविड़ देश अर्थात् मदरास सूबे के दक्षिण प्रांत (दे. न.) के निवासी। शिवा-बावनी में शिवाजी का प्रताप वर्णित है। फुटकर में कर्नाटक की चढ़ाई का वर्णन है।

नवकोटि—मारवाड़ (दे. न.)।

नवरंग या नौरंगजेब—दे. 'औरंगजेब'।

नवसेरी खाँ (नौशेरी खाँ)—१६५७ ई० में दो मराठा सेनानायक मीनाजी भोंसले और काशी ने क्रम से चमरगुंडा और रैसिन के इलाकों में लूट करनी आरंभ कर दी। यहाँ तक कि वे अहमदनगर के पास तक पहुँच गए। अहमदनगर के किलेदार मुल्तफत खाँ ने डरकर आस-पास के रहनेवालों की सभी चीजें किले के अंदर रख लीं। इधर तो मीनाजी अहमदनगर के इलाके में लूट मचा रहे थे, उधर शिवाजी ने रात्रि के समय जुनार शहर में छापा मारकर लाख हूण नगद और २०० घोड़े लूट लिए। इसपर राव करन तथा शाइस्ता खाँ भेजे गए। जब लूट बढ़ने लगी तो मई १६५७ में नौशेरी खाँ भी घटना-स्थल पर पहुँच गया। शिवाजी से घोर युद्ध हुआ। पर मराठों के पैर उखड़ गए और वे वहाँ से लूटमार करते हुए निकल गए। नौशेरी खाँ उनका पीछा न कर सका। इसपर औरंगजेब ने नौशेरी खाँ तथा दूसरे सेनापतियों को बहुत डाँटकर लिखा कि तुम लोग तुरंत शिवाजी को चारों ओर से घेर लो। [२०८]

निजामबेग—अहमदनगर का बादशाह जान पड़ता है।

निजामशाह—अहमदनगर के निजामशाही बादशाह। मालोजी निजाम-शाही बादशाह के सहायक तथा मित्र थे। [७,५२]

निरा नद—(नीरा नदी) यह भीमा की सहायक है। इसी नदी के तटपर बहादुर खाँ पूना प्रांत से हारकर जा ठहरा था।

नैपाल—भारत के उत्तर की प्रसिद्ध पहाड़ी रियासत (दे. न.)। [१११]

पंचम—पंचमसिंह बुँदेलों के पूर्वपुरुष थे। महाराज बुँदेल (बुँदेलों के पुरुषा) इनके पुत्र थे। पंचमसिंह बड़े प्रतापी तथा विंध्यवासिनी-देवी के अनन्य भक्त थे। इन्हीं के नाम पर छत्रसाल का प्रताप प्रदर्शित करने के लिये 'पंचम' का प्रयोग किया गया है। यह बुँदेलों की उपाधि ही हो गई थी। कुछ लोग 'पंचम' नामक कवि का छत्रसाल के दरबार में होना मानकर इसे उपाधि नहीं मानते।

पंचहजारी—दे. 'हजारी' [२१०]

पंपा—दक्षिण का पुराण-प्रसिद्ध तालाब। [२८९]

पँवार—परमार, क्षत्रियों का एक वंश।

पछाँह—राजपूताना या वर्तमान संयुक्त-प्रदेश-आगरा-अवध के पश्चिमी प्रांत को पछाँह के नाम से पुकारते हैं। यहाँ इसका अभिप्राय अधिकतर राजपूताने से है।

पठान—मुसलमानों की एक जाति-विशेष।

परनाला (पन्हाला)—वर्तमान कोल्हापुर से करीब २२ मील उत्तर-पश्चिम पन्हाला का किला पड़ता है। अफजल खाँ को मारने के पश्चात् शिवाजी ने पन्हाला ले लिया (२८ नवंबर १६५९)। उसके बाद शिवाजी रत्नागिरि जिले में जाकर वहाँ के सब बंदरगाह तथा किले लेने लगे। इस प्रांत के जितने बीजापुरी किलेदार एवं जागीरदार थे भागकर राजापुर चले गए। इसके बाद ही शिवाजी ने रुस्तमे जमाँ तथा अफजल खाँ के पुत्र फाजल खाँ को कोल्हापुर के पास परास्त किया। पश्चात् शिवाजी के हाथ से पन्हाला निकल गया। वहीं पर सिद्दी जौहर ने उन्हें घेर लिया। शिवाजी को वहाँ से भागना पड़ा। २४ नवंबर १६७२ ई० को अली आदिलशाह

द्वितीय की मृत्यु हो गई। सिकंदर आदिलशाह गद्दी पर बैठा। खवास ख़ाँ सिकंदर आदिलशाह का वली नियत हुआ और उसने सब अधिकार अपने हाथ में कर लिए। बीजापुर राज्य में चारों ओर गड़बड़ी मच गई। शिवाजी के लिये अच्छा मौका मिल गया। इसी समय शिवाजी से बीजापुर की संधि भी भंग हो गई। इस बीच शिवाजी के सेनापति कान्होजी अँधेरी रात्रि में केवल ६० सिपाहियों के साथ पन्हाला के किले पर चढ़ गए। किलेदार मारा गया और पन्हाला शिवाजी के हाथ में आ गया। यह घटना ६ मार्च १६७३ ई० की है। [१०६, १७९, २०८, २५५, ३५९]

परेण्डा या परेंडा—शोलापुर से उत्तर-पश्चिम परेंदा नाम का किला तथा स्थान है (दे. न.)। अगस्त १६५७ की संधि के अनुसार बीजापुर राज्य को एक करोड़ तथा परेंदा का किला और उसके आस-पास का देश मुगलों को देना था। लेकिन शाहजहाँ की बीमारी के कारण जब औरंगजेब उत्तर भारत को चला आया और दिल्ली के सिंहासन के लिये अपने भाइयों से युद्ध करने लगा, तो बीजापुर के राज को मौका मिल गया। उसने संधि की शर्तों के पालन में आनाकानी करनी आरंभ कर दी। [२१४]

पलाऊँ—बिहार प्रांत की दक्षिणी सीमा पर छोटानागपुर के निकट पालामऊ (पलामू) जिला है। यह बहुत ही पहाड़ी और जंगली प्रांत है। यहाँ पर चेरो राजाओं का राज्य था। १६६० ई० के मध्य में दाऊद खाँ बिहार सूबे का सूबेदार हुआ। राजा ने बहुत दिनों से कर नहीं दिया था। अतएव दाऊद खाँ ने दरभंगा के फौजदार मिर्ज़ा खाँ, चैनपुर के जागीरदार तहव्वर खाँ और मुँगेर के राजा बहरोज को लेकर पालामऊ पर आक्रमण किया। राजा को मुसलमान हो जाने की भी धमकी दी गई। अंत में वहाँ के राजा प्रतापराय ने अपने बाल-बच्चों को जंगल में भेजकर लड़ाई ठान दी। पर विजय न होती देख आप भी जंगल में भाग गया। पालामऊ अन्य जिलों के साथ मुगल-राज्य में मिला लिया गया।

पार—प्रतापगढ़ से १ मील दक्षिण की ओर एक ग्राम था (दे. न.)। इसी स्थान पर अफजल खाँ ने अपना पड़ाव डाला था। [२०७ (बार)]

पुर्तगाल—योरप महाद्वीप के दक्षिण-पश्चिम, पूर्व में भूमध्य सागर तथा पश्चिम में अंध महासागर से घिरा हुआ एक देश है। यहाँ के रहने-वाले उन दिनों व्यापार में बहुत बढ़े-चढ़े थे। बंबई सूबे के पश्चिमी तट पर इनकी कई कोठियाँ थीं। सावंतवाड़ी के दक्षिण में समुद्र के किनारे गोआ नाम का प्रांत अब तक पुर्तगालियों के अधिकार में है। 'भूषण' ने इन्हें 'फिरंगी' भी कहा है। [१८१, २१४]

पूना—बंबई से दक्षिण-पूर्व तथा भोरघाट के दर्रे से उत्तर बंबई के सूबे में पूना नाम का एक शहर है (दे. न.)। इसीके आस-पास शाहजी की जागीर थी दादाजी कोंणदेव तथा जीजाबाई के साथ इसी स्थान पर शिवाजी का बाल्यकाल व्यतीत हुआ था। यहीं पर उन्होंने शाइस्ता खाँ पर रात्रि के समय आक्रमण किया था। [१०२, १९०, २२९, ३६६]

पैंतीस गढ़—दे. 'जयसिंह'। [२१४]

पौरच—क्षत्रियों की एक जाति। इस जाति के क्षत्रिय अलीगढ़ जिले के मेडू परगने में अधिक पाये जाते हैं।

प्रतापगढ़—जावली जीत लेने के पश्चात् उससे २ मील पश्चिम और महाबालेश्वर के पठार से १२ मील की दूरी पर एक पहाड़ी की चोटी पर शिवाजी ने अपनी इष्टदेवी का एक मंदिर बनवाया। क्योंकि तुलजापुर की भवानी बहुत दूर पड़ती थीं। उसीके पास मोरो पिंगले ने अपने स्वामी शिवाजी की आज्ञा से एक किला बनवा दिया। इसीका नाम प्रतापगढ़ था। इसी किले के नीचे जंगल में शिवाजी ने अफजल खाँ को यमलोक भेजा था।

फतेह खाँ—शिवाजी ने कोलाबा जिले का पूर्वी भाग जो सिद्दियों (हबसियों) की जागीर से लगा हुआ था, पहले ही ले लिया था। अब सिद्दियों के पास डंडाराजपुरी और उसके आस-पास की जगह रह गई थी। जब अफजल खाँ शिवाजी पर आक्रमण कर रहा था उस समय फतेह खाँ सिद्दी अपनी खोई हुई जागीर निकालने में लगा था। किंतु बीजापुरी सेना-पति का मारा जाना सुनकर वह मैदान से हट गया। पुनः जब शिवाजी पन्हाला में घिरे हुए थे, तो फतेह खाँ ने 'सावंत' के साथ कोंकण पर आक्र-मण प्रारंभ कर दिया। इसपर शिवाजी ने रघुनाथ बल्लाल कोर्डे को ७०००

फौज देकर उससे लड़ने को भेजा। रघुनाथ ने हबसियों की फौज को परास्त कर दिया। ताल, घोंसाला और दूसरे किलों को ले लिया। जब सिद्दियों ने देखा कि बीजापुर से मदद की आशा नहीं है तो उन्होंने डंडाराजपुरी देकर शिवाजी से सुलह कर ली (१६५९)। फिर १६७० ई० में फतेह खाँ शिवाजी की फौज से बार-बार टक्कर लेते-लेते तंग आ गया। यहाँ तक कि वह जंजीरा देकर शिवाजी का जागीरदार हो जाने पर भी तुल गया था। [२४१]

फिरंग (फिरगाना)—इस फिरंग वा फिरगाना का तात्पर्य पुर्तगाल देश तथा हिंदुस्तान का वह भाग (गोआ के आस-पास या और जहाँ इनकी व्यापारिक कोठियाँ थीं) है जहाँ पुर्तगालवाले रहते थे। कुछ लोग इसे मध्य-एशिया का 'फरगाना' मानते हैं, पर यह भ्रम है। [११६, २१८]

फ्रांस—योरप का एक देश। यहाँ के व्यापारी शिवाजी के समय में भारत आ चुके थे।

बंगस—कोहाट के पास बंगश नाम के प्रांत में रहनेवाली बंगश जाति के लोग।

बक्खर—दे. 'भक्खर'

बघेला—बघेले क्षत्रिय।

बड़गूजर—बड़गूजर क्षत्रिय।

बब्बर—दे. 'बाबर'।

बरगी—दे. 'बारगीर'।

बलख—बुखारा और अफगानिस्तान की सीमा के पास बलख नाम का एक शहर है। इसपर मुगलों ने चढ़ाई की थी।

बलूची—बलूचिस्तान या बिलोचिस्तान के रहनेवाले।

बवंजा—बवंदल नामक एक स्थान काश्मीर में है। परंतु यह ठीक नहीं प्रतीत होता।

बहरी—यह अहमदनगर के बादशाहों की उपाधि है। यह उपाधि निजामुल्मुल्क को मिली थी। वह बहमनी राज्य के शिकारी बाजों की देख-रेख किया करता था। इसीसे उसे 'बहरी' की उपाधि मिली। 'बहरी' एक प्रकार के शिकारी बाज को कहते हैं। [७२]

बहलोल खाँ—(१) बीजापुर की सेना में आधे से अधिक अफगान थे। उनका सेनानायक अब्दुल करीम बहलोल खाँ द्वितीय था। बाँकपुर तथा मीरॉज के पास उसकी जागीर थी। जब जयसिंह ने १६६५-६६ ई० में बीजापुर पर आक्रमण किया था, बहलोल खाँ बड़ी बहादुरी से लड़ा था। १९ नवंबर १६६५ ई० को जयसिंह बीजापुर पर आक्रमण करने के लिये रवाना हो गए। उसके दो दिन बाद इसी बहलोल खाँ का भाई अब्दुल महम्मद मियाना, जो बहुत ही वीर तथा प्रभावशाली था, बीजापुर से असंतुष्ट होकर जयसिंह से आ मिला। उसके असंतोष का कारण यह था कि वह अफगानों का नेता होना चाहता था, लेकिन यह पद उसको न मिलकर बहलोल खाँ को मिला। जब शिवाजी ने पन्हाला ले लिया तो बहलोल खाँ उस किले को लड़कर लौटा लेने को भेजा गया। बीजापुर से ३६ मील पश्चिम उमरानी के पास शिवाजी के दो प्रधान सेनापति प्रतापराव और आनंदराव से उसकी मुठभेड़ हो गई। मराठी सेना ने उसकी सेना को इस प्रकार अचानक चारों ओर से घेर लिया कि बेचारे को पानी तक पीने को न मिला। दिन भर युद्ध करने के पश्चात् संध्या को उसने प्रतापराव को कहला भेजा कि मैं आपसे युद्ध करने नहीं आया हूँ, किंतु केवल अपने मालिक को दिखलाने के लिये लड़ाई का स्वाँग रच रहा हूँ। इसपर प्रतापराव ने उसे छोड़ दिया। यह घटना १५ अप्रैल सन् १६७२ ई० की है। जिदे की डायरी में लिखा है कि बुलाकी (बहलोल खाँ) ने पेन के पास डेहरी किले को घेर लिया था। इसपर कावजी कोंधालकर ने उसके ४० सिपाहियों को युद्ध में मार डाला और घेरा उठा दिया (१६६१)। फिर १६६७ वैशाख के महीने में काकोजी और बहलोल खाँ ने रंगन घेर लिया था। इसपर शिवाजी ने जाकर घेरा उठा दिया। १६७१ में फिर आनंदराव और प्रतापराव ने मोहकमसिंह, बहलोल खाँ और दरकोजी भोंसले को कैद कर लिया था। इस युद्ध में ११ हाथी तथा १७०० घोड़े भी मराठों के हाथ लगे थे। मार्च १६७३ में आनंदराव और प्रतापराव से बहलोल खाँ का युद्ध हुआ और बीजापुर के निकट मराठों की विजय हुई। इस युद्ध में भी एक हाथी हाथ लगा। [१६१, १७४, २४१, ३५८, ३६०, ३६१]

बहलोल खाँ (द्वितीय)—जिस समय छत्रसाल अब्दुस्समद से भिड़ रहे थे मुगलों ने भेलसा ले लिया। छत्रसाल उसे पुनः लेने के लिये चले तो रास्ते में बहलोल खाँ (मुगलों का सरदार—यह ऊपरवाले बहलोल से भिन्न है) से भिड़ंत हो गई और छत्रसाल ने रात में अपनी छोटी सेना से छापा मारकर उसे पीछे हटा दिया। दूसरी बार मुठभेड़ होने पर वह भाग गया।

बहादुर खाँ—बहादुर खाँ (खाँ जहाँ बहादुर) गुजरात का सूबेदार था। महाबत खाँ के धीमे कार्य से असंतुष्ट होकर औरंगजेब ने बहादुर खाँ और दिलेर खाँ को दक्षिण भेजा। बाद को शिवाजी ने बहादुर खाँ और दिलेर खाँ दोनों को मार भगाया (१६७२)। बंगलाना से हारकर बहादुर अहमदनगर लौट गया। जब मई या जून १६७१ ई० में महाबत खाँ और शाहजादा मुअज्जम दक्षिण से चले गए तो उनकी जगह बहादुर खाँ दक्षिण का सूबेदार नियत किया गया (जनवरी १६७२ ई०)। [७७, २४०, २५७]

बाँधव—रियासत रीवाँ के दक्षिण में बाँधवगढ़ नाम का एक स्थान भी है (दे. न.)। किंतु यहाँ पर बाँधव से रीवाँ का ही तात्पर्य है। [१११, २५०]

बाजीराव—बाजीराव पेशवा।

बादर खाँ—दे. 'बहादुर खाँ'।

बाबर—बाबर पहला मुगल सम्राट् था। इसका शासन-काल सन् १५२६ से १५३० तक था। हिंदुओं के साथ इसका बर्ताव अच्छा था। [२८०]

बार (पार)—दे. 'पार' [२०७—जावली बार सिंगारपुरी]।

बारगीर—एक प्रकार का फौजी सिपाही।

बावन पातसाह—बावन बादशाहों को जीतनेवाले दिल्ली के सम्राट् औरंगजेब से तात्पर्य है। [२१८]

बावनी—बावनी-खेरा नामक एक स्थान पंजाब में है। संभव है इसी 'बावनी' से 'भूषण' का अभिप्राय हो। इस छंद का अभिप्राय मदरास के बावनी पत्तन से नहीं जान पड़ता, क्योंकि इसमें आए हुए सभी नाम उत्तरी भारत के हैं और प्रायः पूर्व से इनका क्रम प्रारंभ होता है। बावनी नामक एक स्थान हैदराबाद में है और दूसरा मंडला शहर के दक्षिण मध्य-प्रदेश में भी है।

बिदनूर—शिवप्पा नायक करीब ४० वर्ष (१६१८—१६६२) तक बिदनूर (दे. न.) पर शासन करता रहा। इस बीच उसने अपना इलाका दक्षिणी कोंकण तथा मैसूर की उत्तरी-पश्चिमी सीमा तक बढ़ा लिया था और बीजापुर के सुंढा आदि कुछ दुर्ग भी उसने जीत लिए थे। इससे अली आदिलशाह ने स्वयं जाकर उसको परास्त किया (१६६२)। जिस समय अली आदिलशाह शिवप्पा नायक से लड़ रहे थे, शिवाजी दक्षिणी कोंकण में लूट-खसोट करते थे। कोल्हापुर और कुदाल होते हुए वे विंगुरला तक पहुँच गए (मई १६६३)। इस समय उस प्रांत में शिवाजी का इतना आतंक छा गया था कि रास्ते में जितने मुसलमान जागीरदार-किलेदार थे, डर के मारे भाग गए। इसके बाद ही १६६४ में शिवाजी ने बिदनूर पर आक्रमण किया। उसके अनंतर शिवाजी भटकल (भोटकुल) जाना चाहते थे, लेकिन इसी बीच खवास खाँ से मुठभेड़ हो गई थी। [१५९]

बिधनोल—दे. 'बिदनूर'। [१५९]

बिलायत या बिलाइति—'भूषण' ने बिलायत शब्द का प्रयोग विदेशों के ही लिये किया है। जैसे—"थरथर काँपति बिलाइति अरब की।" उस समय मध्य एशिया को भी 'बिलायत' कहा करते थे। [११६, १६२, १६४]

बीजापुर—दक्षिण के आदिलशाही मुसलमानों की राजधानी (दे. न.)। आदिलशाही खानदान का स्थापित करनेवाला यूसुफ आदिल खाँ तुर्क था, जो फारस होते हुए दक्षिण आया था और बहमनी रियासत में बढ़ते-बढ़ते बीजापुर प्रांत का सूबेदार हो गया था। जब बहमनी राज्य नष्ट होने लगा तो वह स्वतंत्र हो गया। यहाँ पर महम्मद आदिलशाह सन् १६५६ तक, अली आदिलशाह १६७२ तक तथा सिकंदर आदिलशाह १६८६ ई० तक राज्य करते रहे। [१२, ६९, ११६, १५५, १७२, २०७, २२८, २४१, २५५]

बुँदेलखंड—वर्तमान मध्यभारत के पूर्व की ओर यमुना नदी, विंध्याचल पर्वत तथा मालवा से घिरा हुआ प्रांत बुँदेलखंड कहलाता है (दे. न.)। यहाँ पर अधिकतर बुँदेले क्षत्रिय रहते हैं। [१११]

बुँदेला—क्षत्रियों की एक जाति।

बुखारा—मध्य एशिया (रूसी तुर्किस्तान) में बुखारा नाम का एक प्रांत तथा शहर हैं।

बुधराव—छत्रसाल हाड़ा बूँदी-नरेश के भाई भीमसिंह के पौत्र अनिरुद्धसिंह थे। राव बुधसिंह इन्हीं अनिरुद्धसिंह के पुत्र थे। औरंगजेब के मरने पर जब उसके पुत्रों में राज्य के लिये लड़ाई छिड़ी तो उसमें ये मुअज्जम की ओर से लड़े थे।

बेतवा—बुँदेलखंड की एक प्रसिद्ध नदी, जो यमुना में आकर मिली है (दे. न.)। संवत् १७८७ वि० में औरंगजेब ने अमीर अबदुस्समद को एक बहुत बड़ी सेना देकर महाराज छत्रसाल का दमन करने को भेजा। बेतवा के पास भीषण युद्ध हुआ। पर अंत में अब्दुस्समद हारकर चला गया।

बेदर—वर्तमान हैदराबाद शहर से ७८ मील उत्तर-पश्चिम बीदर नाम का एक कसबा है (दे. न.)। प्राचीन काल में यह विदर्भनगर के नाम से प्रसिद्ध था और प्रसिद्ध राजा नल के श्वसुर एवं दमयंती के पिता राजा भीम की यहीं पर राजधानी थी। आगे चलकर यह दक्षिण के बहमनी राज्य की भी राजधानी थी। उसके बाद १४९८ ई० से १६०९ तक यहाँ बरीदशाही सुलतानों का राज्य रहा। १६५७ ई० में सम्राट् औरंगजेब ने बीदर का किला ले लिया था। [२१४]

भक्खर—सक्खर और भक्खर नामक दो नगर सिंध के सूबे में सिंधु नदी के पास हैं (दे. न.)।

भगवंत-तनय—अकबर के दरबारी इतिहास-प्रसिद्ध राजा भगवानदास के पुत्र राजा मानसिंह।

भगवंतराय—भगवंतराय खीची असोथर के राजा थे। इनके यहाँ कवियों का खूब आदर था। ये स्वयं कवि थे। इनके दरबार में भूधर, मून, सारंग आदि कवि थे। इस छंद में मध्यदेश का भी नाम आया है इससे लोग इसे उक्त 'खीची' की प्रशंसा में नहीं मानते। मध्य-भारत में भगवंतराय नाम के एक साधारण नरेश का पता भी चलता है।

भड़ौंच—नर्मदा नदी पर उसके मुहाने से लगभग ३० मील पूर्व की ओर भड़ौंच बसा हुआ है (दे. न.)। सन् १६१६ तथा १६१७ ई० में

भड़ोंच में अँगरेजों एवं हालैंडवालों ने कोठियाँ स्थापित कीं। मराठों ने कई बार इस नगर को लूट लिया था। [२५१]

भाऊ—भाऊसिंह हाड़ा बूँदी-नरेश छत्रसाल हाड़ा के पुत्र थे। ये शिवाजी से लड़ने के लिये मुगल-सेना के साथ दक्षिण भेजे गए थे। ३० अप्रैल १६६० ई० को शिवपुर से गरारा को जानेवाले दर्रे के पास करीब ३००० मराठी सेना से इनकी मुठभेड़ हुई। किंतु बहुत देर तक युद्ध होने के पश्चात् मराठी सेना के पैर उखड़ गए। बाद को सिंहगढ़ के प्रसिद्ध घेरे में जब सफलता न हुई तो जसवंतसिंह से इनका झगड़ा हो गया। इसपर ये लोग औरंगाबाद चले गए। शिवाजी के लिये मैदान खाली हो गया। [३५, ७७, २४८]

भागनगर या भागनगरी—दे. 'भागनेर'।

भागनेर—गोलकुंडा से ७ मील पूर्व (दे. न.) सन् १५८९ में महम्मद कुली कुतुबशाह ने मूसी नदी के किनारे एक नगर बसाकर उसे अपनी राजधानी बनाया। आगे चलकर इस नगर का नाम हैदराबाद हो गया। [११६, २१४]

भिलायों—सूरत का एक नगर।

भूषण—'महाकवि भूषण' (दे. पुस्तक के आदि में)।

भेलास—आधुनिक भेलसा या भिलसा। यह मालवा प्रांत में है। इसे कालिदास ने अपने मेघदूत में 'विदिशा' नाम से लिखा है (दे. न.)।

भोटकुल—यह भटकुल या भटकल का विकृत रूप जान पड़ता है। इस नाम का एक बंदरगाह उत्तरी कनारा में समुद्र के किनारे पर है (दे. न.)। १६६४ ई० में सूरत के अँगरेज व्यापारियों को पता लगा कि शिवाजी एक बहुत बड़ा जहाजी बेड़ा तैयार करा रहे हैं, जो संभवत दूसरे जहाजी बेड़ों को लूटेगा या साबरमती होता हुआ अहमदाबाद (सिंध) जायगा। किंतु नवंबर के अंत में वह बेड़ा भटकल (भोटकुल) शिवाजी की सेना की सहायता के लिये भेजा गया, जो उस समय कनारा प्रांत पर आक्रमण कर रही थी। इस जहाजी बेड़े से विदेशी व्यापारी, किनारे के रहनेवाले दूसरे लोगों–मुख्यतः हबसियों को बड़ी आशंका उत्पन्न हो गई।

भौंसिला—प्रसिद्ध भौंसला या भौंसला वंश, जिसमें शिवाजी उत्पन्न हुए थे।

मक्कर—मक्कर नाम का कोई स्थान नहीं मिलता, किंतु प्रसंग से 'मेकरान' लिया जा सकता है (दे. न.)। इस नाम का नगर पंजाब प्रांत में भूषण-वर्णित सक्खर और भक्खर की जोड़ का इन दो शहरों के उत्तर पूर्व में तथा डेरा इस्माइलखाँ से दक्षिण-पूर्व में है।

मक्का—मुसलमानों का प्रसिद्ध तीर्थस्थान जो अरब में है। [१७४]

मध्यदेश—दे. 'भगवंतराय'।

मथुरा—१६६७ ई० में औरंगजेब ने यह आज्ञा निकाली कि साम्राज्य भर में जितने मंदिर हैं तोड़वा दिए जायँ। इसी हुक्म के मुताबिक मथुरा (दे. न) में केशवराय का बनवाया हुआ मंदिर जनवरी १६७० ई० में गिरवा दिया गया।

मधुरा—जुलाई १६७७ ई० में शेर खाँ लोदी को जीतने के पश्चात् शिवाजी मदुरा (दे. न.) की ओर बढ़े। तब मदुरा के नायक ने डरकर शिवाजी के पास अपना दूत भेजा। शिवाजी ने उससे एक करोड़ रुपया माँगा। पहले तो उसने देने में आनाकानी की। लेकिन इसी बीच महाराष्ट्र से रघुनाथ पंत आ गए और शिवाजी ने इस रकम को तै करने का काम उन्हें सौंप दिया। अंत में नायक ने ६ लाख रुपये देने का वादा किया और डेढ़ लाख दे भी दिया। इसके पश्चात् शिवाजी वहाँ से लौट आए।

मरहट्टा या मराठा—किसी राजा का राज जिस भाग पर चलता है, वह 'राष्ट्र' कहलाता था। वहाँ के निवासी 'राष्ट्रिक' कहलाते थे। इसी 'महाराष्ट्रिक' से मरहट्ठा या मराठा शब्द बना है। इन्हीं का देश 'महाराष्ट्र' है।

मल्लारि (मालावार)—मालावार प्रांत (दे. न.)।

महमूद—सिरौंज के थाने के थानेदार महम्मद हाशिम खाँ ने महाराज छत्रसाल का मुकाबिला किया था। परंतु उसे हारकर लौटना पड़ा।

महाराष्ट्र—मोटे तौर से महाराष्ट्र की सीमा उत्तर में नर्मदा नदी, पश्चिम में अरब सागर, ईशान में नागपुर और नैऋत्य में कारवार शहर तक मानी जाती है।

महावत खाँ—सूरत की दूसरी लूट तथा बंगलाना में मराठों की लूट-खसोट सुनकर औरंगजेब को दक्षिण के विषय में बड़ी ही चिंता हुई। इसलिये उसने इस बार महावत खाँ को दक्षिण का सबसे बड़ा हाकिम तथा सेनापति बनाकर शिवाजी का दमन करने को भेजा (२८ नवंबर १६७० ई०)। ९ जनवरी १६७१ ई० को बहादुर खाँ को भी हुक्म दिया कि दिलेर खाँ को लेकर गुजरात छोड़कर दक्षिण चले जाओ और महावत खाँ की सहायता करो। अमरसिंह चंदावत तथा बहुत से दूसरे राजपूत सेनापति भी दक्षिण भेजे गए।

महासिंह—महाराज मानसिंह के पुत्र जगतसिंह के ये लड़के थे। मिर्जा राजा जयसिंह इन्हीं के पुत्र थे।

महेवा—महेवा बुँदेलखंड में पड़ता है। प्रातःस्मरणीय महाराज छत्रसाल बुँदेला के पूज्य पिता चंपतराय यहाँ के जागीरदार थे। पन्ना-नरेश छत्रसाल प्राय: यहीं रहा करते थे।

माड़वार—राजपूताने की प्रसिद्ध रियासत (जोधपुर) (दे. न.)। [१११]

मानसर—हिमालय पर्वत के उत्तरी भाग का प्रसिद्ध तालाब [२८७]।

मानसिंह—यहाँ पर अकबर के दरबारी इतिहास-प्रसिद्ध मानसिंह से तात्पर्य है।

माल-मकरंद—शिवाजी के पितामह मालोजी। [९, १०, १०९, १६२, २१५, २६८]

मालवा—वर्तमान मध्य-भारत का पश्चिमी प्रांत मालवा के नाम से प्रसिद्ध है (दे. न.)। इसकी राजधानी प्रसिद्ध उज्जैन नगरी थी।

मावली—पूना जिले के पश्चिम की एक पट्टी जो पश्चिमीघाट पहाड़ के समानांतर करीब ९० मील लंबी और १२ से २४ मील तक चौड़ी है, 'मावल' कहलाती है। यहाँ के रहनेवाले बड़े वीर तथा निर्भय योधा होते थे। जो स्थान प्रातःस्मरणीय राणा प्रताप की सेना में भीलों का था वही स्थान शिवाजी की सेना में मावल में रहनेवाले अर्थात् मावली लोगों की सेना का था। [१०६]

मीर सद्याल—इस नाम का पता नहीं चलता। इसीसे हमने 'शिव-राज-घातक' का 'मुरादशाह बाल' पाठ अच्छा माना है।

मुगल—मुसलमानों की एक उपजाति।

मुराद—मुरादबक्स शाहजहाँ का पुत्र औरंगजेब का भाई तथा गुजरात प्रांत का सूबेदार था। शूजा की भाँति इसने भी अपने को बादशाह घोषित किया था। बाद को औरंगजेब ने इसे बादशाही का लालच देकर अपनी ओर कर लिया, किंतु काम निकल जाने पर एक दिन दावत में कैदकर ग्वालियर के किले में नजरबंद कर दिया। इसके पश्चात् औरंगजेब ने अपना राज्य निष्कंटक करने के लिये उसके ऊपर एक आदमी को मार डालने का दोषारोपण कराया। इस अपराध में उसे फाँसी दे दी गई। (४ दिसंबर सन् १६६१ ई०)। [२१८]

मुलतान—वर्तमान पंजाब-प्रांत में सिंधु नदी के पूर्व एक शहर है (दे. न.)। पहले कुछ दिनों तक औरंगजेब यहाँ का सूबेदार भी रह चुका था।

मेड—अलीगढ़ जिले में इस नाम का एक कसबा है। इस प्रांत में पहले पौरच क्षत्रियों का आधिपत्य था।

मेवार (मेवाड़)—उदयपुर की रियासत (दे. न.)। [१११]

मोरँग—कूच-बिहार के पश्चिम और पूर्निया जिले के उत्तर में एक पहाड़ी प्रांत है, जिसे मोरँग कहते हैं (दे. न.)। १६६४ ई० में दो फौजें, एक गोरखपुर के फौजदार अलीवर्दी खाँ और दूसरी दरभंगा के फौजदार के अधीन, मोरँग के बागी राजा को परास्त करने के लिये भेजी गई। २० दिसंबर को अलीवर्दी खाँ ने बादशाह को कुछ बहुमूल्य रत्न तथा १४ हाथी राजा की ओर से नजर की तौर पर दिए। इस प्रकार मोरँग का अंत हुआ। [२५०,]

मोहकमसिंह—यह अमरसिंह चंदावत का लड़का था। बंगलाना तालुके के सल्हेर दुर्ग में मराठों ने इसे कैद कर लिया था। पर बाद को छोड़ दिया। इस लड़ाई में करीब-करीब ३० बड़े-बड़े मुगल सेनापति तथा बहुत से साधारण सिपाही काम आए। इखलास खाँ भी इस युद्ध में कैद कर लिया गया था। यह घटना सन् १६७२ ई० में जनवरी के अंतिम तथा फरवरी के शुरू सप्ताह की है। [२४१, ३५८]

याकूत खाँ—यह एक बीजापुरी सरदार था। कुछ लोग कहते हैं कि सिद्दियों को 'याकूत खाँ' की उपाधि १६७० के बाद मिली थी, इससे 'भूषण' का अफजल के साथ 'याकूत' का वर्णन अनैतिहासिक है। किंतु शिव-चरित्र-निबंधावली और शिवाजी-निबंधावली में स्पष्ट रूप से इसका वर्णन मिल जाता है। प्रतापगढ़ से फाजल, याकूत, अंकुशखान, हसन, मुसेखान प्रभृति बीजापुरी योधा भागे थे। पर बीजापुर में अपमान होने के कारण इन सबने शिवाजी पर चढ़ाई करने की एक दूसरी योजना तैयार की और रुस्तमे जमाँ के साथ कोल्हापुर के पास शिवाजी से युद्ध करने गए। पर ये सब परास्त हो गए (२८ दिसंबर १६५९)। [६२]

रतनाकर—'भूषण' के पिता रत्नाकर त्रिपाठी ('भूषण' की जीवनी दे.)। [२६]

राजदुग्ग—दे. 'रायगढ़'।

राठौर—राठौर क्षत्रिय (जोधपुर)।

राना—महाराणा उदयपुर से तात्पर्य है। इन क्षत्रियों [१३३] तक ने औरंगजेब की सेवा किसी-न-किसी रूप में स्वीकार कर ली थी, परंतु शिवाजी अपनी आन पर डटे रहे। कभी औरंगजेब के अधीन नहीं हुए।

रामगिरि—पेन गंगा और गोदावरी के बीच रामगिरि नामक एक पर्वत तथा एक बहुत बड़ा उपजाऊ तथा धनी प्रांत है (दे. न.)। १६६५ ई० में जब औरंगजेब ने हैदराबाद लेकर गोलकुंडा घेर लिया तो अबदुल्ला कुतुबशाह ने औरंगजेब से संधि कर ली। इस संधि के अनुसार अब्दुल्ला कुतुबशाह ने अपनी दूसरी लड़की की शादी औरंगजेब के बड़े लड़के महम्मद सुल्तान से कर दी। एक करोड़ रुपया देने का वचन दिया और रामगिरि का धनी प्रांत भी मुगलों को दे दिया। इसी घटना का वर्णन 'भूषण' ने बड़ी खूबी के साथ किया है। [२१४]

रामनगर—सल्हेर लेने के बाद मोरोपंत ने सूरत से ६० मील दक्षिण कोली रियासत रामनगर (दे. न.) पर आक्रमण किया। यहाँ का राजा सोमशाह अपना परिवार लेकर चिकली (सूरत से ३३ मील दक्षिण) भाग गया (१९ जून १६७२ ई०)। थोड़े दिन बाद जुलाई

१६७२ ई० में मोरोपंत ने १५००० सेना लेकर रामनगर ले लिया। सोमशाह भागकर दमन चला गया। [१७२, २०७]

रामसिंह—ये मिर्जा राजा जयसिंह के पुत्र थे। जब शिवाजी आगरे में कैद थे, उस समय इन्होंने शिवाजी की सहायता की थी। ये बड़े वीर तथा प्रतिभा-संपन्न योधा थे। [१९९]

रायगढ़—जावली के चंद्रराव मोरे को परास्त करके शिवाजी ने बीजापुर के गवर्नर फतेह खाँ के अधीनस्थ अफसरों से रायरी नामक स्थान छीन लिया। पीछे अपने पिता शाहजी के परामर्श से उस स्थान पर एक विशाल गढ़ बनवाया और उसका नाम रायगढ़ (दे. न.) रखा (सन् १६५६)। यहाँ पर १६७४ ई० में शिवाजी का राज्याभिषेक हुआ और यहीं उनकी राजधानी भी थी। [१४, १५, १६, २२, २८९]

राव—छोटे-छोटे राजा।

रुद्र या रुद्रशाह—दे. 'हृदयराम-सुत-रुद्र'।

रुस्तमे जमाँ—इसका वास्तविक नाम 'रनदौला' था, रुस्तमे जमाँ इसकी उपाधि थी। यह बीजापुर राज्य के दक्षिणी-पश्चिमी कोने का सूबेदार था। किनारे पर रत्नगिरि से लेकर गोआ (पुर्तगाली भारत) कारवार तथा मिराँज तक तथा दूसरी ओर रत्नगिरि जिले के दक्षिणी भाग से लेकर बेलगाँव, कोल्हापुर, धारवार तथा कनारा का उत्तरी भाग इसके अधीन था। इसकी राजधानी मिराँज थी। अफजल खाँ के मारे जाने पर इसने शिवाजी पर चढ़ाई की। पन्हाला या परनाला के पास शिवाजी ने रुस्तमे जमाँ तथा फाजल खाँ (अफजल खाँ के पुत्र) की महती सेना को हरा दिया (२८ दिसंबर १६५९ ई०)। [२४१]

रुहिलाना या रुहेला—अफगानिस्तान के 'रुह' प्रदेश से आकर रुहेले मुसलमान जहाँ बसे थे। वर्तमान रुहेलखंड (दे. न.)। [३२२]

रूम—रूम (तुर्की) तक शिवाजी का यश फैल गया था। तुर्की से सम्राट् औरंगजेब के यहाँ राजदूत भी आते थे। [११६]

रूसियान—रूसी तुर्किस्तान से अभिप्राय है। रूसी तुर्किस्तान से

भी दिल्ली के सम्राट् का संबंध हो गया था और इस प्रकार रूस तक शिवाजी का आतंक फैल गया था।

रेवा—नर्मदा नदी का नाम 'रेवा' भी है (दे. न.)। [७९, २२८]

रैयाराव—चंपतराय की यह उपाधि थी।

लंक—लंका (दे. न. सिंहल)।

लोहगढ़—मिर्जा राजा जयसिंह के समय में उनकी सेना के राजपूत क्षत्रियों ने सिंहगढ़ तथा लोहगढ़ (दे. न.) को बड़े गर्व के साथ दखल कर लिया था। पुरंदर की संधि के बाद ही स्वयं शिवाजी ने अपने हाथ से किले की कुंजी कीरतसिंह को सौंप दी थी। किंतु आगरे से लौटकर १६७० में ७ फरवरी को सिंहगढ़ तथा १२ मई को लोहगढ़ ले लिया। [२६०]

वंग—बंगाल का प्राचीन नाम वंग (दे. न.) था।

विराट—विराट से बरार प्रांत का अभिप्राय है।

विश्वनाथ-मठ—दे. 'काशी'।

विहारीश्वर देव—'भूषण' के जन्मस्थान त्रिविक्रमपुर (वर्तमान तिकवाँपुर) के पास घाटमपुर से हमीरपुर को जो सड़क गई है, उसपर विहारीश्वर महादेव का मंदिर है। एक महोदय 'आर्कियोलौजिकल सर्वे ऑव इंडिया' द्वारा प्रकाशित 'पश्चिमोत्तर प्रांत और अवध के प्राचीन इमारत और लेख' के आधार पर इसे राधा-कृष्ण का मंदिर लिखते हैं। पर यह महादेव का मंदिर उससे भिन्न है। कवि का तात्पर्य शिव-मंदिर से ही है—'देव बिहारीश्वर जहाँ बिस्वेस्वर-तद्रूप'। [२७]

वीरबर (वीरबल)—सम्राट् अकबर के दरबारी राजा वीरबल। इनका भी जन्मस्थान भूषण के जन्मस्थान के पास ही मौजा 'अकबरपुर-वीरबल', जिला कानपुर में ही था। [२७]

शाइस्ता खाँ—जुलाई १६५९ ई० में औरंगजेब का दूसरा अभिषेक हुआ। इसी अवसर पर शाइस्ता खाँ दक्षिण (डकन) का सूबेदार बनाकर राजकुमार मुअज्जम के स्थान पर भेजा गया। यह मालवा और दक्षिण का भी सूबेदार रह चुका था और हाल ही में गोलकुंडा पर आक्रमण करने में औरंगजेब के साथ बहुत प्रतिष्ठा भी प्राप्त कर चुका था। चाकन आदि

स्थानों को लेता हुआ पूने में जाकर इसने डेरा डाला। ५ अप्रैल १६६१ ई० को शिवाजी २०० योधा लेकर भेष बदले हुए इसके डेरे में पहुँचे। संतरी को मारकर उन्होंने महल में प्रवेश किया। शाइस्ता खाँ खिड़की के रास्ते से भागा, पर शिवाजी के वार से उसके हाथ की अँगुलियाँ कट गईं। पीछे जो युद्ध हुआ उसमें इसका पुत्र अब्दुल फतेह मारा गया। [३५, ७७, १०२, १०४, १९०, १२२, १२५, १२९, १४०]

शाहजहाँ—सम्राट अकबर का पोता, जहाँगीर का पुत्र तथा पाँचवाँ मुगल सम्राट्। इसका शासनकाल सन् १६२७ ई० से १६५८ तक था। इसके शासनकाल में हिंदुओं के साथ अच्छा वर्ताव होता था। इसका बनवाया हुआ प्रसिद्ध ताजमहल अभी तक आगरे में स्थित है। इसके छोटे पुत्र औरंगजेब ने इसे आगरे के किले में कैद कर दिया था और वहीं १६६६ ई० में इसकी मृत्यु हुई।

शाहजी—शिवाजी के पूज्य पिता शाहजी।

शाहशूजा—शाहजादा महम्मद शूजा या शाहशूजा मुगल सम्राट् शाहजहाँ का द्वितीय पुत्र, औरंगजेब का भाई तथा बंगाल प्रांत का गवर्नर था। शाहजहाँ की बीमारी सुनकर इसने अपने को बादशाह घोषित कर दिया और एक बहुत बड़ी सेना लेकर दिल्ली की ओर रवाना हो गया। औरंगजेब ने खजुआ में इसका मुकाबिला किया। ५ जनवरी सन् १६५९ ई० को औरंगजेब ने शूजा को हराया। इसके बाद शूजा भाग गया और आराकान के पहाड़ी प्रांत में जाकर मर गया। [२१८]

शिवाजी—दे. 'छत्रपति शिवाजी' (पुस्तक के आदि में)

शीराज—फारस का एक नगर।

शेर खाँ (लोदी)—बीजापुरी कर्नाटक का दक्षिणी आधा भाग शेर खाँ लोदी के अधिकार में था। यह एक पठान था और पहले बीजापुरी वजीर बहलोल खाँ के अधीन रह चुका था। इसकी राजधानी वालीगंडपुरम् (वर्तमान पांडुचेरी जिले में) थी। ६ हजार सेना लेकर शिवाजी ने तीरुवाड़ी के पास इसपर आक्रमण किया। वहाँ से भागकर इसने बावनी गिरि के किले में (तीरुवाड़ी से २२ मील दक्षिण) शरण ली। मराठा-सेना ने

इसे वहीं घेर लिया। ५ जुलाई १६७२ को इसने विवश होकर शिवाजी से संधि कर ली और २०००० हून नगद दिए।

श्रीनगर—कश्मीर की राजधानी का नाम श्रीनगर है और गढ़वाल में भी इस नाम का एक नगर है (दे. न.)। [१११, २५०

संभाजी—शिवाजी के पुत्र संभाजी वा शंभूजी।

सक्खर– सिंध का एक नगर (दे. न.)।

सदरुद्दीन—अनवर खाँ के पराजित होने पर औरंगजेब ने धमौनी के सूबेदार मिर्जा सदरुद्दीन को ३०००० सेना देकर छत्रसाल से लड़ने के लिये भेजा। पहले तो बुँदेलों ने मिर्जा साहब की सेना को घेर लिया। बहुत देर तक युद्ध होने के बाद सदरुद्दीन पकड़ा गया। अंत में उसने सवा लाख रुपया और चौथ देने का वचन दिया। तब छत्रसाल ने उसे छोड़ दिया।

सफजंग—यह वस्तुतः विशेषण जान पड़ता है। इसका अर्थ है 'युद्ध में कतार बाँधनेवाला'। कुछ लोग इसे 'सैफजंग' मानते हैं। 'सैफ' का अर्थ तलवार है। साथ ही कुछ लोग इसे 'सफदरजंग' का बिगड़ा रूप मानते हैं। पर 'सफदरजंग' छत्रसाल से लड़ा था। इसलिये यह 'सफदरजंग' का बिगड़ा रूप नहीं जान पड़ता। [१०२]

समद—सम्राट् औरंगजेब ने अमीर अबदुस्समद को (सं० १७४४ वि०) महाराजा छत्रसाल (बुँदेला) से लड़ने तथा बुँदेलखंड पर चढ़ाई करने के लिये भेजा। पहले तो छत्रसाल की सेना के पैर उखड़ गए थे, परंतु बुँदेलों ने फिर से जमकर लड़ना आरंभ किया। अबदुस्समद हार गया और चौथ देना स्वीकार कर अपना पिंड छुड़ाया। यह युद्ध 'बेतवा की लड़ाई' के नाम से प्रसिद्ध है (१६९०)।

सरजा—यह मालोजी की उपाधि थी। इसी कारण भूषण ने शिवाजी को भी सरजा कहा है।

सलहेरि—जिस समय शिवाजी करिंजा (बरार) लूट रहे थे, उस समय मोरोपंत पिंगले पश्चिमी खानदेश और बंगलाना लूट रहे थे। दोनों सेनाओं ने मिलकर सल्हेर दुर्ग (दे. न.) को (२०००० के साथ) घेर लिया। किलेदार फतेहउल्ला खाँ मारा गया। शिवाजी ने किला दखल कर

लिया (५ जनवरी १६७१ ई०)। इसके बाद बहादुर खाँ और दिलेर खाँ को महावत खाँ ने शिवाजी को सल्हेर में घेरने के लिये भेजा। उक्त दोनों खाँ साहबों ने इस घेरे का भार इखलास खाँ मियाना, अमरसिंह चंदावत तथा दूसरे अफसरों को सौंप दिया और आप अहमदनगर चले गए। इसी बीच में प्रतापराव, आनंदराव तथा मोरोपंत ने घेरा डालनेवालों को पीछे से आकर घेर लिया और घोर युद्ध होने के बाद इस घेरे में अमरसिंह चंदावत मारा गया। उसका पुत्र मोहकमसिंह तथा इखलास खाँ कैद कर लिए गए, पर बाद को छोड़ दिए गए। इतिहास में यह घटना 'सल्हेर के घेरे' के नाम से प्रसिद्ध है। यह घटना फरवरी १६७२ की है। [९६, १०२, १०६, १६१, २२०, २९२, ३३३, ३५०]

सवाई—इसका अर्थ है 'सवा गुना'। शिवाजी की विशेषता दिखाने के लिये 'भूषण' ने इस शब्द का प्रयोग किया है। [२२२]

साम—(१) इसको सीरिया भी कहते हैं। भूमध्य सागर के किनारे अरब के उत्तर में यह देश है। यहाँ के व्यापारी उन दिनों हिंदुस्तान में व्यापार करने के लिये आते थे। साथ-ही-साथ मुगल राज्य की ख्याति प्रायः सभी मुसलमान देशों तक फैल चुकी थी। जब शिवाजी ने मुगलों से युद्ध ठानकर उनको नाकों चना चबवा दिया, तो उस समय सभी मुसलमानी रियासतों तथा देशों को इस विस्तृत साम्राज्य के विनाश की आशंका होने लगी। (२) भारत के पूर्व श्याम नामक प्रदेश है।

साहू—महाराज संभाजी के पुत्र तथा छत्रपति शिवाजी के पौत्र।

सिंगारपुर—जब मराठों ने फरवरी १६६१ में दभोल का बंदरगाह जीत लिया तो पाल्लीवान के राजा जसवंत राव, जिन्होंने पन्हाला घेरने में सिद्दी जौहर की बड़ी सहायता की थी, प्रभावली के राजा सूर्यराव के यहाँ भाग गए। इस समय प्रभावली राज्य की राजधानी शृंगारपुर थी (दे. न.)। इसी बीच में आदिलशाह के दबाव में पड़कर सूर्यराव ने संगमेश्वर के पास तानाजी मालसरे पर रात के समय आक्रमण किया, लेकिन बहादुर तानाजी ने उन्हें मार भगाया। जावली जीत लेने के बाद से ही (१६५६) सूर्यराव सदा

शिवाजी के प्रतिकूल कार्य किया करते थे। इसलिये शिवाजी ने शृङ्गारपुर पर आक्रमण किया और २९ अप्रैल १६६१ ई० को उसे जीतकर त्र्यंबक भास्कर को वहां का सूबेदार नियत कर दिया। इस विजय से वहाँ के लोगों में इतना आतंक फैल गया था कि सब लोग इधर-उधर भाग गए थे। [२०७]

सिंहगढ़—तानाजी मालसरे ने ३०० मावली सेना लेकर अँधेरी रात में सिंहगद (दे. न.) पर आक्रमण किया (४ फरवरी १६६० ई०)। मावली सेना रस्सी के सहारे किले पर चढ़ गई। पहरेदारों को मार डाला। यद्यपि राजपूत सेना बड़ी बहादुरी से लड़ी, किंतु मावली सेना ने 'हर हर महादेव' की गूँज लगाते हुए राजपूतों के हृदय में आतंक पैदा कर दिया। किले का राजपूत किलेदार उदैभान राठौर और तानाजी द्वंद्व-युद्ध करते-करते धराशायी हो गए। इसके बाद भी युद्ध चलता रहा। १२०० राजपूत इस युद्ध में काम आए। किले पर अपना आधिपत्य स्थापित करके मराठों ने घुड़सवारों की झोपड़ियाँ जलाकर उसके प्रकाश से शिवाजी को विजय की सूचना दी। शिवाजी उस समय सिंहगढ़ से ९ मील की दूरी पर राजगढ़ में थे। [९९, २६०]

सिंहथरि—पार और जावली के पास 'शिवथरि' नामक एक ग्राम था। संभव है इसीको लक्ष्य करके 'सिंहथरि' लिखा गया हो। [६३]

सिंहल—लंका, सीलोन।

सितारा—बंबई सूबे का प्रसिद्ध सतारा शहर (दे. न.)। ६ मार्च १६७३ ई० में पन्हाला लेने के बाद मराठा सेना ने पहली अप्रैल को पारली तथा २७ जुलाई को सतारा भी ले लिया।

सिरजे खाँ (शरजा खाँ)—यह बीजापुर का बड़ा प्रसिद्ध सरदार था। २४ दिसंबर १६६५ ई० को शिवाजी एवं दिलेर खाँ के साथ शरजा खाँ एवं खवास खाँ से युद्ध हुआ था।

सिरीनगर—दे. 'श्रीनगर'।

सिराइ या सिराही—बुँदेलखंड में एक स्थान।

सिरौंज—बुँदेलखंड में इस नाम का एक स्थान है (दे. न.)।

सिलहट—आसाम का एक नगर।

सिसोदिया—सिसोदिया क्षत्रिय। [५, १०, ३१७]

सुजानसिंह—ये ओड़छा के राजा थे। जयसिंह के साथ ये भी दक्षिण गए थे। पुरंदर के घेरे में इन्होंने अच्छी वीरता प्रदर्शित की थी। ये दिलेर खां के साथ 'चांदा' भी गए थे। [११५, २४१]

सुलंक-कुल—सुलंकी क्षत्रिय। [२८]

सूरत—बुधवार ता० ६ जनवरी सन् १६६४ ई० को ११ बजे दिन में शिवाजी प्रथम बार सूरत में पहुँचे। सूरत का किला ताप्ती नदी के दक्षिणी किनारे पर समुद्र से १२ मील दूर था (दे. न.)। उस समय सूरत की गणना हिंदुस्तान के बड़े-बड़े व्यापारी नगरों में थी। यहाँ बड़े-बड़े व्यापारी बसे हुए थे। आबादी २००००० थी। करीब १२०००००) केवल सरकारी कर मिलता था। शिवाजी ने ४ दिन तक इस नगर को लूटा। उसके बाद १० ता० को वहाँ से रवाना हो गए। दूसरी बार २ अक्टूबर से ५ अक्टूबर तक (१६७० में) शिवाजी ने फिर से सूरत को लूटा। उस समय यहाँ पर अँगरेज, डच, फ्रेंच तथा आरमेनिया इत्यादि के व्यापारी भी थे। कासगर का निर्वासित बादशाह भी हाल ही में मक्का से लौटकर तातार सराय में टिका हुआ था। मराठों ने बहुत से स्थानों में आग भी लगा दी (होरी सी जराय सिवा सूरत फनाँ करी)। [२०१, २२६, ३५६]

सेख (शेख)—मुसलमानों का एक वंश।

सैयद—मुसलमानों का एक वंश।

सैयद अफगन—यह दिल्ली का एक सरदार था। संवत् १७५७ वि० में छत्रसाल बुँदेला को परास्त करने के लिये भेजा गया था, परंतु हार गया।

हजारी—मुगल-शासन में यह कायदा था कि बड़े-बड़े अमीर, उमरा, नवाब, राजा, महाराजा तथा प्रसिद्ध-प्रसिद्ध सेनापतियों को जागीर मिला करती थी। उन्हींमें से दो हजारी, तीन हजारी, पाँच हजारी मनसबदार होते थे।

हबस और हबसाना—पंद्रहवीं शताब्दी में बंबई के आस-पास बहुत से हबसी बस गए थे। उनमें से एक को अहमदनगर के सुलतान ने डंडाराजपुरी का सूबेदार बना दिया। किंतु अहमदनगर राज्य के नष्ट हो जाने पर वह उस प्रांत का स्वतंत्र शासक बन बैठा था। १६१६ ई० में बीजापुर के सुलतान ने एक सिद्दी सरदार को वजीर की पदवी देकर नगो-

थन से वनकोट तक का देश उसे दिया। साथ-ही-साथ वीजापुर की तिजारत और मक्का जानेवाले यात्रियों का भार भी उसीको सौंपा गया। किंतु जब शिवाजी की जल-सेना तैयार हो गई और उन्होंने ६० जहाजों का एक बेड़ा तैयार कराया तो हबसियों, अँगरेज व्यापारियों और मुगलों के भय की सीमा न रही। [१६६]

हाड़ा—बूँदी-नरेश छत्रसाल हाड़ा तथा इस जाति के अन्यान्य क्षत्रिय। बूँदी-नरेश छत्रसाल हाड़ा १६५८ ई० में सामूगढ़ के स्थान पर दारा की ओर से बहुत ही बहादुरी के साथ लड़ते-लड़ते मारे गए थे। लड़ते समय जब इनके हाथी को गोली लगी और वह पीछे की ओर मुड़ा तो ये कहने लगे कि हाथी भले ही पीछे हट जाय पर मैं पीछे नहीं हट सकता। इसके बाद घोड़े पर चढ़कर ये मुराद की ओर बढ़े और उसको भाला मारना ही चाहते थे कि एक गोली इनके मस्तक में आ लगी। छत्रसाल के साथ-ही-साथ इस युद्ध में उनका लड़का भरतसिंह, भाई मोकीमसिंह, तीन भतीजे और कई-एक बड़े-बड़े हाड़ा सरदार मारे गए। [१२२]

हिमायूँ (हुमायूँ)—बाबर का पुत्र तथा दूसरा मुगल बादशाह। इसका शासनकाल १५३० से १५४० तक और १५५५ से १५५६ तक था। इसका भी बर्ताव हिंदुओं के साथ अच्छा था।

हृदयराम-सुत-रुद्र—अग्निकुल से चार क्षत्रिय कुलों का जन्म हुआ। जिनमें एक सुलंकी भी है। बघेले क्षत्रिय सुलंकियों में से हैं। इनका राज्य गुजरात में भी था। बघेलखंड में इनके बहुत से राज्य हैं। रीवाँ राज्य इनमें मुख्य है। 'रुद्रराम' का पता नहीं लगता पर 'हृदयराम सोलंकी' का पता चलता है। ये 'गहोरा' प्रांत के राजा थे। संभव है इनका राज्य चित्रकूट तक रहा हो, क्योंकि गहोरा से चित्रकूट ६–७ कोस पर ही है। गहोरा के सुलंकी 'सुरकी' भी कहे जाते हैं। कुछ लोग कहते हैं कि रीवाँ राज्य के बबुआने में वर्दी के बाबू रुद्रशाह थे, इनके पिता का नाम हरिहरशाह था। कोई हृदयराम को रुद्रराम का पिता कहता है और कोई रुद्रराम या रुद्रशाह को हृदयराम का पिता बतलाता है। ये सुलंकी निश्चय थे, पर अभी न तो इन्हीं का ठीक-ठीक पता चला है और न इनके समय का ही [२८]

पद्य-सूची

शिवराज-भूषण (पृष्ठ १ से ६९ तक)

शिवा-बावनी (पृष्ठ ७० से ८८ तक)

छत्रसाल-दशक (पृष्ठ ८९ से ९२ तक)

फुटकर (पृष्ठ ९३ से ११६ तक)

सहायक-ग्रंथ-सूची

संस्कृत

अग्नि-पुराण

अलंकार-शेखर

अलंकार-सर्वस्व

काव्य-प्रकाश

काव्यादर्श

काव्यालंकार-सूत्र-वृत्ति

कुवलयानंद

चंद्रालोक

ध्वन्यालोक

पर्णालपर्वतग्रहणाख्यान
नाट्य-शास्त्र
महाभारत
रस-गंगाधर
वक्रोक्ति-जीवित
वाग्भटालंकार
वाल्मीकीय रामायण
शिव-भारत
सरस्वती-कंठाभरण
साहित्य-दर्पण
हनुमन्नाटक

हिंदी

अलंकार-आशय
अलंकार-कौमुदी
अलंकार-प्रकाश
अलंकार-मंजूषा
कविता-कौमुदी
कवि-प्रिया
काव्य-कल्पद्रुम
काव्य-निर्णय
काव्य-प्रभाकर
चित्र-चंद्रिका
छत्र-प्रकाश
छत्रपति शिवाजी
छत्रसाल-दशक (दीनजी)
,, (हरिशंकर शर्मा)
जसवंत-जसो-भूषण
पद्माभरण
पृथ्वीराज-रासो
प्रवीण-सागर
बीसलदेव-रासो
बुँदेलखंड का इतिहास (प्रथम भाग)
भारती-भूषण
भूषण-ग्रंथावली (मिश्रबंधु)
,, (रामनरेश त्रिपाठी)
,, (बंगवासी प्रेस)
भूषण ग्रंथावली (सम्मेलन)
,, (व्रजरत्नदास)
मराठों का उत्थान और पतन
महाराज छत्रसाल
मिश्रबंधु-विनोद
रतन-बावनी
रसिक-मोहन
राज-विलास
रामचंद्र-भूषण
रावणेश्वर-कल्पतरु
ललित-ललाम
लाल-चंद्रिका
वीर-केशरी शिवाजी
वीर-पंचरत्न
वीर-सतसई
वीरसिंहदेव-चरित
शिवराज-भूषण (वेंकटेश्वर प्रेस)
,, (नवलकिशोर प्रेस)
,, (पूना)
,, (बाराबंकी)

,, (निर्णय-सागर)
,, (कृष्णविहारी मिश्र —हस्तलिखित)
,, (काशिराज—हस्त-लिखित)
शिवसिंह-सरोज
शिवा-बावनी (दीनजी)
,, (सम्मेलन)
शिवा-बावनी और छत्रसाल-दशक (कल्पतरु प्रेस)
साहित्य-लहरी
सुजान-चरित्र
हनुमन्नाटक
हम्मीर-रासो
हम्मीर-हठ
हिंदी-नवरत्न
हिंदी भाषा और साहित्य
हिंदी-शब्द-सागर
हिंदी-साहित्य का इतिहास (शुक्लजी)
हिम्मत बहादुर-विरुदावली

मराठी

मराठी रियासत (चारों भाग)
शिव-चरित्र-निबंधावली
शिव-कालीन पत्र-सार-संग्रह (दो भाग)
शिवाजी-निबंधावली (दो भाग)
संपूर्ण-भूषण (काटे)

गुजराती

शिवराज-शतक

अँगरेज़ी

A Literary and Historical Atlas of India
Anecdotes of Aurangzib
Annals and Antiquities of Rijasthan
Bombay Gazetteer
Foreign Biographies of Shivaji
Hindi-Literature (by Key)
Hindu-Pad-Padshahi
Historical Atlas of India
History of Aurangzib
History of Maratha People
History of Marathas
Imperial Gazetteer of India
Mughal Rule in India
Rise of Maratha power
Sabhasad Bhakhar
Shiva Chhatrapati
Shivaji
Shivaji Souvenir
Shivaji the Maratha, His Life and Times
Source book of Maratha History
Studies in Mughal India
Survey Map of the Bombay Precedency.

Thacker's Reduced Survey Map of India
The Life of Shivaji Maharaj
The Oxford Advanced Atlas.

सूचना—उपर्युक्त पुस्तकों के अतिरिक्त मर्यादा, माधुरी, साहित्य-समालोचक, सम्मेलन-पत्रिका, नागरी-प्रचारिणी-पत्रिका, मनोरमा, सुधा, भारतेंदु, विशाल-भारत आदि पत्रिकाओं में भूषण-संबंधी लेख भी देखे गए हैं।